अनुसुइया के परमहंस जी

"हो! मैं मरिहौं न! सूक्ष्म स्वरूप
से सदा ही रहिहौं! जो भी स्मरण करेगा
उसका कल्याण करिहौं!"

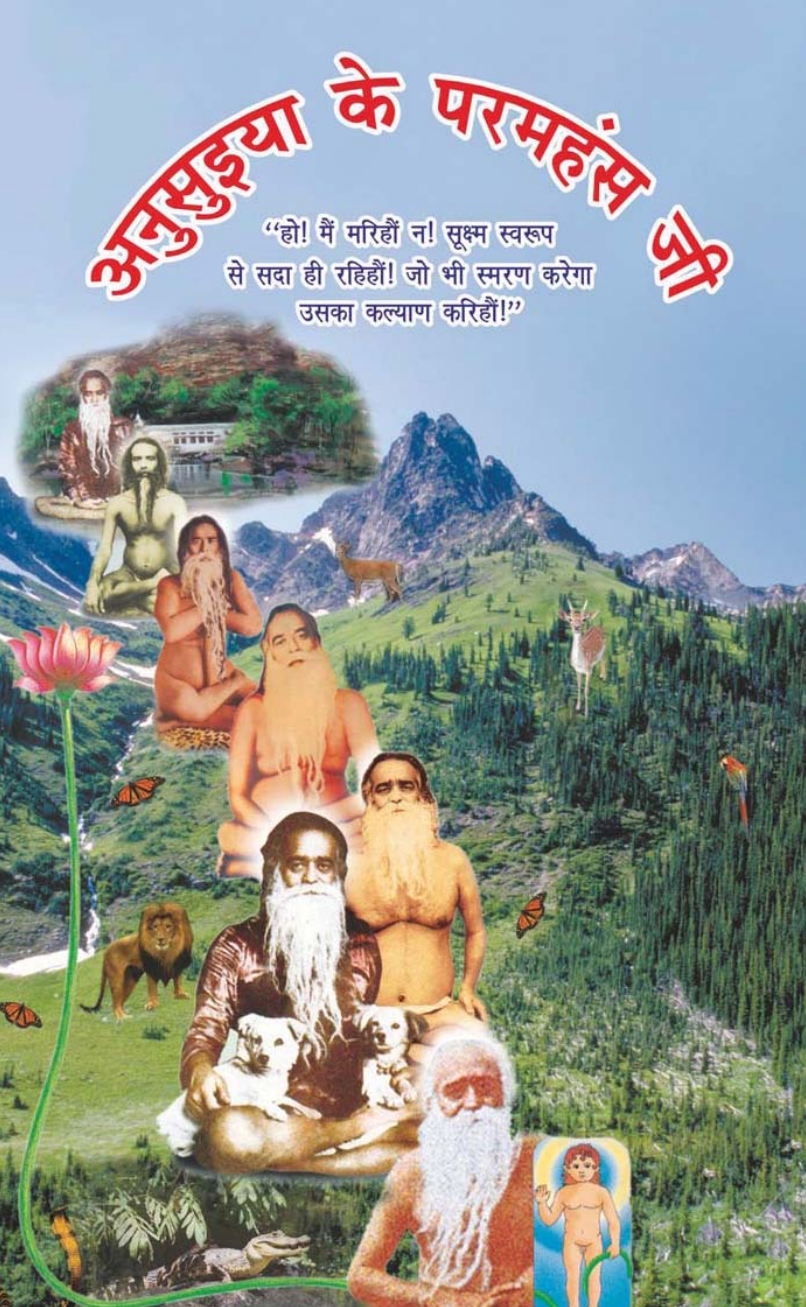

आद्योपान्त सम्पूर्ण योग-साधन-नाम, ध्यान, आहार, ब्रह्मविद्या का चिन्तन, यम-नियमों की जानकारी, उनका अनुष्ठान अनुभव जागृति के बिना व्यर्थ है किन्तु अनुभव की वह जागृति सर्वज्ञ सद्गुरु के बिना नहीं होती। अनुभव वह विशेष जागृति है जिसमें जिस परमात्मा की आपको चाह है वही परमात्मा आपके हृदय से रथी हो जाता है और सोते-जागते हर श्वास पर आपका मार्ग-दर्शन करने लगता है।

-स्वामी अड़गड़ानन्द

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

अनुसुइया के परमहंसजी

"हो! मैं मरिहौं न! सूक्ष्म स्वरूप
से सदा ही रहिहौं! जो भी स्मरण करेगा
उसका कल्याण करिहौं!"

परमपूज्य श्री परमहंस जी महाराज के कृपा-प्रसाद

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी

के मुखारविन्द से

श्री परमहंस आश्रम
शक्तेषगढ़, चुनार, मीरजापुर, उ०प्र०

प्रकाशक-

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन
(रेलवे सब-वे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - ४०० ०६९ (भारत)

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं- 5, मोगरा लेन (रेलवे सब वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069
फोन - (022) 28255300
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com
वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com

© लेखक

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तःप्रेरणा

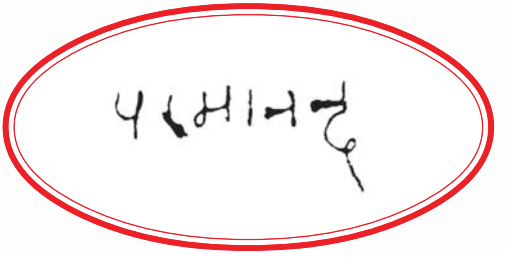

अनन्तश्री विभूषित, योगिराज, युग पितामह
परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्दजी
के हस्ताक्षर

स्वामी श्री परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६८ (१९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई.

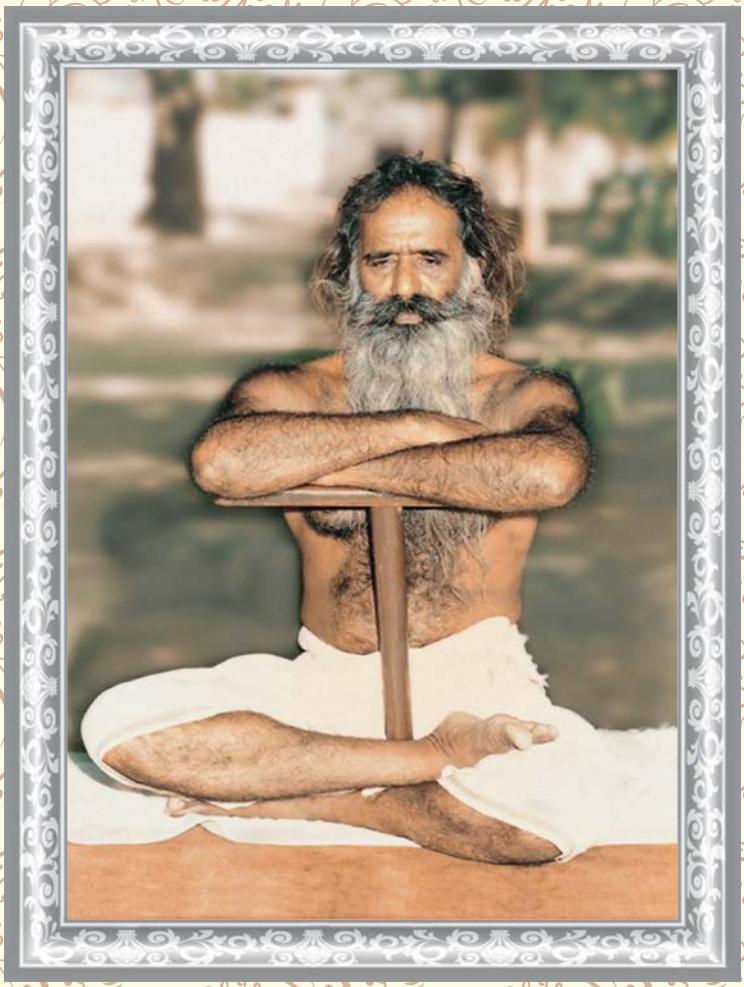

श्री स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज
SHRI SWAMI ADGADANANDJI MAHARAJ

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।
सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुखराशी, सदा एकरस निर्विकारी।।
अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।
चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।
हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।
यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

"सद्गुरु की शरण में जाओ, सम्पूर्ण योग की कुंजी मिलेगी।"

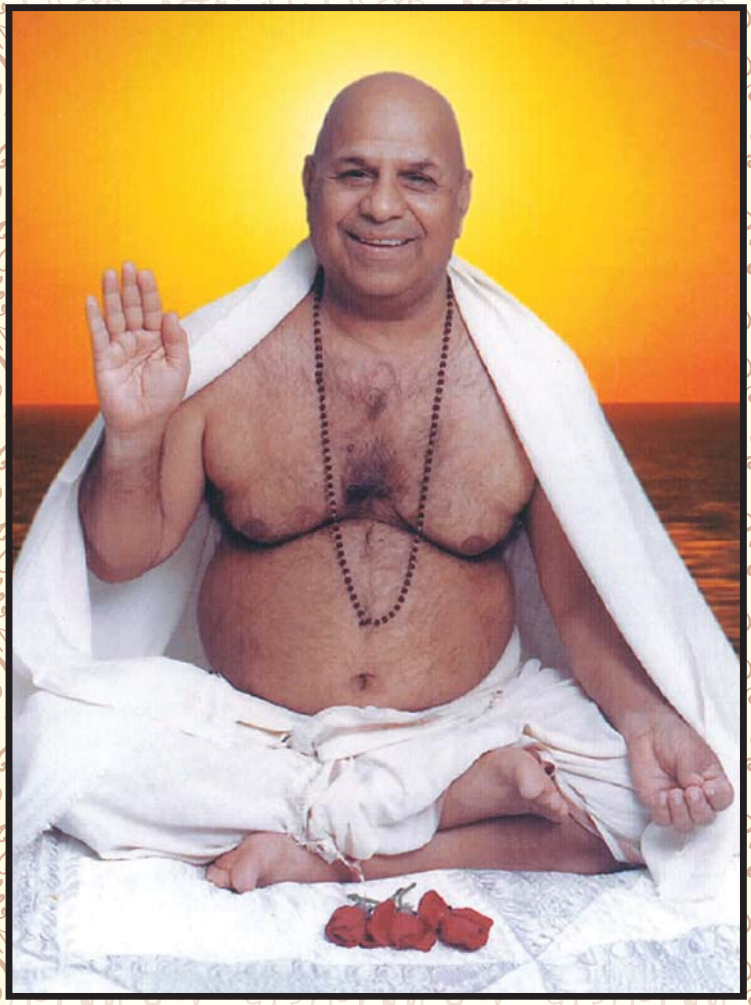

श्री गुरुदेव भगवान के शिष्यों में प्रथम स्थितप्रज्ञ विभूति
स्वामी श्रीसच्चिदानन्द जी महाराज
श्री परमहंस आश्रम, धारकुण्डी, सतना - मध्यप्रदेश

"सद्गुरु की आज्ञा-पालन ही सच्ची साधना है।"

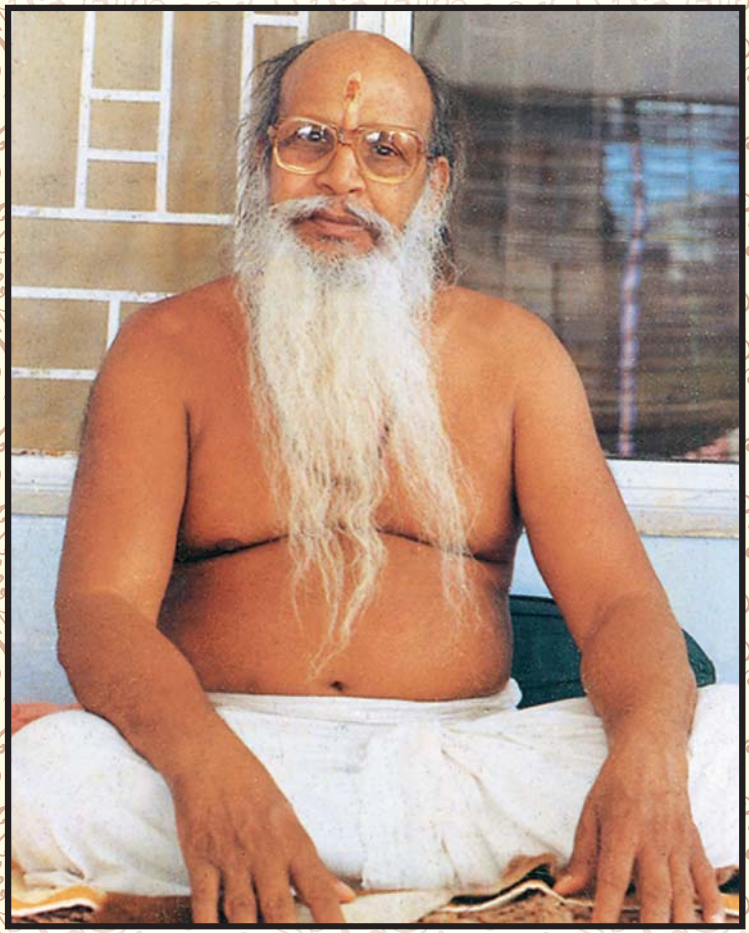

श्री गुरुदेव भगवान के शिष्यों में द्वितीय स्थितप्रज्ञ विभूति

स्वामी श्री भगवानानन्दजी महाराज

श्री परमहंस आश्रम, अनुसुइया, सतना - मध्यप्रदेश

महाप्रयाण : १२ अक्टूबर २००८ ई.

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	१
१.	जीवन परिचय	३
२.	बाल्य-जीवन की विलक्षण घटना	४
३.	शालेय शिक्षा	५
४.	व्यायाम की प्रेरणा	५
५.	वैवाहिक जीवन	६
६.	आकाशवाणी एवं संत-मिलन	९
७.	सन्त से प्राप्त आशीर्वाद	११
८.	वृद्धा द्वारा तरुणी का सन्देश	१३
९.	सद्गुरु-दर्शन	१६
१०.	भजन की शुरुआत	१६
११.	सत्संगी महाराज (लंगड़ू बाबा)	१८
१२.	भजन की जागृति	१९
१३.	प्रभात-फेरी	२२
१४.	इष्ट की व्यापकता में विश्वास	२६
१५.	सद्गुरु-कृपा से मन का रुकना	२८
१६.	नल पर गुरुदेव का स्नान एवं चेतावनी	२९
१७.	धर्मपत्नी को उपदेश	३२

	विषय	पृष्ठ संख्या
१८.	गृह में भयंकर उत्पात	३४
१९.	भजन परीक्षा की कसौटी पर	३७
२०.	क्षणासक्ति पर इष्ट–आदेश	४०
२१.	प्रयाग की घटना	४१
२२.	बैरगिया नाला	४३
२३.	गंगा तट पर विचरण	४७
२४.	परिभ्रमण काल में जौनपुर	५१
२५.	जौनपुर के कब्रिस्तान में	५१
२६.	रामनगर में भक्तों के बीच	५३
२७.	शिशिर-काल में दिगम्बरावस्था	५५
२८.	कर्मनाशा के किनारे देवी-मंदिर में	५७
२९.	देहाध्यास का त्याग	५९
३०.	सन्तों के संग माघ-मेला प्रयाग में	६२
३१.	माघ-मेले में सिपाही द्वारा हाथ मरोड़ने की घटना	६३
३२.	माघ-मेला में वैष्णव संतों द्वारा धूना तापने से रोकना	६५
३३.	माघ-मेला में सेठों द्वारा निमन्त्रण एवं जल-वृष्टि	६५
३४.	रेलयात्रा में सिन्धियों से विवाद	६८
३५.	उज्जैन कुम्भ में शंकराचार्य द्वारा दीक्षा-संस्कार	७२
३६.	भण्डारे से बिना प्रसाद ग्रहण किये लौटना	७४
३७.	उज्जैन मेले में नौ-दिवसीय भण्डारा	७६
३८.	यमुना किनारे विचरण	७९

	विषय	पृष्ठ संख्या
३९.	फकीर के साथ भोजन	८०
४०.	यमुना तट पर माताओं द्वारा भजन	८१
४१.	आगरा गल्ला-मण्डी	८४
४२.	कुपात्र को दान	८६
४३.	कंचन-कामिनी से निवृत्ति	८८
४४.	हरिद्वार के लिए प्रस्थान	९१
४५.	हिमालय की तलहटी में	९२
४६.	सिपाही द्वारा दूध लाना	९४
४७.	संत वंशीदास के आश्रम में	९६
४८.	मधवापुर में चातुर्मास	९७
४९.	बालकों द्वारा उपद्रव	१००
५०.	पूर्व जन्म की स्मृति	१०३
५१.	करसोलवा पासी को शिक्षा	१०५
५२.	बिल्व-फलों की रक्षा	१०७
५३.	अयोध्या में बैरागी महन्थ द्वारा दुर्व्यवहार	१०९
५४.	बम्बई में जलेबी एवं नारियल खाने की इच्छा	११२
५५.	दूधभिक्षा मे मछली	११४
५६.	बम्बई से वापसी	११६
५७.	राजकुँवरी का विवाह	११७
५८.	मधवापुर पुनरागमन एवं वंशीदास के आश्रम में	१२४
५९.	भविष्यद्रष्टा महाराज जी	१२५

	विषय	पृष्ठ संख्या
६०.	हैजा का प्रकोप एवं मरणासन्न को जीवनदान	१२६
६१.	मधवापुर से जन्मभूमि की ओर	१३०
६२.	रामकोला स्टेशन पर ईश्वरीय चेतावनी	१३१
६३.	ट्रेन द्वारा कश्मीर की ओर	१३५
६४.	जम्मू से चित्रकूट के लिए	१३६
६५.	जौनपुर में ज्योतिषी पर कृपा	१३७
६६.	काशी विश्वनाथ मंदिर में ध्यान	१४०
६७.	काशी में हरिहर बाबा का दर्शन	१४१
६८.	काशी-प्रयाग यात्रा में वीतरागानन्दजी (कुत्ता बाबा)	१४१
६९.	प्रयाग के हँड़िया बाबा	१४२
७०.	कर्बी स्टेशन पर विचित्र स्वप्न	१४२
७१.	चित्रकूट में महाराज जी	१४६
७२.	अनुसुइया की ओर	१४७
७३.	द्रौपदीबाई	१४७
७४.	सिद्धबाबा का करामाती तख्त	१५०
७५.	शेर का निवास	१५१
७६.	हिंसक पशुओं एवं बर्बर डाकुओं के बीच	१५२
७७.	भोजन का आदेश	१५३
७८.	डाकुओं का हृदय परिवर्तन	१५५
७९.	भजन की पराकाष्ठा	१६०
८०.	गर्भवास से छुटकारा	१६१

विषय	पृष्ठ संख्या
८१. यमराज से छुटकारा	१६२
८२. स्वरूप की प्राप्ति	१६३
८३. माता अनुसुइया द्वारा भोजन और लक्ष्मी द्वारा सेवा	१६४
८४. चित्रकूट से काशी की रामलीला का दर्शन	१६६
८५. नेहरु के बारे में भविष्यवाणी	१६८
८६. महाराजजी द्वारा गम्भीर रोगियों पर कृपा	१६८
८७. महाराजजी को मलेरिया ज्वर	१७०
८८. रामलखनदास जी का आगमन	१७०
८९. अयोध्या से वेदान्ती जी का आगमन	१७४
९०. रामलखनदास जी का जातिगत मोह	१७८
९१. सिद्धबाबा	१८२
९२. गुरुप्रसाद का आगमन	१८५
९३. पाप-ग्रह से मुक्ति	१८६
९४. ब्रह्मचारी जी (धारकुण्डी महाराज) का आगमन	१८९
९५. ध्यान के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह	१९२
९६. १३ वर्षीय बालक का साधु बनने हेतु आना	१९४
९७. महाराजजी की आगरा-यात्रा एवं अत्रि जी का दर्शन	१९९
९८. दर्शन की छात्रा चित्रकूट में	२००
९९. सिरसा बन में परशुराम जी	२०१
१००. दर्शन की छात्रा का समाधान	२०१
१०१. दर्शन की छात्रा अनुसुइया आश्रम में	२०२

विषय	पृष्ठ संख्या
१०२. महुआ बीनने वाले बैरागी महात्मा	२०६
१०३. साधकों पर महाराज जी की सतर्क दृष्टि	२०६
१०४. करपात्री जी का घर्म-संघ एवं महाराजजी का संदेश	२०८
१०५. आश्रमीय भक्त का शेर से सामना	२१०
१०६. एक भीलनी का उपद्रव	२११
१०७. बालकों द्वारा सिंह शावक को लाना	२१३
१०८. ब्रह्मचारी बन्दर	२१५
१०९. आश्रम में सुग्गा	२१८
११०. सुग्गे को जीवनदान	२१८
१११. आश्रम में सुग्गी	२२१
११२. आश्रम में शेर द्वारा बन्दर पर हमला	२२२
११३. शहद तोड़ने वाले कोलभीलों का उपद्रव	२२३
११४. कोल-भीलों की क्षमा-याचना	२२६
११५. कोल-भीलों द्वारा महाराज जी की सेवा	२२७
११६. अखण्डानन्दजी का आगमन	२२८
११७. भगवानानन्दजी का आगमन	२२९
११८. भगवानानन्दजी की घर-वापसी	२३०
११९. भगवानानन्दजी का पुन: आश्रम-आगमन	२३१
१२०. शिवानन्दजी का आगमन	२३५
१२१. स्वयमानन्दजी का आगमन	२३७
१२२. बग्गड़ बाबा का आगमन	२३९

विषय	पृष्ठ संख्या
१२३. बग्गड़ बाबा की सेवा	२४१
१२४. छड़ी-कमण्डल का लुढ़कना	२४१
१२५. साधकों का बैराग्य	२४२
१२६. कुत्ते द्वारा वेद-पाठ	२४७
१२७. योगक्षेम का वहन	२४९
१२८. एक महात्मा का सिद्धबाबा के तखत पर बैठना	२५३
१२९. स्वरूपदास का उपद्रव	२५५
१३०. हनुमानगढ़ी के नागा का उपद्रव	२५६
१३१. पण्डों द्वारा सामूहिक विरोध	२५७
१३२. आश्रमीय व्यवस्था	२५९
१३३. कुलानन्द जी के यहाँ कुत्ते का स्वप्न बताना	२६१
१३४. महाराज द्वारा पशुओं की मूक भाषा को पहचानना	२६३
१३५. एक यात्री के चोरी गये लोटे की वापसी	२६३
१३६. महाराजजी के दो प्रिय भजन	
१. भज ले मन राम सिया राम सिया रामा	२६४
२. जाग री मोरी सुरत सुहागिन	२६६
१३७. नौबस्ता के पाड़ेजी का फोड़ा ठीक होना	२६९
१३८. कामतानाथ में महन्थ का लड़का	२७०
१३९. शीतल पण्डित को महाराज का आशीर्वाद	२७२
१४०. लड़के की आयुरेखा	२७४
१४१. चित्रकूट में उच्च कोटि के महात्मा	२७६

विषय	पृष्ठ संख्या
१४२. दूध-भिक्षा	२७७
१४३. तहसीलदार स्वामी	२७८
१४४. महाराजजी द्वारा नागा महात्माओं को हाथी दान	२८०
१४५. आश्रमीय खर्चे पर चर्चायें	२८१
१४६. फटिक शिला से एक सन्त का आगमन	२८५
१४७. बाँदा के एस.पी. साहब का शिकार हेतु आना	२८६
१४८. महाराजजी का पंडित के घर कर्बी जाना	२९१
१४९. फटिक शिला में निर्मलदासजी से भेंट	२९१
१५०. रामघाट पर चरखारी के पुरोहित	२९२
१५१. मोहकमगढ़ के राम-लक्ष्मण	२९४
१५२. निर्मलदास का अन्त	२९६
१५३. अनुसुइया क्षेत्र में मलेरिया का प्रकोप	२९८
१५४. महाराजजी का दूध के लिए जाना	२९९
१५५. द्रौपदीबाई की हँसी	३००
१५६. द्रौपदीबाई का षड्यन्त्र	३०२
१५७. महाराजजी का निर्दोष सिद्ध होना	३०५
१५८. राजापुर के शास्त्रार्थ में महाराज जी की विजय	३०६
१५९. आश्रम में डॉ. रामकुमार वर्मा	३०८
१६०. मन्दाकिनी के प्रलयकारी बाढ़ का रुकना	३१३
१६१. गायिका का भजन– 'चोलिया काहे न धुलाई...'	३१४
१६२. सतयुग के महात्मा	३१७

विषय	पृष्ठ संख्या
१६३. सिद्ध बाबा के तखत पर सतयुग के महात्मा	३१९
१६४. सिद्ध बाबा का उद्धार	३२१
१६५. मेरा प्रवेश	३२३
१६६. मेरा समर्पण	३२६
१६७. गुरु महाराज जी की विद्या	३२८
१६८. अनुभव में शस्त्रागार	३४२
१६९. आश्रम का प्रथम निर्माण	३४५
१७०. मेरी सेवा तथा सुमिरन	३४७
१७१. मेरा नामकरण	३४९
१७२. भजन– 'अड़गड़ मत है पूरों का....'	३४९
१७३. मेरी रक्षा	३५१
१७४. गुरु महाराज की ताड़ना	३५४
१७५. आश्रम में एकादशी	३५५
१७६. वृद्ध दम्पत्ति को पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद	३५८
१७७. केदार बाबा का आगमन	३५९
१७८. स्वामी राम का आगमन	३६१
१७९. कामरूप कामाख्या का पण्डा	३६३
१८०. स्थितप्रज्ञ महापुरुष के कर्म	३६६
१८१. मृतप्राय व्यक्ति को जीवन-दान	३६७
१८२. गुरु पूर्णिमा की घटना	३७०
१८३. आश्रम में रेडियो	३७१

विषय	पृष्ठ संख्या
१८४. चीन-भारत युद्ध में भविष्यवाणी	३७२
१८५. टी.बी. के रोगी पर कृपा	३७३
१८६. डाकिया से छिनैती	३७६
१८७. आश्रम में भैरव कुत्ता	३७७
१८८. स्वरूपदासजी एवं रामानन्दजी का आगमन	३८०
१८९. आश्रम में गाछी-बाछी-दासी	३८१
१९०. ब्राह्मणों द्वारा आश्रम में भागवत् एवं ब्राह्मण-भोज	३८२
१९१. आदिवासी महिलाओं द्वारा भोजन से इनकार	३८६
१९२. गीताप्रेस की गीता पुस्तक का मिलना	३८८
१९३. गीता लिखने का आदेश	३९१
१९४. बारहमासी का अवतरण	३९३
१९५. शरीर छोड़ने से पूर्व महाराजजी की चेतावनी	३९४
१९६. बन्दूक एवं ट्रैक्टर के सम्बन्ध में	३९६
१९७. महाराजजी द्वारा रेडियो से समाचार सुनना	३९९
१९८. शरीर छोड़ने से पूर्व महाराजजी का उपदेश	४००
१९९. अवध में शरीर छूटने से क्या मुक्ति मिल जाती है?	४०४
२००. महाराजजी का महाप्रयाण एवं समाधि	४०५
२०१. श्री परमहंस जी महाराज की लोकोक्तियाँ	४०९
२०२. अमरवाणी बारहमासी	४९३
२०३. मानवता का चरमोत्कर्ष	५२८

* * *

प्राक्कथन

एक साधक भगवान के निर्देशन में कैसे साधना में प्रवृत्त होता है, रास्ते में कैसे-कैसे विघ्न आते हैं, लेकिन भगवान के आदेशों पर चलते हुए वह निर्विघ्न साधन-पथ पर चलता हुआ अपने स्वरूपपर्यन्त दूरी तय कर लेता है, आदेशों की अवहेलना होने पर भगवान ताड़ना भी देते हैं। उसी का क्रमबद्ध विवरण पूज्य गुरुदेव भगवान स्वामी परमानन्द परमहंस जी महाराज का जीवन-चरित्र आप सबके समक्ष प्रस्तुत है।

ॐ

२

अनुसुइया के परमहंस जी

१. जीवन-परिचय

पूज्य श्री गुरु महाराज का जन्म गोरखपुर अंचल में, जो इस समय दो-तीन जिलों में विभक्त है, देवरिया जिले के रामकोला नामक ग्राम में सन् १९११ में हुआ था। रामकोला रईस जमींदारों का गाँव। वहाँ चीनी बनाने के दो-दो प्रख्यात कारखाने। गुरु महाराज के पिता श्री जगरूप शर्मा तथा माता फूलमानी देवी थी।

जब आप पर ज्योतिषियों की निगाह पड़ी तो माताजी से बोले– यह बालक तुम कहाँ से पा गयी? यह तुम्हारे लायक नहीं है। इसको राजघराने में जन्म लेना चाहिए। भले जन्म तुम्हारे यहाँ लिया हो, यह बड़ा होकर या तो राजा होगा या बहुत बड़ा महापुरुष! अब माताजी ने सोचा कि पंडित जी कहीं नजर न लगा दें, कोई टोना-टोटका न कर दें। वह भागकर रसोईघर में गयीं, नमक-मिर्च लेकर आयीं, चार बार उनके सिर पर घुमाया नजर झारने के लिए और चूल्हे में डाल दिया। नमक डालेंगे तो चट-चट की आवाज के साथ कुदृष्टि का प्रभाव समाप्त हो जायेगा और मिर्ची की तीखी गन्ध उड़ते ही नजर भी उड़ गयी। बुरी नजर उतारने का यह प्राचीन प्रचलन है।

गुरु महाराज का नाम उनके घरवालों ने कान्हा रखा था, दुलार से कन्हई कहकर पुकारते थे। फिर सत्संगी महाराज के द्वारा नाम पड़ा 'परमानन्द'।

२. बाल्य-जीवन की विलक्षण घटना

जब छः महीने की आयु थी माँ ने आपको चारपाई पर सुला रखा था। शाम का समय था। कहीं से सर्प निकला। खपरैल का घर। पूरा गाँव ही कच्चा। मिट्टी की दीवालें। जमींदारों के एक दो घर पक्के थे, अन्य सभी कच्चे ही थे। उन दिनों पूरा भारत ऐसा था। घरों में जहाँ-तहाँ सर्प इत्यादि घुसे ही रहते थे। सर्प आकर आपके पेट पर बैठ गया। नींद में बच्चे के पेट का ऊपर-नीचे होना सर्प को भी अच्छा लग रहा था। वह वही बैठा ठाठ से झूला झूल रहा था। फन निकाल कर वह महाराज के मुख के ऊपर दायें-बायें कर रहा था। अब जब माताजी की निगाह पड़ी तो बड़ी जोर से चीखी, अरे सर्प!.... तो फिर दौड़ पड़ा पूरा घर, गाँव दौड़ पड़ा। करें क्या? एक ने छड़ी में धागे से मेंढक को बाँधकर सर्प के मुँह की ओर फेंका। लालच में सर्प जहाँ मेंढक की ओर लपका, पीछे से माताजी आयीं, झपट कर बेटे को पकड़ा, उसे खींचकर गोद में लेकर भाग गयीं। उन्होंने बच्चे को ऊपर से नीचे तक देखा, कहीं सर्प का दंश तो नहीं है। दंश नहीं था। फिर वही पुरानी औषधि नमक-मिर्ची घुमाया और आग में डाल दिया। फिर

उन्हें कन्धों पर घुमाया, सिर पर घुमाया, देवी-देवता मनाया, ब्राह्मण भोजन कराया।

३. शालेय शिक्षा

क्रमश: जब थोड़ी उम्र ज्यादा हुई तो उन्हें स्कूल में भर्ती कराया। तीसरे दिन मास्टर साहब ने उसकी चंचलता, चुहलबाजी देखकर कहा- हाथ आगे करो। बच्चे ने हाथ आगे बढ़ाया तो मास्टर साहब ने सट-सट दो-तीन छड़ी मार दिया। बच्चा चिल्लाया बड़ी जोर से। मचल गया। रुलाई बन्द ही न करे। महतारी बाघिन की तरह गयी, मास्टर के सामने स्कूल से ही बच्चे को उठा लिया और बोली– भाड़ में गयी शिक्षा। आज से मेरा बेटा नहीं पढ़ेगा। देखो न, यह कैसा मास्टर है! पढ़ाई जुबान से करायी जाती है कि छड़ी से? अरे! छड़ी मारना कौन सी पढ़ाई है। उल्टा-सीधा मास्टर साहब को उलाहना दी और बच्चे को लेकर घर चली गयी। मास्टर जी तथा वहाँ एकत्र सभी लोग हँसने लगे। माताजी की दुलार के कारण पढ़ाई का पाठ आपके जीवन से उठ गया।

४. व्यायाम की प्रेरणा

उम्र के साथ आप थोड़ा आगे बढ़े। बच्चे को घर में बन्द करके तो रखा नहीं जा सकता। वह लगा गाँव में घूमने। उस गाँव में कुश्ती के बारह अखाड़े थे। उन दिनों प्राय: सभी गाँवों में अखाड़े थे लेकिन सबसे अधिक यहाँ थे। अखाड़ों का रंग-ढंग

देखकर लड़के पर प्रभाव पड़ा तो वह भी चूल्हे के पास खड़ा होकर लगा दण्ड-बैठक लगाने, ताकि गर्मी से पसीना हो जाय। वह सट्-सट्-सट्-सट् दण्ड-बैठक लगावे और जहाँ हल्का-फुल्का पसीना हो जाय तो चूल्हे की पीली मिट्टी उठाकर पोत ले हाथों में, जाँघों में, गर्दन पर, ललाट पर। फिर पहलवान बनकर गाँव में घूमा करे। लोग विनोद में कहते– देखो, पहलवान जा रहा है, पहलवान आ रहा है। उस्तादों की निगाह पड़ गयी। एक ने कहा– लड़का बड़ा लगनी है रे! वे आपको दुलार करने लगे, समझाने लगे, दाँव-पेंच बताने लगे। बच्चे जल्दी सीखते हैं। प्यार से समझाने से शीघ्र समझ जाते हैं। उस्ताद दाँव-पेंच बताने लगे और धीरे-धीरे १८ वर्ष का होते-होते आपकी गणना पहलवानों में होने लगी, २० वर्ष का होते-होते नामजद पहलवान हो गये। फिर तो कुश्ती पर कुश्ती आती चली गयी। लेकिन वे जीवन में हारे कभी नहीं दूर-दराज तक। २८ साल की उमर तक पता नहीं कई सौ दंगल आये लेकिन आप हारे कभी नहीं। अमला गोविन्दराव इत्यादि चार-छः आपके लँगोटिया यारों में थे।

५. वैवाहिक जीवन

उन्हीं दिनों माताजी आपके विवाह की योजना बनाने लगीं। आप बोले– माताजी! हमारा ब्याह मत करो। मैं केवल पहलवानी करूँगा। लेकिन पौत्र का मुख देखने की लालसा माई लोगों में

स्वाभाविक होती है। वह एक बढ़िया, शानदार बिटिया ढूँढ़ लायीं और लाख मना करने पर भी बोलीं– तू अभी लड़का है, क्या जाने? हम लोग गृहस्थ हैं। अनादिकाल से हमलोगों की यही परम्परा है। कहता है ब्याह नहीं करूँगा। यह हम लोगों का धर्म है। उन्होंने डाँट-डपटकर आपका विवाह करा ही डाला। विवाह तो हो गया लेकिन आपको उससे मतलब नहीं। पहलवानों को अपना शरीर बहुत प्यारा होता है। वह सावधान रहे। उन्हें शिक्षा मिली थी--ब्रह्मचर्य व्रत से रहो। वह अपने व्रत के पक्के रहे।

विवाह हुए वर्षों बीत गये लेकिन स्त्री से मानो कोई मतलब ही नहीं। हुआ न हुआ बराबर। माताजी कुछ समझा रही थीं कि लाया है दूसरे की बिटिया तब ऐसे ही रखेगा? गृहस्थी का कुछ धर्म होता है। इतने में भाभी आयीं और उनकी गर्दन पकड़ कर जिस कमरे में उनकी पत्नी थी, उसमें ढकेल कर कहा– चल अन्दर! और किवाड़ी बन्द कर दिया। बराबर दबाव पड़ता रहा। रोज ही यही झगड़ा। क्रमशः तीन या चार बच्चे हुए, लेकिन पहलवानी का अभ्यास बराबर चलता रहा। कुश्तियाँ भी चल रही थीं।

महाराज का विचार था कि तमकुही स्टेट में दो महीने में गामा आनेवाला है, उससे हाथ मिलाकर देखूँगा कि हममें और उसमें अन्तर कितना है? महाराज यह सोचते ही नहीं थे कि वह हमें पटक देगा। महाराज को भान था कि बहुत हुआ तो कुश्ती

बराबर की रहेगी। माना कि वह बहुत बड़ा पहलवान है फिर भी अधिक से अधिक बराबर रहेगा, और क्या होगा! पटकनी तो कभी खाये नहीं थे। 'कोई पटक भी सकता है'–यह तो ज्ञान ही नहीं था। देखें, उसमें और हममें अन्तर कितना है। उसके लिये तैयारी ही कर रहे थे। और अपनी मस्ती में। काम कुछ नहीं। ५ किलो दूध नित्य की खुराक थी। जितना चाहो घी, बादाम! यह व्यवस्था बड़े भाई साहब ने दी थी। इतने का उन्होंने नियम बना रखा था। इसमें वे कभी कमी नहीं आने देते थे। आपके चरित्र पर भी वह पूरा ध्यान देते और डाँट-फटकार भी करते रहते थे। एक बार बड़े भाई साहब ने कुछ ज्यादा ही डाँट दिया, महाराज ने कहा– हम कहाँ गलत हैं? महाराज जी बताते थे– हो! मुँह से निकल ही तो गया! फिर हमें बड़ा पश्चाताप हुआ कि भाई साहब हमारी भलाई के लिए ही कह रहे थे। हमारे मुँह से क्यूँ निकल गया? परिवार में बहुत शिष्टाचार था। बड़े-छोटे की पहचान थी, मर्यादा थी। गृहस्थी क्या होती है?–महाराज को इसका भान ही नहीं था। भाई साहब ने स्थानीय मिल में आपकी नौकरी का प्रबन्ध भी करा दिया। किन्तु पहलवान क्या जाने नौकरी क्या होती है? थोड़ा सा असावधान हुए तो मशीन में अँगूठा जरा सा कट गया। आप बोले– धत् तेरे की। आप नौकरी छोड़कर घर चले आये। एक महीने में ही आप नौकरी से अलग हो गये और पुन: पहलवानी में लग गये।

६. आकाशवाणी एवं संत-मिलन

एक दिन कुछ सामान खरीदने आप बाजार जा रहे थे। सुनसान सड़क, अगल-बगल खेत। एक महात्मा बाँस की पतली टहनी में छोटी-सी झण्डी लगाये 'सीताराम-सीताराम-सीताराम-सीताराम-सीताराम' कहते हुए कुकुर दौड़ दौड़ते हुए... जैसे कुत्ता खुरखुर-खुरखुर चलता है, इसी मध्यम गति से सड़क पर दौड़ते चले जा रहे थे। सीताराम-सीताराम-सीताराम-सीताराम-सीताराम... जहाँ वह महाराज की बगल से निकले कि बड़ी जोर से आकाशवाणी हुई– 'इन महात्मा को भोजन कराओ।' इतनी जोर की आवाज थी कि सिर चकरा गया। सड़क के किनारे एक पुलिया थी। उसका सहारा लेकर आपने अपने को संयत किया। दस-पन्द्रह हाथ की दूरी पर दो किसान धान की निराई कर रहे थे। महाराज ने उनसे पूछा– कुछ सुना तुमलोगों ने? वे बोले– यहाँ सुनने के लिए कौन बात है? आप हैं और हमलोग हैं। हम भी चुप हैं, आप भी चुप हैं। तब महाराज ने सोचा– आवाज तो इतनी बुलन्द थी कि एक किलोमीटर के अन्दर सबको भली प्रकार सुन लेना चाहिए था। हमारा तो दिमाग झन्ना गया और पास में इनको सुनाई ही नहीं पड़ा। लगता है यह कोई दैवी आवाज है। कुछ भी हो, उन महात्मा को भोजन अवश्य कराना चाहिए। तब आप उन महात्मा को ढूँढ़ने दौड़े। वह महात्मा भी दौड़ में थे, इतने में कहीं निकल गये। आपने

सुबह ६-७ बजे से उन्हें ढूँढ़ना शुरू किया, दिनभर ढूँढ़ा, वह नहीं मिले। शाम को ६ बजे तक आप ढूँढ़ते ही रह गये लेकिन उनका कहीं अता-पता नहीं। आपने लोगों से पूछा– भाई, झण्डा लिए किसी महात्मा को इधर-उधर भागते देखा? भगवा वस्त्र पहने थे, चद्दर ओढ़े थे। लोग कहें– भाई, हमलोगों ने तो नहीं देखा।

हताश होकर आप जहाँ घर की ओर लौटने लगे, वही महात्मा एक गली में आपसे टकरा गये। अब भी वे उसी वेग से दौड़ते हुए चले जा रहे थे। आपने दौड़कर उनका चरण पकड़ा और कहा– महाराज! सीताराम-सीताराम ही कहते रहियेगा या प्रसाद भी पायेंगे। चलें, भोजन कर लें, प्रसाद पा लें। वह महात्मा बोले– तू क्या खिलायेगा? महाराज बताया करते थे– हमने जीवन में कभी महात्माओं की सेवा तो की नहीं थी। जहाँ 'क्या खिलाओगे' उनके मुख से निकला तो हमारा तुरन्त चित्त गया पैसे पर। सोचा– पहले महाराज तृप्ति का भोजन कर लें, फिर कुछ सामान घर के लिए भी लेता जाऊँगा। दोनों कार्यों की योजना बनाते हुए वह बोले– महाराज! सत्तू और चीनी पा लें। बोले– धत् तेरी लड़का-फड़का की। कहता है सत्तू और चीनी पा लें। क्यों रे, सतुआ और चीनी कौन-सा भोजन है? कहता है भोजन कर लो। झिड़कते हुए वह उसी वेग से पुनः चल पड़े। आपने पुनः दौड़कर चरण पकड़ा, बोले– महाराज! लड़कपनवश मुँह से निकल गया। क्षमा

करें। जो रुचि हो, पाइये। हमारे पास पर्याप्त पैसा है और यहाँ हमारी जान-पहचान है। यहाँ पर हमें उधार भी मिल जाता है। आप बैठिये। उन्हें आदर से बैठाया। उस समय डालडा-फार्चून जैसे आविष्कार थे ही नहीं। यह सन् १९३८ की बात है। शुद्ध देशी घी की पूड़ियाँ, मिठाइयाँ इत्यादि जो पकवान थे, लाकर रख दिया। हमने पूछा– महाराज! जो पर्याप्त पैसा था, वो कितना था? महाराज बोले– तीन पैसा। तीन पैसा था मेरे पास। हमने सोचा था– सत्तू-चीनी महात्मा को खिला दूँगा और घर के लिए कुछ सामान भी लेता जाऊँगा।

महात्मा जी आधा भोजन कर चुके तो आप दही लेने के लिए चले। उधर भीड़ में से एक आदमी आया। साधारण-सी भीड़। दुकान से दही लेकर वह उन महात्मा की ओर बढ़ा। हमने मना किया कि तू दही मत ले जा। हम दही लेने जा रहे हैं। लेकिन वह माना ही नहीं। उसने जबरदस्ती दही लाकर उन महात्मा के सम्मुख रख दिया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजन में दही अनिवार्य है। दही नहीं तो भोजन अधूरा माना जाता है। हमें बड़ा दु:ख हुआ कि इसने दही क्यों रख दिया? वह व्यक्ति प्रणाम करके चला गया।

७. सन्त से प्राप्त आशीर्वाद

तृप्ति का भोजन करके जब वह महात्मा खड़े हो गये तब आप दौड़कर एक पान ले आये। पान की दुकान पास में थी,

लाकर भेंट किया। उन महात्मा ने पान मुँह में दबा लिया, तब बोले– बोल बेटा, क्यों खिलाया हमको? क्या चाहता है? महाराज कहते थे कि मेरे पास कोई चाह थी ही नहीं, क्या माँगते? कोई कमी, कोई अभाव नहीं था इसीलिए हम बोले ही नहीं। वह महात्मा दुबारा बोले– बोल क्यों खिलाया? क्या चाहता है? माँग! फिर भी आपकी समझ में नहीं आया कि क्या माँगे? तीसरी बार उन महात्मा ने ललकारा– बोल, क्या चाहता है? तब महाराज को अपनी पहलवानी याद आयी। उन्होंने कहा– हम केहू से न पटकाईं। वह महात्मा चुप हो गये। एक-दो मिनट शान्त खड़े रहे, फिर जजक कर बोले– धत् तेरी लड़का-फड़का की। कहता है केहू से न पटकाईं, केहू से न पटकाईं। जो, फिर केहू से न पटकइहै। उन्होंने आशीर्वाद दिया और चले गये। वास्तव में वह महात्मा सात दिन के भूखे थे। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि भगवान खिलायेंगे तो खाऊँगा, नहीं तो जीवनपर्यन्त भोजन ही नहीं करूँगा। जब तक श्वास है सीताराम-सीताराम करता रहूँगा। ऐसे सन्तों को भगवान भी उन्हीं के द्वारा भोजन कराते हैं जिनका कल्याण होना होता है।

आशीर्वाद पाकर महाराज बहुत खुश हुए। वह घर आये। गाँव में ही तीसरे दिन एक कुश्ती का आयोजन हो गया। जिससे लड़ना था, महाराज बताते थे, वह उनकी निगाह के अन्दर ही था। उनसे तगड़ा तो था ही नहीं। महाराज ने सोचा– हमें है आशीर्वाद, तो इस साधारण पहलवान के लिए हम क्यों ताकत लगावें। गिरना

तो हमको है नहीं। लापरवाही से खड़े थे, उतने में उसका दाँव लग गया। हम नीचे और वह ऊपर। जिन्दगी में पहली बार हारे थे, वह भी लापरवाही से। सावधानी से लड़े ही नहीं। महाराज की जब कुश्ती हो, देखने वालों की अच्छी भीड़ हो जाया करती थी। हारने से इतने झेंप लगी कि भीड़ के बीच से सिर नीचा करके घर में चले गये। तीन दिन–तीन रात घर से बाहर नहीं निकले।

आप बार-बार सोचते कि आकाश से कौन बोला? हमने तो माँगा भी नहीं था। पीछे पड़कर उन महात्मा ने आशीर्वाद क्यों दिया कि जाओ, किसी से नहीं पटकाओगे। इनका आशीर्वाद न होता तो कम से कम उससे तो हम न हारते। हमारी बेइज्जती करा दिया। वह रह-रहकर दाँत पीसते और क्रोध में पागल हुए जा रहे थे। तीन दिन बाद किसी प्रकार घर से बाहर निकले तो लोगों ने कहा– अरे, उस्ताद जी! आपके साथ तो धोखा हुआ। कभी उससे मुकाबला हो तो फिर पटक लेना। किन्तु महाराज बोले ही नहीं। हार उनके गले के नीचे उतर ही नहीं रही थी। महाराज सोचे, इस सान्त्वना से अब कुछ नहीं होने वाला है। इस घटना के पीछे कोई-न-कोई रहस्य तो है।

८. वृद्धा द्वारा तरुणी का सन्देश

उसी समय गाँव में एक अन्य घटना घट रही थी। एक दरजी के घर कोई सुन्दर सुलक्षणा वधू आयी। अब गरीब परिवार। बड़े-

बड़े जमींदारों का गाँव। उन रईसों के मनबढ़ लड़के। लड़के उधर से निकलें तो बोली बोला करें, उसके समक्ष ऊटांगपटांग प्रस्ताव रखें। उसने सबको झिड़क दिया, डाँट दिया। कई दिनों से ऐसी शरारत चल रही थी। कुश्ती हारने के तीन दिन बाद संयोग से उसी रास्ते से महाराजजी निकले। महाराज का शारीरिक सौष्ठव देखा तो वधू के ऊपर प्रभाव पड़ गया। उसके विचार बदल गये। कहावत है–**'अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई।।'** (मानस, ७/११०/१६) ऐसा ही कुछ हुआ। बार-बार रोज की छेड़खानी से उसके मन में भी कदाचित् विकार आ गया हो या जो भी रहा हो, उसने एक कुटिला के हाथ से महाराज के पास एक पत्र भेजा। महाराज पढ़े-लिखे तो नहीं थे। उसी से पढ़वाकर सुना। उसने लिखा था– आप चाहें तो हम जीवनपर्यन्त आपसे सम्बन्ध रख सकती हैं। महाराज बताया करते थे– हम न तो दुश्चरित्र थे, न कभी किसी महिला पर कुदृष्टि ही डाली थी। आचरण से शत प्रतिशत सच्चे थे। लेकिन जब हमें पता चला कि उसने जमींदार के लड़के को डाँट दिया, रईसों के बच्चों को झिड़क दिया और हमको पसंद किया।-जहाँ यह भाव मन में आया तो महाराज को ऐसा लगा जैसे **'परम रंक जनु पारसु पावा।'** (मानस, २/११०/१) इतनी प्रसन्नता हुई जैसे कोई मणि पा गये हो। दिन में जब से वह पत्र मिला तब से नहाते-धोते, सँजते-सँवरते ही रहे। बाजार से सिल्क की गंजी लाकर पहना। कान के ऊपर फूल खोंस लिया।

कान में इत्र लगा रूई का फाहा डाला। उस दिन सूरज अस्त होने का नाम ही नहीं ले रहा था। महाराज यह भी सोच रहे थे कि कोई भाँप न ले। तैयारी देखकर हमारी कुचाल कोई समझ न जाय।

रात को जब आठ बजा तो छिपते हुए मिलन-स्थल की ओर चले जो एक बगीचे के उस पार था। **'इत उत चितइ चला भड़िहाईं।'** (मानस, ३/२७/९) इधर-उधर ताकते हुए सूने घर में जैसे कुत्ता दबे पाँव जाता है और रोटी लेकर भाग जाता है, ऐसे ही वह भी चले। आहिस्ते-आहिस्ते गाँव, घर पार कर आधे बगीचे में पहुँचे तो मन में भाव आया– कभी मैं भयभीत होता हूँ, कभी मैं आगे बढ़ता हूँ, कहीं पाप करने तो नहीं जा रहा हूँ। यह विचार मन में आते ही बड़ी जोर से आकाशवाणी हुई कि– ''घोर पाप करने जा रहे हो, नरक में जाओगे।'' इसके साथ ही मन-मन भर के पाँव हो गये, हिले ही नहीं, जैसे पाँव है ही नहीं। शरीर में रोमांच हो गया, मस्तिष्क शून्य हो गया। फिर उस भादों की रात- जैसे अँधेरे में ऐसा लगा, काले-काले आदमी, भयंकर आकृतियाँ उन्हें पकड़ने के लिए, मारकर खा जाने के लिए उनकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं। आधा घण्टा ऐसा दृश्य दिखाई देता रहा। वह मूर्तिवत् स्तब्ध बनकर खड़े रह गये। फिर वह दृश्य खतम हुआ। फूँटे हुए रोयें शान्त हुए। पाँव हिलाया तो हरकत हुई। बिना कुछ सोचे-विचारे महाराज वहीं से वापस लौट पड़े।

९. सद्गुरु-दर्शन

धीरे-धीरे वह बगीचे के किनारे आ गये। इस पार खण्डहर हो चला एक शिव मंदिर था, जिसमें दीर्घकाल से पुजारियों का आना-जाना नहीं था। उसके बगल से महाराज निकले तो मधुर स्वर में पुन: आकाशवाणी हुई– ''इस मंदिर में तुम्हारे गुरु महाराज बैठे हैं।'' कुतूहलवश महाराज मंदिर के अन्दर चले गये। शिवलिंग की परिक्रमा कर वह बाहर निकल आये। भीतर कोई मिला ही नहीं। वहाँ तो धुप्प अंधेरा था। महाराज को बड़ी झुँझलाहट पैदा हुई– पता नहीं कौन जोर से बोलता है, कौन धीरे से बोलता है। आवाज आयी– 'इसमें गुरु महाराज हैं।' लेकिन इसमें तो कोई नहीं है। पता नहीं कौन हमारे पीछे पड़ा है! जहाँ यह विचार आया कि मंदिर के गर्भगृह से ही खाँसने की आवाज आयी। वास्तव में एक महापुरुष वहाँ बैठे थे। महाराज ने तुरन्त प्रकाश की व्यवस्था की और अन्दर चले गये। लग गये उन महापुरुष की सेवा में। तीन दिन-तीन रात सेवा में लगे ही रह गये। जब गुरु महाराज ही हैं तो शेष क्या रहता! इसी अल्प अवधि में आपने साधन-भजन की विधि समझा और साधना में लग गये।

१०. भजन की शुरुआत

महाराज के गुरु महाराज विचरणशील महात्मा ठहरे। आपको उपदेश देकर वह आगे बढ़ गये। किन्तु महाराज लौटकर घर नहीं

गये। वहाँ से कुछ ही दूरी पर एक झाड़ी थी, आप वहीं बैठकर चिन्तन में लग गये। आप अखाड़े के उस्ताद भी थे इसलिए अखाड़ेवाले आपको ढूँढ़ने लगे। घरवाले ढूँढ़ने लगे, गाँवभर मिलकर सैकड़ों आदमी आपको ढूँढ़ने लगे। छठवें दिन दिखाई पड़ा कि आप वहाँ झाड़ी में बैठे हैं। सबने अपने-अपने तरीके से बहुत मनाया, आप बोले ही नहीं। थक-हारकर अखाड़े के पहलवान साथियों ने आपकी रहनी के अनुकूल वहीं व्यवस्था करना शुरू कर दी।

किसी ने कहा– उस लँगड़े के साथ हमने इनको देखा था। *(आपके गुरु महाराज एक पाँव के लँगड़े थे। लोग उन्हें सत्संगी बाबा भी कहते थे।)* एक गाँववाले ने कहा– जो लँगड़ू है, पगला बाबा, उसी के साथ हमने इन्हें देखा था। दूसरे ने कहा– हाँ, वह तो बड़ा जादूगर है। लगता है उसी ने इनका दिमाग खराब कर दिया है। एक पाँव टूटा है, चलो दूसरा भी तोड़ दें। गाँववाले इकट्ठे होकर लाठी लेकर सत्संगी बाबा को ढूँढ़ने लगे। एक महीने तक वे ढूँढ़ते ही रह गये, पाये ही नहीं। दो-चार-दस गाँव तक खोज डाले। जब वह नहीं मिले, सबने लाठियाँ रख दीं। तब सत्संगी बाबा वहीं पर प्रकट हो गये। गाँववाले फिर इकट्ठे हो गये। लोग कहने लगे– अरे बाबा, आपने इसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दिया। बाबा बोले– हूँ, हमने भ्रष्ट कर दिया! वह फलनवा पागल है, उन

ठाकुर की लड़किया पागल होकर घूमत है, किसी का लड़का पागल है, उस गाँव में वह पागल है, जितने पागल हैं सबको हमीं ने पागल किया है। अपने कर्मों को तो दोष नहीं देते हो! पागल बनाने का हमने ठेका ले रखा है क्या? वह महापुरुष थे ही, उन्होंने सबको डाँट दिया। लोग चुप हो गये।

११. सत्संगी महाराज (लंगड़ू बाबा)

अब सत्संगी महाराज आने-जाने लगे। उन्होंने महाराज को विधिवत् भजन सिखा दिया। नाम कैसे जपें? श्वास-प्रश्वास से कैसे जपें? ध्यान हृदय में कैसे धरें? गुरु महाराज के चरण कैसे देखें? और बताया ब्रह्मविद्या। ब्रह्मविद्या साधना की एक विधि है। ब्रह्मपर्यन्त दूरी तय करानेवाली साधना पद्धति की एक तालिका है, वह विधिवत् सिखा दिया। दो–एक बार उसका भी चिन्तन करने लगे। ब्रह्मविद्या की माला चिन्तन में चलने लगी। चिन्तन का समय और क्रम निर्धारित हो गया। सत्संगी बाबा ने कहा था– रात ९ बजे आसन पर बैठकर चिन्तन में लग जाओ, १० बजे तक बैठकर भजन करो। १० बजे सो जाओ। रात्रि दो बजे उठकर बैठ जाओ। फिर दो बजे से छः बजे तक बैठकर चिन्तन करो। सीधे बैठो। आँखें खुली रहें। अगल-बगल, इधर-उधर न देखो। गर्दन न झुके। फिर उठकर टहलते हुए भजन करो एक घण्टा। नित्यक्रिया से निवृत्त होकर फिर बैठ जाओ दस बजे तक। दोपहर में लेटे-लेटे

भजन करो। एक निश्चित दिनचर्या। दिन से लेकर रात्रि तक भजन-क्रम निर्धारित हो गया। चार महीना बीत गया। जैसे-जैसे कहा, वैसे सब कर रहे थे। साधुता के जितने भी क्रियाकलाप बताये गये, सबका विधिवत् पालन आपने किया लेकिन भजन जागृत नहीं हुआ।

१२. भजन की जागृति

जब साढ़े चार महीना बीता, एक दिन अनायास ही हृदय से, आत्मा से अभिन्न होकर भगवान आदेश देने लगे। महाराज कहें– हो! अपने ही घर के आँगन में गड़ा हुआ करोड़ों का धन जैसे कोई पा जाय, ऐसे ही भगवान हृदय, आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो गये, मार्गदर्शन करने लगे, उठाने-बैठाने लगे, भजन सिखाने लगे। खतरों से अवगत कराने लगे। हम खतरे से न बच सकें तो भगवान उँगली पकड़कर बचाने लगे। उस दिन से भजन जागृत हो गया। तो भजन एक जागृति है। न तो वाणी से कहने में आता है, न कागज पर लिखने में आता है। यह तो किसी अनुभवी सद्गुरु के शरण-सान्निध्य में उनके निर्देशन के अनुसार अभ्यास करने से और उनकी टूटी-फूटी सेवा करने से जहाँ श्रद्धा से सम्बन्ध जुड़ा तो भजन जागृत हो जाता है। आपकी आत्मा जागृत हो जाती है। आत्मा से भगवान अभिन्न होकर खड़े हो जाते हैं और बताने लगते हैं। जैसे हम-आप बैठकर बातें करते हैं, वैसे ही

भगवान भी बातें करने लगते हैं। गुरु वाणी से तभी तक कहते हैं जब तक हृदय से बताना शुरू न कर दें। जिस समय गुरु भगवान का स्वरूप आपके हृदय में स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है, उस समय गुरु महाराज हृदय से बताते हैं। आत्मा जागृत होकर मार्गदर्शन कर रही है, गुरु महाराज हृदय से रथी हैं, भगवान आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हैं, वे मार्गदर्शन कर रहे हैं– ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं। गुरु के बिना जागृति नहीं होती। आत्मा से अभिन्न होकर भगवान ही गुरु-रूप में खड़े होते हैं इसलिए गुरु और भगवान एक दूसरे के पूरक हैं। गुरु महाराज को वह जागृति हो गयी, भजन जागृत हो गया।

सत्संगी महाराज में एक विलक्षण क्षमता थी कि जो कोई भी श्रद्धा से उनका स्मरण और सेवा करते, साढ़े तीन-चार महीने में ही उन सबका भजन सत्संगी महाराज जागृत कर दिया करते थे। हमने पूछा– महाराजजी! आपको आकाशवाणी क्यों हुई? वह बोले– हो! ई शंका हमहूँ के रही। साधु होने का हमारा मन नहीं था। मन में कल्पना भी नहीं उठी कि हम साधु होंगे। नजदीक से हमने कभी संतों का दर्शन नहीं किया, समीप से उन्हें कभी प्रणाम भी नहीं किया। मंदिर तो हम कभी जाते ही नहीं थे। और शास्त्र क्या पढ़ते, पढ़े-लिखे तो थे ही नहीं, गीता-रामायण क्या पढ़ते? बस दण्ड-बैठक कसरत! बैठकी मारा तो कभी लँगड़ी तो कभी

टाँग खींचा तो कभी कालाजंग! दिनभर साथी पहलवानों से यही सब चलता रहता था। अनायास तीन बार आकाशवाणी हुई कि (१) इन महात्मा की सेवा करो, (२) यह घोर पाप है, नरक में जाओगे, (३) इस मंदिर में तुम्हारे गुरु महाराज हैं और कर भजन। हो, भगवान कान पकड़कर हमसे घर छुड़ा दिये।

भगवान ने हमको अनुभव में बताया कि पिछले सात जन्म से मैं लगातार साधु रहा हूँ। चार जन्म तो झूठ-मूठ का साधु बनकर मैं सन्तों के बीच घूम रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ अपने को कि कहीं कपड़े रँगे हूँ, कहीं तिलक लगाये हूँ, कहीं सफेद वस्त्र में हूँ, कहीं भगवा वेश में हूँ, कहीं विभूति पोते हूँ। इन्द्रिय-संयम से सच्चा साधु हूँ लेकिन आता-जाता कुछ नहीं। महात्माओं वाली बोली-भाषा में एकदम प्रवीण हूँ। चाह थी लेकिन आन्तरिक भजन जैसा आता-जाता कुछ नहीं। भजन जागृत नहीं है। तीन जन्म से बढ़िया साधु रहा हूँ जैसा कि होना चाहिए। योग-साधना जागृत थी, इष्टदेव रथी थे, जैसा कि एक साधु में होना चाहिए। पिछले जन्म में निवृत्ति हो चली थी, जन्म ही न लेना पड़ता लेकिन दो-एक इच्छा मन में थी कि यह शादी-विवाह क्या होता है?, लोग गाँजा पीकर बहुत झूमते हैं, इसमें कौन-सा सुख है? थे सच्चे, मन में एक कुतर्क था। थोड़ा देहाभिमान कि मैं कुलीन हूँ, विद्वान हूँ, बड़े-बड़े खानदान का हूँ इसीलिए जन्म लेना पड़ा। गीता में लिखा

है कि अर्जुन! देहाभिमानियों की गति नहीं होती। इस जन्म में भगवान ने कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा लेकर जन्म दे दिया। अभिमान भी करें तो किस पर? जन्म लेते ही भगवान ने शादी-विवाह कराकर, दिखा-सुनाकर दो चटकना मारकर बताया– यह पाप और यह पुण्य – यह रहे गुरु महाराज और पकड़ यह रास्ता, कर भजन! भगवान ने गुरु भी ढूँढ़कर दे दिया। चार महीने में भजन जागृत हो गया। पिछले जन्म में जहाँ साधना छूटी थी, उसी के बुद्धि-संयोग को प्राप्त हो गये। दिगम्बर के रूप में भगवान ने रखकर भजन कराया। वह जैसे रखते थे, महाराज वैसे ही रहते थे। भजन तो भगवान स्वयं कराते हैं। साधक तो भगवान के हाथ का केवल यंत्रमात्र है। जैसा कि भगवान गीता में कहते हैं– अर्जुन! तू निमित्त मात्र बनकर खड़ा रह। कर्त्ता-धर्ता तो मैं हूँ। विजय तुम्हारी होगी।

१३. प्रभात-फेरी

घर छोड़ने के पश्चात् महाराज गाँव ही के पास में एक झाड़ी में रहा करें। इसलिए जितने पहलवान साथी थे, उन सबने मिलकर वहाँ एक बगीचा लगा दिया। थोड़ी ही दूर पर उन लोगों ने अपना अखाड़ा खोल लिया। देखा-देखी वह लोग भी भजन किया करते थे। चार महीने में जब महाराज का भजन जागृत हो गया, उन सबने कहा– सन्तजी! हमलोग कीर्तन करते गाँव की प्रभातफेरी

करें, आप भी साथ चला करें। ढोलक, हारमोनियम, मजीरा इत्यादि लेकर हम सब आ जायेंगे। रात यहीं सोयेंगे, आप पाँच बजे हमलोगों को जगा दिया करें। गुरु महाराज दो बजे उठकर भजन में बैठ जाया करते थे और प्रात: छ: बजे तक बैठे रहते थे। इसके पश्चात् एक घण्टा भ्रमण करके बैठें तो दस बज जाय। यह नित्य का नियम था। आप उन्हें पाँच बजे जगा दिया करते थे। सब लोग ढोल, हारमोनियम लेकर कीर्तन करते चल पड़ते। महाराज भी साथ-साथ चलते थे। सीताराम-सीताराम-सीताराम-सीताराम... पूरे रामकोला ग्राम की परिक्रमा करके यह मण्डली आश्रम चली आती थी। सभी कुटिया के धूने में प्रणाम करके विभूति लगाते, खाते और महाराज को प्रणाम कर चुपचाप शान्ति से अपने-अपने घर चले जाते। कोई किसी से न बोले। प्रभातफेरी आरम्भ करने में पन्द्रह आदमी थे। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी। जिस रास्ते से कीर्तन करने वाले जाते, लोग अपने-अपने घरों में चप्पल-जूता पहनकर तैयार रहते थे, वह वहीं से मण्डली में सम्मिलित हो जाया करते थे। आश्रम से तो १०-१५ ही चलते थे, रास्ते में बढ़ते चले जाते थे, और लौट के आश्रम में आते तो ७० के लगभग हो जाया करते।

महाराज भजन में बैठे थे। एक दिन वह भूल गये कि हमें इनको जगाना है। इतने में छ: बज गया। सब भड़भड़ा कर उठे

और बोले– अरे सन्तजी! आज आपने हमें नहीं जगाया। महाराज कुछ बोले ही नहीं। क्या बोलें! चूक तो हो गयी। महाराज बताते थे– हो! हम बैठे थे, सचेत थे, हम देख रहे थे, केवल चित्त से उतर गया कि हमें इनको जगाना है। इतने में गाँव से लोग आने लगे। ४–६ इस मुहल्ले से तो कुछ दूसरी गली के। वे बोले– सन्तजी! आज आप किस रास्ते से निकल गये? बड़ी मधुर धुन कान में सुनाई पड़ रही थी। हम चप्पल पहनकर खड़े थे कि मण्डली यहाँ आयेगी तो हम भी उसमें सम्मिलित हो लेंगे लेकिन हमारे रास्ते से आप आये ही नहीं। महाराज बोले ही नहीं। चुप, शान्त बैठे रह गये। इतने में दूसरे मुहल्ले से कुछ लोग आये, फिर तीसरे-चौथे टोले से आये, ५ इस मुहल्ले से तो १० उस मुहल्ले से। "महाराज, आज आप किस रास्ते से निकल गये? दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। बाजे के साथ बड़ी मधुर धुन कान में पड़ रही थी। जब ८–१० लोगों ने इस तरह से कहा, तब महाराज समझ गये। वह बोले– भइया! आज कीर्तन हुआ ही नहीं। वास्तव में हम भूल गये थे। लेकिन लोगों ने कहा– हमलोगों ने कीर्तन सुना। किया किसने? महाराज बोले– भाई, आज कीर्तन भगवान ने खुद कर दिया। अब तुमलोग कीर्तन करो, हम कीर्तन नहीं करेंगे। हम केवल भजन करेंगे। जब भगवान में इतनी क्षमता है कि मण्डली का रूप धारण कर सकते हैं, ढोल-हारमोनियम बजा सकते हैं,

सबके कण्ठ के स्वर में बोल सकते हैं तो फिर मैं केवल भजन करूँगा। एक चमत्कार गाँव भर ने देखा, सुना। उस दिन से गुरु महाराज ने कीर्तन में जाना बन्द कर दिया। जो समय कीर्तन में देते थे, वह समय स्वाँस से भजन करने में देने लगे।

भजन में ऐसा मन लगा कि रात को दो बजे ही उठकर भजन में बैठ जायँ और एक ही बैठक में छः बज जाय। एक-दो बार अपना पैर ऊपर का नीचे या नीचे का ऊपर कर लेते। वह एकदम सीधा बैठते, गर्दन सीधी, कमर सीधी। आँखें एकटक सामने खुली रहतीं। एकाध बार पलकें झपकती थीं, नहीं तो वह भी नहीं। जिसकी पलक अधिक देर तक खुली रहती है, उसका मन भजन में अधिक लगता है। इसीलिए भजन करते समय आँखों का खुला रखना, निद्रा के वशीभूत न होना आवश्यक है। भगवान शिव के अर्धोन्मीलित नेत्र भजन की ही मुद्रा है।

प्रातः छः बजे भजन से उठकर महाराजजी नित्यक्रिया से निवृत्त होते थे। अकेले घूम-फिरकर हाथ-मुँह धोकर वह पुनः भजन में बैठ जाते तो दस बज जाते। दस बजे आपकी माँ आती तो दो-चार ग्रास चावल जबरदस्ती आपके मुँह में डाल देती थी। उन दिनों चौबीस घण्टे में यही आपका भोजन था। वह भी ठीक से हजम नहीं होता था। खड़े-खड़े चावल शौच में निकल जाते थे। भूख-प्यास का भान समाप्त हो गया। धीरे-धीरे शरीर सूखकर

काँटा हो गया। दोपहर के तीन-चार बजे थोड़ा लेट जाते थे। आप पड़े-पड़े आकाश में देखते तो भगवान का चित्र दिखाई पड़ता था। आप जान-बूझकर वैसा चित्र देखने का प्रयास करते जिससे दूसरा दृश्य न आये। कभी तीर-धनुष लिए राम, तो कभी विष्णु! शाम होते ही भजन में पुनः बैठ जाते।

१४. इष्ट की व्यापकता में विश्वास

महाराज की कुटिया के समीप आम का एक बगीचा था। उसमें से कोई आम चोरी कर लिया करता था। बगीचे का मालिक रोज हल्ला करता था कि ये संतजी संत नहीं हैं। इनके यहाँ लोफर टिके रहते हैं। वे रोज हमारा आम तोड़ ले जाते हैं। महाराज ने कहा– भइया, हमसे तुम्हारे आम से कोई मतलब नहीं है। हम तो हिलते भी नहीं यहाँ से, न हमारा कोई आदमी जाता है। उसने कहा– हाँ, **'बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।'** (मानस, ७/३८/८) चोर लोग ऐसे ही बोला-चाला करते हैं। पन्द्रह दिन तक लगातार वह रट लगाये रहा तब महाराज के पहलवान भक्तों ने कहा– महाराज, अति हो गया। आज हम इसका वह बगीचा उजाड़ देंगे, एक भी आम नहीं छोड़ेंगे। यह बहुत लांछन लगा चुका। समझाने से भी नहीं मानता जबकि हमलोगों से मतलब नहीं। महाराज बताते थे– हो! उसने बहुत तंग किया था इसलिए हमारा मन होने लगा था कि इसका

बगीचा ही उजड़ जाय। पहलवान साथी आम तोड़ने का साधन खोंचा, बोरी, लग्गी, हँसिया इत्यादि लेकर चले आये। उन्होंने कहा– संतजी, आप तो दो बजे उठ के भजन में बैठ जाते हैं, दो बजे हमलोगों को जगा दीजिएगा। सामान सिरहाने रख वे सो गये।

रात्रि के दो बजे भजन में बैठते ही महाराज ने विचार किया– मैं इन्हें जगाऊँ या नहीं? इतने में गाँव से एक आदमी निकला। वह खेतों की रखवाली के लिए रोज रात्रि के बारह बजे निकलता था। उस दिन वह निकला दो बजे। गाँव से निकलते ही उसने आवाज निकाली–**'जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी।।'** (मानस, २/१२९/६) महाराज बोले– ऐं, कौन बोल रहा है इतनी रात को? आवाज अस्पष्ट सी थी। इतने में वह चलते हुए कुटिया के समीप आया और फिर ललकारा– **'जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी।।'** जहाँ महाराज ने यह भली प्रकार सुन लिया कि पराया धन **'बिष तें बिष भारी'**– विष से भी अधिक घातक होता है, महाराज को अपशकुन होने लगा। बायीं बाँह तड़-तड़-तड़-तड़ लगी फड़कने। महाराज ने सोचा– अच्छा, तो हम पाप करने जा रहे हैं। भगवान ने समझा दिया– और क्या! महाराज ने निश्चय कर लिया– अच्छा भगवन्! नहीं जगायेंगे। फड़कना बन्द हो गया। सुबह वे सभी हड़बड़ा के उठे– अरे संतजी! आपने हमलोगों को जगाया नहीं।

महाराज ने कहा– अरे चुप-चुप। भगवान ने मना कर दिया था। साथियों ने पूछा– महाराज, भगवान आये थे क्या? आप बोले– हाँ! उस दिन से पता नहीं क्या हुआ, उस बगीचे के मालिक ने लांछन लगाना बन्द कर दिया, गाली देना बन्द कर दिया। उसके मन में पता नहीं क्या प्रेरणा हो गयी? फिर उसने नहीं कहा कि महाराज आप चुराते हैं या आपके चेला चुराते हैं! पता नहीं उसको किसने मना कर दिया। भगवान **'उर प्रेरक'** हैं। वह यदि हमको बता सकते हैं तो उसके हृदय में भी प्रेरणा कर सकते हैं।

१५. सद्गुरु-कृपा से मन का रुकना

महाराज एकान्त कुटीर में भजन किया करते थे। भजन में मन भी लगता था। लेकिन जब सत्संगी महाराज भ्रमण करके वहाँ पहुँचते, उस दिन आपका मन अधिक लगता था। आपने पूछा– गुरु महाराज! मन तो लगता है। लेकिन आप जब आ जाते हैं, जब-जब आते हैं तब-तब मन ज्यादा क्यों लगता है? सत्संगी महाराज बोले कि तोरे मनवा के पकड़ के मैं ध्यानस्थ हो जावा करत हूँ। ऐसा सुनकर महाराज चिन्ता में पड़ गये कि हमसे पहले गुरु महाराज के तीन-चार शिष्य और थे, वह लोग कुछ दिन अभ्यास करके किन्हीं कारणों से भ्रमित होकर अपने-अपने घर को लौट गये। कहीं यही कारण तो नहीं है। माना कुछ दिन गुरु महाराज उनके मन को पकड़ के ध्यानस्थ हो गये; किन्तु जीवनपर्यन्त

कोई किसी के मन को पकड़ कर कहाँ तक ध्यानस्थ रहेगा? जहाँ उनका मन छोड़ा, उनका पुराना मन जग गया, फिर वे अपने को रोक नहीं पाये। मन का संतुलन नहीं बैठा तो वे घर भाग गये। कहीं यही घटना हमारे साथ भी न हो जाय। आप भीतर-भीतर सशंकित हो गये तब सादर प्रणाम करके बोले– भगवन्! आप मेरे मन को न रोकें। आप ऐसी कृपा करें कि मैं स्वयं अपने मन को रोक सकूँ। आप इसके लिए कष्ट न करें। ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं ही सफल हो जाऊँ। तब सत्संगी महाराज बोले– ठीक ऐसा ही होगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। फिर आप भजन करने लगे। कुछ ही समय में जैसा सत्संगी महाराज मन पकड़कर रोकते थे, वैसे ही पकड़ स्वयं आ गयी। महाराज का वैसा ही ध्यान विधिवत् लगने लगा।

१६. नल पर गुरुदेव का स्नान एवं चेतावनी

गुरु महाराज वैसे तो रात-दिन भजन में लगे रहते थे। किन्तु जब सत्संगी महाराज आ जायँ तो वह उनकी सेवा में तत्पर हो जाते। महाराज की कुटिया से थोड़ी दूर एक हैण्डपम्प लग गया था। आप सत्संगी महाराज को नहलाने के लिए हैण्डपम्प पर ले गये। गुरुजी बैठ गये हैण्डपम्प के नीचे। महाराज चलाने लगे और वे नहाने लगे। इतने में सोलह-सत्रह साल की एक लड़की घड़ा लेकर आयी। वह कभी घूमकर इधर खड़ी हो जाती तो कभी उधर। वह पानी भरने के लिए उतावली प्रतीत हो रही थी। महाराज

उसकी ओर देख लिया करते थे मानो कहना चाहते हों– 'थोड़ा धीरज धारण कर। गुरु महाराज को नहा लेने दे।' गुरु महाराज नहाते-नहाते जान गये कि यह उस लड़की की ओर देख रहा है। वह बोले– हूँ, बन्द कर, बन्द कर, नल चलाना बन्द कर। सत्संगी महाराज उठकर खड़े हो गये। एक ओर हो गये। उस कन्या से कहा– घड़ा भर ले। जो, जो, जो, भाग यहाँ से। वह पानी लेकर चली गयी। स्नान से निवृत्त होकर उन्होंने महाराज से कहा– जानता है मछली कैसे मारी जाती है? देख, एक रस्सी में कटिया बाँधकर उसमें चारा चिपकाकर रस्सी को दूर पानी में फेंक देते हैं। मछली उस चारे को पहले दूर से देखती है और चली जाती है। फिर वह आती है, उस चारे को लुबुर-लुबुर थोड़ा चाटती है और फिर चली जाती है। दो–तीन बार ऐसा ही करती है। और कुछ नहीं हुआ तो निडर होकर आती है, दौड़कर चारे को गप्प देना पकड़ लेती है। अब कटिया उसके गाल में फँस गयी। जहाँ डोरा हिला तो मछली मारने वाला उसे उठाकर धों देना पानी से बाहर पटक देता है। जानत है? आप बोले– हाँ गुरु महाराज, हम जानते हैं। सत्संगी महाराज बिगड़े– फिर कहता है कि जानता हूँ। उँगली के इशारे से समझाते हुए वह बोले– देख, पहले कटिया में चारा इस प्रकार चिपका कर दूर पानी में फेंक देते हैं, मछलियाँ दूर से उसे पहले टुकुर-टुकुर देखती हैं, धीरे-धीरे चारे के समीप आती हैं,

फिर लुबुर-लुबुर चाटती हैं, फिर गप्प देना पकड़ लेती हैं तो कटिया ऐसे गर्दन में फँस जाती है। आपने कहा– महाराज! मैं पकड़े हूँ, मैं मारे हूँ, मैं जानत हूँ। वह बोले– फिर कहता है मैं मारे हूँ, मैं जानत हूँ। महाराज की गर्दन पकड़ कर कटिये की तरह उँगली बनाकर, मुँह में डाल कर महाराज को जमीन पर पटकते हुए बोले– ऐसे फँस जात है....हे तरे (इस तरह)। और ऐसे खींच देत हैं और हे तरे धोंय देना पटक देत हैं। और पटक दिया।

उन्होंने महाराज को पचासों गालियाँ दी। महाराज चुप रहे, बोले ही नहीं। उनकी समझ में ही नहीं आया कि क्या कह रहे हैं? सत्संगी महाराज बड़बड़ाते हुए कुटिया पर चले आये, बैठ गये। दो बजे के बाद भगत लोग आने लगे। सत्संगी महाराज को प्रणाम किया। महाराज की ओर बढ़े तो सत्संगी महाराज ने पूछा– कहाँ जाते हो? उन लोगों ने कहा– संतजी को प्रणाम कर लें। सत्संगी महाराज बोले– तोरे संतजी की ऐसी की तैसी! तुम्हारा संत तो स्त्रियों की ओर देखता है। लोगों ने आपसे पूछा– गुरु महाराज क्या कह रहे हैं? आपने कहा– भाई, हमें तो नहीं मालूम। सत्संगी महाराज बिगड़े– क्या नहीं देख रहा था उसे? क्यों देख रहा था उस लड़की को? आपने कहा– महाराज, मेरे मन में कोई दुर्भावना नहीं थी। हम यही कह रहे थे कि गुरु महाराज को स्नान कर लेने दे, थोड़ा धीरज धारण कर। वह बोले– तेरी हरामी की, पहले ऐसे

ही टुकुर-टुकुर ताका जाता है, फिर छुआ जाता है। फिर पचासों गाली दिया। महाराज कहते थे– हो! बड़ी ताड़ना मिली। गुरु महाराज हमलोगों के ऊपर ऐसे ही चाप चढ़ाये रहते थे। उस दिन से आप सदैव सतर्क रहने लगे। उठना, बैठना, चलना सब कुछ मर्यादित हो गया। स्त्रियों को एक तरफ बैठाना, पुरुषों को उनसे अलग दूसरी ओर बैठाना गुरु महाराज की आश्रमीय शिक्षा का एक अंग बन गया।

१७. धर्मपत्नी को उपदेश

पहले आपको घर ले जाने के लिए गाँवभर आग्रह कर रहा था। माँ आगबबूला होकर लौटाने का प्रयास कर रही थी। अन्त में सब हताश हो गये। कोई मनानेवाला नहीं रहा तो महाराज की धर्मपत्नी एक दिन उन्हें मनाने चलीं। रात के नौ बजे सोलहों शृंगार करके वह कुटिया पर आयीं। महाराज भजन में बैठे थे। उनके कानों में छन-छन की आवाज सुनाई पड़ी। महाराज ने सोचा– कोई स्त्री कहीं जा रही होगी। धीरे-धीरे वह आवाज कुटिया की ओर घूम गयी। महाराज चौंके– ऐं, इधर कैसे! आवाज समीप आ गयी तो महाराज ने देखा, पहचाना– ओह, यह तो श्रीमतीजी चली आ रहीं हैं। निगाह पड़ते ही महाराज को अपशकुन हुआ कि इसके विचार ठीक नहीं हैं। महाराज बचाव में पहले से ही ललकार कर बोले– कौन है? उत्तर मिला– हम ही तो हैं! और कौन है? आपने कहा–

आधी रात को घूम रही है शृंगार-पटार करके, तुम्हें शृंगार-पटार कहाँ शोभा है? वह बोली– क्यों, मैं विधवा हो गयी हूँ क्या? महाराज के मुँह से निकला– जिसका पति साधु हो गया है वह विधवा नहीं तो और क्या है? वह आगबबूला हो गयी। जितना जेवर वह पहने थी- चाँदी के कंगन, हसुँली, कड़े, छल्ले, पाजेब, करधनी इत्यादि सब निकालकर खींच-खींच कर मारने लगी। महाराज आँख बन्द करके चुपचाप शांत बैठे रह गये। वह बताते थे– हो, बड़ी चोट लगी।

धर्मपत्नी ने मारपीट का जब कोई प्रभाव नहीं देखा, बड़ी जोर से चींखती हुई रो पड़ी। पूरा गाँव दौड़ पड़ा। कौन है? औरत को किसने छेड़ा? जब गाँव के लोग आ गये, भीड़ इकट्ठी हो चली तो धर्मपत्नी थोड़ा दूर बैठकर रोने लगी। वह इतना सिसक-सिसक कर रो रही थी मानो कोई घटना घट गयी हो। सब पूछने लगे– संतजी! क्या बात है? आपने कहा– भाई, हमें नहीं मालूम! इसी से पूछ लो जो हो। महाराज मन ही मन डर रहे थे कि यह न जाने क्या कह दे। लोगों ने जब दृश्य देखा, महाराज की चोट भी दिखाई पड़ी, जहाँ-तहाँ खून भी रिस आया था। लोगों ने कहा– ओह, इसने गहनें फेंक-फेंककर मारा है। क्यों रे! यह कोई पशु है जो मारपीट कर बस में कर लेगी। प्रेम से वश में नहीं कर सकी, त्रिया चरित्र फैलाये पड़ी है। लोगों ने सारे गहने उसी के चद्दर में

बाँधकर, गठरी बनाकर उसी के सिर पर रख दिया और कहा– 'भाग घर! बस, अब मत दिखाई पड़ना।' वह चली गयीं। फिर कभी नहीं आयीं। आपका भजन-चिन्तन शान्ति से चलने लगा।

१८. गृह में भयंकर उत्पात

गुरु महाराज ने जब घर छोड़ा, उसी समय से एक घटना घटने लगी। एक बरस में घर के ११ सदस्य मर गये। एक मर गया, परिवारवाले लाश लाकर कुटिया के दरवाजे पर रख देते। माई आती, कहती– फूँक इसे! जबसे तूने घर छोड़ा, तबसे घर में हाय समा गयी। चल फूँक! लाश रखी रहे काफी देर, दिनभर, फिर लोग ले जायँ, फूँकें। तेरही बीते कि फिर दूसरा मर जाय। फिर तेरही बीते, तीसरा... चौथा... हर लाश लाकर कुटिया पर रख दें। माई कहती– जब से यह ढोंग-धतूर करने लगा, तब से देखो घर में हाय समा गयी और सब मर रहे हैं। घर खलिहान हो गया।

महाराज को भगवान अनुभव में पहले ही बता देते– आज एक और मर जायेगा। इसकी आयु पूरी हो गयी। इसको मरना ही है। तू घर में रहता तब भी मरते। कभी-कभी सत्संगी महाराज आते और बता देते– देख रे, कल एक और मर जाई। उसकी तो आयु पूरी हो गयी और तुम्हारी परीक्षा है। डटे रहना। एक-एक करके ११ आदमी मर गये। अन्त में वह मर गया जिसका घर छोड़ते समय गुरु महाराज को भरोसा था कि हम घर छोड़ दिये तो क्या

हुआ, यह गृहस्थी सँभाल लेगा। वह थे महाराज के बड़े भैया। जिन्होंने गुरु महाराज को पहलवानी करवाया था, वही मर गये। अब तो धीरज छूट जाना चाहिये था लेकिन भगवान ने कहा– इसका पृथ्वी पर अब समय पूरा हो गया है और तुम्हारी परीक्षा है। महाराज डटे रहे। वह भगवान के आदेश का पालन ज्यों का त्यों करते रहे।

महाराज जी के घर की बड़ेरी चर्र-चर्र करती। रात में लोग भागकर घर के बाहर चले आते थे। जैसे उसे कोई पकड़ के इतना हिला रहा है कि खपरैल इत्यादि गिर जायेंगे। माई कहती– घर में हाय समा गयी है। घर में भूत समा गया है, प्रेत घुस आया है। कबीर जब साधु हुआ तो उसकी माँ भी हल्ला मचाया करती– **'हमारे कुल कोउ नहिं राम कही। जबसे कबीरा राम कहन लगो, घरहूँ की सम्पत्ति बही। हमारे कुल कोउ नहिं राम कही।'** यही बात गुरु महाराज की माताजी भी दोहराया करें– **हमारे कुल कोउ नहिं राम कही।** जब से राम–राम कहे लगा हमार कन्हई, तब से **'घरहूँ की सम्पति बही।'** देखो, घर खलिहान हो गया।

इन सब घटनाओं के पश्चात् एक दिन भगवान ने आदेश दिया– देख, जहाँ तू बैठा है, जिस धूनी को ताप रहा है, इस धूनी की विभूति उठा। इसे ले ले एक मुट्ठी, घर जा। घर की हर कोठरी

में इसे छिड़क दे, घर के चारो तरफ छिड़क दे। और खड़े-खड़े छिड़क कर खड़े ही खड़े लौट आ। आज से न बड़ेरी चर्र-चर्र करेगी और न ही कोई मरेगा। आज से तुम्हारे घर में होने वाले सभी उत्पात समाप्त! घर में जो जीवित हैं, जीवित रहेंगे, हर प्रकार की शान्ति होगी, समृद्धि होगी, वृद्धि होगी। महाराज कहते थे– हो! हमें कोई चिन्ता नहीं थी, भगवान का आदेश था इसलिए विभूति लेकर घर चले गये।

घर के ठीक सामने गल्ला-सल्ला माड़ने का खलिहान था। माताजी उसी में से कुछ इकट्ठा कर रही थी, झाड़ू से समेट रही थी जैसे खलिहान समेटा जाता है। उन्होंने महाराज को देखा तो बोली– हूँ, आखिर शंखवा बाजल, बाबा के खिझाय के बाजल। आखिर तू आवा लेकिन घर खलिहान करके आवा। माताजी ने सोचा कि अब यह घर आ गया। महाराज सीधे घर में गये। सब जगह विभूति छिड़क दिया, एक-एक कर सब कोठरी में छिड़क दिया। इसके पश्चात् घर के चारों तरफ छिड़क दिया। उन्होंने घर के सामने भी विभूति छिड़का और माँ के भी चारो तरफ विभूति गिरा कर बोले– माई, अब न बड़ेरी चर्र–चर्र करी, न भूत समायेगा, न कोई मरेगा। बढ़ती होगी, आगे सब फलेंगे-फूलेंगे। जो हैं, वे रहेंगे और बढ़ेंगे। इतना कहकर महाराज जी चुपचाप कुटिया की ओर चल पड़े। माताजी ने बिफरते हुए कहा– सब मर जायँ। जो जिन्दे

हैं, वोहू मर जायँ, हमें किसी की परवाह नहीं, इस घर में तूँ रह। तू कहाँ भागा जात है! महाराज चुपचाप चले आये। वह पीछे-पीछे बड़बड़ाती रह गयी। जब उन्होंने देखा यह नहीं मान रहा है, तब मचाया हल्ला– फलाने बाबू दौड़ो रे, भैया दौड़ो रे, कन्हई भागा जात है। उन्होंने मचाया हल्ला। लोग इकट्ठे होते, इसके पहले ही महाराज चुपचाप चलते हुए कुटिया में चले आये। पीछे-पीछे भीड़ भी चली आयी। फिर सबने आकर देखा, सन्तजी अपने आसन पर बैठे हैं। थोड़ी देर में वास्तविकता समझने पर सब शान्त हो गये। सबने पूछा– सन्तजी! क्या अब कोई नहीं मरेगा? महाराज बोले– भगवान ने कहा है नहीं मरेंगे। घर की बड़ेरी चर्र-चर्र हो रही थी वह अब समाप्त। उस दिन से घर में कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ। परिवार के लोग इतने फले-फूले कि बाढ़ आ गयी।

१९. भजन परीक्षा की कसौटी पर

गाँव के सबसे बड़े जमींदार बड़े रईस थे। वे घोड़े से चला करते थे। उन्होंने महाराज जी का रंग-ढंग देखा तो बोले– अरे, यह हमलोगों के सेवक-परिवार का लड़का, इसको तो हमलोगों की सेवा में रहना चाहिए था। यह भजन करने लगा? मैं इसे ठीक कर दूँगा। उन्होंने महाराज जी के विरुद्ध मुकदमा चला दिया। महाराज जी के परिवार की जमीन (दो–एक बीघा जितना रही हो) अपने नाम करने का मुकदमा कर दिया। उन्होंने चुनौती दी– बड़ा भजन

करते हैं। यदि राम नाम सच्चा हो तो जीत के दिखायें। मुकदमा चलता रहा। महाराज न्यायालय में गये ही नहीं।

एक दिन महाराज के गुरु सत्संगी महाराज के कान में ये आवाज पड़ी, वे बोले– क्यों रे, यह ठाकुर तो राम नाम को ललकार रहा है। तुम जाओ, न्यायालय में जाकर खड़े हो जाओ। जज का स्वरूप पकड़ कर जो तुम बोलोगे, संकल्प करोगे, वही फैसला लिखेगा। मुकदमे की तारीख कब है? महाराज बोले– कल...। सत्संगी महाराज बोले– ठीक है, तुम जाओ। आप बोले– महाराज! इस वाद-विवाद में आप क्यों पड़ गये? यह दुनिया है। जब हमने घर छोड़ ही दिया तो हमसे इससे क्या मतलब? खेत कोई ले ले, घर कोई ले ले, लड़के मर जायँ, सब खतम हो जाय, हमसे मतलब! सत्संगी महाराज बोले– नहीं रे, उसने राम नाम को चैलेंज दिया है– 'राम नाम सच्चा है तो जीत के दिखाओ।' राम नाम सच्चा है। तुम जाओ। मैं कहता हूँ इसलिए जाओ। स्वरूप पकड़ के जो-जो कहोगे, न्यायाधीश वही लिखेगा।

दूसरे दिन महाराज न्यायालय गये। ठाकुर साहब आठ-दस बन्दूकधारियों को लेकर न्यायालय के बाहर एक चौकी पर बैठे थे। महाराज ने देखा तो उन्होंने कहा– आइये संतजी! जलेबी खाइये, मैं जीत गया हूँ न, आप भी खाइये। महाराज ने देखा, सुन लिया, चुपचाप आगे बढ़ गये।

मुकदमे में पुकार हो चुकी थी। दूसरे पक्ष को कभी उपस्थित न पाकर जज साहब एकपक्षीय फैसला लिख रहे थे। थोड़ा लिख ले गये थे, तब तक महाराज जी पहुँच गये, अपना पक्ष रखा, पूर्वजों के समय से ही जमीन पर अपना अधिकार बताया। महाराज खड़े होकर जैसा सत्संगी महाराज ने बताया था, वैसा ही चिन्तन करने लगे। तब न्यायाधीश ने नजर उठाकर महाराज की ओर देखा। लिखा-लिखाया कागज तो दराज में फेंक दिया, और दूसरा कागज निकाल के लगे लिखने। महाराज की ओर देखत जाय, लिखत जाय, फिर देखत जाय, फिर लिखत जाय। और फैसला सुना दिया– ये जमीन संतजी की है और पुश्तैनी है। महाराज छलक के बाहर आये, बोले– ला खिला जलेबी! देख मैं जीत गया। अब तू सब ले ले। हम साधु हैं। हमसे जमीन-जायदाद, गृहस्थी से कोई मतलब नहीं। तुमने राम नाम को ललकारा है, इसलिए हमें आना पड़ा। देख लिया, राम नाम सच है! इसके बाद वह ठाकुर साहब इतने बढ़िया भगत हुए, सदैव भगत रहे। गुरु महाराज जब घोर जंगल में अनुसुइया आ गये, वह भी वहाँ तक पहुँच गये थे।

अनवरत चिन्तन करने और भोजन पर ध्यान न देने से महाराज की पहलवानी का शरीर क्षीण हो चला। गाँववाला कोई कहता– पीलिया हो गया है, कोई कहता– घर में खटपट हो गयी

है, इसलिए बैठे हैं। समीप की पगडण्डी से औरतें आपस में बातें करती– बहिनी, इन्हें टीबी हो गयी है...टीबी। घड़ी टल रही है। चार दिना में देखिहो कि वहाँ फूँकात हैं! महाराज के कान में शब्द पड़े तो भगवान से पूछा– ये क्या कह रही हैं? क्या हमें टीबी हो गयी? भगवान ने कहा– इन्हें कहने दो, तुम भजन में लगे रहो। भावी मंगलमय है। महाराज निश्चिन्त होकर भजन में तल्लीन हो गये। उन्हें भान ही नहीं रहा कि कौन क्या कह रहा है।

२०. बगीचे में ममता पर इष्ट का आदेश

गाँववालों की बातें सुनकर कभी-कभी महाराज भगवान से प्रार्थना करते कि प्रभु, अनुमति दे दें तो हम कहीं बाहर जाकर भजन करते। इनके ताने तो न सुनने पड़ते। गाँव का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध। लेकिन भगवान आदेश न दें। आहिस्ते-आहिस्ते पहलवान साथियों ने कुटिया पर फूल-पत्ती लगा दिया, कुछ फलदार पेड़- शहतूत, लीची, आम, कटहल, पपीता, अमरुद इत्यादि लगा दिया। पेड़ों में बौर आने लगे, फूल आने लगे, तब महाराज के मन में विचार आया– अब बौर आने लगा है, फूल आने लगे हैं तो फल भी आयेंगे। अब फल-फूल खाऊँगा, यहीं पड़ा रहूँगा और भजन करूँगा। अब कहीं नहीं जाऊँगा। बगीचे के प्रति हल्की सी ममता आ गयी। अच्छा लगने लगा बगीचा। उसी दिन भगवान ने आदेश दिया– प्रयागराज जाओ।

महाराज कहें, हमें इतनी खुशी हुई जैसे कोई पच्छी पिंजरे से उड़ चला हो। हम तुरन्त कमण्डल उठाये, चल दिये। गाँव के पाँच-छः भगत लोग बोले– संतजी! कहाँ की तैयारी? महाराज बोले– प्रयागराज! वे बोले– हमलोग भी चलेंगे। वो भी पीछे लग गये। महाराज बताते थे– पाँच साल उस कुटिया में रहने को मिला। बगीचे के प्रति जरा सी ममता हुई, भगवान बोले– उठो यहाँ से।

२१. प्रयाग की घटना

महाराज प्रयाग पहुँच गये। वे प्रयाग में दिनभर घूमते रहे, स्नान इत्यादि किया, नाव में बैठ गये। दो संत और बैठे हुए थे, वैष्णव संत। उनका एक गोल–मटोल बड़ा सुन्दर लोटा रखा हुआ था। वैष्णवों के लोटे होते ही हैं बड़े-बड़े। सुन्दर लगा तो महाराज ने उसे उठाया। नाव में बालू मिट्टी थी। महाराज ने उस लोटे को माँज-चमका कर उसमें पानी भरकर एक ओर रख दिया। वह दोनों साधु देख रहे थे, उन्होंने कहा कुछ नहीं। शास्त्रार्थ चलने लगा। वे दोनों प्रश्न-परिप्रश्न करने लगे। गुरु महाराज के साथ जो लोग थे, वे भी बड़े आध्यात्मिक अभिरूचि के थे क्योंकि वे सब महाराज के गुरु सत्संगी महाराज के शिष्य थे। प्रश्नोत्तर चलने लगा। महाराज उन्हें समझाते, फिर भी वे नहीं मान रहे थे। अचानक एक संत की दृष्टि लोटे पर पड़ी। उन्होंने भरे लोटे की ओर देखा। काफी देर से लोटे से पानी नहीं टपका था। वे महात्मा बोले– महाराज! आप

जो कुछ कह रहे हैं, सही है। हमलोग तो इस शास्त्र में लिखा है, उस शास्त्र में लिखा है, पढ़-लिख कर, रट कर बोलते हैं। देखिए, दो साल से यह लोटा फूटा हुआ है। पन्द्रह मिनट में लोटा खाली हो जाता है। कभी पानी टिका ही नहीं। भगवन्! जबसे आपने इसे छू दिया तब से हम देख रहे हैं कि इसमें से पानी ही नहीं गिर रहा है। जब फूटे लोटे में पानी टिक सकता है, तो आपकी बात बिल्कुल सच है। महाराज बताया करते थे कि उन्हें भी ज्ञात नहीं था कि लोटा फूटा है। भगवान ही अपने सेवक की मर्यादा को रख दिया करते हैं। सिद्धि कुछ नहीं, भगवान ही भक्त की टेक को पूर्ण कर दिया करते हैं। साथी भक्तों के साथ महाराज आगे बढ़े। कभी जमुना में, कभी गंगा में, कभी संगम में स्नान किया, कभी रेत में इधर-उधर घूमते रहे।

शाम हो गयी। रेते में ही चद्दर बिछाकर सभी विश्राम करने लगे। शीघ्र ही सब सो गये।तब गुरु महाराज ने पूछा– भगवन्! प्रयागराज तो आ गये, अब क्या करें? भगवान बोले– इन लोगों का साथ छोड़ दो। कमण्डल उठा लो, छड़ी उठा लो, निकल जाओ इस दिशा में। महाराज ने आदेश का पालन किया, बस तुरन्त उठे, उनको सोता छोड़ चुपचाप गंगा किनारे-किनारे निकल गये काशी की तरफ! रातभर पैदल चलते रहे। सवेरा हो गया। तब महाराज रुके। थके-भूखे अकेले महाराज ने भगवान से पूछा–

भगवन्! अब साथ भी छोड़ दिया, अब क्या आदेश है? भगवान बोले– शरीर पर जो वस्त्र पहन रखे हो, उसे उतार कर यहीं रख दो। भगवान ने लँगोटी भी उतरवाकर गंगा किनारे रखवा दिया। महाराज गंगा में डुबकी लगाकर आये। महाराज ने पुनः पूछा– भगवन्! अब? भगवान बोले– बस, कपड़ा यहीं पड़ा रहने दो, कमण्डल उठाओ, छड़ी उठाओ, निकल जाओ आगे इसी दिशा में।

अब दो उपवास, तीन उपवास महाराज के विचरण में आये दिन की घटना थी। महाराज पेट के लिए कभी भिक्षा नहीं करते थे। वह सोचते थे कि भगवान ने हमारा कान पकड़कर घर छुड़ाया है। हमने तो घर छोड़ा नहीं है तो जिसने घर छुड़ाया है वही भोजन की व्यवस्था भी करे, मैं क्यों भीख माँगू? इसलिए नहीं माँगते थे। हो! जरा-सी बगीचे के प्रति ममता हो गयी कि बौर आये तो फल भी आयेंगे, फल खाऊँगा, पड़ा रहूँगा, उस जरा–सी आसक्ति का परिणाम ये निकला कि भगवान लँगोटी तक खोलकर फेंकवा दिये, दिगम्बर बना के विदा कर दिये। इस प्रकार साधु का वेश भी भगवान ही दिया करते हैं।

२२. बैरगिया नाला

अब गंगा किनारे एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास आये दिन की घटना थी। महाराज एकदम दिगम्बर थे। वह कहते थे– हमने वस्त्र फेंका नहीं, हम दिगम्बर हुए नहीं, भगवान ने

कपड़ा छुड़ा दिया। आगे एक नाला पड़ गया। उस नाले का नाम था बैरगिया नाला। उसमें तीन चोर साधु बनकर रहते थे, बदमाश थे। बहुत बढ़िया, सजे-सँवरे संत! माला, तिलक, पताका सब! एक नाले के उस पार, एक इस पार और एक बीच में। काफी चौड़ा नाला। नाले से होकर गुजरती थी ग्रामीण पगडण्डी। अपने देश में परम्परा है कहीं कोई महात्मा है तो प्रणाम करना ही है। जब कोई आदमी उधर से निकलता तो कहता– दण्डवत् महाराज! यदि वह पैसेवाला प्रतीत हो तो सन्त वेशधारी पहला डाकू कहता– दामोदर। पैसेवाला न हो तो वह कहता– नारायण! बच्चा नारायण!! शेष दोनों समझ जाये कि साथी कहता है नारायण अर्थात् न लो। इसके पास कुछ नहीं है। दामोदर कहने पर वे समझ जाये कि इनके पास दाम है। जब वो यात्री बीच में आ जाय तो तीसरे वाला वहीं से बोले– वासुदेव। मार बाँस। थोड़ा आगे बढ़े तो बीचवाला बाँस मारे। तीनों मिल जायँ। मार-मूरकर बालू में कहीं गाड़ दें। वो माल-पानी अपना सप्लाई कर दें। घटना घट जाये और मुल्जिम पकड़ में कभी नहीं आवे।

एक बार नौ कत्थक आ गये उधर से। उनकी गठरी-मोटरी देखा तो चोरों को प्रतीत हुआ कि इनके पास माल खूब है। पहलेवाला बोला– दामोदर। बीचवाला भी बोला– दामोदर। तीसरा ललकारा वासुदेव! बीचवाले से जहाँ दस कदम आगे बढ़े, तीनों

ने मिलकर बाँस मारना शुरु कर दिया। नचनियन-गवइयन के बड़ी बुद्धि होती है। सट देना छितरा गये। बोले– अरे भाई ये क्या? ये गठरी-मोटरी में खाली नाचनेवाले कपड़े हैं और ये हारमोनियम है, ढोलक है, सारंगी है, हम लोगों के पास क्या है? लूट लो। फेंक दिया सब। कुछौ नहीं है। आज कहीं नाचे-गायेंगे, वहाँ मिलेगा तो भोजन करेंगे नहीं तो हमलोगों के भोजन के लाले पड़े हैं। हम लोगों के पास क्या है? वे समझ गये कि ये बदमाश हैं। डाकुओं के बड़ी कला होती है। आठ, नौ, दस आदमी भी कुछ नहीं ठहरते उनके सामने। उनके पास तो युक्ति होती है, जुगाड़ होता है, शस्त्र होते हैं।

कत्थकों के पास कुछ था नहीं इसलिए डाकू बोले– यार, ये तो धोखा हो गया। अच्छा तो तुम लोग नाच ही दिखाओ। सब मिलकर बढ़िया नाच दिखाने लगे। सारंगी वाले ने धुन निकाला– बैरगिया नाला जुलुम जोर। नौ कथिक नचावे तीन चोर। वे सब समझ गये कि ये तीन हैं और हम नौ हैं। तो दूसरा.... तबलवा वाला धुन निकाला– तबला बाजे धिन धिन... तबला बाजे धिन धिन। हारमोनियम से आवाज आयी– एक एक पर तीन-तीन... एक एक पर तीन-तीन। कत्थक छितरा गये। एक–एक के पीछे तीन-तीन हो गये। तीन इधर, तीन उधर, तीन बीच वाले के पीछे। डाकू बोले– क्या कर रहे हो? गवइये बोले– ये नृत्य है हुजूर।

'तीन तीन धिन...' कहते हुए हामोनियम, ढोलक पटक दिया और चढ़ बैठे। तीनों को मुरेड़ कर गाड़ दिया बालू में। सारे डकैत पकड़े गये। वे कई वर्षों से अपराध करते आ रहे थे। उन्हें पुलिस नहीं पकड़ पायी, कोई नहीं पकड़ पाया, उन्हें नचनियों-गवइयों ने पकड़ लिया।

महाराज कहें– हो! उसी जगह हम पहुँच गये। हमको यह कथानक बहुत अच्छा लगा कि ये वैराग्य का पथ बड़ा कठिन है। इस वैराग्य पथ में बहुत जुल्म है, जोरदार जुल्म है। नौ कथिक हैं नौ इन्द्रियाँ। **'नवद्वारे पुरे देही'**–नौ दरवाजों वाला यह शरीर एक नगर है जिसमें नौ कथिक नौ दरवाजे इन्द्रियों के हैं और नौ दरवाजों वाला यह एक नगर है। यह शरीर ही एक नगरी है। ये नौ कथिक नचाते रहते हैं। तीन चोर = सत्, रज, तम = त्रिगुणमयी प्रकृति है। कभी सात्त्विक गुण खींचता है, कभी राजसी, कभी तामसी। **'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ।।'** (मानस, ३/३८ क)– ये काम, क्रोध और लोभ - भगवान कृष्ण ने इन तीन पर ही बल दिया है– **'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।'** (गीता, १६/२१) यही प्रबल शत्रु हैं। इन तीनों को त्याग देना चाहिए। इन तीनों को त्याग देने पर ही उस कर्म की शुरुआत

होती है, उस गीतोक्त कर्म की शुरुआत होती है जो परम कल्याण को करनेवाला है। हम जो कर्म करते हैं काम की पूर्ति के लिए, क्रोध– बदला लेने के लिए, लोभ– आगे वाली समस्या को हल करने के लिए। भगवान कहते हैं– ये तीनों ही प्रबल शत्रु हैं। **'त्रयं त्यजेत्'**–इन तीनों को त्याग देने पर ही इस गीतोक्त यज्ञार्थ कर्म, नियत कर्म की शुरुआत होती है। तो वैराग्य के नाले में नौ कत्थक अर्थात् नौ इन्द्रियों को नचाये पड़े हैं तीन चोर – काम, क्रोध और लोभ। इनसे बहुत जुल्म है। इनको जीते बिना कोई इस नाले को पार नहीं कर सकता। एक एक पर तीन अर्थात् नाम, रूप, लीला, धाम, संयम, साधना की विधिवत् त्रिकाल संध्या में लग जाओ। ये संयम जो साध लेगा, वह नाला पार कर लेगा, नियम खण्डित नहीं होगा तो अवश्य विजय प्राप्त कर लेगा।

२३. गंगा तट पर विचरण

गुरु महाराज रहे भी कुछ दिन बैरगिया नाला में। फिर आगे बढ़े गंगा किनारे-किनारे। चलित ध्यान करते हुए महाराज विचरण करते थे। जहाँ शाम हो जाय, वहीं रात्रि निवास करें, बाँस की कोठी दिखाई पड़े गाँव के बाजू में.... गाँव में न जायँ, मन्दिर में भी न जायँ। कोई कुटिया दिखाई पड़े, कुटिया में भी न जायँ। कुटिया के बाहर पेड़ लगे रहें, उन्हीं की छाया में बैठ जायँ और रात भर भजन करें। सवेरे उठकर गंगा किनारे नित्यक्रियाओं से

निवृत्त होकर, हाथ-मुँह धोकर कुटिया में प्रवेश कर जायँ, जो सन्त हों उनको प्रणाम करें, धूना हो तो विभूति लगा लें। धूनी में प्रणाम कर लें। यदि वह सन्त कुछ भिक्षा स्वेच्छा से दे दें तो ग्रहण कर लें अन्यथा आगे बढ़ जायँ। कुटिया के अन्दर इसलिए न जायँ कि कुटिया है तो कोई न कोई होगा, चार बात पूछेगा तो हमारे भजन का समय नष्ट करेगा इसलिए न जायँ। कहेगा योगपट क्या है? प्रेमपट क्या है? अखाड़ा कौन? दुआरा कौन? देवी कौन? देवता कौन? ये महात्माओं के अखाड़ों के कुछ नपे-तुले नाम हैं। ये गुरुघराने की पहचान है, एक छाप है। और महाराज के पास न अखाड़ा, न दुआरा। महाराज को गुरु तो आकाशवाणी से मिले थे, भगवान ने ढूँढ़ के दिया था। अब कौन-सा अखाड़ा-द्वारा बतावे? और जब कोई बहुत तंग करे तो महाराज बोले– भईया, मुँहैं दुआरा है, पेटै अखाड़ा है। का बताईं तोके?

आहिस्ते-आहिस्ते ठण्डी के दिन आ गये। शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं। तो फिर गाँव के किनारे जब बाँस की कोठी दिखाई पड़े तो बाँस की कोठी से थोड़ी दूरी पर बैठ जायँ, जुते खेतों में, ढेलों में। शाम का समय है। कोई गाय लेकर जा रहा है, कोई बकरी लेकर, कोई सिर पर बोझा लेकर जा रहा है। किसान आ रहे हैं, जा रहे हैं। आना-जाना जहाँ बन्द हुआ, हलका झुलमुल अँधेरा सा हुआ, तहाँ उठके चले गये कोठी में। बाँस की परिक्रमा करके

देखा, हवा उधर की है तो इस तरफ थोड़ी जगह झाड़ लिया, बैठने भर की जगह ठीक कर लिया और बैठ गये। रात में एक या दो बार नीचे का पाँव ऊपर और ऊपर का पाँव नीचे कर लिया। ठण्डी लगे, रोआँ फूट जाय। अरे माघ महीने की ठण्डी, लेकिन जहाँ मन, सुरत ध्यान में लग जाय तो भीतर से गर्मी फेंक दे। बाहर के चमड़ी के ऊपरी भाग में ठण्डी रहे, भीतर में ऐसी गर्मी रहे जैसे रजाई ओढ़े हों। बस बढ़िया रात पार हो जाय। इसी तरीके जाड़ा बीतता चला गया, आगे बढ़ते चले गये। यही महाराज की कुटिया रही बाँस की कोठी। और गंगा किनारे बाँस की कोठी कहीं न कहीं मिल ही जाय।

कुटिया मिले तब भी उसमें न प्रवेश करें। क्यों? कुछ न कुछ पूछेंगे, हमारा भजन का समय नष्ट होगा। चलित ध्यान चलते जायँ, ध्यान करते चले जायँ। सुमिरन में धुन लग गयी तो फिर रास्ता कब कट गया, कितना कट गया, मतलब नहीं। क्योंकि कहीं जाना तो था नहीं! सुरत लग जाती है तो चलते हुए ध्यान बहुत बढ़िया होता रहता है। अभ्यासवश पाँव आगे पड़ते रहते हैं। हम नहीं चलते, पाँव चलते हैं। मन चिन्तन में चलता है। कभी-कभी रात को बारह-एक बजे, बारह बजे के करीब ध्यान उचट जाय तब महाराज कहें इतनी ठण्डी लगे कि लगता है आज शरीरिया छूट जाई। गुड़गुड़िया लग जाय। तब हमलोग पूछे–

महाराज, तब क्या हो? बोले– तब फिर उठ के सपाट दौड़ लगाई। ठण्डी है, हवा चल रही है, सपाट दौड़ लगावें, एक फर्लांग जायें और एक फर्लांग आयें, तो बाहर वाली गर्मी बढ़ जाय और फिर आकर बैठ जायँ। बाहर वाली गर्मी शान्त होते-होते ध्यान लग जाय। भीतर से गर्मी फेंक दे। फिर विधिवत् रात पार हो जाय। फिर ज्यों का त्यों! फिर कोई खतरा नहीं। ध्यान वास्तव में लग जाता है तो ठण्डी-गर्मी का भान खतम हो जाता है– **'शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।'** (गीता, १२/१८) ये साधक लोग जो टाइम-टेबुल से भजन करते हैं इसमें और योगियों के इस भजन में बहुत अन्तर है। ये समय पूरा नहीं देते हैं। और देना चाहिए। रात-दिन देना चाहिए। अभ्यास के द्वारा यह अवस्था आ जाती है। अब भजन भगवान कराते हैं। लँगोटी फेंकवा दिया, कमण्डल पकड़ा दिया, कह दिया– निकल जाओ। तो भगवान ही करा रहे हैं। और कौन? भगवान ही तो चला रहे हैं। और कभी-कभी रात ऐसी भी बीती कि दौड़ भी लगाया, समस्त कोशिश करके थक गये, लेकिन ध्यनवा नहियै लगा, नहियै लगा, सुरतिया नहियै पकड़ा, स्वरूप श्वास को नहीं पकड़ा तो हमलोग पूछे– महाराज, वो रात कैसे बीती? तो महाराज उदास हो जायँ। वह बताते थे– हो! समझो बीत गयी, हमहीं जानत हैं कैसे बीती! यों समझो कि बीत गयी। इन सब कठिनाइयों के बावजूद भी

भगवान ने नहीं कहा कि कपड़ा पहन लो। भगवान ने ये नहीं कहा कि कहीं कुटिया बना के रह जाओ। यात्रा चलती रही।

२४. परिभ्रमण काल में जौनपुर

भ्रमण करते हुए इसी प्रकार आप पहुँच गये जौनपुर। जौनपुर के बीच से निकले, सुनसान सड़क पर। शाम के समय में आज जैसी चहल-पहल नहीं थी। बहुत पहले की बात है। एक घर से कूदकर सेठ आया। संत-महात्माओं के प्रति उसके मन में आदर था। घर अच्छा था, सम्पन्न था। सेठ बोला– महाराज, भिक्षा पा लें। उसने महाराज को बैठा कर भोजन कराया। महाराज बोले– अच्छा, तो अब चलते हैं। सेठ बोला– रात को कहाँ जायेंगे? महाराज ने कहा– हम कहीं एकान्त जगह में बैठकर भजन करेंगे। सेठ ने कहा– बस यह कमरा, इस ओर एकान्त ही एकान्त है, इसी में रहें। महाराज बोले– नहीं, नहीं, इस एकान्त से हमारा काम नहीं चलेगा। हम जायेंगे और कहीं शान्त एकान्त में जहाँ मकान भी न हो।

२५. जौनपुर के कब्रिस्तान में

सुनसान सड़क पर महाराज चल पड़े। लम्बा-चौड़ा शहर! कहीं गलियों का अन्त ही न दिखाई पड़े। निकल गये डेढ़ किलोमीटर, दो किलोमीटर। एक जगह सुनसान दिखाई पड़ गया। महाराज घूम गये उसी ओर। एक कुआँ था, कुएँ के ऊपर घूमे। कुएँ की जगत थी तीन फीट-साढ़े तीन फीट करीब ऊँची! जगत

के नीचे बालू में थोड़ा आड़ लेकर भजन में बैठ गये। वो था कब्रिस्तान! महाराज के भजन का नियम था आँख बन्द करके भजन नहीं करते थे। आँख बन्द करने से नींद आने लगती है इसलिए निद्रा को मौका ही मत दो। निद्राजयी होने में तगड़े अभ्यास की जरुरत पड़ती है। चार-छः महीना जहाँ रगड़ के अभ्यास किया, एक बार सुरत लग गयी तो आँख खुली की खुली रहेगी।

कब्रिस्तान में बैठे थे कि इतने में दिखाई पड़ा– कंकाल कुछ दूरी पर कुएँ के पास पैदा हों.... करीब सौ फीट की दूरी पर! पहले आकार छोटा हो, बढ़ते-बढ़ते बीच में करीब सौ फीट तक ऊँचा हो जाय, फिर घटने लगे, समीप आते-आते छोटे होते-होते विलुप्त हो जायँ। ये दृश्य चलने लगा। महाराज ने ॐ का एक गोला खींच दिया चारो तरफ। उसी घेरे में बैठकर यह दृश्य देखने लगे। बवाल क्या? वे गिड़गिड़ा भी रहे थे बेचारे। कुछ माँग रहे थे, जैसे वे आशीर्वाद माँगते हों।

भगवान ने दिखाया– वे आत्मायें तुमसे सम्बन्धित रही हैं। वे गड़े नहीं हैं। उनका जन्म हो रहा है, फिर मृत्यु हो रही है। वो वहाँ से उभरी, पैदा हुई, आहिस्ते-आहिस्ते बड़ी हुई बीच में, महाराज के पास आते-आते खतम हो गयीं। फिर जन्मी, बड़ी हुईं, महाराज के पास आते-आते खतम हो गयीं। ये जन्म-मृत्यु का सिलसिला उनके पीछे लगा है। इस गर्भवास के आवागमन से छुटकारे के

लिए वो गुरु महाराज से प्रार्थना कर रही है। गुरु महाराज कहें– हो! लोग कहते हैं, स्थिर गड़े हैं, हिलेंगे भी नहीं। वो तो हिल भी रहे थे, अपनी स्थिति बता रहे थे हमें। गुरु महाराज ने उन्हें करुणा भरी दृष्टि से देखा, मन ही मन उनके लिए भगवान से प्रार्थना की। फिर दृश्य खतम।

सवेरा हो चला था। इतने में दो आदमी कुएँ पर चढ़ गये। आपस में कहने लगे– यार, यहाँ पर कोई बैठा है। हिन्दू फकीर लगता है। ये बड़े राढ़ी होते हैं। कहीं कब्रिस्तान पर कब्जा न कर लें। चलो, इनको मार डालो। महाराज ने सोचा– एक उलझन खतम हुई तो दूसरी तैयार। वे आपस में बड़बड़ाये और चले गये। महाराज भजन करते हुए आगे बढ़ गये।

२६. रामनगर में भक्तों के बीच

भ्रमण करते हुए आप पहुँच गये काशी। काशी महाराजाधिराज का किला गंगा किनारे। किले से सटकर बैठ गये गंगा की तरफ। नोनियों की बस्ती। नोनिया लोग दौड़ पड़े, बोले– कोई संत बैठे हैं। फट कुटिया बना दिया, छानी छा दिया। सेवा में आने-जाने लगे। वहाँ करीब २१ दिन रहे महाराज। सब ठीक था और महाराज का रहने का मन भी था। इतनी श्रद्धा जग गयी लोगों में कि सब आने-जाने लगे। दिन में एक बार महाराज बोल दिया करें तो महाराज की वाणी का इतना छाप रहे, विभूति-सिभूति उठा लें,

लोगों का भला हो जाय। कुछ वाणी से कह दें, वह भी हो जाये। आहिस्ते-आहिस्ते थोड़ी-थोड़ी भीड़ बढ़ने लगी। महाराज का नियम था कि रात को दो बजे उठ के बैठ जायँ भजन में। सत्संग में जो बच्चे आया करें, उन्हीं में से संभ्रान्त नोनिया परिवार की एक बिटिया रोज रात को दो बजे आकर खड़ी हो जाय। बिना हिले-डुले पाँच बजे तक एकटक देखा करे गुरु महाराज को। करीब ५० फीट दूर से और जहाँ ५ बजे, चुपचाप चली जाय। इस प्रकार ८-१० दिन हो गया। तब महाराज ने सब नोनिया परिवारवालों से पूछा– भइया! किसकी बिटिया है जो खड़ी हो जाती है और फिर चुपचाप चली जाती है? भजन के समय महाराज की पलकें खुली रहा करें, देखा करें। उन लोगों ने पता लगाया तो बोले– वह मुखियाजी की बिटिया है महाराज। महाराज बोले– बुलाओ उसको। वह आया। महाराज ने कहा– करे, शादी-विवाह करके विदा कर दे, वो इहै आशीर्वाद माँगत है। बिटिया का ब्याह करके विदा कर दे। रात में महाराज चुपचाप उठे और वहाँ से निकल गए।

पैदल महाराज चले जायँ ध्यान में तो बाजू से सड़क किनारे कितनी गाड़ी निकली, कौन निकला, कोई भान नहीं। आवाज न सुनाई पड़े। मन तो एक है। चाहे बाहर की आवाजें सुनो चाहे अन्दर भजन करो। सुरत जहाँ अन्दर लग गयी चिन्तन में तो बाहर चिल्लपों आवाज और बातें से मतलब ही नहीं। फिर नहीं सुनाई

पड़े। सुरत सुना करती है। सुरत लग गयी अन्दर तो सुनने वाला तो अन्दर चला गया, बाहर का पकड़े कौन? बाहरी वातावरण को ग्रहण कौन करे? चिन्तन के द्वारा सुरत अन्तर्मुखी हो गयी तो पकड़ने वाला तो अन्तर्मुखी हो गया, बाहर चमड़ी का ढाँचा भर है, बस धुन में चलते ही चले गये। आगे जंगल पड़ गया। जहाँ शाम हो, वहीं महाराज बैठ जायँ – यत्र सायं तत्र गृह! आप एक पेड़ के नीचे बैठ गये। रातभर वहीं भजन करते रहे।

२७. शिशिरकाल में दिगम्बरावस्था

बड़े सवेरे उठ के, सूरज की ओर मुँह करके महाराज आगे बढ़े। बस दो-चार बीघा आगे बढ़े कि आगे खेती दिखाई पड़ गयी– जंगल झाड़ी के उस पार। एक किलोमीटर पर गाँव दिखाई पड़ा। खेत की मेड़ पकड़ के...उधर खेत बीच में होती है न मेड़.... उसी पर महाराज आहिस्ते-आहिस्ते चलने लगे। दो बिटिया थोड़ी दूरी पर चना और सरसों खोंट रही थीं। निगाह पड़ी महाराज पर। वहीं से दौड़ लगाया और चली आयीं महाराज के पास। कहने लगीं– देख री बहिनी, पगला है का रे। पागल है, इसको कुछ समझ में नहीं आवत है। महाराज की आँखें आधी बन्द, आधी खुली। रास्ता देख सकें, उतनी खुली थी। चले जा रहे हैं अपनी धुन में। कौन बाहर से आया, कौन इधर- कुछ पता नहीं। वह कह रहीं थीं– करे, पागल है रे। ई नंगा काहे घूमत है? कोई पीछे से निरीक्षण

करे, कउनो बिटिया आगे से निरीक्षण करे। इन्द्रिय देखे तो बोले– ई का लटकत है एके। और कभी कुछ अंड का बंड जवन भाषन शुरू किया, महाराज सोचे– सुबह-सुबह कहाँ से आफत आ गयी। अब वो सोलह–सत्रह साल की बिटियायें। इतने में एक बोली– करे, ऊ काका देखत है रे! चिल्ला के भागीं, आँ करके भागीं।

जब बिटिया चली हैं महाराज की तरफ, काका तब से देख रहे थे। वो भगत रहा सन्तों का इसलिए निगाह पड़ गयी। वह भी आहिस्ते-आहिस्ते महाराज की ओर बढ़ रहा था। काका बोले– का बात है बिटिया? वे बोली– काका, पता नहीं के है, हम तो डरा गये। काका बोले– भागो-भागो, ठीक है, मैं देखता हूँ।

उन्होंने जाकर सादर प्रणाम किया। काका बोले– महाराज, ये कुटिया है, यहीं विराजो। एक और सज्जन आ गये। खेतों में कुटिया होती है न, खेत की रखवाली के लिए! वहीं बैठा दिया। दूध आ गया, मट्ठा आ गया, सेवा होने लगी विधिवत्। महाराज की जब वाणी, भाषा सुना, आहिस्ते-आहिस्ते गाँव भर भगत हो गया। गाँववाले बोले– महाराज, आप चले आये, बहुत अच्छा हुआ। हमलोग धन्य हो गये। बिटिया डर गयी रहीं महाराज। महाराज बोले– बिटिया भर नहीं डर गयी रहीं, हमहूँ डर गये रहे। तो गाँवभर हँसे। वे बिटिया रहीं बड़ी चपल। खड़ी रहे वोहू वहीं पर। महाराज ने कहा– अच्छा, इन बच्चों का शादी-विवाह कर दो

और अब हमें छुट्टी दो, हम आगे बढ़ेंगे। ज्यादा दिन नहीं टिक सकते। अब भगवान का आदेश है कि हम यहाँ से आगे बढ़ जायँ।

२८. कर्मनाशा के किनारे देवी-मंदिर में

भजन करते हुए, यत्र-तत्र घूमते हुए महाराज आगे बढ़े। एक नदी पड़ गयी। वह थी कर्मनाशा नदी। नदी में जो घाट था, यात्रियों के आने-जाने का जो रास्ता था, वहाँ बढ़िया वैष्णव सन्त थे। एक बढ़िया कुटी थी। वहाँ पहुँच गये। सन्तजी बोले– महाराज, भोजन करो। भोजन कराया, बैठाया, कहा– यहीं निवास करें। महाराज बोले– नहीं, हम रात में एकान्त में रहेंगे। सन्तजी बोले– एकान्त ही एकान्त है नदी किनारे। किनारा पकड़कर चले जाइये। बस यहीं भर भीड़ है, बाकी पूरा एकान्त। महाराज बढ़ गये आगे। कहीं बैठने की जगह नहीं, झाड़ी ही झाड़ी। आधा किलोमीटर जाते-जाते एक साफ-सुथरी जगह दिखाई पड़ी। एक इमली का पेड़ बड़ा भारी। और एकाध पेड़। साफ-सुथरी जगह। और एक मन्दिरिया छोटी-सी, वह भी रँगी-चुँगी। अब सोचा, इसी में रहेंगे, ठण्डी थोड़ी बढ़ रही है और समय वही था कार्तिक। ठण्डी थोड़ी बढ़ रही थी। चना खोटने वाला महीना कार्तिक-अगहन रहा होगा। थोड़ा आगे बढ़े। जहाँ उस मन्दिर में झाँका तो चन्द्रमा की सीधी किरण पड़ रही थी मंदिर के अन्दर। दरवाजे तो थे नहीं। देवी के नीचे की जमीन चमक रही थी लप-लप-लप-लप। महाराज ने

सोचा– इसमें तो दुर्गन्ध आ रही है, लिबिर-लिबिर जैसा क्या है? ये क्या चमक रहा है? इधर पाँव रखने लायक नहीं है। लासा-लासा दिखाई पड़ रहा है। दुर्गन्ध बहुत है। इतने में ऊपर निगाह गयी तो घण्टे में लिपटा हुआ एक सर्प फूँ-फूँ करने लगा। महाराज ने देखा, बड़ी भयावह जगह है। इसमें तो बैठने लायक नहीं है। बस उसमें नहीं गये। मंदिरिया से थोड़ी दूरी पर बाहर बालू में बैठ गये। जहाँ बालू में बैठने का उपक्रम करने लगे तो दो कुत्ते भौं-भौं-भौं करते आये सामने। महाराज बिगड़े– भाग यहाँ से! तो थोड़ी दूर जाकर कुत्ते बैठ गये। महाराज भी बैठ गये। रातभर कुत्ते बैठे रहे। बेचारे पहरा देते रहे। बढ़िया शान्ति से भजन चलता रहा।

बड़े सवेरे पुजारी आया, महाराज को बैठे देखा। पुजारी बोला– महाराज! आप कब आये? महाराज ने कहा– मैं शाम को ही आ गया था। पुजारी बोला– रात कहाँ बिताये? महाराज बोले– देख तो रहे हो, यहीं बैठे रहे। पुजारी भागा गाँव। वह जो महात्मा थे, वहाँ नदी किनारे घाट पर, वह भी दौड़े-दौड़े चले आये। भीड़ लग गयी। लोगों ने कहा– महाराज, यहाँ रात में कोई रह कर जिन्दा नहीं बचा आज तक। यह बड़ी भयंकर जगह है। महाराज ने सुबह उठकर देखा, ६०-७० बकरे की टँगरी टँगी हुई थी चारो तरफ, उसी इमली के पेड़ में। रोज बकरा कटते रहे और देवी के मन्दिर में ही वे खून गिराया करें। वही लिसलिसा पदार्थ था उसमें।

सर्प बेचारा खून चाटै आया रहा। महाराज कहें– हो! कुछौ नहीं रहा। बढ़िया शान्ति की जगह रही। एक भ्रम रहा लोगों का। अब वो महात्मा हमें आने न दें। उन्होंने कहा– महाराज, यहीं रहो। आप सिद्ध पुरुष हो। भाग्य रहा, दर्शन हो गया। अब वो देवी के दर्शनार्थी कम हो गये, हमारे दर्शनार्थियों की भीड़ लग गयी। हम वहाँ से तुरन्त उठे, सन्तजी के यहाँ चले आये। सन्तजी न छोड़े। तीन दिन रहे और फिर अनुमति ली, चुपचाप निकल आये। भ्रामक जगह जो होती है, दुनिया के लिए तो है ही, लेकिन महापुरुषों के जाने से, रहने से इन भ्रान्तियों का निवारण होता जाता है।

२९. देहाध्यास का त्याग

महाराज चन्दौली से आगे बढ़े। विचरण काल में गुरु महाराज के पास कमण्डल और छड़ी। वस्त्र एक भी नहीं। दिगम्बर वेश में जिधर मुँह हो, उधर ही भजन करते हुए निकल जायँ। कर्मनाशा नदी के अगल-बगल झाड़ियाँ थीं। जब अँधेरा होने लगा तब चेत हुआ। बगल में एक पेड़ के नीचे आसन लगा लिया। चैत्र का महीना। सवेरे का समय। सुरसुरिया हवा। ठण्डी लगने लगी तो उठ के खड़े हो गये। चारो तरफ देखा तो दूर अग्नि जल रही थी। महाराज ने सोचा, कोई किसान खेत की रखवाली कर रहा है। सुबह के समय आग जलाया होगा, कउड़ा। आहिस्ते-आहिस्ते वहाँ चले गये। वह महात्माओं की कुटिया थी। वहाँ पाँच त्यागी

महात्मा। कोई भभूति रमा रहा था, कोई माला लेकर बैठा था, कोई सिर के बल खड़ा आसन कर रहा था। कोई धूने के पास भी थे। महाराज गये, सादर प्रणाम किया, धूनी के पास बैठ गये। तो जो विभूति रमा रहा था, वो बोला– ऐं, धूना छू दिया। महाराज बोले– हमने छुआ नहीं, हम दूर बैठे हैं। वे महात्मा बोले– अरे, हिम्मत कैसे पड़ी? ये महात्माओं का धूना है। धूने का मंत्र जानते हो? अग्नि का मंत्र जानते हो? सड़से का मंत्र जानते हो? महाराज बोले– ठण्डी लगी है, ताप लेने दो, फिर सब बता देंगे। वे बोले– ओह, सन्तों जैसी बातें करते हो, खड़िया कहीं का! आया हाथ पकड़ के उठाया, मुरेड़ के हाथ पीठ के पीछे लगा दिया और दूर ढकेल दिया। महाराज थोड़ी दूर पर शान्ति से भजन में बैठ गये। उन्हें कोई दु:ख नहीं हुआ। इतना सा मन में कुतर्क आया कि ठण्डी लग रही थी, इन लोगों ने तापने नहीं दिया। उस दिन भगवान ने अनुभव में बताया कि आज तुम्हारा देहाभिमान खत्म हो गया।

कालान्तर में जब महाराज अनुसुइया में व्यवस्थित हो गये, इन त्यागी महात्माओं में से दो महात्मा घूमते हुए अनुसुइया पहुँच गये। महाराज ने देखा तो उनको पहचान लिया। वे लोग महाराज को पहचान नहीं पाये। महाराज ने उनको गाँजे की व्यवस्था दिया, भोजन की व्यवस्था दिया, रहने की जगह दिया और सुबह विदा होने लगे तो प्रेम से बोले– त्यागीजी! समय-समय पर ऐसे ही

दर्शन देते रहियेगा। वे महात्मा बोले– महाराज, हम किस बात के त्यागी हैं! पाँच गाँव के बीच में कुटिया बना रखी है। सभी गाँवों से फसल पर खलिहान से वसूली करते हैं.... दोनों फसलों में। उसे सरपंच के यहाँ जमा करते हैं। वहीं से निकाल-निकाल वहाँ खाया करते हैं। उससे ही हमारा काम चलता है। महाराज! आप महापुरुष हैं। घनघोर जंगल में पड़े हुए हैं। न कहीं से बँधा है और न ही भिक्षा करते हैं, न करने देते हैं। आपकी रहनी हमलोग समझ चुके हैं महाराज! हमारा सौभाग्य था जो दर्शन हो गये। महाराज बोले– ऐसी बात नहीं है त्यागीजी! दर्शन देबो कियो, लेबो कियो, एकै स्वरूप है। और विदा कर दिया।

जब वे कुछ दूर चले गये, इतने में गाँव से एक पाँड़े जी लाठी लिए झूमते हुए चले आये। महाराज बोले– करे पाँड़े, जिनको हम कहा करते थे कि हाथ पकड़कर मुरेड़कर हमें धकिया दिये रहा, धूना तापने नहीं दिया था, वे यही हैं जो जा रहे हैं। तो वो रहा भाविक। सटाक महाराज को प्रणाम किया, लाठी लिया, दो-दो सीढ़ियाँ डाँकता चला जाय। महाराज बोले– कहाँ भागा जा रहा है? वह बोला– इनके मार के हम गिराय देब। हमरे गुरु महाराज का हाथ मरोड़ दिया। महाराज बोले– अरे नहीं, सुन, इधर आ। वो नहीं मुरेड़े रहे, भगवान प्रेरणा करके मुरेड़वाये रहे कि देहाभिमान है कि खतम हुआ? बेटा, हमहूँ उस समय क्रोधित हो

जाते न, तो आज हम यहाँ न होते, और कहीं होते। जब हमें क्रोध ही नहीं आया, भान ही नहीं रहा तहाँ फिर देखो, हमें यहाँ भेज दिया। पाँच साल का बच्चा और स्वरूप में स्थित परमहंस एक ही होते हैं। हाथ मुरेड़ो तब भी हँसता रहेगा, नालायक कहो तब भी हँसता रहेगा, राजा कहो तब भी हँसता रहेगा। संत का यही स्वरूप है।

३०. सन्तों के संग माघ-मेला प्रयाग में

महाराज जी एक वृक्ष के नीचे विराजमान थे। देखा, जमात जा रही थी संतों की। कोई लाठी घुमा रहा था, कोई भाला फेंक रहा था, कोई कुछ कर रहा था, कोई घोड़े पर तो कोई हाथी पर तो महाराज समझ जायँ कि जब ये जमात जा रही है नागा पलटन, इसका मतलब है कहीं न कहीं मेला है। चाहे कुम्भ मेला होगा। चलो, इसी बहाने कुम्भ मेला दर्शन हम भी कर लें गंगा-जमुना, प्रयाग। तो उनसे दूरी बनाके एक फर्लांग की महाराज भी चल दें। तो नागा लोग दौड़ के आवे, देख लें, फिर चले जायँ। एक-दो दिन तो निरीक्षण करें, फिर बोलें– गुरुभाई! दूरी क्यों! हमलोग सेवा करेंगे, आप साथ ही रहें। महाराज बोले– हमें दूर ही रहने दें। फिर खूब सेवा होती रहे, चलते रहें, पहुँच जायँ प्रयागराज, कभी उज्जैन, जहाँ की जमात हो। यह जमात पहुँच गयी प्रयागराज। संन्यासी नागाओं की जमात हो, वे लोग तो बढ़िया सेवा करें कि

वो नागा रहें, उन्हें नागाओं की जरुरत रहे। महाराज दिगम्बर महात्मा रहें तो एक इकाई बढ़ गयी, उनको फायदा हो गया। नागा महात्मा लोग तो समय-समय पर दिगम्बर होते हैं, महाराज परमानेन्ट दिगम्बर। उनकी तो वृद्धि हो गयी। बढ़िया सेवा करें। महाराज जमात से एक तरफ बैठ के भजन में लगे रहें। अपना काम करते रहें। जमात से कोई प्रयोजन न रहे।

३१. माघ-मेले में सिपाही द्वारा हाथ मरोड़ने की घटना

प्रयाग मेला (माघ मेला) माघ में हर साल लगता है। माघ मेला में आप बालू पर विराजमान थे। ठीक पास ही में थोड़ी ही दूर पर एक रानी साहिबा ने भण्डारा किया। उन्होंने कहा– सब महात्माओं को निमन्त्रण दे दो। निमन्त्रण दे दिया। निमन्त्रणवाले आये, महाराज को भी हाथ जोड़कर निमन्त्रण दिया। निमन्त्रित सन्त जो जा रहे थे, तिलक लगाये हुए थे, कपड़े थे, टीप-टाप था, कोई भगवा पहने था, महाराज एकदम फटीचर कम्पनी! महाराज को देख गेट पर तैनात सिपाही ने कहा– ऐ खड़िया कहीं का, सन्तों का निमन्त्रण है कि पगलों का। उसने महाराज का हाथ पकड़ा, पीछे मुरेड़ कर चला, ढकेल दिया। महाराज बोले– बड़ा गजब कर दिया। जाकर न्यौता दिया तब हम आये, नहीं क्यों आते! महाराज चले आये। उधर से ही चले गये गंगा किनारे-किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गये - बबूल के नीचे। इतने में कोई

भगत आया, निगाह पड़ी, वो भोजन लेकर आया, बोला– महाराज, प्रसाद पा लो। भोजन करा दिया विधिवत्।

बारह-एक बजे के करीब महाराज लौटे उधर से, सोचे– सिपहिया न्यौता देके धकिया दिया मोके, ओके कुछ दण्ड भवा कि नहीं? महाराज को बुरा लगा था, सोचा– उसे दण्ड भवा कि नहीं? देखा, सिपहिया वहाँ से लोटा–लोटा वहाँ जाये, वहाँ से लोटा-लोटा इधर आवे। वो रानी साहब का चहेता सिपाही रहा। रानी साहब भी परेशान। तमाम दो-चार-छः डॉक्टर बदल चुकी, वो न ठीक हो। महाराज कहें– ससुरा कौनो महात्मा के धकियाये होई हाथ पकड़ के, ई मरि जाई, अब न ठीक होई। उसने सुन लिया भीतर से। वह बोला– अरे बप्पा रे, इन्हीं के धकियाये रहे। बस घुसकत-घुसकत आया, गिर पड़ा गोड़े पर – महाराज! हमें का पता महात्मा ऐसेहूँ हुआ करते हैं। हम तो सोचा जिनकी अच्छी वेशभूषा होत हैं, ऊ होत है महात्मा। अरे मारी डरियो महाराज! फिर रानीऔ गोड़े पर गिरी। सब बोले– महाराज, अब ठीक करो। महाराज बोले– अबौ धकियइहौ कउनो महात्मा के। महात्मा टीप-टाप का नाम नहीं है। मन जब हृदय से अन्तर्मुखी हो जाय, वो महान तत्त्व परमात्मा, आत्मा उनसे जुड़ जाय, वो महात्मा होत हैं। तोहार खल की। उठाके एक छड़ी मारे। फिर ओकर जूड़ीताप उतर गया। अब वह महाराज को छोड़े ही न!

किसी तरह उससे जीव छूटा तो मेला पीछे लग गया–'महाराज की जय!', 'महाराज की जय!' रात को शान्ति रही। जब भीड़भाड़ थोड़ी कम हुई, महाराज चुपचाप उठे, शान्ति से निकल गये।

३२. माघ-मेला में वैष्णव संतों द्वारा धूना तापने से रोकना

नागा वेश में वैष्णव सन्त भी थे। वे विभूति लगा के, तिलक लगा के, आपन कोई सिर के बल खड़ा था, कोई मयूर आसन, कोई उड्डीयान आसन कर रहा था। महाराज पहुँचे। ठण्डी थी। जहाँ धूने के पास बैठे तो बोले– अरे, धूना छू दिया। धूने का मंत्र जानते हो। अग्नि का मंत्र जानते हो। सड़से का मंत्र जानते हो। महाराज बोले– भाई, ठण्डी लगी है, पहले ताप लेने दो, फिर मंत्र बता देंगे। महात्मा बोले– ओ, सन्तों जैसी बातें करता है खड़िया कहीं का। उठो यहाँ से। हाथ पकड़ा, महाराज को उठा दिया। महाराज उस दिन नागों के धूने से थोड़ी दूर जाकर आपन बैठ गये बालू में। ठण्डी में रातभर बैठ के भजन करते रहे। और वो आपन बोली बोलते रह गये, बोले– बड़ा टिन्नी है। बड़ा अकड़ू खाँ है। देखो न, कैसा बैठा है? ये है, वो है। महाराज की जहाँ सुरत लग जाय ध्यान में, फिर ठण्डी न लगे।

३३. माघ-मेला में सेठों द्वारा निमन्त्रण एवं जल-वृष्टि

बड़े सवेरे श्वेत वस्त्र पहने सेठ आये चार-छः। उन्होंने सबको निमन्त्रण दे दिया। गुरु महाराज को भी निमन्त्रण दे दिया। साधु-

वेशधारी सब बिगड़े– अरे-अरे भगतजी, रामजी की इच्छा से सन्तों को भोजन कराना है कि खड़ियों को! ये साधु नहीं है। वे सेठ बोले– हम निमन्त्रण दे चुके हैं। हमारे पास दृष्टि नहीं है कि हम पहचान सकें कि इनमें कौन साधु है, कौन नहीं है। अब तो निमन्त्रण दे चुके, भोजन तो अवश्य करायेंगे। चले गये।

थोड़ी दूरी पर उन भक्तों का कैम्प था। सादर सबको लिवा ले गये। जब पंगत लग गयी, पंक्तिबद्ध संत बैठने लगे तो साधु-वेशधारियों ने महाराज से कहा– बैठना नहीं खड़िया कहीं का! ये हमारी पंगत में नहीं बैठ सकते। ये बढ़िया साधु नहीं हैं। तो महाराज को अलग से पत्तल लग गया। बैठ के जब भोजन करने लगे, एक ग्रास तो उठा लिया, दूसरा, तीसरा ग्रास उठाये, आकाश में बदली थी जहाँ-तहाँ, माघ का महीना और फिर बूँदें पड़ने लगीं। बड़ी-बड़ी बूँदें, टप-टप-टप-टप ठण्डे शरीर में लगे तो रोआँ फूट जाय। बर्फ की तरह बूँद गिरे। महाराज के मुँह से निकला– धत् तेरी इन्द्र की, हमार खाय का तोसे देखा नहीं जात है! तीन दिन में भोजन मिला, वोहू तोसे नहीं देखा जात। धत् तेरी धूर्त की, यही समय था बरसे का। इतनी जगह पड़ी है, खेत सूखत है, वहाँ काहे नाहीं बरसते! गँवार कहीं का! सन्न देना बूँदी बन्द। बादल हट गया। किरण आकर गिरने लगी, जहाँ महाराज बैठे थे वहाँ। फिर नहीं बरसा।

बाबा लोग सनक गये, वे बोले– अरे बाप रे, ई तो देव के गरियावत है, भगवानो के गरियावत है। बाबा है.... का है....? और अब सेठ लोगों में से कोई तौलिया ले के खड़ा है, कोई पानी ले के खड़ा है, कोई मालपुआ ले के खड़ा है। सबकी दृष्टि महाराज पर टिक गयी। फिर बाद में जब सब हाथ धुलाने के लिए आये तो महाराज बोले– नहीं, गंगा में। महाराज सोचे– बाप रे! हम तो बोले ही नहीं, हमारे मुँह से काहे निकल गया। निकलने के साथ पानी बन्द! इधर जबान से निकला, उधर बूँदी बन्द। बदरी छँट गयी, घाम भी निकल आया। यहाँ यदि मैं हाथ धो के चलूँगा तो दुनिया दु:खी है। अभी कहेंगे– हमारा कारोबार नहीं चल रहा है। इहै सेठ हमार रोआँ-रोआँ खींच लेइहैं। दुनिया दु:खी है। महाराज बोले– नहीं, हम हाथ गंगा में धोयेंगे। पूरी भीड़ पीछे लग गयी। संतलोग भी पीछे लग गये। वो भी प्रणाम किये, वे बोले– महाराज भूल हो गयी थी, हमलोग पहले पहचान नहीं पाये।

महाराज गंगा के किनारे आये, पानी में उतर गये। जहाँ कमर भर पानी में आये तो महाराज तैर चले। वे लोग बोले– अरे, संतजी तो तैर गये। उस पार झूँसी है, पानी थोड़ा रहा वहाँ झूँसी में जो नाला चलता है न, नदी कई भागों में बँटी होती है। इधर गंगा, इधर जमुना और गंगा में तैर चले। सभी बोले– अरे, संतजी तो उस पार चले गये। सेठ बोले– नाव लाओ, नाव लाओ। नाव ढूँढ़े, नाव में बैठे, फिर सेठ लोग पीछे भागे।

प्रयागराज में पूरब के क्षेत्र का नाम झूँसी है। झूँसी में ऊपर चढ़ के बाँस तमाम हैं, बाँस की कोठियाँ हैं, चढ़ गये। बाँस की कोठी में भजन करना महाराज को बहुत प्रिय रहा है। जाके उसके बीच में बैठ गये। अब नाव जब मिली, सेठ लोग पार हुए और फिर वहीं नाव से उतरे। उन टीलों के नीचे-नीचे सड़क थी, पुराने जमाने की कच्ची सड़कें। सेठ लोग भागे सड़क-सड़क। एक घण्टा में ढूँढ़-ढाँढ़ के आये, कहने लगे– भइया, अन्तर्धान हो गये। सेठ तुम्हारा भाग्य था कि महापुरुष तुम्हारे यहाँ भोजन कर गये। वो बतियाते हुए चले जा रहे थे नीचे-नीचे, महाराज कहे– मैं बैठा-बैठा सुनुँ वहीं पर। महाराज कहें– हो! सिद्धि और कुछ नहीं, जो मुँह से निकल जाय, भगवान कर दें। **'जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।'** (मानस, ७/११३/४) जो आवश्यकता पड़ी, जो मुँह से निकला वो भगवान पूर्ति कर दिया करते हैं।

३४. रेलयात्रा में सिन्धियों से विवाद

एक बार फिर ऐसे ही भीड़-भाड़ जाती दिखाई पड़ी तो सोचा कि लगता है फिर मेला है क्या! पता चला उज्जैन का कुम्भ है। चलो फिर देख लें। ट्रेन भर-भर के जा रही थी। कहीं ट्रेन में तिल रखने की जगह नहीं, लेकिन एक डब्बा खाली था। उसमें पाँच-सात सिन्धी बैठे हुए थे। ऊ इतने झगड़ालू थे किसी को बैठने

न दें। जगह नहीं, जगह नहीं, भागो यहाँ से। कोई सींकचा तक न पकड़े पावे। उस जमाने में छकड़ा गाड़ियाँ रहीं। किसी का हैण्डल टूटा है, किसी में सिकड़ी नहीं है। महाराज ने सोचा– और तो कहीं जगह है नहीं, भीतर तो ये जाने ही नहीं दे रहे हैं, चलो बाहर खड़े रहेंगे एकाध स्टेशन, बाद में कहीं जगह मिली तो बैठ लेंगे। गाड़ी जब स्टार्ट हो गयी, तब पकड़ लिया सींकचा। तो वो सिन्धी लोग.... एक सिन्धी हाथ छुड़ावे तो महाराज बोले– भाई, गाड़ी स्टार्ट हो चुकी है। देख, गाड़ी ने रफ्तार पकड़ लिया है, गिरेंगे तो हम मर जायेंगे। हम बाहर खड़े हैं, तोरे अन्दर तो नहीं। तुम अन्दर हो, हम बाहर हैं, तुम्हारा क्या लेते हैं? गाड़ी तोरे बाप तो बनवाये नहीं रहे, तू काहे परेशान है? सिन्धी बोले– हमने कहा था गाड़ी मत छू, क्यों छूआ? लगा छुड़ाने। महाराज ने देखा कि वास्तव में गिरा देगा तब एक हाथ डाल लिया सींकचे में और कमण्डल दूसरे हाथ में ले लिया। कमण्डल में होती है टोंटी। खींच के मारा। वह नीचे हाथ छोड़ाने में लगा था, मारा घुमा के खोपड़ी में धँस गयी टोंटी, एक अंगुल गच्च देना। सिन्धी बेहोश होकर गिर पड़ा भीतर धड़ाम। वही तो दरवाजा रोके हुए था, दरवाजा खुल गया फटाक। महाराज चले गये अन्दर और बोले– तोरी हरामी की! कौनो दुश्मनी रही किसी जनम की क्या! काहे जान पर उतारू हो गया रे! तोरी खल की! अब गटई पकड़ के

चढ़ बैठो तो का करिहो रे! बिगड़े बड़ी जोर से तो सातो सिन्धिये परेशान! वे बोले– बाबा, हम बाहरी नहीं हैं, जहाँ आप चल रहे हैं, वहीं हम भी दुकान करते हैं। लेकिन पूरा डब्बा महाराज की तरफ, जो कोई बैठे थे। एक ने दौड़ के सींकचा (चेन) खींच दिया गाड़ी रोकनेवाला। गाड़ी रुक गयी तो सिन्धी को भी उतार दिया, महाराज को भी।

छोटा-सा स्टेशन। छोटे स्टेशन में कोई जेलखाना होता नहीं। एक टीटीआई बैठा था कमरे में, उसके बगल में सींकचा लगा हुआ था, जाली, वहाँ महाराज को बैठा दिया। एक बक्से पर महाराज बैठ गये। सिन्धिया नीचे बैठा रहा। महाराज बिगड़े– करे खल, अब कोई नहीं आगे-पीछे, गटई धर के चढ़ बैठब तो, के है रे तोरे आगे-पीछे! काहे ढकेलत रहे! ट्रेन तोरे बाप की रही है। सब चले आये – टिकट चेकर, टिकट बाँटनेवाले और जो स्टाफ रहा, वे बोले– महाराज, ई टिकट हमारी तरफ से ले लो। आप जाओ, एके हम देखब। महाराज तो निकल गये। सन्तों को टिकट नहीं लगता रहा। लेकिन उस दिन पहली बार जिन्दगी में टिकट मिला। एक ट्रेन आयी। ट्रेन दस-दस मिनट में आया करे। उज्जैन कुम्भ है तो ट्रेन को आना ही था थोड़े-थोड़े समय में। बैठ के चल दिये। और वो बन्द। वो भी कुछ दे-ले के छूट गया। महाराज को आगे एक-दो स्टेशन बाद उज्जैन में सन्तों का एक अखाड़ा था,

वहीं जाना था। उतर के... महाराज गेट से न जाया करें। बाहर से.... पीछे सींकचों से निकल कर चले जाया करें। भीड़ में कौन धक्का खाय! जहाँ पीछे से निकलने लगे तो पाँच-सात आदमी..... और पाँच-सात आदमी..... दस-बारह आदमी डब्बा-डब्बा ढूँढ़त रहे तो महाराज की निगाह पड़ी बाहर निकलते समय तो सोचा– अरे! ये तो बड़े डाही हैं, बड़े लागी हैं। ये तो हमीं को ढूँढ़ रहे हैं। वो भी सिर में पट्टी बाँधे हुए दौड़त रहा ये डब्बा से वो डब्बा। महाराज आहिस्ते-आहिस्ते पास ही में अखाड़ा था, अखाड़े में चले जा रहे थे। ट्रेन निकल गयी। सिन्धी बाहर निकले तो देखा, बोले– वो...वो...वो जा रहे हैं अखाड़े में। तो दौड़ के सब अखाड़े में चले आये। अखाड़े में जाते ही महाराज ने बता दिया– ये सिन्धी गिरावत रहा, मार दिया कमण्डल तो गिर पड़ा। ये यही दुकान किये हैं मेले में, सिन्धी लोग चले आ रहे हैं। महंत बोले– संतजी, आप कढ़ा, प्रसाद छको जी! आपसे क्या मतलब! ए मतोला गिरि! देख तो। जहाँ सिन्धी लोग आये, मतोला गिरि ने कहा– क्यों संतों को कष्ट देते हो? आओ दो-दो हाथ हो जाय! सिन्धी ने कहा– महाराज, क्षमा करें। नागा ने कहा– तो निकाल ५०० रुपया! संतलोग छानेंगे-घोटेंगे। वो उनसे ५०० रुपया भी लिया। किसी नागा ने कहा– अरे, भगत है भाई, इनको तंग मत करो। दूसरे ने कहा– संतों को कष्ट दोगे तुमलोग? फक्कड़ों की सेवा

करने की जगह तंग करता है। इसकी पिटाई करो। सिर फूटा तो क्या हो गया? अभी कम फूटा। टाँग कहाँ टूटी! और पिटाई करो। सिन्धी बोले– नहीं, नहीं, हम तो आपके सेवक हैं महाराज! हमलोग तो यहीं रहते हैं। नागा बोले– अच्छा, अच्छा, चलो भागो।

३५. उज्जैन कुम्भ में शंकराचार्य द्वारा दीक्षा-संस्कार

महाराज चले आये उज्जैन मेले में। वहाँ डुगडुगी बज रही थी– जो ऐरा-गैरा साधु घूमते हों, न गुरु के न पीर के, वो आदि शंकराचार्य के मठ में शामिल हो जायँ। कल सुबह ९ बजे आ जायँ। वे सब दीक्षित कर लिये जायेंगे। महाराज सोचें– हमारे गुरु महाराज का तो कोई मठ, अखाड़ा था ही नहीं। आकाशवाणी हुई कि इस मंदिर में तुम्हारे गुरु महाराज बैठे हैं, वो मिल गये। सचमुच के महापुरुष। उनके शरण-सान्निध्य से हृदय से आत्मा जागृत हो गयी, भजन जागृत हो गया। गुरु भगवान और माया सदैव साथ रहते हैं। एक पल भी ऐसा नहीं होता जहाँ गुरु महाराज आगे-पीछे साथ में न हों! जब जागृति आ गयी तब एक पल भी ऐसा नहीं होता जहाँ भगवान आगे-पीछे साथ में न हों। और जो चिन्तन से चूक गया, आज्ञा-पालन में कटौती हुई, माया का लहान बैठ जाता है। वो माया भी भजन जागृति के पश्चात् जो सफल होती है, वो भगवान के मन से होती है। भगवान पटकनी देकर उसको राह पर ले आते हैं, गिरने तब भी नहीं देते। तो ईश्वर,

गुरु और माया– तीनों सदैव सब जगह विद्यमान रहते हैं। गुरु महाराज ने कोई तो बताया नहीं था– कौन अखाड़ा, कौन द्वारा, योगपट क्या, प्रेमपट क्या, देवता कौन, देवी कौन?- ये प्रपंच तो बताया नहीं था। और भ्रमण में जहाँ जाओ, जिस कुटिया में जाओ, वो यही पूछे– योगपट क्या? प्रेमपट क्या? अखाड़ा कौन? द्वारा कौन? क्या बतावें जब गुरु महाराज ने कुछ बताया ही नहीं। अब मैं जत्था में अवश्य शामिल हो जाऊँगा। कल से मैं भी बताया करूँगा– आदि शंकराचार्य का अखाड़ा, भूर्भूवः गोत्र, शृंगेरी मठ इत्यादि। निश्चय पक्का कर लिया, सुबह जरूर शरीक हो जाऊँगा।

महाराज बड़े सवेरे भजन में बैठे थे। उनका नियम था दो बजे उठके भजन में बैठ जायँ। भगवान उठा के बैठा दें। दो बजे के बाद सोने ही न दें। उठ, बैठ भजन में। और फिर भी सो जायँ तो सब करम हो जाय। साधक तो निमित्त मात्र है। उससे जो भजन पार लगता है, वह भगवान के द्वारा प्रदत्त होता है। इतने में अनुभव में आदेश मिला– तूँ कौन-से जत्था में शामिल होने जा रहा है? तुम्हारे गुरु ऐसा गुरु, तुम्हारे ऐसा चेला आज संसार में कोई है ही नहीं! तूँ कौन से संघ में, जत्था में शामिल होने जा रहा है! महाराज कहें– हमको इतनी खुशी हुई, उस मेले की भीड़ में हम उछल पड़ें, सोचा– मारो धूर्तों को, कहीं कुछ नहीं। सब जगह हिरण का चमड़ा बिछा के उस पर कुत्ते का मांस रखकर बेच रहे

हैं, और क्या! कहीं कुछ नहीं, भेड़िया धसान है। इतनी खुशी हुई कि कुम्भ मेला ही छोड़ के बाहर निकल गये, फिर मेला ही छोड़ दिया, आगे बढ़ गये। ये सर्टिफिकेट भगवान स्वयं देते हैं कि तुम साधु हो भी कि नहीं! तिलक लगाने से, माला पहनने से, कपड़ा रँगने से, रूपरेखा खड़ी करने से दुनिया को तो हम चकमा दे सकते हैं, भगवान को कदापि नहीं। महाराज कहें– भगवान तुम्हें साधु कहें तो तुम साधु हो। दुनिया कहे चाहे कभी न कहे। दुनिया फूल बरसावे और जय-जयकार करे, बेटा! रोने को आँसू नहीं मिलेगा, तू कुछ भी नहीं पाओगे। तुम्हारे लिए रौरव नरक निश्चित है। इसलिए साधक का बस एक ही कर्त्तव्य है– 'ज्ञान तखत संतोष बिछौना अपने पियवा रिझाय ले, अंधेरिया में का करिहो।'

३६. भण्डारे से बिना प्रसाद ग्रहण किये लौटना

दूसरी बार उज्जैन मेले में महाराज सड़क किनारे वृक्ष के नीचे बैठे थे, अकेले। पता नहीं कब से बैठे थे। अनायास दिखाई पड़ा कि सड़क से नाचती-गाती भीड़ चली जा रही है विरक्त त्यागियों की! गुरु महाराज पीछे लग गये। एक फर्लांग की दूरी पर चला करें कि आखिर कहीं न कहीं तो पहुँचेगी मेले-सेले में, इसी बहाने हमारा भी संत-समागम हो जायेगा, तीरथ भी हो जायेगा। पूछे न! वो भीड़-भाड़ में से कोई न कोई महात्मा छँट के पीछे आवे, महाराज का निरीक्षण करें, चले जावें। दो-चार दिन बाद आ के

कहें– अरे संतजी! हमारी मण्डली में रहिये आप, आपकी विधिवत् सेवा होगी। और फिर प्रेम हो जाय। पहुँच गये मेले में। एक नागा जी इतनी प्रेमी निकले कि बोले– संतजी! मैं जाँच करके आया हूँ, एक जगह लड्डू का भण्डारा है कल, आप भी चलिये। बोले– भाई, हमें लड्डू नहीं खाना। बोले– आप नहीं जाओगे तो मैं भी नहीं जाऊँगा। पीछे पड़ गये। तब फिर महाराज बोले– अच्छा, चलो फिर। गये तो एक तखत पर एक महात्मा बैठे हुए थे भगवा वस्त्र पहने। एक खाली तखत पर केवल कमण्डल रखा हुआ था, गंगा-जमुनी अर्थात् सोने-चाँदी से मढ़ा हुआ बड़ा सुन्दर लग रहा था गोल-मटोल। और हजारों महात्मा लोग। भोजन की पंगत बैठी हुई थी। परोसने वाले परोस रहे थे। चार के करीब भगत महाराज के पास हाथ जोड़कर खड़े थे। जहाँ पंगत देखा तो जो महाराज को ले गये थे नागाजी, उनकी स्पीड बढ़ गयी। अखाड़िया महात्मा ठहरे। सट-सट-सट गये और भीड़ में समा गये। भीड़ के साथ जहाँ बैठना था, बैठ गये। महाराज पीछे छूट गये। महाराज खड़े हो गये। देखने लगे कि ये कौन महात्मा हैं जो हजारों को खिला रहे हैं? मैं कौन महात्मा हूँ जो यहाँ खाने आया हूँ? लगता है अभी हम साधु भइबे नहीं किये! लौट पड़े। भोजन नहीं किया। चुपचाप लौट गये। और शिप्रा नदी के किनारे-किनारे बहुत दूर निकल आये। मेला छोड़के एकाध किलोमीटर बाहर और एक वृक्ष के नीचे बैठ गये नदी किनारे।

३७. उज्जैन मेले में नौ-दिवसीय भण्डारा

एक दिन बीता, दो बीता, तीन बीता। वो कुम्भ मेला, कुछ न कुछ भीड़ आया जाया करे। कोई नित्यक्रिया से निवृत्त होने, कोई हवा खाने। चौथे दिन बड़े सवेरे एक महात्मा आये और बोले– हाँ, बैठे रहो, लक्ष्मीजी मिलेंगी, बैठे रहो। महाराज सोचें– भगवान इसके हृदय में प्रेरणा करके हमसे विनोद कर रहे हैं, मजाक कर रहे हैं। इसीलिए तो बैठा हूँ कि वो कौन महात्मा हैं कि हजारों को खिला रहे हैं? मैं कौन महात्मा हूँ जो यहाँ खाये खातिर आया हूँ? यही तो संकल्प था! भगवानो मजाक करवा रहे हैं प्रेरणा करके। चुटकी ले रहे हैं। भगवान भी चिकोटी काट रहे हैं। इतने में एक माई आयी, ३२ साल करीब उमर, सफेद वस्त्र पहने, अति सुकुमार, गोर अंगार। महाराज जहाँ बैठे थे, थोड़ी दूर से निकली, महाराज के बराबर में आयी, लोटा हाथ में था, खड़ी हो गयी। और इशारा किया तो उसका नौकर भागता हुआ आया, गुन्न देना कुछ कह दिया। दौड़ के गया, बालभोग ले आया बढ़िया। महाराज के पास ला के रख दिया, हाथ जोड़ के बैठ गया। महाराज को भगवान से आदेश मिला कि भोजन करने लायक है, खाओ तुम। आदेश भगवान का! खाना ही था। महाराज ने बालभोग कर लिया। उस महिला ने फिर कुछ कह दिया, चार-छः और नौकर चले आये। वह बड़े घर की थी। फिर बाद में भण्डारा छिड़

गया, वह बोली– यहाँ भोजन बनाओ, महाराज को भी भोजन कराओ। जो भी आवे, उनको कराओ। तीन बजते-बजते महाराज ने भी भोजन कर लिया और नौ महात्मा और आकर बैठ गये। जहाँ भण्डारा होता है, वहाँ संतजनों का आगमन प्राय: हो ही जाता है।

वह जस के तस खड़ी है, लोटा हाथ में लेकर। अति सुकुमार। छ: से तीन बजे तक। तब महाराज ने पूछा– क्यूँ रे देवी, तू कौन है? कहाँ से आयी है? कहाँ जा रही थी? क्यूँ रुक गयी? और क्यूँ हमारे पीछे पड़ी है? जो महाराज को पूछना हो, एक स्वाँस में, एक बार में पूछ लिया करें। वह बोली– महाराज! मैं एक वकील साहब की औरत हूँ। बाम्बे से आयी हूँ कुम्भ मेले में। हमारा परिवार हमारे साथ में है। यहाँ कैम्प लगा है। महाराज, इधर जा रही थी नित्य क्रियाओं से निवृत्त होने, यहाँ जब बाजू से निकल रही थी तब आकाशवाणी हुई– इन महात्मा की सेवा करो। हमारी समझ में नहीं आ रहा कि मैं कौन सेवा करूँ? जो कुछ समझ में आ रहा है, वही मैं करती चली जा रही हूँ। अब आप बोल ही दिये हैं तो जो आदेश दें, वही सेवा करने को तैयार हूँ। तीन लाख रुपया मैं ले के आयी हूँ। वो हमने भेंट कर दिया। भण्डारा होता रहेगा। सात लाख के करीब और है मेरे पास! व्यवस्था भी आ जायेगी। और जैसा आदेश दें, भण्डारा होता रहेगा। भण्डारे का नाम जरूर ले। तुरन्त टेलीग्राफ कर दिया। उस समय टेलीग्राफ

चलता रहा, टक-टक करके। बाम्बे से दौड़ के पूरा परिवार और भी चला आया।

अब वहाँ भण्डारा छिड़ गया। जो कुम्भ मेला वहाँ लगा था, वैसा ही यहाँ महाराज के यहाँ लग गया। भण्डारा चलने लगा सन्तों का। नौ दिन तक लगातार चला। महाराज कहें– लो परमहंसजी, कर लो भण्डारा! न दिन चैन न रात चैन! और कर लो परमहंस जी! **'मान बड़ाई जब से आयी, तब से किस्मत फूटी। जब से अधम महन्ती पाई, लगन राम से छूटी।।'** और भण्डारा करिहो। भजन छूटता जा रहा है। तब महाराज ने कहा– बेटा, हमें कुछ नहीं चाहिए। उस क्षेत्र के लोग इकट्ठे हो गये, बोले– महाराज, जहाँ हुकुम हो, कुटिया बन जायेगी। हमलोग कोई बाधा नहीं पहुँचायेंगे। अब हम कभी नहीं छोड़ेंगे। ये पैसे आपके हिस्से के हैं! अलग से भी हैं बैंक में। जहाँ हुकुम हो, खर्च करें। अब ये भण्डारा तो चलेगा। महाराज बोले– हमें न भण्डारे की जरूरत है, न पैसे की जरूरत है। साधना की विधि बताया उनको, भजन की, और आशीर्वाद दिया– अब तुम लोग सुखी रहो, आशीर्वाद हमारा तुम्हारे साथ है। वे बोले– महाराज, आपको हम अब जनम भर नहीं छोड़ेंगे। आप गुरु महाराज हैं। महाराज बोले– भाई, तुम मत छोड़ना। न तुम छोड़ो, न हम छोड़ें। ये शरीर से मिलना, मिलना नहीं है। स्वरूप से पकड़ो। गुरु भगवान और माया सर्वत्र रहते हैं।

जहाँ भी सुमिरण करोगे, मैं मिला करूँगा। आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।

३८. यमुना किनारे विचरण

आधी रात को जब भीड़ थोड़ी निद्राग्रस्त हुई, तहाँ महाराज आहिस्ते से उठ के आगे बढ़ गये। महाराज कहें– हो! ये भण्डारा-वंडारा कुछ नहीं है। भजन भजन है। साधु को सदैव भजन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो कुछ है, विघ्न है। ई सधुआई का अंग नहीं है, जब तक प्राप्ति न हो जाय। प्राप्ति के बाद सब भगवान की महिमा के अन्तर्गत होता है।

उज्जैन से विचरण करते-करते महाराज ने पकड़ लिया जमुना का किनारा। यत्र-तत्र भ्रमण, यह कुटी, वह कुटी। भगत लोग भी जहाँ-तहाँ मिल जाय। एक पेड़ के नीचे बैठे थे। एक किसान ने कहा– अरे, दिन का बारह बजत है! का पेड़ के नीचे बैठे हो! चलो वो गाँव दिखाई देता है। चलो कुछ भिक्षा, भवन हो जाय। तो महाराज बोले– तू क्यूँ चिन्ता करत है? भगवान जेके डण्डा खटखटइहैं, ऊ खुद आके खवाई। वह बोला– अच्छा महाराज। कहकर चला गया। एक घण्टे में भोजन ले के वही चला आया और बोला– लेउ महाराज, प्रसाद पाय लेउ। महाराज ने कहा– तोही चला आवा! उसने कहा– हाँ महाराज, समझ लें, हमीं के डण्डा खटखटाये हैं भगवान। महाराज की भाषा भी

विलक्षण रहे। महाराज की भाषा सुन के भगत बहुत खुश हों। ऐसे ही **'कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रणामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।।'** (मानस, २/३११/५) इसी तरीके से चलते रहे।

३९. फकीर के साथ भोजन

आगरा के करीब पहुँचने पर एक कुटिया में एक महापुरुष बैठे मिले। वो भोजन देने लगे लेकिन उन्हीं के मुँह से निकल गया– महाराज, हम मुसलमान फकीर हैं, क्या हमारे हाथ का भोजन आप करेंगे? दे देता तो कोई बात ही नहीं थी! लेकिन लगा हिन्दू-मुसलमान की व्याख्या करने। आप तो परमहंस है महाराज! आपको तो कोई भेद नहीं है। बोले– हमें तो नहीं है, तुम्हें है कि नहीं? बोले– नहीं, हम मुसलमान हैं, हमें क्या भेद हो सकता है? बोले– अच्छा नहीं है तुम्हे भेद, तो कहो चार बार 'राम-राम-राम-राम'। तो वो न कहे। चुप एकदम। तब महाराज बोले– जब तुम्हें इतना भेद है तो भला तुम्हारी रोटी हम कैसे खा सकते हैं! तो कुछ देर बाद बोला– 'राम-राम-राम-राम'। इन मियाँ-मौलवी, पण्डित-पुजारियों ने बीच में इतना दरार डाल दिया समाज में कि वहम में, भ्रम में पड़ के हमलोग उलझ गये भगवन्! सब एक ही हैं। वही एक नाम का अन्तर है। भगवान तो एक ही हैं न। और फिर महाराज ने भी प्रसाद पाया, सत्संग हुआ, रहे दो-एक दिन, फिर आगे बढ़ गये। तो महाराज की निगाह में यह न रहे कि कौन

हिन्दू है, कौन मुसलमान? वो फकीर खुद बोला– महाराज, ये पण्डा-पुजारियों ने, मियाँ-मौलवियों ने एक दरार डाल रखी है भगवन्! भगवान तो अनिर्वचनीय है। वाणी से वचनबद्ध जिसे नहीं किया जा सकता है। तो नाम तो मनुष्यों के विविध ऐंगल से उनकी विभूतियों का चित्रण किया गया है। घट-घट में रमण करता है राम। ओ माने वह अविनाशी परमात्मा, अहम माने तुम स्वयं; जिसका निवास आपके हृदय-देश में है। सारी विभूतियाँ से युक्त है तो विभु। सबका भरण-पोषण करता है तो प्रभु। करोड़ नाम लो, पूरा नाम एक भी नहीं है। जब अनिर्वचनीय है तो निर्वचन कैसे कर दोगे! बहुत खुश हुए, फिर सत्संग हुआ, फिर आहिस्ते-आहिस्ते भजन की विधि पूरी पूछा। श्वाँस का जाप कैसे करें? सुमिरण कैसे करें? ध्यान कैसे धरें? फिर इस सत्संग के उपरान्त महाराज आगे बढ़ गये। पहुँच गये आगरा।

४०. यमुना तट पर माताओं द्वारा भजन

आगरा में जमुना किनारे बालू में बैठ गये। रात-दिन वहीं पर। महाराज का नियम सदैव एकान्त में। बाजू में कुटिया है तो कुटिया में न जायँ। उनको रात्रि विश्राम के लिए कोठरी नहीं चाहिए, गद्दा-तकिया नहीं चाहिए, एक से दो आदमी नहीं चाहिए। उनको एकान्त चाहिए। तो बालू में बस बैठे भजन कर रहे थे। सुबह ब्रह्मबेला में आगरा की गलियों से कुछ माई लोग निकली और

जमुना की ओर बढ़ने लगी भजन गाते हुए कि–

तैंने हीरो सो जनम गँवायो भजन बिनु बावरे।

कदे न आयो साधु शरण में, कदे न हरि गुन गायो।
पचि-पचि मर्‌यो बैल की नाईं, सोय रहे उठि खायो
भजन बिना बावरे।

यह संसार हाट बनिया की, यहाँ तू सौदे आयो।
चतुरा माल चौगुणा कीन्हा, मूरख मूल गँवायो
भजन बिना बावरे।

यह संसार फूल सेमर का, सुगना देखि लुभायो।
मारी चोंच उड़ि गयी रूई, सिर धुनि धुनि पछितायो
भजन बिना बावरे।

यह संसार माया का लोभी, ममता महल चिनायो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हाथ कछु न आयो
भजन बिना बावरे।

महाराज कहें– इतना मधुर लगा, फिर आगे वो पूरा गा ले गयी, हम बहुत कोशिश किये, हमें याद हो जाय लेकिन ये डेढ़ लाइन ही याद हो पायी। हम दिगम्बर बाबा, माई लोगों से पूछे तो कैसे पूछे? फिर हमरे मन की मन में ही रह गयी। बाकी सब शरीर जितने हैं दुनिया के, ई जड़ शरीर है। कुत्ता कुत्ता ही है, गाय गाय है, पशु है, जड़ पेड़–पौधे, जड़-चेतन-स्थावर किसी योनि में ये

सुविधा नहीं है कि आगे साधना करके नवीन निर्माण कर सके। देवयोनि भी अपनी करनी के अनुसार उत्तम भोग भोगती है। नवीन साधना करके अपना कल्याण नहीं कर सकती। '**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**'– पुण्य क्षीण हो जाने पर देवता भी मृत्युलोक में आकर गिरते हैं, नवीन साधना करके परम श्रेय प्राप्त नहीं कर सकते। सत्कर्मों के फलस्वरूप देवलोक में भोग अवश्य भोग लेते हैं लेकिन भगवत्-स्वरूप को प्राप्त नहीं हो सकते। उसके लिए देवता लोग भी इस मानव तन से आशावान हैं कि प्रभु, हमें भी यह दुर्लभ तन मिले। मनुष्य शरीर कर्मों का निर्माता है, भाग्य का रचयिता है– **'कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके'।** ये दुर्लभ तन है। ई हीरा तन है, रतन तन है। तो **'तैने हीरो सो जनम गँवायो भजन बिना बावरो।'** तूने हीरा जैसा तन मिला, खो दिया बगैर भजन के रे बावले। बावरे माने पगलण्ठ। तो ये हीरा तन की सफलता कैसे प्राप्त होगी? भूल क्या कर दिया हमने? कि **'कदे न आयो साधु शरण में, कदे न हरि गुन गायो।'** तू कभी साधु की शरण में नहीं आया। तुमने कभी हरि का गुणानुवाद नहीं किया, गुणगान नहीं गाया। किया क्या? **'पचि-पचि मर्‌यो बैल की नाईं, सोय रहो उठि खायो भजन बिना बावरो। तैने हीरो सो जनम गँवायो भजन बिना बावरो।'** *(जब महाराज महाप्रयाण को प्राप्त हुए तो हमने पता लगाया, जब जीवनी लिखने का समय आया तब जयपुर में ये भजन मिला। एक बुढ़िया माई गा रही थी।)*

४१. आगरा गल्ला-मण्डी

महाराज शाम के समय में सड़क पकड़ के घूमने जाय.... टहलने.... कुछ ही दूर गये थे तो गल्ला मण्डी दिखाई पड़ गयी थी। शाम को गल्ला मण्डी बन्द हो जाती है। गायें चर रही थीं, कौवे उछलकूद कर रहे थे, चिड़िया इधर-उधर उछल रही थी। कुछ न कुछ गल्ला मण्डी में दाना गिर जाता है न, वही खा रहे थे सब। चने पड़े थे वहाँ। जमीन पर पड़ा हुआ अन्न उठाकर खाना शीलोंछवृत्ति कहलाती है। संत को कोई पड़े-वड़े चने, फसल हो तो उसे खाने में कोई दोष नहीं। महाराज चना उठा-उठा के पसर में भरने लगे, दो-दो, चार-चार दाना मुँह में उठा के खाते गये। खाते गये, भरते गये। जब पसर भर गयी तब उठ के चल दिये और चले आये जमुना किनारे। जमुना किनारे आते-आते हाथ हो गया खाली। चार चुल्लु पानी पी लिया और फिर भजन में बैठ गये।

चार दिन भोजन का यही क्रम चला। सेठ लोगों को सन्देह हुआ कि पगलों को टाइम टेबुल का ज्ञान नहीं होता। ये पागल नहीं हो सकते। ठीक छः बजे कैसे आ जाते हैं? पगलों को तो घड़ी का ज्ञान होता ही नहीं। तो वो अपना दुकान बन्द कर चुका था, फिर खोला। और चने के बोरे में से चना निकाला एक मुट्ठी, और महाराज के सामने ऐसे छितरा दिया। तो महाराज मुस्कुराये, ताके उसकी ओर, और छोड़ के दूसरी तरफ चले गये जहाँ

स्वाभाविक पड़े हुए थे। तो इसने इशारा किया उस बनिया को। वह भी दरवाजा बन्द कर चुका था, खोला, निकाल के चना उसने भी छींट दिया। तो महाराज तीसरे तरफ बढ़ गये। वो भी खोल कर छिटने का उपक्रम कर रहा था, मण्डी छोड़ दिया, चले गये। उस दिन चना ही नहीं बीना। फिर महाराज जमुना किनारे जा के वैसे ही बैठ गये। अब बनिया लोग ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पहुँच गये वहाँ पर, जहाँ महाराज थे। जमुना किनारे दौड़ लगाये, पा गये। किसी ने केला, किसी ने मिठाई लाकर रख दिया, बोले– भगवन्! इतने छिप कर रहेंगे महापुरुष तो हमलोग कैसे पहचान पायेंगे? हमलोगों के पूर्वजों का बनाया हुआ ये मन्दिर है जमुना किनारे। ये पचासों-सैकड़ों साल से उजड़ा पड़ा है। कोई पुजारी भी नहीं है। शान्ति है, एकान्त है। कृपया इसी में रहा करें तो समय पर आ के थोड़ी सी तुच्छ सेवा करने का अवसर मिल जाई हमलोगों को। बड़ी श्रद्धा से ले गये, बैठा दिया।

शाम को सेठ लोग आया करें, कुछ न कुछ बाजार से, कोई मीठा, कोई केला, कोई सेब, कोई आगरा का पेठा ले के आवे, रख दे, दर्शन करे और घरे चले जाय। दिन के १२ बजे सेठानियाँ आने लगीं, परच गयीं। विधिवत् पता नहीं क्या-क्या भोजन बना के लावें, फैलाय दे। पहले दो-चार-छः आयीं, फिर दस आयीं, फिर पन्द्रह-बीस तक पहुँच गयी। एक घण्टा जवन खुराफात करें,

महाराज कहें– हो! चें–चों-चें-चों..... फिर ढीठ हो गयीं, बोले– महाराज! हम औरतों के बीच में आप नग्न बैठे हैं, आपको लाज नहीं लगती। ये लेव धोती पहन लें। उन्हीं के तो घर की दुकानें थी। उस समय सच्चा हीरा मरसराइज कौन-कौन धोती चलती रही और बड़े लोग उसी को पहनते रहे। वो मरसराइज, सच्चा हीरा धोती ला के दे-दे, महाराज पहन लो। कौनो-कौनो बुढ़िया उठें, पहना दें और चली जाय। महाराज पहने-पहने आवें, जमुना किनारे किसी को देखे- साधु को, भिखमंगा को- उसको दे दें। तीन-चार धोती बदल गयी, दे दिया, बाँट दिया तब बोले– भइया, जैसे रहे, उन्हें रहने दो। इन्हें न लाज है, न शरम है। ये न पहनिहैं। चार धोती बदल गयी तो फिर लाना बन्द कर दिया। और शहर के भगत चेत गये।

४२. कुपात्र को दान

राधेलाल दलाल कई करोड़ रुपया हार चुका था जुए में। पक्का सटोरिया था वो। लेकिन जुआरियों का, सटोरियों का दिल बड़ा तगड़ा होता है। फिर छनन्त-फूँकन्त वैसे ही आवे, काफी कुछ मिठाई-सिठाई रख दे और कहा– महाराज, ८० हजार कर्जा हो गया। कह के चुपचाप चला जाय। एक दिन जमुना किनारे से महाराज आ रहे थे, रास्ते में पाँच का नोट पड़ा था, भगवान ने आदेश दिया– इसको उठा लो। महाराज बोले– प्रभु, हम क्या करेंगे पैसा? ये पाँच का कगजवा हम का करब? तो आहिस्ते से

पता नहीं कैसे, किसी लकड़ी से उठाकर वो रख दिया। भगवान बोले– राधेलाल को दे दो। महाराज ने राधेलाल से कहा– ले ले, पइसवा ले ले। वह बोला– गुरु महाराज, हम क्या करेंगे ई पाँच का नोट! वो लखपति आदमी, ओके पाँच का नोट कुछ होता ही नहीं। महाराज बोले– भगवान ने कहा है ले लो। लेकिन उसने नहीं लिया। झाड़ू लगा के वहीं ताखे में रख दिया। राधेलाल का अदना सा लड़का आया, छोटा सा, महाराज बोले– देख रे, झाड़ू लगा, वहाँ सफाई कर ताखे में। वह बोला– महाराजजी! पाँच का नोट मिलो। महाराज बोले– ओह, तू पा गया। ले ले। मूँगफली-सूँगफली कुछ खा ले। ले के गया, कुछ खा गया। राधेलाल पा गया। लड़का खा गया तो पा गया। तब महाराज को अनुभव में आया कि इसका कर्जा तो खतम हो गया। महाराज ने कहा– देख, अब हम जा रहे हैं यहाँ से, तुम्हें पैसा मिलेगा। तुम उसका सत्पुरुषों को दान करना तो टिकेगा तुम्हारे पास, नहीं तो नहीं टिकेगा।

वह जुआरी तो था ही, जुआ खेला, पैसा लगा बढ़ने तो जो पाया तो वो भी खेल दिया। एक दस दिन में अस्सी हजार रुपया पा गया। पुराना कर्जा अस्सी चुक गया, फिर भी अस्सी बच गया.... कर्जा भी खतम। अब लगा दान करने। जितने आगरा के झाड़ू लगाने वाले भंगी (डुमार) थे, उनको बुला के लगा शराब पिलाने। खुली दावत। अब वो मुर्गा, अण्डा, शराब, सुअर काटने

लगे, खाने लगे – जय हो राधेलाल की। गुरु महाराज जब अनुसुइया में स्थायी हो गये तब भटकता हुआ राधेलाल अनायास वहाँ पहुँच गया। उसे नहीं मालूम था कि महाराज यहाँ विराजमान हैं। निगाह पड़ी तो प्रणाम किया, वह बोला– महाराज, आपने कहा था, तुम्हें मिलेगा, मिला भी। हमने खूब दान-पुण्य किया फिर भी समाप्त.... खतम हो गया, फिर मैं कंगाल हो गया। महाराज बोले– दान-पुण्य किसको किया? राधे बोला– डुमारन के... और शराब पीते रहें। महाराज बोले– हमने कहा था सत्पुरुषों को, पात्रों को दान करना! तुमको मालूम है कुपात्र को दान करने से दाता नष्ट हो जाता है। हमने दवाब दे के कहा था, सत्पात्रों को दान देना। दान अधिकारी को दिया जाता है। अब इसीलिए नष्ट हो गये। जा, कमा खा। प्रणाम किया और चला गया। आगे जब तक जिया, बराबर समाचार भेजता रहा श्रद्धा-भक्ति से, फिर जीने लगा। दान सुपात्र को। महाराज कहा करते थे– हो! सब दानी ही तो बने हैं। ५० टका देते हैं तो बदले में हाथी माँगत हैं। असली दाता मैं हूँ जो मोक्ष देता हूँ।

४३. कंचन-कामिनी से निवृत्ति

एक दिन एक बुआजी रही। मोहल्ला भर, आगरा के जितना सेठ परिवार रहा, सब बुआजी कहा करें। दस वर्ष की उम्र में विधवा हो गयी थी, वहीं रहा करे। दस नवीन लड़कियाँ पीछे घूमा

करें बुआजी के। बुआजी भी दर्शन करने आवें भीड़ में और चली जायँ। एक दिन अकेली बुआजी आयी, गठरी लाकर रख दिया। छः हजार चाँदी का रुपया, एक गठरी में जेवर.... उतना ही बड़ा ढेर। ढेरियाँ रखकर बोलीं– महाराज, इतना धन है मेरे पास। कहीं बैंक में जमा कर देंगे। मैं रोटी बना दिया करूँगी और आप भजन करना। कहीं कुटिया बना लेंगे। हमारे आगे-पीछे कोई नहीं है। मैं सन्त की तलाश में थी। कोई मिला ही नहीं। आप महापुरुष मिल गये महाराज, हम भी चलें। महाराज सोचने लगे– हो! गंगा-जमुना किनारे नंगे पाँव घूमते-घूमते बिवाई फट गयी पाँव में। बिवाई फटने का मतलब उसमें से खून चकचकाता है पाँव के तलवों में। जो खून जहाँ चकचकाया तो उसमें जो बालू के कण पड़ते हैं तो गोली की तरह लगता है। चलने में कष्ट होता है। **'जाके पाँव न फटी बिवाई। सो का जाने पीर पराई।।'** ठीक ही तो कह रही है। दो रोटी बना देगी और कहीं बैठ के भजन करिहौं। मन में थोड़ा-सा कुतर्क आया। महाराज ने कहा कुछ नहीं। फिर भी माई लोगों को बड़ी बुद्धि होती है। इस भाव-भंगिमा को पढ़ ले गयी। चली गयी।

उसी दिन सत्संगी महाराज (गुरु महाराज के गुरु महाराज) जहाँ रात को दो बजे उठ के महाराज भजन में बैठे, तहाँ पहुँचे दो पण्डित लेकर। पीले वस्त्र पहने पण्डित, तिलक लगाये, जनेऊ

पहने पीली, मंत्रोच्चारण करते हुए चले आ रहे हैं और सत्संगी महाराज डण्डा खटखटाते हुए चले आ रहे हैं– धत् तोरी ढोंगी का, काहे बगुला ध्यान लगा के बैठा है रे। आँख मूँदले से काम चली। उठ यहाँ से। पकड़ रे एके, नहलाओ इसको। अब तो पण्डित लोग फिर नहलावे, गंगाजल डालें और दुका-दुका मंत्र पढ़ें। फिर पानी डालें, फिर मंत्र पढ़ें। फिर पानी डालें। और फिर बाद में सत्संगी महाराज बोले– उठ, भाग, इसी वक्त भाग। मेहरिया ले के भागा जात रहा रे। तुम्हारा कल्याण इसी में है इसी वक्त भाग जाओ। बस महाराज को चेत हुआ। ये जो दृश्य आया - अनुभव - पन्द्रह मिनट का था। यह स्वप्न नहीं होता। यह ध्रुव अकाट्य होता है, सच होता है। जहाँ मिला, महाराज उठे तुरन्त। डर गये। तुरन्त उठे और चल दिये। उसी वक्त चल दिये। चले जा रहे थे, दो-तीन लड़कों की निगाह पड़ गयी– अरे संतजी जा रहे हैं। वो भी पीछे लग गये। उतने दिन महाराज के रहनी को देख के बहुत से लड़कों में वैराग्य जग गया था। तीन लड़कों की निगाह पड़ गयी। वो पीछे लग गये। हरिद्वार गये, हर की पैड़ी पर उनको बहुत समझाया, अब लौट जाओ। वे बोले– महाराज, अब हम भी भजन करेंगे। भले घर के थे। उनको हर की पैड़ी पर सोये हुए छोड़ के महाराज आगे बढ़ गये। वे लोग महाराज को ढूँढ़-ढाँढ़ के चले आये। घर आना ही था, और कहाँ जाते? महाराज मिले ही नहीं।

४४. हरिद्वार के लिए प्रस्थान

महाराज चढ़ गये ऋषिकेश के पहाड़ पर। बद्रीनाथ के पथ पर पाँच महात्मा दम लगाने की तैयारी कर रहे थे, साथ में बोलते जाते थे– गाँजा नहीं हवा है, भजन करने की दवा है। बड़ी वाली चिलम, गाँजा गठ रहे थे। उसी में संखिया डाल लेते। महात्मा लोगों की चिलम बड़ी कीमती होती है। पता नहीं क्या-क्या डालते हैं! संखिया भी एक होता है बड़ा जहरीला पदार्थ, बहुत नशा! उसकी मात्रा कम-ज्यादा हो जाय तो नशा बैकुण्ठ में उतरी, रास्ते में कहीं नहीं। तो उसको डाल दिया, दम गठ रहे थे। महाराज पहुँचे तो बोले– आइए, संतजी, बैठिए, आप भी दम लगाइए। तो वो सब तो तमाम गुदरी-सुथरी, गंजी, कोट पहने हुए थे, महाराज एकदम दिगम्बर। महाराजजी सोचे, बड़ी तीर की तरह हवा चल रही है। थोड़ी दो फूँक खींच लेंगे तो गरमी बढ़ जायेगी तो ठण्डी थोड़ी रुक जायेगी। बैठ गये। जहाँ चिलम तैयार हुआ तो महात्मा लोग खुद नहीं पीते। पहले दूसरे को देंगे– लीजिए संतजी, चेताइए। तो एक बहुत लालायित था चिलम के लिए। लपक के हाथ आगे बढ़ाया, ले लिया और पकड़ के सुर्र-सुर्र-सुर्र तीन-चार बार खींचा, फिर स...स... करके खींचा, चिलम इधर, बाबाजी उधर। मर गये। फिर स्वाँस लौट के आयी ही नहीं। और जो चार बाबा जो बचे थे, वो भर्र देना उठ के भागे। इतने अंचित्ते में भागे कि महाराज

कहें– मैहूँ उठ के भागेउँ। पन्द्रह कदम तक मैं भागा, फिर हम खड़े हो गये– ये क्यों भाग रहे हैं? मैं क्यों भाग रहा हूँ? बात क्या है? देखा, वह मर गया है इसलिए भाग रहे हैं डर की वजह से।

तब महाराज ने डाँटा– करे, साधु हो कि भाँड़ हो। मर गया तो क्या हो गया! हम पीते हम मर जाते। तुम पीते तुम मर जाते। ये कोई अपराध है। ये तो जरा सी नशे में संखिया ज्यादा हो गया और क्या हो गया! भागना मत नहीं तो अभी पुलिस-थाना पास में है, रिपोर्ट करके सबको पकड़वा दूँगा। चलो आओ इधर। तब सब लौट आये। गाँव पास ही में था। बुलाये गाँव वालों को। पंचायत-पत्र पे दस्तखत कराया, लिखा-पढ़ी करके उनकी अंत्येष्टि करवाया, फिर वो चारो महात्मा से कहें– दण्डवत् महाराज, अब चलो अपने रास्ते। और इधर एक रास्ता दिखाई पड़ रहा था, महाराज जी उस तरफ चल दिये। जिधर मुँह, उधर चल दिये। सारी भूमि गोपाल की। निराधार विचरण का यही तरीका गुरु महाराज का था। सब महात्मा सादर विदा हो गये। गाँववाले बोले– संतजी का हम लोग करेंगे भण्डारा। महाराज ने सोचा– भण्डारे से हमारा क्या प्रयोजन? और उसी पथ पर आगे बढ़ गये।

४५. हिमालय की तलहटी में

महाराज ने उनका साथ छोड़ दिया। एक सड़क दिखाई पड़ी साफ-सुथरी। उसी को पकड़ लिया। महाराज ने सोचा कि सड़क है

तो कहीं गांव-गिराँव भी होगा। चल दिए अंजाने पथ पर। आगे और भी जंगल घना होता चला गया क्योंकि वो फारेस्ट रोड थी, वन विभाग की बनवायी सड़क थी। कहीं गांव-गिरांव था ही नहीं। बढ़ते चले गये, शाम हो गयी। एक घना पेड़ रोड किनारे, उसके नीचे बैठ गये। बगल में हाथियों की लीद भी पड़ी थी। हाथियों का झुण्ड घूमा ही करता था वहाँ। जब बैठ गये, तब भगवान ने रात में अनुभव में आदेश दिया, तुम कहते थे– चलते-चलते थक गये (ऊ बुआजी के समय में यही तो सोचे थे कि चलते-चलते थक गये, कहीं बैठ जाय) कहीं बैठ के भजन करते, कुटिया हो जाती - ये संकल्प आया था न। तुम कहते थे, कहीं रुक जाते तो ठीक रहता। रुको फिर। यहीं रुको। यहाँ तुम्हे प्राप्ति हो जायेगी, भगवत्स्वरूप में स्थिति मिलेगी। यहाँ तुम्हें ये सिद्धियाँ मिलेंगी, यहाँ पत्ते-पत्ते पर लट्टू लग जायेंगे। यहाँ तुम्हारे द्वारा लोगों का बहुत कल्याण होगा। यहाँ तुम्हें सधुआई की जो स्थितियाँ हैं सब उपलब्ध होंगी। रहो यहीं पर। रहना चाहते थे न एकान्त, निजी कुटिया में रहना चाहते थे, रहो फिर यहाँ पर।

एक दिन बीत गया। दो दिन बीत गया। तीन दिन बीत गया। न पानी पीने का, न खाना खाने का। न महाराज को प्यास लगे, न भूख लगे। ये तो लगे ही न। चौथे दिन भगवान ने कहा– देखो, ठीक वैसा ही होगा, जैसा कहा जा रहा है। लेकिन अभी एक

सिपाही दूध लेकर आयेगा, दूध पीना भर मत। सब ठीक, यथावत होगा केवल एक बात से सावधान रहना, सिपाही का दूध मत पीना। इतना भर ध्यान रखना पक्का। महाराज ने सुन लिया। फिर करीब-करीब भूल गये, चित्त से उतर गया।

४६. सिपाही द्वारा दूध लाना

बड़े सवेरे सिपाही दूध लेकर पहुँचा, सादर प्रणाम किया, वह बोला– भगवन्! दूध ग्रहण कर लें। आधा किलो दूध एक कटोरे में। तब महाराज को याद आया कि भगवान ने कहा था कि सिपाही दूध लेकर आयेगा, वो पीछे पड़ेगा–'पी लो', तुम पीना भर मत, तो सब यथावत् वैसे ही होगा। यहाँ कुटिया मिलेगी, स्वरूप मिलेगी, स्थिति मिलेगी, सिद्धियाँ मिलेगी, लोगों का बहुत कल्याण होगा। पत्ते-पत्ते में लाइट लग जायेगी। इससे कैसे कहें कि भगवान ने मना किया। कोई कैसे विश्वास करेगा कि भगवान भी बोलते हैं और मना करते हैं। महाराज बोले– देखो, दो-चार महीना बाद तुम कुछ भी लाओगे, हम ले लेंगे। अभी हम न भूखे हैं, न प्यासे हैं। हमारा यही नियम है, यही व्रत है जो हम कर रहे हैं। हमारी चिन्ता छोड़ो। तुम चले जाओ अपना दूध-वूध लेकर। उठो यहाँ से, भाग जाओ। हम बिल्कुल ठीक हैं। न भूखे हैं, न प्यासे हैं। हमारा यही व्रत है। यही नियम है भजन का। वह बोला– भगवन्! हम इतने पातकी! मैं इसी जंगल का सिपाही हूँ। जब

आप जंगल में प्रवेश किये, तब से आप पर दृष्टि गड़ाये हुए हूँ। आप यहाँ आ के बैठ गये। रोज दूर-नजदीक से देख लिया करता हूँ। चार दिन से आप कहीं गये ही नहीं, न प्रसाद पाया, न कहीं पानी पिया। हमलोग इतने अभागे हैं? महाराज! छोटी सी भेंट भी नहीं स्वीकार करेंगे तो हम अभागों का कल्याण कैसे होगा? वो अटर-पटर कुछ न कुछ बोलता ही चला गया एक घण्टा। तो उससे जीव छुड़ाने के लिए; महाराज कहें– पीने का मन भी नहीं था; जीव छुड़ाने के लिए झुँझलाहट में वो कटोरा उठाया और पी गये। महाराज बोले– भाग यहाँ से! न चुप रहत है, न चला ही जात है। बड़बड़ लगाये है। खोपड़ी खा गया एक घण्टे से। गँवार कहीं का! समझे न बूझे। वह सादर प्रणाम किया, चल दिया।

अभी वह बहुत दूर नहीं गया था, भगवान ने महाराज को डाँटते हुए कहा– कहा था न, दूध मत पीना, पी लिया। भागो यहाँ से! यहाँ कुछ भी नहीं होगा अब। मना किया मत पीना, पी लिया। तुम्हारे अन्दर अभी क्षमता नहीं है रहने की। इसलिए अब यहाँ तुम्हें न कुछ मिलेगा, न स्वरूप मिलेगा, न सिद्धि मिलेगी। भाग यहाँ से। महाराज कहें– हो, पेट भर खयहु के नहीं मिला, दो पउवा दूध के पीछे सिद्धियाँ गयी, प्राप्ति गयी, सब कुछ गया। तो **रेख लाँघ सीय बाहर जाई। बिधि बस करम काल कठिनाई।।** लक्ष्मण ने कहा– माताजी! रेखा पार मत करना। थोड़ी सी जहाँ

रेखा पार किया तो रोने को आँसू न मिला। लंका में पड़ी रोते रह गयी। तो भगवान जो सीमा–रेखा निश्चित कर दे, साधक को उसका अक्षरश: पालन करना है, वो समझ में आवे चाहे न आवे। वास्तव में भगवान के आदेश का पालन ही भजन है। भगवान कल क्या बीतेगी?–उसको जानते हैं, तूँ आज की देख रहे हो। भगवान कह दें– ये आम का पेड़ है तो तुम्हें आम ही मिलेगा, भले ही वो पीपल का क्यों न हो। भगवान कल की देख रहे हैं, तुम आज की देख रहे हो। महाराज कहें– हे भगवान! पेटभर खयहु के नहीं मिला चार दिन बाद, और भगवान डण्डा मार के मोके भगाय दिये। बेटा, आज्ञा-पालन ही भजन है। और कोई भजन नहीं। सारी साधना वही है। साधना में जो प्रगति है, वो आज्ञा-पालन है।

४७. संत वंशीदास के आश्रम में

देहरादून से ऋषिकेश, फिर वहाँ से चलते हुए महाराज चले आये अयोध्या। सरयू नदी के उत्तर इस पार एक लकड़मण्डी स्टेशन है छोटा सा। वहाँ पर एक वंशीदास महाराज वैष्णव संत बहुत अच्छे थे, निवास करें। वो भी त्यागी, महाराज दिगम्बर; तो त्यागियों के यहाँ महाराज की पटरी बैठ जाया करे। जायें तो वहाँ अवश्य रुकें। गोचर भूमि थी वहाँ पर। भारत आजाद नहीं हुआ था, पहले की बात है। तो जमींदारी पीरियड था। जमींदारों की तरफ से गोचर भूमि छूटी हुई थी। उसी में वंशीदास महाराज की

कुटिया थी। गोचर भूमि में से ८० बीघा करीब वंशीदास महाराज जी ने भी जोत-बो दिया। अब गाँवभर परेशान। कोई आवे गोरु-वोरु तो मारपीट कर भगा दिया करें। और जब महाराज जायँ तो चिलम पियें और महाराज से बोले– देखो परमहंसजी, ये जो धान यहाँ से वहाँ तक बोया है न, ये सब हमरै है रामजी की इच्छा से। इधर जो ये सब गेहूँ बोया है रामजी की इच्छा से, हमरै है। फिर चिलम लगाकर बोलें– ई कलमी आम का बगीचा लग गया रामजी की इच्छा से, हमरै है। **'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा।।'** (मानस, ७/८९/५) फिर बोलें– इधर जो ये बना है, ये भी रामजी की इच्छा से, हमरे है। **'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।'** बहुत खुश रहें। महाराज ने सुन लिया, कुछ देर वहाँ रहे, और फिर बाद में वहाँ से विदा लिए!

४८. मधवापुर में चातुर्मास

महाराजजी आगे निकलना चाहे तो भगवान से पूछा– प्रभु, चतुर्मासा का समय आ गया है। पानी बरसने, बूँदी पड़ना शुरू हो गया है, कहाँ चतुर्मासा करूँ? भगवान ने आदेश दिया अनुभव में– सड़क जा रही है जंगल में से। सड़क के इस पार माई का घर, इस पार पिताजी का घर और थोड़ा आगे बेल का पेड़, इसी के नीचे बैठ के चतुर्मासा करो। जहाँ महाराज ने अनुभव समझा तो सोचने लगे– भगवान भी पता नहीं क्या-क्या बताया करते हैं।

माई-बाबू के मरे पता नहीं कितने साल हो गये, कहते हैं 'इधर माई का घर, इधर बाप का घर, पास में बेल का पेड़', वहाँ जाकर चतुर्मासा करो। झुँझलाहट में उठे, सड़क पकड़ा, जिधर मुँह था चल दिया। महाराज चले न। कहीं जाना हो तब तो। बस चलित ध्यान में। आधी आँख बन्द, आँधी खुली और ॐ...ॐ... ॐ...ॐ...ॐ... जपते हुए आगे बढ़े चले गये। लौ लग गयी, ध्यान जम गया। पता नहीं उस सड़क से कौन-कौन गया और कौन–कौन आया, कुछ पता नहीं। पटरी के किनारे-किनारे–किनारे-किनारे-किनारे दिखाई देना बन्द हो गया। तब आँख खोल के देखा तो सन्ध्या हो गयी थी। देखा इधर एक देवी का मन्दिर बायें हाथ। और दूसरी तरफ देखा तो एक शंकरजी का मंदिर। वो भी उजड़ा हुआ, ये भी उजड़ा हुआ के करीब। देवी के मन्दिर में तो कुछ दिया–सिया फूटे पड़े थे उल्टा-सीधा, माईलोग देवी पूजक होती हैं न... वहाँ तो कुछ अबीर-सबीर छिड़का रहे, शंकरजी में सफाचट। फिर याद आया– भगवान कहे रहें– इधर माई का घर, उधर बाप का घर, कहीं यही तो माई-बाबू नहीं? तब सगुन मिला– हाँ, यही जगह है। महाराज ने सोचा– तब तो यहाँ बेल का पेड़ भी होना चाहिए। दृष्टि दौड़ाई तो ठीक जितना अनुभव में दिखाई पड़ा था, उतनी ही दूरी पर बेल का पेड़ दिखाई पड़ा। उसको छू के देखा। भगवान ने कहा– बैठ जाओ। महाराज बैठ गये।

सात दिन तक न कुछ खाये का, न पीये का। भगवान ने कहा– यहीं बैठ के चतुर्मासा करो, बैठ गये। भिक्षा तो महाराज करते नहीं थे। इसलिए कि भगवान ने तो कान पकड़ के साधु बनाया, हम तो बने नहीं थे तो जिसने साधु बनाया वो व्यवस्था करे, मैं क्यों चिन्ता करूँ? बैठ गये।

देवी को पूड़ी चढ़ाने, लप्सी चढ़ाने लोग आवें। पहले तो माई लोग आती थीं, चढ़ा के चली जाती थीं। जिस दिन से महाराज बेल के पेड़ के नीचे बैठ गये, उस दिन से माई लोगों की रक्षा में, पहरे में दो-चार आदमी लाठी ले के आवा करें कि वो जो पगला बैठा है, कहीं उपद्रव न करे। भय समा गया। फिर पूड़ी-सूड़ी चढ़ावें और चली जायँ। फिर एक-दो पूड़ी माईलोग महाराज के आगे रख दें। कभी कुक्कुर खा जायें कभी एकाध पूड़ी सगुन मिले तो महाराज चबाय के पानी पी लें। ऐसे ही एक-दो घटना घटी। सात दिन में एक या दो बार। और फिर बाद में सातवें दिन एक माई आयी, सतुआ बनाया, बोली– पागल हो या महात्मा हो! कोई भी हो, आत्मा तो हो। लेव, सतुआ ले लो। तो महाराज बोलबै नहीं किये, बैठे रह गये तो बुढ़िया बोली– भइया, चाहे महात्मा हो चाहे पागल हो, आत्मा तो हो। लेव, खा लो। काहे अनशन किये पड़े हो। उसने सत्तू का एक लोंदी बनाके दे दिया। ये सातवें दिन की बात!

४९. बालकों द्वारा उपद्रव

झाड़ियों के पार उधर मधवापुर गाँव था। लड़के स्कूल जायें तो उनकी निगाह पड़ गयी। एक ने कहा– पगला बैठा है, मारो। तो गिट्टी उठा-उठा के रोड किनारे की मारा करे। कोई गिट्टी इधर पड़े, कोई उधर पड़े, वो चले जायें। आहिस्ते-आहिस्ते लड़के हो गये ढीठ। एक लड़का एकदम पास आके पीठ में मारा तो गिट्टी लगी छपाक पीठ में। महाराज सोचे– यार, अब तो लड़के ढीठ होते चले जा रहे हैं। खड़े होकर बिगड़े– धत् तेरी लड़कन-पड़कन की सार! बस लड़का एक में दो-दो, चार-चार उलझ के गिर पड़े सड़क पर। सड़क किनारे गर्दा होता है न बैलगाड़ियों के चलने से। उस समय कारें कहाँ थीं? कार केवल एक थी मनिकापुर नरेश के पास। और कहीं नहीं। वो गिर पड़े। बैलगाड़ियों का जखीरा चलता था। तो फिर वो गड़-गड़ देना गिर पड़े। भाग के गये घर, माई की गोद में छिप गये और बोले– पगला मारा! पगला मारा! पगला मारा! लोग बोले– सब लड़का गिनो रे, सब आ गये कि कुछ मार डाला। गिना तो लड़के सही थे सब। फिर लाठी लेके वे बोले– दौड़ो रे, इधर से घेरो, इधर से घेरो, चारों तरफ से घेरो। जब काण्ड किया तो भागता होगा। चारों तरफ से घेराव डाला। महाराज तो बैठे थे। फिर घेरकर सब आये। लाठी महाराज के सिर तक ले जायँ, बोले– मार, मार रे, तब बोली। फिर उन्होंने कहा– कहीं

संत न हो यार! संत की पहचान तो रामपदारथ सिंह कर सकते हैं। वे बहुत संतों की सेवा किये हैं, उनको बुलाओ।

फिर उनको बुलाया गया। आते ही साष्टांग दण्डवत् किया और एक दोहा बोलते हुए– **''एक बार हरि घोड़ा भये, ब्रह्मा भये लगाम। चाँद सूरज रविका भये, चढ़ गये चतुर सुजान।।''** ऐसा कहते हुए दण्डवत् किया, महाराज ने हाथ उठाया, आशीर्वाद दिया। वे बोले– भगवन्! इस दोहवा का अर्थवा बताय देत्यौ। महाराज बोले– मन ही घोड़ा है। ये वायु से तेज चलने वाला है। **'तुलसीदास (मन) बस होहिं तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजे।'** (विनय० ८९) मन को मनुष्य अपने से वश में नहीं कर सकता। **'छूटइ मल कि मलहिं के धोएँ'** (मानस, ७/४८/५)– मल में लथपथ चद्दर मल से कभी नहीं धुलता। मल गाढ़ा होता चला जाता है। मनुष्य के पास है क्या? मन है, बुद्धि है, इन्द्रियाँ हैं। ये तभी वश में होती हैं जब भगवान खुद प्रेरणा करके खड़ें हो जायँ, मन की लगाम पकड़ के खुद ले चलें। उनके निर्देशन में, संरक्षण में चलते हुए मन सिमटते-सिमटते एक दिन स्थिर हो जाता है, वश में हो जाता है। मन ही घोड़ा है- **'हरि घोड़ा भए'**। **'ब्रह्मा भये लगाम'**- बुद्धि ही लगाम है। बुद्धि की लगाम भगवान जब अपने हाथ में ले लें। **'चाँद सूरज रविका भए'**– इंगला और पिंगला.... ये दाहिने स्वर का नाम सूर्य नाड़ी, बायें का चन्द्र

नाड़ी। यही रकाब है जिस पर पैर रखकर लोग घोड़े पर सवार होते हैं। **'चढ़ गये चतुर सुजान'**– जो चतुर है, वास्तविकता के ज्ञाता, वे चढ़ जाते हैं। साँस आयी तो 'रा' गयी तो 'म'। 'रा'...'म' के बीच में कबिरा रहा लुकाय। इस प्रकार चिन्तन करते हुए भगवान के निर्देशन में जब मन चलने लगता है एक दिन अचल, स्थिर ठहर जाता है। **'चढ़ गये चतुर सुजान'**– चतुर सुजान इस मन पर असवार हो जाते हैं। अब बिगड़ा बुढ़वा– नालायकों, सात दिन से भूखे-प्यासे महात्मा पड़े हैं, गाँव का सर्वनाश हो जायेगा। जल्दी जाओ, दूध लाओ हमारे यहाँ से दौड़ के। फिर दूध आया, फिर दही आया गाँवभर सेवा में लग गये। चतुर्मासा शुरू हो गया।

पहले तो परीक्षायें ले चुके, जब महाराज पर विश्वास हो गया तब सब गाँवभर मिलकर बोले– कल संतजी के लिए कुटिया बननी चाहिए। कल काम नहीं करेंगे हमलोग, महाराज! देखो न, पानी बरस रहा है, और संतजी देखो कई दिन से खुली वर्षा में भींग रहे हैं पेड़ के नीचे। कल हमलोग कुटिया बनायेंगे। कोई काम नहीं करेंगे। शाम को तो निर्णय ले के चले गये और सुबह कोई नहीं आया कुटिया बनाने। महाराज प्रतीक्षा कर रहे थे कि अब आवत होइहैं। लेकिन जिन-जिन ने शाम को निर्णय लिया था वे हल लेके अपने खेत में जा रहे थे। फलनवा उधर जा रहा है, वो उधर जा रहा है। महाराज ने सोचा– देखो रे, कइसन धोखा दिया

इन लोगों ने। इतने में लगा पानी बरसने मूसलाधार। अब खेत में खड़ा होने की हिम्मत ही नहीं। हल-बरधा सब घर में खड़ा किया, बरसते पानी में सब चले आये महाराज के पास, बेल के पेड़ के नीचे। कोई बाँस गाड़ने लगा, कोई लकड़ियाँ ले आया, कोई घास-फूस ले आया। बरसते पानी में तीन दिन तक पानी की बूँद नहीं टूटी और उसी रफ्तार से बरसते पानी में कुटिया लगे बनाने। महाराज ने कहा– नहीं चाहिये हमें कुटिया। भागो यहाँ से! कल तो निर्णय लिया कि हम काम नहीं करेंगे, अब जाओ अपना हर जोतो। अब का जोतें? सब हँसा करें और बस बनाया करें। तीसरे दिन कुटिया तैयार। बोले– महाराज, अब तो पनिया बन्द कर देव। फिर पानी बन्द हो गया। फिर श्रद्धापूर्वक लोग बराबर सेवा में लगे रहे। चतुर्मासा भी बीत गया। फिर बोले– चतुर्मासा नहीं, बारहोमासा। अब आप यहीं रहो। फिर आधे जाड़े तक वहाँ निवास किया।

५०. पूर्वजन्म की स्मृति

मधवापुर आश्रम था घोर जंगल में। अब तो बस्ती हो गयी घनी। जब गुरु महाराज विचरते हुए गये, वहाँ चतुर्मासा किया था। एक रोड, बैलगाड़ियाँ चलती थीं। एक कार थी राजा साहब के पास। महीना भर में एकाध बार दिखाई पड़ जाय। शाम को उठ के जब महाराज चलें रोड पे, तो रोड के किनारे वहाँ बढ़िया एक नम्बरदार.... जमींदार साहब का घर था। कितने ही बड़े आदमी,

पर घर सबके खपरैले थीं। वह घर भव्य था चारों तरफ से। पाँव जबरदस्ती उसके घर की ओर घूम जायँ और घर के भीतर तक पहुँच जायँ, तब महाराज को होश आवे। वह वापस घूम जायँ, रोड पकड़ के चले आवें। दो-तीन बार ऐसा हुआ। ऐसे उधर जा रहे हैं, आधी आँख बन्द, आँधी खुली तो पाँव घूम जाय। जब शाम को टहलने जायँ, एक आधा, पौना किलोमीटर दूर था, जब उसके बगल से निकलें, पाँव अपने आप घूम जायँ उधर, घर के अन्दर चले जायँ बाउण्ड्री पार करके। महाराज ने सोचा– बात क्या है! पता नहीं किसका घर है? मैं क्यों घूम जाता हूँ? तीन बार ऐसा हुआ तब आपने भगवान से पूछा– प्रभु, क्यों पाँव घूम जाता है? ऐसा खिंचाव होता है जैसे हमरै घर हो। तब भगवान ने बताया– इस जन्म से पहले एक जन्म तुम्हारा इस घर में हुआ था। तुम्हें जन्म देनेवाली माताजी अभी जीवित हैं। तू ढाई-तीन महीने की आयु तक जिया और फिर मर गया। वह संस्कार खींच रहा है। महाराज ने बताया नहीं। शाम को जब दर्शनार्थी जुटे तो महाराज ने पूछा– कहो, उस घर में कोई ऐसा लड़का जन्मा, ढाई-तीन महीने का होकर मर गया। क्या ये घटना सही है? इतना सुनते ही घरो भरो चले आये। वहाँ के सबसे बड़े आदमी थे वो, मुखिया थे। सब चले आये। बुढ़ियौ रोवत-रोवत चली आयी। वह बोली– महाराज, ऐसन आँख रहीं तो ऐसन मुँह रहा तो ई चेहरा रहा।

होनहार लड़का रहा। सब लगे तारीफ करने। वह और भी रोने लगी। महाराज ने नहीं बताया कि वह हमीं थे, नहीं तो और आफत खड़ी करते न। वोहू रिश्तेदारी जोड़ लेते। पता नहीं आत्मा कहाँ-कहाँ जन्म लेती है, कैसे-कैसे आगे बढ़ती है!

५१. करसोलवा पासी को शिक्षा

मधवापुर में ठाकुरों का चहेता एक आदमी था, उसका नाम था करसोलवा पासी। वो शराब बहुत बढ़िया बनाया करे, सब ठाकुरों को, जमींदारों को दिया करे। वह उन लोगों का बड़ा प्यारा था। वो बराबर सबके दरबार में आ के बैठा करे, सब यहाँ बैठे तो वो थोड़ा दूर बैठे। शाम को जब सब जायँ तो वो भी चला जाया करे। एक दिन सब चले गये, लेकिन वो बैठा ही रह गया। कुछ देर बाद रात्रि दस बजे महाराज की निगाह पड़ी– कौन बैठा है रे! हाथ जोड़ा– महाराज, मैं करसोलवा पासी हूँ। बोले– तू गया नहीं? तब निकाला बोतल। वह बोला– महाराज! बड़ी बढ़िया बनाये हूँ। बर्तन धो के बनाया हूँ। बहुत स्वच्छ बनाया हूँ। शराब थोड़ी सेवन कर ली जाय। महाराज बिगड़े– धत् तोरी खल की! सन्तन के शराब पिलावत है। वह बोला– महाराज, बड़ी श्रद्धा रही, बड़ी पवित्रता से बनाया हूँ। बहुत समझाया महाराज ने, वो माने नहीं। तब फिर बहुत पीछे पड़ा तब महाराज बोले– देख, पाप-दोष तोहार। थोड़ा-सा बोतल लेके महाराज ने मुँह से, होठों से लगा

लिया। पिया-विया नहीं, होंठ-जीभ में तो लगा ही। महाराज बोले– ले भाग! वह बहुत खुश हुआ, दण्डवत् किया और चला गया।

रात में करसोलवा के पेट में उठा शूल। अब यहाँ का लोटा वहाँ जाय। वहाँ का लोटत-लोटत यहाँ आवे। अब ठाकुर लोग परेशान। जितने आजू-बाजू वैद्य, डॉक्टर थे, सब आ गये। आठ-दस वैद्य, डॉक्टर ले आये। सब बोले– करसोलवा मर जाई, बची न। तुरन्त गाड़ी एक दौड़ पड़ी किन्तु कोई उपचार नहीं हो सका। तब सुबह लोग आये गुरु महाराज के पास और बोले– महाराज! करसोलवा के पता नहीं क्या हो गया? फलाने-फलाने वैद्य, फलाने-फलाने डॉक्टर सब आये, कोई उपचार नहीं है। ऊ न बची महाराज। महाराज बोले– ऊ वास्तव में न बची। कल ऊ मोके शराब पिला दिहे रहा। वे बोले– अरे महाराज, इतना बड़ा अपराध, आपको शराब पिला दिया। आपने पी भी लिया। महाराज बोले– हम नहीं पियत रहे, ससुरा पीछे पड़ गया रहा तो जिउ छुड़ाने के लिए थोड़ा जबान पर लगा जरुर लिये रहे हम। हम बोले थे– पाप-दोष तोहार। तो पाप ओही भोगत है। ऊ बची न, मर जाई। तो लोग गये टाँग–टूँग के ले आये। बोले– ले चलो इसको महाराज के पास। महाराज ने उठा के दो छड़ी मारते हुए कहा– हरामी कहीं के, औरो पियइहै कउनो बाबा के शराब। तब करसोलवा बोला– महाराज, हमें का पता कि इतनी वर्जित है महापुरुष के

लिए। महाराज बोले– जो अब न मरिहै। फिर बाद में वो ठीक भी हो गया। फिर साधु हो गया। धन्धा ही छोड़ दिया। वो खुद भी पीना छोड़ दिया।

महाराज पहले से कुछ न कुछ गाँजा पिया ही करें। महाराज के अगल-बगल जमींदार लोग थे। सब के सब दम लगानेवाले। उन्होंने तुरन्त प्रबन्ध कर दिया। एक राजा सिंह थे। बकुले के पाँख की तरह सफेद कपड़ा पहना करें और आ के दरबार में बैठा करें। देखने में लगे सचमुच राजा हैं। मधुर मुस्कान के साथ रहा करें और समय से आयें, समय से जायें।

५२. बिल्व-फलों की रक्षा

जिस बेल के नीचे महाराज विराजमान थे, वो बेल उस क्षेत्र का सबसे बढ़िया बेल था, लेकिन फल कोई नहीं पाया कभी। फागुन के महीने में उसमें कीड़े पड़ जायँ। इतना मिठास रहे कि उसमें कीड़े पड़ जाय। ढाई-तीन-तीन किलो का बेल टपाटप गिर जाय और सब समाप्त। फरे खूब। और फागुन के महीने में जमीन पर ढेर लग जाय, सड़ जाय। कभी कोई नहीं पाया। अब भगवान का आदेश था– इसी के नीचे रहो, इसी के नीचे आसन लगाओ। गुरु महाराज का आसन भी उसी के नीचे रहे।

भक्तों ने भागवत कथा की व्यवस्था कर दिया। कथा हो रही थी। हो भी गयी। अन्तिम दिन भण्डारा, ब्रह्मभोज। ब्रह्मभोज का

बड़ा रिवाज। अब ब्राह्मण लोग बैठ के विधिवत् प्रसाद पाने लगे। कितने भी कड़ाके की ठण्डी हो, कपड़ा जरुर खोलें, जनेऊ ठीक करें, तब भोजन करें। कपड़ा अलग रख दें, उकड़ू बैठ के खायँ ब्रह्मभोज। ठण्डी का समय था। एक बुजुर्ग पण्डित उठे, झलमला के कुएँ में गिर गये। भीड़ भाग के उस कुएँ के पास चली आयी। महाराज ने भगवान से कहा– भगवान, एक ब्राह्मण की हत्या करवा दियो। इसी के लिए भण्डारा करवायो। लोग निकाले, वो जिन्दा निकल आया। फिर महाराज ने पास बैठाकर तपवाया धूने में। जब ठीक-ठाक हो गया तो महाराज बोले– का हाल है पण्डित! वह बोला– पूड़ी-कचौड़ी यहीं मिल जात तो मैं खाय लेतउँ? बोले– धत् तेरे की! मरहू के घड़ी में पूड़ी-कचौड़ी नहीं भूली। तब फिर बाद में दिया। वहीं पर विधिवत् भोजन किया। स्वस्थ होकर घर चले गये।

उसी भीड़ में लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं। बेल दाहिने-बायें गिर रहे हैं, कोई इधर गिर रहा है, कोई उधर गिर रहा है। फिर पंगत बैठ गयी! एक बेल गिरा सीधा महाराज के सिर के ऊपर, जैसे कोई निशाना साध के रख दे। ढाई-तीन किलो का बेल पत्थर ही तो है। सीधा सिर पर गिरा, सिर झन्ना गया। महाराज ने सिर पकड़ लिया। पूरी भीड़ भोजन छोड़ के चली आयी। गुरु महाराज के सिर पर बेल गिर गया। दौड़ो, दौड़ो। सब दौड़े। तो करें क्या!

एक पाँच-सात मिनट बाद महाराज उठाये सड़सा, बेल के पेड़ को तीन सड़सा मारते हुए बोले– तोहार हरामी की! इतनी जगह रही चारो तरफ, मोरै कपार रहा गिरै के तोहके। आज से यदि सड़ा तो सधुअई छोड़ देब। और जो विभूति थी धूने की, उसी की जड़ में डाल दिया चारो तरफ। और चतुर्मासा समाप्त। महाराज बोले– भईया, हमें आगे बढ़ना पड़ेगा। लेकिन छोड़ता कौन है महात्माओं को? अच्छे महापुरुषों को कोई नहीं छोड़ता। वे बोले– महाराज, चतुर्मासा भले समाप्त हो गया, आप रहो। छोड़ें ही न। रात को जब जनता इधर-उधर हो गयी, शयन करने लगी तो चुपचाप उठ के चल दिये पैदल।

५३. अयोध्या में बैरागी महन्थ द्वारा दुर्व्यवहार

सवेरा होते-होते पहुँच गये अयोध्या। रेलवे स्टेशन की तरफ जा रहे थे सुबह अँधेरे में। गुरु महाराज चल दें तो रात-दिन बराबर। ये नहीं कि रात में मत जाओ तो सियार मिल जाई तो जानवर मिल जाई - ऐसा कुछ नहीं। रात-दिन बराबर। सुबह-सुबह बूँदी पड़ने लगी। एक खुला हाल दिखाई पड़ा, एकदम साफ-सुथरा खाली बरामदा। उसके अन्दर चले गये। एक कोने में बैठ गये। ऊपर चें-चों-चें-चों हो रहा था। कुछ माई, कुछ बच्चे, कुछ आदमी बोल रहे थे। महाराज सोचे– कोई गृहस्थ होंगे, उन्हीं का है ये। लेकिन वो एक महन्त का अखाड़ा था, उन महन्तजी का ही

वो बरामदा था। इतने में उसका जो मालिक था, वो महंत लोटा ले के, जनेऊ चढ़ाते हुए पहलवानी अंदाज में डग भरते हुए सीढ़ियों से उतरे ऊपर से नीचे। महाराज पर निगाह पड़ी तो बोले– ऐं, कौन? तुम्हारी हिम्मत कैसे पड़ी? जानता नहीं है यह फलाने महन्त का अखाड़ा है! आप बोले– बूँदी पड़ रही है, बूँदी थम जाय तो हम चले जायेंगे। हमें रहना भी नहीं है, कुछ लेना भी नहीं है, खाना भी नहीं है, थोड़ी बूँदी थम जाय, हम चले जायेंगे। बोले– हूँ, सन्तों की तरह बातें करता है। खड़िया कहीं का! उठ। वो उधर जा रहा था, घूम के महाराज की ओर आ गया। पकड़ा गर्दन महाराज की, वह बोला– उठ!... आप उठ गये। ले के चला। पाँच-सात सीढ़ियाँ थीं, उसके बाद डम्मर सड़क थी। तीन सीढ़ियाँ तो ठीक से चला, वो भी उतरा साथ-साथ, फिर हाथ किया कड़ा कि धक्का दे दें, सड़क पर गिर पड़ें। महाराज भी बचपन से पहलवान रहें, हाथ की प्रतिक्रिया को समझ गये, सोचे– अब ई धक्का देई त हम गिर जाब। हमार हाथ-पाँव फूट जाई, हमें कौन पट्टी बाँधी, कौन हल्दी छोंपी! उस जमाने में सबसे बड़ी दवाई रही हल्दी छोपब। हल्दी, प्याज पका के छोप देना, यहीं दवाई रही। हमके के हल्दी छोपी, अब ये भी धक्का दे रहा है? सटाक पलट के पैंतरे से, वो हाथ डाल के जाँघ में उठा लिया। वो रहा होगा सवा कुन्तल का, उठा लिया ऊपर, उठा के उसी सीढ़ियाँ में पटक दिया, लगाया कोहनी और बोले– तोरी खल की!

हम जा रहे हैं तो काहे पटकत रहा रे। तोरे हम का बिगाड़े रहे। हमरे चोट लग जाती त के हल्दी छोपत! तोरे त मेहरिया लड़का तमाम हैं। जा हल्दी छोपाव और हलुआ खा। खल कहीं का! भाग यहाँ से। वो चिल्लाया– बचाओ रे, बचाओ रे, पगला मारा। पगला मारा रे। तो चाऊँ-चाऊँ करके ऊपर से सीढ़ियाँ धम्म-धम्म उतरने लगे तमाम। महाराज सोचे– बैरागी महात्माओं में बड़ी एकता होती है, लिपट पड़िहै सब। अब महाराज वोके वोही सीढ़ियाँ में छोड़ के निकल गये सड़क में। वह तो उठे लायक रह ही नहीं गया था।

महाराज जा पहुँचे रेलवे स्टेशन। ट्रेन का समय था। महाराज को मालूम भी था लेकिन ट्रेन एक घंटा लेट। महाराज वो बेन्चें पड़ीं रहती हैं तीन-चार, तो उन पर नहीं बैठे कभी, क्योंकि वहाँ बैठेंगे तो बगल में कोई न कोई आ के बैठेगा जरुर तो भजन में बाधा पड़ेगी। जा के बेन्चें छोड़ के जो पेड़-पौधे होते हैं, उनकी आड़ में बैठ के भजन किया करें अपने नियम के अनुसार। वहाँ पेड़-पौधे थे फूलदार, उन्हीं के पास बैठ के भजन करने लगे। ट्रेन एक घण्टा लेट। इतने में दो महात्मा आये.... युवा, सफेद वस्त्र पहने, तिलक लगाये, झोली में हाथ डाले, बोले– रामजी की इच्छा से, वो महन्त है न, बड़ा कंजूस है, बड़ा धनवान है, कभी संतों को दक्षिणा नहीं दिया, भोजन नहीं कराया, अपने को बड़ा लगाता रहा पहलवान! आज एक पगला से भेंट हो गया, पटक

के खूब मारा रामजी की इच्छा से। मैं देख के आया हूँ, हल्दी छोपी जा रही है रामजी की इच्छा से। वो बातें करते जायँ, महाराजजी की ओर देखत जायँ नीचे से ऊपर तक। महाराज कहें– यार, सब बैरागी एक ही होते हैं। कहीं भाँप न लें कि यही न पीटा हो। इतने में ट्रेन आ गयी। महाराज कूद के चढ़ गये। ट्रेन जब चल दी तब महाराज को शान्ति मिली। कहाँ से उपद्रव आ गया!

वहाँ से घूमते हुए महाराज आगे बढ़ गये। महाराज के गले में दाना-दाना निकल गया। एक रोग होता है कण्ठमाला। दाने-दाने में मवाद भर गया। महाराज बताते थे– देखै में बड़ा सुन्दर लगे मोतियों की माला की तरह, लेकिन दुर्गन्ध बहुत रहे। मन न लगे भजन में, दुर्गन्ध जो दे। इधर से वो गन्ध आवे, इधर से आवे, नीचे से आवे। हम बोले– भगवान, कौन पाप प्रकट हो गया? जब प्रार्थना किये तो भगवान कहे– और शराब पीइहै! महाराज ने सोचा– हे भगवान्! करसोलवो मरे लिहा, हमरेहु पीछे पड़ा है। साधु को अपने टेक का पक्का होना चाहिए। ये नहीं कि कोई पीछे पड़ गया तो हम वहीं कर ले। टेक पर अडिग रहना चाहिए। इस रेखा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। फिर रोग ठीक हो गया।

५४. बम्बई में जलेबी एवं नारियल खाने की इच्छा

वहाँ से विचरण करते हुए महाराज को कहीं ट्रेन मिल गयी, पहुँच गये बम्बई। तीन दिन के भूखे-प्यासे तो थे ही। पेट के लिए

भी महाराज भिक्षा नहीं माँगते थे। ट्रेन जहाँ रुकना था, रुक गयी। फिर आगे उसको जाना ही नहीं था। सम्भवत: वीटी स्टेशन रहा होगा। मामूली स्टेशन रहा उस समय। उतर गये। वहाँ हलवाई जलेबी छान रहा था। खाने के लिए कभी मन विकल नहीं होता था। उस दिन जलेबी की खुशबू इतनी प्यारी लगी, मन करे कि जलेबी मिलती तो खाते। भीख तो माँग नहीं सकते थे। जलेबी के लिए मन में इतना खिंचाव हुआ कि मन करे हलवाई की थरियवा ले के भाग जाईं। महाराज ने सोचा– ई दौड़ के पकड़ लेई, खा भी न पाइब। इधर हलवाई की दुकान, उसके इस पार खाली जगह! उस फुटपाथ पर बैठ गये हम भजन में! मन लग गया। समाधि लग गयी। पता नहीं, सैकड़ों-लाखों आदमी गये, हजारों गाड़ियाँ गयीं, महाराज को कुछ पता नहीं। न आवाज सुनाई पड़े, न हार्न सुनाई पड़े, न बात सुनाई पड़े। ध्यान लग गया, समाधि लग गयी। उसी भीड़ में से एक आदमी निकल के आया, बोले– संतजी! तो महाराज को सुनाई पड़ा– गुन्न। वह दुबारा बोला– संतजी! तब महाराज को सुनाई पड़ा 'संतजी'। तो महाराज ने विचार किया भगवान लगता है अब हमें साधु कहने लगे। तिबारे आवाज आयी 'संतजी', तब समाधि टूटी। आँख खुला तो सामने एक भगत खड़ा था, हाथ में थाली थी, भोजन था, जलेबी-सलेबी सब कुछ था, बहुत कुछ था। वह बोला– प्रसाद पा लें महाराज, हम सुबह

से आपको यहीं पर देख रहे हैं, फिर भजन करें। भगवान ने भी कहा– ये भोजन करो, करने लायक है। भगवानै भेजे रहें यार। प्रसाद पाये। आगे बढ़ गये।

एक व्यक्ति नारियल, हरी-हरी गरी बेचत रहे। आधा-आधा नारियल काट के, सजा के रखे था। महाराज कहें– यार, गरियवा मिलत त खावा जात। आगे बढ़ गये। एक पेड़ के नीचे बैठ गये। पेड़ के ऊपर कौवा बैठा रहा, एक नारियल का टुकड़ा लेकर, उसके मुँह से छूट गया। गिरा सामने। तब भगवान ने कहा– ये ले लो, खाये का मन रहा न, खाओ। बोले– वाह रे भगवान, कउवा से भेजवाय दियो।

५५. दूधभिक्षा मे मछली

एक दिन बहुत सवेरे ही महाराजजी मुम्बई की गलियों से गुजर रहे थे। लोग अभी सो रहे थे। चहल-पहल का शोर अभी टूटा न था। एक महिला दूसरी मंजिल से कुछ पराठे नीचे सड़क पर फेंकने जा रही थी। आपको देखकर उसका विचार बदल गया। उसने कहा– ओ बाबाजी! पराठे हैं, लोगे। आपने सोचा– बिना माँगे मिल रहा है, यह दूधभिक्षा है। इसलिए खड़े हो गये। वह महिला तेजी से नीचे उतरी,आपके हाथ पर पराठे रख दिया। चिकने-चिकने तीन-चार पराठे और उस पर घुइयाँ जैसी सब्जी। चलते-चलते महाराजजी ने एक ग्रास मुँह में डाला। मछली जैसा

स्वाद लगा। आप विचार करने लगे कि साधु को तो मांस, मछली, मदिरा इत्यादि का सेवन नहीं करना चाहिए। इसने बिना माँगे दिया है। बिना माँगे जो मिले, उसका अपमान नहीं करना चाहिए। हमने तो माँगा भी नहीं था, फिर भगवान ने ये क्यों दिला दिया? इसे खाये या न खायें। कभी मन करता था इसे फेंक दें तो कभी विचार आता था– बिना माँगे मिला है, दूधभिक्षा है। भगवान भी कुछ बता नहीं रहे थे कि खाओ या न खाओ। जैसे रूठ गये हों। न शकुन न अपशकुन। सोचते-सोचते आप मीलों निकल गये। ग्रास मुँह में ही था। अन्त में आपने सब-का-सब फेंक दिया। एक नल पर मुँह धोने लगे। बगल में पान की एक दुकान थी। दुकानदार ने आपको देखा। वह दौड़कर आपके पास आया और एक पान देते हुए बोला– संतजी, लीजिए मुखशुद्धी। पान खा लें। आपने पान खाया और उसे आशीर्वाद देकर आगे बढ़ गये।

गुरु महाराज विचार करने लगे कि भगवान ने हमको मछली क्यों दिलवाया? तब भगवान ने कहा– और मछली का चिन्तन करिहै! महाराज जी को स्मरण हो आया कि जब वो रेलगाड़ी में बैठकर मुम्बई आ रहे थे, उस समय उनके बगल की सीट पर एक यात्री मछली खा रहा था। आपके मन में आया कि मछली खाने का इनका तरीका अलग है। मछली इस तरह से पकड़ना चाहिए, इस तरह से खाना चाहिए। भगवान ने देखा– यह भजन छोड़कर मछली का चिन्तन कर रहा है। इसीलिए भिक्षा में मछली दिलाकर

उससे घृणा पैदा करा दिया। और उसे फेंकते ही मुखशुद्धी की व्यवस्था देकर अपना समर्थन दिया। इसके बाद भगवान फिर से बोलने-बताने और आदेश देने लगे।

महाराज बताते थे– हो! साधु के लिए भगवान से अलग कुछ भी देखना मना, मन से सोचना मना। तुलसीदासजी ने इसके लिए कहा कि भगवान के चरण-कमल के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी चित्त को नहीं जाने दूँगा, कानों से और कोई बात नहीं सुनूँगा, आँख से दूसरा दृश्य नहीं देखूँगा। **'श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं। रोकिहौं नैन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं। जानकी-जीवनकी बलि जैहौं।'** (विनय० १०४) मन से दूसरा स्मरण करता है तो शरीरिया के इहाँ पटकने से का मतलब! मनुष्य वहाँ रहता है, जहाँ उसका मन रहा करता है। मन से थोड़ा चिन्तन कर लिया कि मछली ऐसे मारी जाती है, ऐसे पकायी जाती है, ये स्वाद है तो भगवान ने मछली दिलवा दिया कि ले, ले ले, भोग ले स्वाद। फेंक दिया, भगवान खुश हो गये। रास्ता प्रशस्त हो गया साधना का।

५६. बम्बई से वापसी

मुम्बई से निकलते हुए महाराज रेल की पटरी के किनारे-किनारे पैदल ही चले जा रहे थे। उन्होंने सोचा, कहीं स्टेशन होगा तो ट्रेन पर बैठ जायेंगे। बम्बई और नासिक के बीच में स्टेशन

विशेष कुछ था नहीं। पहाड़ बड़े-बड़े। न गाँव न बस्ती। इतने में खटर-खटर-खटर सुनाई पड़ा। महाराज ने सोचा– पटरिया बोलत है रेल की। खड़े होके देखा। वो थी मालगाड़ी। मालगाड़ी का वो डिब्बा जिसमें गार्ड रहता है, वो जब बराबर में आया तो गाड़ी रुक गयी। वह गार्ड बोला– महाराज! आइये, बैठिये। बुला के बैठा लिया। अपना टिफिन खोला, भोजन कराया और लाके छोड़ दिया जहाँ महाराज को उतरना था। जंगल में ट्रेन रोकने का औचित्य नहीं था। लेकिन वो भगत था संतों का। भगवान ने व्यवस्था वहाँ भी कर दी। बम्बई से लौट आये।

५७. राजकुँवरी का विवाह

गोण्डा जिला में एक मनिकापुर स्टेट, उसके पास पहुँच गये। जहाँ शाम हुई, वहीं बैठ जायँ चाहे वो जंगल हो। बस्ती हो तो बस्ती में न जायँ। किसी पेड़ के नीचे या फिर झोपड़ी मिल गयी, वृक्ष के नीचे बैठ गये। महाराज का नियम था, रातभर बैठ के भजन करें। साधु को रातभर जागना चाहिए जो भ्रमणशील हैं। जंगल में अकेले बैठें हैं, सो गये तो पागल सियार उठा ले जायेगा। बड़े सवेरे उठ के भजन। घाम निकले तो सो जायँ ढुर्रियों (पगडण्डी) पर कहीं भी। बढ़िया नींद आवे। ग्यारह बजे के करीब आँख खुले तो जलाशय के किनारे हाथ-मुँह धो लें, नित्यक्रिया से निवृत्त हो भजन करते हुए आगे बढ़ जायँ।

थोड़ी दूरी पर राजकन्या की शादी थी। बारात आयी हुई थी। छत्तीस घड़ियों के छत्तीसों राग चल रही थी। हर घड़ी की अलग राग होती है। अलग-अलग रागिनी चल रही थी। वो चें-पों-चें-पों हो रहा था। महाराज से कोई मतलब नहीं। महाराज बैठे थे भजन में। रात को दो बजे के करीब इतनी मधुर भजन की धुन कान में पड़ी। महाराज कहें कि इतनी मधुर थी कि हम उठ के खड़े हो गये, आहिस्ते-आहिस्ते उस आवाज की ओर ही पाँव बढ़ने लगे। महाराज सोचे– कौन है जो इतना मधुर गा रहा है? चलते गये। धुन को सुनते हुए भीड़ के करीब पहुँचे। भीड़ को चीरते हुए वहाँ पहुँच गये कि आखिर इतना मधुर गा कौन रहा है? उन्होंने देखा कि एक नर्तकी गा रही थी। २०-२२ साल करीब उम्र रही होगी। कुर्ता-पायजामा पहन के, टोपी पहन के, लड़कवा बन के जो मधुर गावे, जनता भी मुग्ध थी। महाराज कहें– ई भजन मैं याद कर लूँ, बहुत कोशिश हुआ लेकिन याद नहीं हुआ। हम दिगम्बर महात्मा, पूछ भी तो नहीं सकते थे।

वो भजन था– **'छावो छावो हो फकीर गगन में कुटी। आसन मारि मगन होइ बैठे, ध्यान धरे लौके त्रिकुटी। छावो छावो हो फकीर गगन में कुटी।'** गगन कहते हैं आकाश को। आकाश कहते हैं पोल को, शून्य को। शून्य में कुटीर छाओ। मन जब संकल्प-विकल्प से रहित हो जाता है, न भला उद्वेग उठे मन में, न बुरा उठे, चित्त शान्त प्रवाहित हो जाय, इसका नाम है

चिदाकाश। केवल जिस श्वास में जिस नाम को जपता हो, नाम भर रहे। श्वास आयी तो राम, गयी तो राम.... रा.....म.....। ओम् जपते हों तो श्वास आयी तो ओम्, गयी तो ओम् ओम् ओऽहम् ओम् ओम् ओ....म्....। दूसरा संकल्प-विकल्प मन में न टकराव ले। श्वास एकदम बाँस की तरह खड़ी हो जाय। सारी वृत्तियाँ सिमट के श्वास में समाहित हो जायँ और फिर तेल धारावत् एकदम खड़ी हो जाय, वृत्ति श्वास में समाहित हो के न भला उद्वेग उठे, न बुरा– इसका नाम है चिदाकाश। चित्त आकाशवत् हो गया, शून्य में स्थिर हो गयी सुरत। बस यहीं कुटी बना लो, यही सदा निवास करो। इस रहनी से नीचे मत उतरो। यहाँ अपना कुटीर बना लो। संतों का निवास-स्थान यहीं होता है। हम इसी रहनी के थे, इसी स्तर से गुजर रहे थे इसीलिए भजन प्यारा लगा। तो कैसे छायें? **'आसन मारि मगन होइ बैठे'**– आसन एक तो शरीर का, पाँवों को मोड़ के बैठने का नाम आसन है। कितने ही आसन हैं! लेकिन भगवत्पथ में, भक्ति मार्ग में मन के स्थिरीकरण का नाम आसन है। महर्षि पतंजलि कहते हैं–**'प्रयत्नशैथिल्यानन्त-समापत्तिभ्याम्'** (योगदर्शन, २/४७)– जो यम-नियम में, शौच-संतोष में, तप-स्वाध्याय में जो प्रयत्न चल रहा है अष्टांग योग में, इस प्रयत्न में शिथिलता आ जाय, ये सहजता से होने लगे। एक परमात्मा में मन लगाने से आसन सध जाता है। जब शरीर से सुडौल बैठने का नाम ही आसन है तो परमात्मा में मन लगाने की

कौन जरुरत है? कायदे से बिक्री होने लगे तो एक–एक सेठ दस-दस घण्टे हिलता तक नहीं कि हम दहिने-बाएँ हुए तो कोई मुनीम, कोई कर्मचारी दस–बीस हजार का दहिने-बाएँ न कर दे इसलिए वो डटा रहता है। परमात्मा से क्या लेना-देना? **'स्थिरसुखमासनम्'** (योगदर्शन, २/४६)। किसी को बैठा दो दस घण्टा। सुख कहाँ? सुख का उतार-चढ़ाव तन पर नहीं, मन पर होता है। किसी के ऊपर कोई विपत्ति आ जाती है तो एकान्त में जाके कमरे में बैठ जाता है। बैठा तो है, लेकिन सुख कहाँ? दुःख इतना कि मन करता है नदी में कूद के जान दे दें। आसन तो है लेकिन शरीर की इन मुद्राओं, भाव-भंगिमाओं का नाम आसन नहीं। मन का स्थिरीकरण ही आसन है। **'आसन मारि मगन होइ बैठे'**–जहाँ आसन लगा, **'तस्मिन्सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायाम'** (योगदर्शन, २/४९)– आसन के सधते ही–श्वास जो हम लेते हैं, प्रश्वास जो त्यागते हैं–इन दोनों की गति का रुक जाना प्राणायाम है। लेते हैं हम दैवी सम्पद् – विवेक, वैराग्य, शम, दम, धारणा, ध्यान, समाधि - इन्हें अब धारण करने की जरूरत नहीं, ये सहज ढल गये। त्यागा था हमने अनन्त इच्छाएँ, अनन्त वासनाएँ, काम, क्रोध, लोभ मोह की तरंगें; उन्हें अब त्यागने का प्रश्न ही नहीं है क्योंकि वे हमारे पास फटकती ही नहीं। ये ग्रहण करने और त्यागने वाली प्रवृत्ति जहाँ शान्त हो गयी तहाँ प्राणायाम। प्राणों की गति पर विराम लग गया। इसी का नाम

प्राणायाम है। किया था यम-नियम! जहाँ यम, नियम, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय जब परिपक्व हुआ तो आसन की अवस्था आ गयी। आसन भी सध गया, परिपक्व हुआ तो प्राणायाम की अवस्था आ गयी। ये प्राणायाम, ये आसन योग-साधना के क्रमोन्नत स्तर मात्र है। इसलिए टेक के साथ लगो। **'आसन मारि मगन होइ बैठे'**– बड़ी श्रद्धा और समर्पण के साथ बैठो, लगो। **'ध्यान धरे लौके त्रिकुटी'**– ध्यान का स्तर इतना उठ जाय, दिखाई पड़ेगा त्रिकुटी। सत्, रज, तम– जब तीनों गुण कूटस्थ हो जायेंगे, तब **लौके** = दिखाई पड़ेगा। मनुष्य में तीन प्रकार की तरंगें उठा करती है। सात्विक कि भगवान कैसे हैं?, कैसे मिलेंगे? राजसी कि सिद्धियाँ मिल जातीं, रिद्धियाँ मिल जातीं तो हम ये कर देते, हम वो कर देते। तामसी कि भजन कल कर लेंगे, आज बढ़िया तावदार भोजन मिला है तो चलो तान के सोयें, फिर देखा जायेगा। **'आलस निद्रा जमुहाई, तीनों काल के भाई।'** जब तीनों गुण कूटस्थ हुए, त्रिगुणमयी प्रकृति का सम्बन्ध टूट गया तो **'लौके'**– तहाँ ज्योतिर्मय परमात्मा की आलोक में क्या छिपा है?–वो दिखाई देने लगता है कि कैसे भगवान कण-कण में व्याप्त हैं? कैसे ज्योतिर्मय हैं? कैसे योगक्षेम करते हैं? कैसे सर्वव्यापी हैं? जिनके तेज के अंशमात्र से सृष्टि का सृजन, पालन, परिवर्तन होता है - सब उतर आता है, दिखाई पड़ने लगता है। भगवान की विभूतियों से अवगत हो जाता है। तो **'ध्यान धरे लौकेला**

त्रिकुटी'– तीनों गुण कूटस्थ हो जायेगा तब भगवान की विभूतियाँ उसे दिखाई पड़ेंगी, अवगत हो जायेगा।

महाराज कहें– हो, पूरी आगे की लाइनें भी बड़ी बढ़ियाँ, ऐसे ही क्रम-क्रम से साधना का स्तर था। मन करे, याद कर लूँ लेकिन बहुत कोशिश किया, याद हुआ ही नहीं।

महापुरुष साधनापरक वस्तु कहीं से मिली, ले लेते हैं। **'समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा।।'** (मानस, ४/१३/७) वो अपने साधनापरक, जो योग-साधना में सहायक है, ऐसी वस्तु कहीं पड़ी है वहाँ से उठा लेते हैं। दूसरे प्रकार की वस्तुएँ उनके चित्त पर असर करती ही नहीं। वो छत्तीसो राग तो रातभर चलते रहे, एक भी सुनाई नहीं पड़ा। सुनाई वह पड़ा जो भजन में, योग-साधना में सहायक था।

महाराज जी के महाप्रयाण के पश्चात् यह भजन हमें सन्त कबीर का भजन सुनाने वाले जौनपुर के भक्तों से मिला–

छाओ छाओ हो फकीर गगन में कुटी।
आसन मारि मगन होइ बैठे, ध्यान धरे लउके त्रिकुटी।
नेह की नींब करो मजबूती, सार सबद की भीत उठी।
बुद्धि बड़ेर ज्ञान का कोरवा, भाव भगति की छानी चढ़ी।
दया दुआरि छमा का बेड़ा, शील सन्तोष की टाटी बनी।
कहै कबीर अगम गोहरावै, आवागमन की फिकर मिटी।।

भजन इस प्रकार करना चाहिए कि चित्त संकल्प-विकल्प से रहित होकर शून्य में टिक जाय। श्वास में सुरत की डोरी लग जाय। जहाँ मानसिक वृत्तियाँ कूटस्थ हुईं, तत्काल गगन में कुटी तैयार हो जाएगी। इसके लिए आसन मार लो। मन को ध्यान में लगाओ। कुटी की बुनियाद ठोस प्रेम की होनी चाहिए। सार शब्द प्रभु का नाम इतना जपो कि उसकी दीवाल खड़ी हो जाय। नींव और दीवाल के पश्चात् कुटी बनाने में आवश्यकता पड़ती है बड़ेर और कोरवा की। दीवाल के ऊपर की मोटी लकड़ी का नाम बड़ेर है। दीवाल और बड़ेर को आधार बना कर ठोस पतले बाँस के छाजन को कोरवा कहते हैं। इस गगन कुटी में बुद्धि ही बड़ेर है और योग पथ के साधनों की जानकारी ज्ञान ही कोरवा है। ये सब बुद्धि से नाम जप से जुड़े रहें। अब बड़ेर और कोरवा के ऊपर छाजन या छानी होनी चाहिए तो **'भाव भगति की छानी बनी'**। भाव के बिना भक्ति व्यर्थ चली जाती है इसलिए श्रद्धा भाव का होना नितान्त आवश्यक है। अब इसे भेद कर शोक-सन्ताप की लहर या प्रकृति का ताप नहीं आयेगा। ऐसे महापुरुष **'दया दुआर'**–उनके दया का द्वारा सत्पात्रों के लिए खुला रहता है, **'छमा का बेड़ा'**–उदंड लोग टकरायें तो क्षमा का बेड़ा लगा देते हैं। **'शील सन्तोष की टाटी बनी'**–साधुता के गुणधर्मों का सध जाना शील है। सम शीतल एकमात्र परमात्मा है, उससे तुष्टि मिले, बाहरी

शोक-संताप की लहरें बाधक नहीं रह जातीं। भजन की उत्तरोत्तर वृद्धि से सन्तोष होने लगे, इसको कुटी की टाटी अर्थात् कवच बना लें जिससे अन्य विजातीय संकल्पों का स्फुरण भी न हो। जब इतना करते बन गया तो भगवान पुकारने लगते हैं– **'कहै कबीर अगम गोहरावै'**। अगम अपार एकमात्र परमात्मा है। जहाँ उन परम प्रभु ने सुनवाई कर लिया तो **'आवागमन की फिकर मिटी'**–आवागमन अर्थात् जन्म-मृत्यु की चिन्ता ही मिट गयी। साधक परमात्म-स्वरूप में स्थिति पा जाता है। अब जन्म-मृत्यु का कारण समाप्त हो गया–

जीवत में मरना भला, मरै जो जाने कोय।
मरने से पहले मरे, अजर अमर सो होय।।

५८. मधवापुर पुनरागमन एवं वंशीदास के आश्रम में

महाराज लौट आये मधवापुर की तरफ। लकड़मण्डी स्टेशन पर आये। वहाँ महात्मा वंशीदासजी के यहाँ आये। दम-सम लगने लगा। पहली बार आये थे तो वंशीदासजी कहा करते थे– देखते हो न, ई जो पचीस बीघा में धान बोया है, ये पचास-पचीस बीघा में गेहूँ बोया है, ये दस बीघा में कलमी आम लगे हैं, **'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।'** (मानस, ७/८९/५) देखत हो परमहंसजी! दम लगावें, कहा करे वह त्यागी महात्मा। वास्तव में वह गोचर भूमि थी। जमींदारी पीरियड था। दूसरे का कोई पशु जाय तो डण्डा

ले के पिटाई करके भगा दें। गाँवभर के लोग जमींदार साहब से रोये-गाये तो जमींदार साहब ने वो जमीन गरीबों को बाँट दिया। गरीबों ने जोत लिया। अब वंशीदास महाराज आगबबूला एकदम। वे कहने लगे– ये ठकुरवे राक्षस हो गये हैं, कुम्भकरण हैं, रावण हैं, मेघनाद हैं, निशाचर पैदा हो गये सब.... रामजी को भोग लगाने को भी नहीं छोड़ा थोड़ी सी। तब महाराज बोले– **'बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा।'** तप, तेज का विस्तार दुनिया में कुछ खण्डहर खड़ा कर लेना नहीं है, जमीन बढ़ा लेना नहीं है। तप, तेज का विस्तार होता है हृदय में दैवी सम्पद् के विस्तार से, आसुरी सम्पद् के ह्रास से। तब ताके महाराज की ओर, बोले– हूँ... हूँ... हूँ... हूँ... हूँ... ठीक कहते हो। थोड़ी सी वार्ता से खेती-क्यारी से जान छूट गयी वंशीदासजी की। दोनों मिल के चिलम पिया प्रेम से। महाराज आगे बढ़ गये।

५९. भविष्यद्रष्टा महाराज जी

महाराज आगे बढ़ गये, पहुँच गये मधवापुर। उसी बेल के नीचे दूसरा चतुर्मासा। भगत लोग जुट गये, लगे कीर्तन करने। एक दिन कीर्तन चल रहा था, महाराज ने कहा– बन्द करो कीर्तन। देखो, जंगल के उस पार से दुःखी लोग आ रहे हैं दो-चार, उनका काम होगा नहीं। जिसके लिए आ रहे हैं वह व्यक्ति है नहीं दुनिया में। मैं न कहूँगा उनसे, तुमलोग कह देना। इतने में लालटेन

दिखाई पड़ी। जंगल से लोग आये, बोले– लखनऊ में लड़का पढ़ रहा था, सख्त बीमार है, उसी के लिए आशीर्वाद लेने आये हैं। लोगों ने कहा– महाराज, पहले ही बता चुके हैं कि जिसके लिए आये हो, वो है नहीं। वे बोले– महाराज ने ऐसा बताया!! वे गये तो लड़के को मरा पाये। वे भी बहुत बड़े जमींदार थे जिनका लड़का था। कई गाँवों के मालिक। महाराज के पास वे बाद में पहुँचे, महाराज पहले से ही जानते थे कि वह है नहीं।

६०. हैजा का प्रकोप एवं मरणासन्न को जीवनदान

उसी समय हैजा का प्रकोप हो गया। एक मिश्राजी थे, मनिकापुर स्टेट के वन विभाग के। वे सूखी लकड़ियाँ लाके महाराज के यहाँ गाँज दिया करें। धूना जला करे बारहों महीना। जाड़े में गाँवभर आ के बैठे, तापा करे। मिश्रा बोले– गुरु महाराज, धूने की सेवा मुझे मिले। मैं वन विभाग का हूँ रक्षक। ये सेवा मुझे मिलनी चाहिए। मिश्राजी लाया करें अपनी बैलगाड़ी से लाद-लाद के और गाड़ी पर गाड़ी गिराया करें। चार महीना तो किया सेवा। चैत में आया हैजा। कई गाँव में हैजा का प्रकोप था। दो लाश उस गाँव से उठ गयी, तीन-चार लाश उस गाँव से उठ गयी। मिश्राजी के गाँव में भी हैजा पहुँच गया। सुनने में आया कि मिश्राजी भी मर गये। महाराज को सूचना पहुँची। लोग बोले– महाराज! आपके मिश्राजी तो मर गये। महाराज बिगड़े भगवान के ऊपर– प्रभो!

इतनी सेवा किया हमारी और मर गये! तो साधु की सेवा करे से क्या फायदा? जो सेवा करे, मरी जाये तो भाड़ में न जइहैं सधुइये। पहले तो अपने को खरी-खोटी सुनाया.... फिर साधु की सेवा से क्या फायदा जो सेवा करे ऊ मरि जाये? करे, मरि गया कि जीयत है? पता लगाओ।

दौड़ के गये लोग। वहाँ से दो-ढाई किलोमीटर दूर था उनका घर। जंगल-जंगल दौड़ के दो ठाकुर के लड़के गये। रोना-पीटना लगा हुआ था। आवाज दिया तो भीतर से किसी ने कहा– 'चुप रहो, चुप रहो। कोई बुला रहा है।' मिश्राजी के लड़के बाहर आकर बोले– क्या बात है? लड़के बोले– महाराज ने भेजा है, मिश्राजी मरि गये कि जीयत हैं? वे बोले– भइया, खटिया के नीचे उतार दिया है, गऊ दान हो चुका है, कै-दस्त चालू है, बचने की बिल्कुल उम्मीद नहीं है। हम भाग्यशाली हैं, हमारे पिताजी भाग्यशाली हैं जो गुरु महाराज ने याद किया। लड़कों ने जाकर महाराज से कहा– महाराज! बछिया दान हो चुकी है, खटिया के नीचे उतार दिया है, श्वास आती है, रुक-रुक जाती है। अब बचिहै न! महाराज बोले– जल्दी विभूति उठाओ इस धूने से। ले के भागो। उसके मुँह में डाल देना, शरीर में लगा देना। यदि जियत मोर विभूति पा जाइ तो मरिहै ना। भागे दोनों। जाके कहा– अभी जियत है? उनका लड़का बोला– हाँ, अभी साँस आवत है। कभी रुकत

है, कभी चलत है। बच्चों ने कहा– इस विभूति को ले जाओ, उनके मुँह में डालो। पूरे शरीर में लगा दो और आ के हमें सूचित करो। दोनों भाइयों ने विभूति लगा दिया, मुँह में डाल भी दिया, आ के बताया कि जियत विभूति पा गये। वो बचिहै ना, फिर भी हमारे पिताजी भाग्यवान हैं कि गुरु महाराज की विभूति अन्तिम समय में पा गये।

बच्चों ने जाकर महाराज से बताया कि जीयत विभूति पा गये। महाराज बोले– अच्छा, अब भागो, घर जाओ अपने। शक हो गया लोगों को। रोज तो दस बजे तक बैठते थे यहाँ पर, आज आठ ही बजे भगा दिया! बहुत बड़ा अल्टीमेटम दिया है कि विभूति पायेंगे तो मरेंगे नहीं। मिश्राजी को कोई दवाई तो दिया नहीं है। जो विभूति हमलोग रात-दिन खाते हैं, वही तो दिया है। कोई दवाई तो है नहीं। मिश्राजी भले मर जायँ, महाराज को रहना चाहिए यहाँ पर। मिश्राजी नहीं जियेंगे तो लाज के मारे महाराज चले जायेंगे रात में। इसीलिए तो हमलोगों को हटा दिया। चलो, जब ये जाने लगेंगे तो हमलोग रोकेंगे। गाँवभर मिल के निर्णय लिया कि हमलोग पहरा देंगे। दो आदमी हर समय पहरा दें। दस से बारह तक, बारह से दो तक, दो से चार तक ड्यूटी लग गयी। देख रे, हैं कि चले गये। पहरे वाले जब करीब आवें तो महाराज की श्वास भारी हो जाय। महाराज सोचें– छाती धड़-धड़ क्यों करती

है? कोई सर्प है कि जानवर है? क्या है? जहाँ सड़से से धूना खोदें, लपट उठने लगे, खाँसने लगे तो पहरे वाले छिप जायँ झाड़ियों में। जंगल था वहाँ पर। वे चुपचाप लौट जायँ कि अभी तो बैठे हैं, लेटे हैं, धूना ठोंकत हैं। फिर दूसरी पार्टी आयी। उन्होंने भी जाँच किया। तीसरी आयी, उन्होंने भी जाँच किया। जब-जब आवें, तब-तब महाराज धूना ठोंकते, खाँसते दिखाई पड़े। इतने में ४ बज गया। जिसकी नियमित ड्यूटी थी- पानी भरना, शौच जानेवाला लोटा ठीक करना, हाथ धुलाना- वो आ गया। उसने व्यवस्था शुरू कर दी।

सवेरे पूरा गाँव आ के बैठ गया। स्त्री, पुरुष, बच्चे सब। गाँजा पीने वाले गाँजा पी रहे हैं, बाकी शान्त बैठे हैं। कोई किसी से बोल ही नहीं रहा है। कोई-कोई उठ के सड़क पे जा के खड़ा हो के देखे उधर, जिधर मिश्राजी के गाँव से रास्ता आ रहा था। फिर बैठ जायँ। साढ़े आठ-नौ बजे के करीब एक आदमी चिल्लाया– मिश्राजी चले आ रहे हैं गाड़ी में बैठ के और उनका लड़का चला रहा है बैलगाड़ी। पूरी भीड़ भाग के रोड में खड़ी हो गयी। मिश्राजी आये। आ के महाराज को प्रणाम करते हुए बोले– गुरु महाराज, आप कब चले आये यहाँ पर। रातभर हमारे खटिया पर बैठे सिर से पाँव तक हाथ घुमाते रहे। पाँच बजे के करीब दस मिनट के लिए हमें थोड़ी झपकी लग गयी और जहाँ आँख खोला तो आप

नहीं थे। इतनी जल्दी आप यहाँ कैसे आ गये महाराज? रास्ता भी नहीं है! कउने रास्ते से आ गये? तब वो ठाकुर के लड़के बोले– रातभर हमलोग पहरा दे रहे थे, नम्बर से ड्यूटी लगा के। महाराज यहीं धूना खोदत रहें, खाँसत रहे, बैठे रहे। **'इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।।'** (मानस, १/२००/७) जैसे रामजी को कौशल्या ने पलंग पर भी देखा और चौके में भी खाते हुए देखा। महाराज बोले– क्यों रे! तुमलोग पहरा देते रह्यौ? वे बोले– हाँ, महाराज! आपने अल्टीमेटम बहुत तगड़ा दिया था कि विभूति खायेगा तो मरेगा नहीं। अब मिश्राजी को तो मरना ही मरना है। विभूति कोई दवाई तो है नहीं। कदाचित् महाराज रात में भाग जइहें मारे लाज के। तब हमलोग रोकब। महाराज ने पूछा– किसने कहा पहरा देओ? वे बोले– पूरे गाँव की सलाह रही महाराज! महाराज बिगड़े– धत् तेरी धूर्तों की! रातभर हमार भजन चौपट करि दियो। अब हमको नहीं रहना है यहाँ। फिर बहुत समझाये, बहुत पीछे पड़े लोग। निवेदन किया– महाराज, श्रद्धावश ऐसा कर दिया, क्षमा करें। दो घड़ी का भजन आपका चौपट हुआ, हमलोंगो का तो कल्याण हो गया।

६१. मधवापुर से जन्मभूमि की ओर

महाराज के निवास-काल में मधवापुर में बहुत-सी मरती-जीती घटनायें होने लगीं। महाराज ने विचार किया कि गाँव में जब

हम रहते थे तो लोग कहते थे कि विक्षिप्त हैं; रोगी हैं, टी.बी. हो गया है, घड़ी टल रही है, जब न मर जायँ। चार दिन में देखोगे, वो फूँके जा रहे हैं। साधु नहीं है, कोई खटपट की वजह से यहाँ आ के बैठे हैं। अब तो सधुआई में काफी रौनक आ गयी है, मुर्दे जी रहे हैं, जड़ बेल के फल जो झड़ जाते रहे, झड़ना बन्द हो गया है, वह भी कहना मान रहा है। करसोलवा पासी का सब ठीक हो गया। जाऊँ, गाँववालों को दिखा दूँ कि देखो, हम सचमुच के साधु हैं। हम बीमार नहीं हैं, न ही कुछ बनावटी हैं।

जहाँ गाँव जाने को तैयार हुए, खड़े हुए तो भगवान कहे– ऊहूँ, जाना मत। एक महीना मन रोज करे कि चलें और रोज भगवान मना करें। इतने में एक भगत कोई चँवर दे दिया घोड़े के बाल का बना के। महाराज ने विचार किया– इस चँवर से गुरु महाराज अपने टूटे पाँव के घाव की मक्खी उड़ाया करेंगे, उन्हें भेंट कर दूँगा चँवर। गुरु महाराज गाँव के आजू-बाजू मिल ही जायेंगे। गाँववाला भी कोई न कोई देखी लेई। फिर लौट आऊँगा।

६२. रामकोला स्टेशन पर ईश्वरीय चेतावनी

अपशकुन हो रहा है, फिर भी महाराज ट्रेन में चढ़ गये। ट्रेन में भी अपशकुन हो रहा है, चले जा रहे हैं। जब ट्रेन रामकोला पहुँची, आवाज आयी– आ तो गये हो, प्लेटफार्म पर पाँव मत रखना नहीं तो तुम्हारे सब करम हो जायेंगे। महाराज सींकचा पकड़

के बाहर लटक के देखने लगे कि कोई हमें देख ले गाँववाला कि सचहूँ के साधु हूँ। अब भगवान का मन। गाँव का स्टेशन और गाँव का व्यक्ति एक भी नहीं जो महाराज को पहचाने जबकि जनम भर वहीं ताल ठोंकत रहें, वहीं घूमत रहें। ट्रेन बीस मिनट रुकी और फिर पैसेंजर गाड़ी खटर-खूँ खटर-खूँ खटर-खूँ आगे चल दी। प्लेटफार्म छोड़ दिया।

ट्रेन अभी स्पीड पकड़ ही रही थी, महाराज ने सोचा– आगे तो कहीं हमें जाना नहीं है। चलो, उधर से उतर जायँ। गाँव के बाहर-बाहर उधर से निकल जायेंगे, शायद कोई भेटाइ जाय। फिरौ मन रहा कोई देख ले! उस चलती गाड़ी से उतरने में थोड़ी चोट भी आयी। ट्रेन तो निकल गयी। इतने में शरीर में से एक पुतला निकला हमारे ही जैसा। वह सामने खड़ा होकर बोला– ''घर जाओ, तुम साधु नहीं हो सकते। वो बगीचे की आड़ में घर है।'' पुतला गायब हो गया। महाराज घबड़ा गये। फिर एक पुतला निकलकर बोला– खड़े क्या हो, देखते क्या हो, जल्दी जाओ। इधर से निकल जाओ घर। अब तुम साधु कभी नहीं हो सकते। सधुआई खतम। सधुआई को दिखाने आये थे, वही खतम। कहते हैं, घर जाओ। तीसरी बार एक पुतला निकलकर बोला– देखत का हो, इन बगीचे के पार ही तो घर है, चले जाओ। अब तुम कभी इस जनम में साधु नहीं हो सकते। भागो यहाँ से।

महाराज घबड़ा गये। ई रेलवे पटरी है, इस पार रामकोला गाँव की जमीन है। मैं इसमें खड़ा हूँ इसलिए हो रहा है क्या? कूद के उस पार होकर बोले– भगवन्! अब भी हमको किसी ने नहीं देखा है, न हमने किसी को देखा है। और गाँव से विपरीत दिशा में भागे। एक-दो बीघा चले गये, फिर भी अपशकुन ने पिण्ड नहीं छोड़ा। भगवान बोले– कहाँ भागा जात है! अब दुनिया में कहीं ठिकाना नहीं है। तुम साधु हो ही नहीं सकते। घर जाओ। करीब तीन–चार बजे की घटना। वहीं खड़े रह गये, उधर दूसरे गाँव की सीमा के खेत में। रात को ११ बजे तक खड़े प्रार्थना करते रह गये, सुनवाई नहीं हुई। भगवान कहीं जाने ही न दें तो करते क्या? महाराज धीरे-धीरे गाँव वाली कुटिया पर चले गये।

जब महाराज गाँव की कुटिया में रहते थे, एक ऐरा-गैरा कुत्ता भी वहीं रहने लगा था। काला कुत्ता, आँख से कंजा, कुइरा उसका नाम पड़ा था। महाराज तो चले गये भ्रमण में लेकिन वह कहीं नहीं गया। वह था वहाँ पर। कहीं घूम-फिर कर आवे, रात्रि वहीं विश्राम किया करे। वह बैठा था। जहाँ महाराज को देखा तो चरणों में लोट गया। अब उछलने लगा आगे-पीछे। फिर लोट गया चरणों में, फिर उछलने लगा। मिला फिर भागा। गाँव गया। पाँच बार गया और पाँच बार आया। अब पाँच बार में पाँच व्यक्तियों को जगाया ११ बजे रात में। उनके कपड़ा पकड़ के खींच दे, खटिया

पर कूद पड़े और फिर भागे कुटिया की ओर। तो लोगों ने कहा– कुइरा आज बहुत खुश है रे, कहीं संतजी आ तो नहीं गये। कुतूहलवश लोग आये तो देखा तो संतजी बैठे थे। आँखों में आँसू था। और फिर बाद में बोले– हो क्या गया है इनको! बहुत पूछा बात क्या, महाराज बोलबै नहीं किये। डेढ़ साल तक वहीं बैठे अनुनय विनय करते रहे गये, एक शब्द किसी से नहीं बोले। आँसू कभी नहीं थमे। महाराज कहें– हो! गये थे सधुआई दिखाने, सबने हमारी रुलाई देखा। भगवान कहते रहे– रोवत का हो। वो घरवा नाहीं देखत हो, वहाँ जाओ। महाराज बोले– प्रभो! चाहे प्राण छूट जायें, घर तो नहीं जाऊँगा। हमसे बड़ी भूल हुई है। हमें क्षमा कर दें।

डेढ़ साल में सुनवाई हुई। भगवान ने कहा– अब तो कबौ न अइहै? महाराज ने कहा– कभी नहीं। भगवान ने कहा– थूक और चाट। अनुभव में ही महाराज ने थूका और चाटा। भगवान ने कहा– उठो फिर। इसी वक्त निकल जाओ। महाराज उठे और चल दिये। जैसे पिंजरे में बन्द पक्षी पिंजरा खुलते ही भागता है, जैसे कहीं बन्द कोई जंगली जानवर छूटने पर जंगल की ओर भागता है, उसी तरह महाराज भी चले। उस समय रात का दो बजा था। दो बजे भी एक व्यक्ति टकरा गया रास्ते में, कुटिया से निकलते ही। वह बोला– अरे संतजी कहाँ? महाराज बोले– अब जा रहे हैं। उसने कहा– भल, तोहके इहै शोभा है। जब साधु हो गये तो का रोनी सी

शकल लिये पड़े हो? कहीं मर-बिलाय जाये के चाहत रहा, इहाँ का करे चला आवत हो। उहौ ताना दिया। महाराज बतावें– हम सधुआई देखाये गये, सबने हमारी रुलाई देखा। बेटा, मरना और साधु होना बराबर है। और कोई दुनिया में हमारा है भी, घरवालों के नाम पर कोई नहीं। यदि है तो मोह है, और कहीं कुछ नहीं। हमने मोह नहीं छोड़ा, भगवानै छोड़वा दिये। हम तो दिखावे गये रहे।

६३. ट्रेन द्वारा कश्मीर की ओर

फिर महाराज ने सोचा– जन्मभूमि क्या, अब हम इस मैदानी जगह में रहेंगे ही नहीं। कश्मीर चलो। उधर ही कहीं कश्मीर के खोहा-खंदक में रहके शरीर की आयु जो शेष है, वहीं भजन करके आयु के दिन पूरा कर लूँगा। नीचे इधर आऊँगा ही नहीं। न संगदोष रहेगा, न मोह जगेगा, न कोई खतरा होगा। सीधे पहुँच गये स्टेशन, ट्रेन पकड़ी। ट्रेन जम्मू तक जाती थी, जम्मू में उतर गये।

जम्मू स्टेशन उस समय साधारण था। एक पंजाबी भगत आया और बोला– संतजी, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप काश्मीर जाना चाह रहे हैं। महाराज बोले– हाँ, वहीं जा रहा हूँ। वह बोला– अरे, आपके शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं है। वहाँ तो बहुत ठण्ड पड़ती है, बरफ गिरती है, सिर पर बरफ जम जाती है। हृदय की धड़कन रुक जाती है। धड़कन चलाते रहने के लिए

अँगीठी लटका के रखते हैं लोग गले में! उसका नाम हैं कांगड़ी। कांगड़ी लटकाये रहते हैं। ऊपर से लबादा डाल लेते हैं। पंजाबी ने कहा– भगवन्! रात भर का हमें अवसर दें, वहाँ के अनुकूल वस्त्र मैं बनवा देता हूँ। उसने आधा किलो अंगूर लाकर रख दिया महाराज के पास। पास ही में दर्जी की दुकान थी, वहाँ आर्डर दे दिया वस्त्र बनाने के लिए। वो दर्जी काट-कूट के लगा बनाने।

६४. जम्मू से चित्रकूट के लिए

महाराज खड़े-खड़े विचार करें– भगवन्! वस्त्र हमने नहीं त्यागा, वस्त्र आपने छुड़ाया है। ये वस्त्र सिला रहा है। कहते हैं– वहाँ सिर पर बरफ जम जाती है। हम सोचे वहीं रहकर बाकी की जिन्दगी काट लें ताकि संगदोष न हो। न घर जाने का मन करे, न कहीं। आखिर दुनिया में हमारे रहने की जगह कहीं है कि नहीं? तुरन्त आकाशवाणी हुई– चित्रकूट जाओ। महाराज आध्यात्मिक संत ठहरे। भगवान से प्रश्न किया– प्रभो! चित्त कूटस्थ हो जाय, सब ओर से सिमटकर अचल स्थिर ठहर जाय, इस चित्रकूट के लिए प्रयास करें या दुनिया में कहीं चित्रकूट हो धरती पर, वहाँ जायें। तो बोले– शरीर से यदि रहना है तो दुनिया में जो चित्रकूट है, वहाँ जाओ।

महाराज ने काला-काला अंगूर देखा तो उन्हें लगा कि यह जामुन है। एकदम जामुन की तरह करिया-करिया; मुँह में डाला तो

अंगूर। महाराज बतावें– हो! मैं काला अंगूर खाये हूँ। मैं कैसे बताऊँ? अंगूर काला भी होता है, ये महाराज को नहीं मालूम था। बस महाराज अंगूर हाथ में लिए धीरे-धीरे रेलवे पटरी के किनारे रात को दस-ग्यारह बजे चल दिये। कहीं तो रेलवे स्टेशन होगा, वहाँ से बैठ लेंगे। उस भाविक भक्त के ऊपर जो सुख-दुःख बीता हो, वही जाने। आगे कहीं स्टेशन मिला, वहाँ से ट्रेन में बैठ गये।

६५. जौनपुर में ज्योतिषी पर कृपा

ट्रेन चली तो जौनपुर में उतर गये। उतर के वैसे ही पैदल चलने लगे। सड़क पर एक घर दिखाई पड़ा गाँव के पास। महाराज के मन में विचार आया– इस घर को हमने कभी देखा है क्या? इतने में घर का मालिक बाहर निकला, हाथ जोड़ा, बोला– अरे महाराज, प्रसाद पा लो तब आगे जाना। एक ठाकुर का घर था। वो आये, बुला लिया, रोक लिया। तखत पड़ा था, महाराज बैठ गये। महाराज उस रास्ते से एक बार निकले थे, वहाँ प्रसाद पाया था।

जहाँ महाराज बैठे थे, एक पण्डित पहले से ही वहाँ बैठे थे। वे बोले– महाराज! मैं आचार्य पास हूँ। ज्योतिषाचार्य, न्यायाचार्य और वेदाचार्य, तीन-चार आचार्य पास हूँ। महाराज! लगता है विद्या अर्थहीन है। खाने भर का जुगाड़ नहीं है। क्या फायदा है इस पढ़ाई से! मर गये २५-२६ साल पढ़ते-पढ़ते! महाराज बोले–

पंडित, निराश न हो, कल तुमको पाँच रुपया मिलेगा। चौंक गया पण्डित, बोला– अरे महाराज, पाँच रुपया मिलेगा! उस जमाने में पाँच रुपया कुछ कहावत रहा, बहुत बड़ी चीज थी। महाराज बोले– मुँह से निकल ही तो गया, बार-बार क्या दोहराते हो! मिल जाय तो समझ लेना ठीक, नहीं तो नहीं।

बड़े सवेरे एक धोबी उधर से जा रहा था, सटासट लम्बे कदम से। ठाकुर साहब ने पूछा– क्यूँ रे फलाने, बड़ा सपाट चल रहा है, क्या बात है? वह बोला– बाबू साहब, हमें कथा सुनना है। फलाने गाँव में एक पण्डित हैं, उन्हें लेने जा रहा हूँ। ठाकुर बोले– ई क्या पण्डितजी बैठे हैं! वह बोला– एक कोस जाने की झंझट खतम। चलो पंडितजी!

गये पंडित। सुनाया कथा। कुर्ता मिला, धोती मिली, पाँच रुपया मिला और आधा मन गल्ला मिला। अब पंडित घर नहीं गया जबकि घर में गल्ला नहीं था। सोचा– महाराज कहीं चले न जायँ। सीधा गठरी सिर पर रखके पण्डित भागते हुए आये महाराज की तरफ। ऊ ठाकुर बगैर खवाये विदा न करें। महाराज वहाँ से सुबह का प्रसाद लिये और चल दिये। अभी बीघा भर निकले होंगे तब तक पंडित ने मचाया हल्ला– अरे रुक जायँ महाराज, दर्शन देते जायँ। गठरी रख दिया, लगा स्तुति करने– नमस्तुभ्यं परमहंसं....। विद्वान तो था ही, लगा धुँआधार स्तुति करने– महाराज, आपने

कहा पाँच रुपया मिलेगा, ई देखो पाँच रुपया। आप सिद्धपुरुष हैं, आप महापुरुष हैं, आपकी वाणी सच है, आप अन्तर्यामी हैं। इतना शोरगुल किया कि गाँवभर जुट गया। दूसरे गाँवों से लोग दौड़-दौड़ के चले आये। हजार-खाड़ आदमी इकट्ठे हो गये। महाराज ने सोचा– यार, दुनिया दुःखी है। अब ये हमार रोआँ तक उखाड़ लेइहैं, एनकर कउनो भरोसा नहीं है। हम कहाँ फँस गये? उन्होने पंडित से कहा– अरे, मिल गया तो क्या हो गया? अब जो। वह बोला– नहीं महाराज, आप सिद्ध पुरुष हैं। जस-जस तारीफ करे, वस-वस जनता सिमटत चली आवे। महाराज ने कहा– करे, ये धोती मिला, कुर्ता मिला और गल्ला मिला, ये मिला, वो मिला, लोटा मिला, ये थरिया मिली, ये तो हमने नहीं कहा। मिल गया तो क्या हो गया! उसने कहा– नहीं महाराज, महापुरुष अपने को छिपाकर रखते हैं।

महाराज ने कहा– अच्छा, तो तुम ज्योतिषाचार्य हो? वह बोला– हाँ महाराज। महाराज ने कहा– हमारा हाथ तो देख। जिसके अन्दर गुण होता है, उसके अन्दर ऐबो होत है, अहंकार होता है। उसने महाराज का हाथ देखा तो बोला– महाराज, आपका स्वरूप देखते हैं तब तो ऐसा असम्भव है लेकिन यदि ज्योतिष सही है तो आपको पापग्रह लगा है। जहाँ उसके मुँह से निकला 'पापग्रह लगा है', महाराज की बायीं बाँह फड़कने लगी

तड़-तड़ तड़-तड़। बन्द ही न हो। पंडित ने गठरी सिर पर रखा और चला घर की ओर। भीड़ छँट गयी सन्न देना। जब पापग्रह ही तोहें लगा है तो यहाँ खड़े होने से लाभ क्या! जब महात्माई चली गयी, पाप भर बचा है तो यहाँ खड़े रहने से क्या फायदा! अरे, ऊखी का रस निकल गया, खुइया भर फेंका है रोड पर तो के खड़ा होई वहाँ पर। भीड़ छँट गयी और महाराज खड़े रह गये अकेले। फिर भी अपशकुन हो रहा है। चल दिये तब भी अपशकुन लगा है ज्यों का त्यों! तब महाराज ने पूछा– भगवन्! उसके मुँह से निकला कि पापग्रह लगा है, उधर जबान निकली इधर फड़कना शुरू हो गया। क्या पंडित सही कह रहा है? तब भगवान ने कहा– हाँ, बिल्कुल सही कह रहा है। हम ही कहवाये हैं उसके हृदय में प्रेरणा करके। पापग्रह तो लगा है। बस महाराज सावधान हो गये। तब फड़कना बन्द हो गया।

६६. काशी विश्वनाथ मंदिर में ध्यान

महाराज वहाँ से चलकर पहुँच गये काशी विश्वनाथजी के मंदिर में। ठीक मंदिर के सामने दीवाल के पास बैठके भजन करने लगे। अब महाराज के मन में भाव आया– काशी भोलेनाथ की नगरी है, हम यहाँ आये हैं, काशी में कोई अच्छे महात्मा हैं कि नहीं? तब अनुभव में आया कि हरिहर बाबा हैं जो गंगाजी में नाव में रहते हैं। वह शिवस्वरूप में स्थित हैं, महापुरुष हैं।

६७. काशी में हरिहर बाबा का दर्शन

महाराज चार ही बजे गंगा किनारे-किनारे चलते हुए पहुँच गये उनकी नाव तक। नाव में एक विश्वनाथ नाम का उनका एक सेवक झाड़ू लगा रहा था। महाराज आहिस्ते से नाव पर चढ़ने लगे। अभी दो सीढ़ियाँ चढ़े थे, तीसरी पर पाँव रख रहे थे इतने में हरिहर बाबा भीतर से गरजे– करे विश्वनत्था! कोई महात्मा आये हैं का रे? विश्वनाथ बोले– महात्मा तो नहीं समझ में आवत है महाराज, एक नंगे-नंगे पगलन जैसा सीढ़ियाँ पर खड़ा है जरूर। हरिहर बाबा बोले– करे, अउर महात्मा कैसन होत है रे! बुला ला। ले गये महाराज के पास। हरिहर बाबा को प्रणाम किया, बैठ गये, प्रसाद दिलवाया, बातें करने लगे। हरिहर बाबा बोले– बस, जल्दी ही भगवत्-स्वरूप का दर्शन और प्राप्ति हो जायेगी। स्वरूप मिल जायेगा, लगे भर रहो। बहुत बढ़िया त्याग है।

६८. काशी-प्रयाग यात्रा में वीतरागानन्दजी (कुत्ता बाबा)

महाराज आगे बढ़ गये। चले आये कुत्ता बाबा बीतरागानन्दजी के यहाँ। उनका वैराग्य अच्छा था, त्यागी थे। गाईं रही है ६०-७०। दिखावा रहा, कुछ नहीं था। उनके न गाय में ममता रही, न खेत में रही, न किसी में रही। वो ऊपरी ढाँचा रहा, भीतर में कोई लगाव नहीं। त्याग अच्छा रहा लेकिन महाराज को लगा कि साधना अभी जागृत नहीं है। भजन अलग चीज है।

६९. प्रयाग के हँड़िया बाबा

वहाँ से महाराज पहुँच गये प्रयागराज। वहाँ बन्धा पर एक हड़िया बाबा रहते थे, नेती-धौती-नवली-वस्ति आदि योगक्रियायें करने वाले। महाराज सोचें– इनका बड़ा नाम है, ई कइसन हैं? बैठ गये वहाँ पर तो भगवान न भला बतावें, न बुरा। इसका मतलब वे कुच्छौ नहीं हैं। सधुआई लाइन की वस्तु है ही नहीं इनके पास। जो कुछ है, बाहर ही बाहर है। इतना नेती-धौती करत-करत दुबला गये रहे कि गठरी बनके पड़े हुए थे। ८० हड़िया लाइन से रखी हुई थी। किसी में अधजल पानी, किसी में पूरा। इतने में एक धोबी आया कपड़ा लेके, फेंका घाट पर और बोला– ओ बाबा, भजन करते हो? पेट में मल पड़ा है तो भजन कैसे होगा? हड़िया बाबा से योग सीख लो। महाराज बोले ही नहीं। फिर दुबारा, तिबारा कहा तो महाराज बोले– धत् तेरे की! मल मन में होत है कि चमड़ी में? चमड़ी तो मल का बना ही हुआ होता है। तैश में आकर वो धोबी नेती करने लगा। जहाँ रस्सी डाला नाक में, पता नहीं कैसे रगड़ा लग गया, मार खूने-खून। अब महाराज बिगड़े– का रे, मरौ जइहै कउनो दिन जो महात्मन के छेड़िहै। हड़िया बाबा पड़े-पड़े ताकें टुकुर-टुकुर, बोलबै नहीं किये कुच्छौ।

७०. कर्बी स्टेशन पर विचित्र स्वप्न

महाराज चले आये मानिकपुर स्टेशन। भगवान ने कहा–

गाँव जाने की तुम्हारी जो भूल थी, माफ हुई। अब तुम्हारी नौकरी भगवान के दरबार में लग गयी। बहुत खुश हुए महाराज कि पुरानी साधना जहाँ थी, वहाँ से सम्बन्ध जुड़ गया। कर्बी स्टेशन पर महाराज उतरे। छोटा-सा ग्रामीण स्टेशन। स्टेशन पर स्टेशन मास्टर, एकाध पुलिस और कहीं कुछ नहीं। एक गाड़ी आवा-जावा करे। स्टेशन की चहारदीवारी छः-छः इञ्च पर दो इञ्च चौड़ी लोहे की पट्टी से बनी थी। महाराज बैठ गये भजन में। भजन में दिखाई पड़ा– श्वेत वस्त्र पहने एक देदीप्यमान देवी आयी, बोली– हाथ खोलो। महाराज ने हाथ खोला तो हाथ पर एक मणि रख दिया। जगमग-जगमग चमकती हुई देदीप्यमान मणि। वह बोली– मुट्ठी बन्द कर लो। आज से आपको मणि प्राप्त हो गयी। एक बात ध्यान रखना, सोना मत। यदि सो जाओगे तो मणि चली जायेगी, खो दोगे।

महाराज के लिए न सोना कोई बड़ी बात नहीं थी। वे मन कर लें तो दो-तीन दिन, तीन रात बिल्कुल एक पल न सोवें। अभ्यास था। बैठ गये ठाठ से टाइट होके। लेकिन पता नहीं कि दुनिया भर की निदिया आके महाराज का पीछा कर लिया उस दिन। ऐसा लगे कि दो-तीन दिन से हम जैसे सोये ही नहीं थे। अब निद्रा लगी उड़ेरा देने। महाराज कड़ाई से लगे सामना करने। आहिस्ते-आहिस्ते चार की घण्टी बजी टन-टन-टन-टन। तब महाराज बोले–

वाह, अरे चार बज गया। अब क्या! घड़ी-दो घड़ी का मामला। रात तो बीत गयी। फिर बैठे रहें, सोचा– थोड़ा कमर हल्की सी दर्द कर रही है। चहारदीवारी के सींकचे का सहारा ले लें, कुछ आराम मिल जाय, सोयेंगे नहीं। थोड़ा सरक के वहाँ तक गये।

दो-तीन इञ्च पीठ जहाँ छू गयी सींकचे से, थोड़ा जहाँ आराम मिला, फक्क देना नींद आ गयी। महाराज को पता ही नहीं चला कि कब नींद आ गयी। तभी मैला-कुचैला कपड़ा पहने काली सी स्त्री आयी। दुर्गन्ध आ रही थी, बदरंग चेहरा था उसका। वह बोली– हाथ खोलो। महाराज ने हाथ खोला तो मणि थी, उसने मणि उठा लिया और कई दिनों का गिरा हुआ मदार के चुचके-चुचके फल जैसा एक फल रख दिया। हाथ में रखकर बोली– मुट्ठी बन्द कर लो। महाराज ने बन्द कर लिया। वह बोली– मणि तो गयी। कहा था न कि सोना मत, सो गये।

खट् देना आँख खुल गयी। दौड़ के जाके स्टेशन की घड़ी देखा तो चार बजकर दस मिनट हुआ था। पाँच मिनट तो सींकचा तक सरक के जाने में लग गया, अधिक से अधिक तीन-चार मिनट नींद आयी होगी। लेकिन मणि तो गयी। तो भगवान के आदेश में दो-चार मिनट की अवहेलना भी भगवान को बर्दाश्त नहीं है। मणि तो गयी। तब महाराज कहें– लेव परमहंस जी सोओ! अपने को गाली दें उल्टी-सीधी। बोलें– अब सोवो, जनम

भर सोओ, मणि तो गयी। सोवे तो नींद न आवे। नींद पता नहीं कहाँ चली गयी। वो तो परीक्षार्थ नींद पीछा कर रही थी। सो गये। चाहें कि नींद आ जाय लेकिन फिर नींद नहीं आयी। महाराज कहा करते थे– हो, जो उस समय हम चार-पाँच मिनट के लिए नींद न आती हमारे पास मणि होती, तुमलोग जल्दी मोर दर्शन न पाते, पहरा लगा रहता बेटा यहाँ।

कालान्तर में भक्तों ने पूछा– महाराज! ये क्या थी मणि जो चली गयी? आपने बताया 'भक्तिमणि' – **'राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर।।'** (मानस, ७/११९/२) रामभक्ति चिन्तन-मणि है। चिन्तन करो। चिन्तन का क्रम टूटने न पाये, बस यही एक मणि है। चिन्तन टूट गया, मणि गयी। गरुड़ जी! जिसके हृदय में निरन्तर चिन्तन की यह मणि बसती है–

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा।।
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं।।
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।।
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी।।
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहु ताके।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।

(मानस, ७/११९/३–१०)

यह भक्ति-मणि थी। विभक्ति माने विभाजन, अलगौझी। भक्ति माने भगवान से मिल जाना, विलय हो जाना। जो मणि प्राप्त हो गयी वो भी चली गयी जरा-सी चार-पाँच मिनट की निद्रा की वजह से। भगवान के आदेश में घट-बढ़ नहीं करना चाहिए।

७१. चित्रकूट में महाराज जी

आगे आये तो चित्रकूट। चित्रकूट में एक जगह घोड़ासी है। वहाँ भण्डारा हो रहा था। उन दिनों पूड़ी दुर्लभ वस्तु थी। भण्डारे से बची पूड़ी दो-दो तीन-तीन दिन रखी रहे और बँटे। एक ने कहा– आओ संतजी बैठो। दो पूड़ी मिलेगी। महाराज बोले– खाऊँगा तो भरपेट खाऊँगा। दो मिलेगी तो हमको नहीं करना तुम्हारा भोजन। तुम अपना भण्डारा रक्खो। वैसे ही बगैर भोजन किये चले गये दूसरी तरफ। नीचे की तरफ घाट है रामघाट। उधर एक भगत आया थाली लेके, विधिवत् भोजन कराया। उसमें कढ़ी थी, चावल था, सब कुछ था। उसने थाली लिया, प्रणाम किया, चला गया।

महाराज ने भगवान से प्रार्थना किया– भगवन्! चित्रकूट तो आ गये। चित्रकूट लम्बा-चौड़ा है। चौरासी कोस के क्षेत्रफल का नाम चित्रकूट है। अब बतावें, हम चित्रकूट में कहाँ रहें? तब अनुभव में आदेश मिला– सती अनुसुइया जाओ।

७२. अनुसुइया की ओर

बड़े सवेरे महाराज उठकर सती अनुसुइया की ओर चल पड़े। अकेले। रास्ता केवल पगडण्डी का था वह भी कुछ ही दूर। जानकी कुण्ड से जब आगे बढ़े, चार-छः किलोमीटर के बाद घनघोर जंगल, जहाँ कुल्हाड़ी कभी चली ही नहीं थी। चीता घरों के ऊपर चढ़ आवा करे। चार-छः किलोमीटर तक घर इत्यादि थे, फिर घर भी नहीं। चीता, भालू, शेर.....! चलते-चले गये। कँटीली झाड़ियाँ शरीर में चुभ-चुभ जातीं। झाड़ियों को उठाते-हटाते महाराज आगे बढ़ते ही चले गये। दिनभर चले। शाम के समय में एक चरवाहा गाय ले के रास्ते पर आ गया तो बोले– क्यूँ रे अनुसुइया कितनी दूर है? वह बोला– बस महाराज, जुमुक (पहुँच) गयो, पास ही में है एक क्वास। एक फर्लांग है तो एक क्वास। इस पहाड़ के बीच में, उस पहाड़े के नीचे सीधे चले जाइये।

७३. द्रौपदीबाई

महाराज मन में विचार कर रहे थे – साधु के लिए पापग्रह है संगदोष, वो भी माई-दाई का संगदोष। ऐसी जगह में भगवान हमको भेज रहे हैं जहाँ न आदमी न आदमी की जात। घनघोर जंगल। संगदोष से तो सहज ही मुक्ति मिल गयी, ये सोचते हुए जा रहे थे। उन्होंने पूछा– क्यूँ रे, वहाँ कोई रहता तो नहीं? वह बोला– हाँ महाराज, एक बाईजी रहती हैं। इक्कीस साल के करीब उमर

है। कोठरियाँ बहुत हैं वहाँ पर, लेकिन किसी कोठरी में किवाड़ी नहीं है। एक कोठरी में किवाड़ी है, उसी में रहती हैं। दिनभर बन्द रहती है, शाम को जब देखती हैं कि जंगल में कोई नहीं है तब बाहर निकलती है। लोटे में पानी लेके, अगरबत्ती लेके २५-३० जो देवता हैं जंगल में, उनपे पानी छिड़कते हुए, अगरबत्ती दिखाते हुए सबकी पूजा कर डालती हैं। यही उनकी पूजा है।

जहाँ बाईजी का नाम सुना, तो महाराज को अपशकुन होने लगा, सोचा– उसकी नियत है तो खराब। है तो गड़बड़। अच्छा, पहले उसी का दर्शन कर लेंगे। बाईजी, बहनजी, माताजी, जगदम्बा, भवानी कुछ कह देंगे तो उसका कुत्सित विचार भी वात्सल्य में बदल जायेगा। पहले उसी को देख लें। उसके दरवाजे पर जाकर बोले– माताजी, हम बाबा हैं, दर्शन करना चाहते हैं। बाईजी दरवाजा खोलो।.... संतजी.... कई तरह से पुकारा। वह बोले न, खन्न-खट्ट करे कि मैं हूँ, उपस्थिति जतावे, दरवाजा न खोले। इतने में महाराज के अन्दर भाव आया– मान लो पापग्रह ही लगा है तो मैं अपनी रक्षा करनेवाला कौन होता हूँ? रक्षा करनेवाले तो भगवान स्वयं हैं। मैं कौन-सी बाईजी का दर्शन करने चला आया हूँ? तुरन्त हट गये वहाँ से।

महाराज थोड़ा दहिने-बायें, आगे-पीछे हुए तो कुछ सीढ़ियाँ दिखाई पड़ गयीं। लगभग दो सौ से सीढ़ियाँ पहाड़ पर चढ़ने के

लिए थीं। चढ़ते ही चले गये। ऊपर एक तखत था काफी पुराना। चार खम्भों पर एक बैठका था, ऊपर छत पड़ी थी। सड़े-गले मकान तमाम गिरे हुए थे। किसी में भालू, किसी में अजगर - ये उन्हीं का निवास था। जहाँ वो तखत था, उसके ठीक सिर के ऊपर एक ताखे में छोटे से हनुमानजी रखे हुए थे। महाराज उस तखत पर जाके बैठ गये।

बाईजी ने देखा, कोई नहीं है। जंगल खाली। तब लोटे में पानी लिया और कुशा से पानी मूर्ति पर छिड़कती, अगरबत्ती घुमाती, ई मूर्ति, ऊ मूर्ति सब जगह छिड़कते-छिड़कते सीढ़ियाँ चढ़ गयी जहाँ महाराज बैठे थे, उनके सिर के ऊपर भी मूर्ति थी, उसकी पूजा करने। उसने तखत में बैठे महाराज को देखा, काँप गयी, डर गयी तो महाराज के सीने में धड़कन होने लगी धड़-धड़-धड़-धड़। महाराज सोचे– ऐं, कोई डर रहा है क्या? धड़कन किस बात की? शेर आ गया कि भालू आ गया कि अजगर है? बात क्या है? जहाँ आँख खोला तो सामने पाँच फीट नीचे द्रौपदी बाई खड़ी थी। महाराज समझ गये, यही भवानी वहाँ रहती है। वह बोले– अरे माताजी, हमीं वो बाबा थे जो दर्शन करना चाहते थे। हम महात्मा हैं, निश्चिन्त रहें। आप पूजा करें और जायँ। लेकिन वह आगे नहीं बढ़ी। महाराज ने सोचा– लगता है यह डर गयी है। महाराज उठे और थोड़ा अलग हट गये। जहाँ चार कदम इधर

हटे, वह दौड़ के आयी, पानी और अगरबत्ती मूर्ति पर एक ही साथ फेंका और फन-फन-फन-फन भागी। तीन दिन महाराज वहाँ रहे, फिर लौट के पूजा करने नहिंयैं आयी वहाँ पर।

७४. सिद्धबाबा का करामाती तख्त

महाराज तख्त पर बैठे थे। दिया न बत्ती, टार्च न माचिस, कुछ नहीं। शरीर पर वस्त्र नहीं, एकदम दिगम्बर। रात को आवाज आयी– ये हमारी जगह है, आप नीचे जाइये। महाराज सोचें– गजब हो गया, झूर कठवा (सूखा काठ) बोलत है। दूसरे दिन ठीक नौ बजे वही आवाज आयी– महाराज, हम पतित हो गये हैं। ये हमारी जगह है। आप नीचे जाइये। तब महाराज ने सोचा– ये कोई बहुत अच्छे महात्मा थे। लगता है थोड़ा सा चूक गये। ये आश्रम उनका है। तीसरे दिन रात में फिर आवाज आयी– आपकी जगह नीचे है। महाराज ने विचार किया कि पतित होने के बाद भी ये इतना जानता है कि हमारी भी जगह नीचे है तो हम क्यों न अपनी जगह जायँ। यह पतित होने के बाद भी जानता है कि हमारी भी जगह नीचे है, इसका मतलब यह त्रिकालज्ञ महात्मा हैं। उठे महाराज, आहिस्ते-आहिस्ते चलते हुए नीचे चले आये मंदाकिनी गंगा के किनारे। वहाँ कोठरियाँ थी लाइन से सात। उसके बाद में एक विशाल शिला – ब्रह्मशिला। उसके आगे एक चबूतरा, उस पर बैठ गये। तब आदेश हुआ कि थोड़ा दक्षिण की ओर बढ़ जाओ

तो सीढ़ियों के किनारे चबूतरे पर बैठ गये। तीसरे दिन आदेश हुआ– थोड़ा-सा उत्तर की ओर बढ़ो। एक-एक कदम बढ़ाते हुए जब चबूतरे के बीच में आये तब आदेश हुआ कि बैठ जाओ। जनम भर यहीं रहना है। तुम्हारी जगह यही है। बस आप बैठ गये।

७५. शेर का निवास

तीन कोठरी इधर, तीन कोठरी उधर। अन्तिम कोठरी में खून से लथपथ हड्डियाँ, चमड़े के ताजे टुकड़े, कहीं खून घसीटा हुआ। महाराज ने सोचा– बदल-बदल के हड्डियाँ कौन फेंक जाता है? पाँच-सात दिन तक यही क्रम चला। एक दिन रात नौ बजे के करीब ध्यान उधर ही दिया तो बड़ा शेर भीतर जा रहा था, बाहर आ रहा था, महाराज को देख रहा था। दूरी केवल इतनी, छलाँग मारे तो सीधा महाराज के ऊपर आवे। महाराज बोले– अरे बेटा! तूँ भी यहाँ रहता है। अब भगवान हमके यहाँ भेजे हैं रहने के लिए तो तू अपनी जगह बदल ले। जनम भर रहो, ठाठ से रहो।

दूसरे दिन एक कोल-भील दिखाई पड़ा। महाराज बोले– क्यूँ रे, इस कोठरी में झाड़ू नहीं लगा देगा? वह बोला– हौ महाराज! पत्तियाँ-सत्तियाँ समेट के, डालियाँ तोड़ के झाड़ू बनाया और उसमें झाड़ू लगा के हड्डी वगैरह जो कुछ था, बाहर फेंक दिया। वह तुम्बड़ी लिए था, उसमें पानी भरके लाया और धुल दिया। उस दिन से शेर उस कोठरी में कभी नहीं गया। फिर वो इधर ब्रह्मशिला

पर बैठा रहे, छत के ऊपर बैठा रहे, ऊपर से पाँव लटका के देखा करे, सामने नदी किनारे लेटा रहे लेकिन कोठरी में नहीं गया। पन्द्रह साल जिया, वैसे ही रहे। कभी-कभी लोग आवें तो देख लें, बोले– महाराज, शेर-शेर। महाराज कहते– हमार पहरेदार है रे, तू चिन्ता मत कर।

७६. हिंसक पशुओं एवं बर्बर डाकुओं के बीच

आश्रम के सामने एक कुआँ था। गोल चबूतरा फिर कुआँ। चबूतरा पर तो महाराज बैठे ही थे। कुएँ के नीचे बालू, बालू के नीचे मंदाकिनी गंगा। शेर बालू में आके लेटा रहे। रात नौ-दस बजे आवे, लेट जाय। सबेरे चार-पाँच बजे उठ के स्पीड पकड़ ले और एक छलाँग में नदी के पार चला जायँ। चिक-पिक सुनाई पड़े तो महाराज समझ जायँ कि भोजन की जगह पहुँच गया।

महाराज चबूतरे पर दिन में एकाध बार घूमे। उसी चालीस फीट में सर्प पर पाँव पड़ गया। सर्प ने पाँव लपेट लिया। जहाँ झटका तो गिरा धड़ाम। सीधा होके शान्ति से चल दिया। सर्प पर कोई प्रतिक्रिया नहीं जैसे कुछ हुआ ही नहीं। काला भुजंग। एकदम काला वाला सर्प शान्ति से बढ़ गया आगे उसी चाल से, क्यूंकि उन सर्पों ने कभी मनुष्य तो देखा नहीं था वो भी निर्भीक रहे। ऊपर अजगर लम्बे-लम्बे, मोटे-मोटे। रात्रि में शेर सामने से निकल जाया करे। कभी-कभी बोले तो पूरा पहाड़ झनन-झनन किया करे।

जंगली शेर की आवाज बहुत बुलन्द होती है। ये पिंजरेवाले शेरों में और उसमें जमीन-आसमाँ का फर्क होता है। बहुत बुलन्द आवाज होती है, मरियल आवाज नहीं होती है। हऊँऽऽ.... हऊँऽऽ.... जहाँ दहाड़ा तो पहाड़ झन-झन-झन-झन करने लगते हैं। इस पहाड़ से भी आवाज आयेगी, उससे भी आयेगी यदि पास-पास में है तो।

महाराज नदी का पानी पीते थे। एक खप्पर था महाराज के पास। बैठे रहें, चुपचाप भजन करें। ऊपर बर्बर डाकुओं का अड्डा था। एक दिन डाकू पहुँच गये। एक आगे बढ़के बोला– अरे एइठे एक बाबा बैठे हैं। तो सरदार बोला– चेचुरा पकड़ के नदिया में पटक दे। दूसरा बोला– बाबा नीक है। सरदार बोला– नीक-नागा का करि! जब बाबा है तो कोई न कोई इसके पास आयेगा, हम लोगों के अड्डे की पोल खुल जायेगी, फेंक दे। दूसरा बोला– अबैं तो ठीक हैं, जब उपद्रव करी त फेंक देब। आपस में गुपचुप बातें किया और चुपचाप लौट गये। महाराज बोले ही नहीं, बैठे रहे।

७७. भोजन का आदेश

उसी दिन जब पेशाब करने जब उठ के गये तो खून जैसा दिखाई पड़ा अत्यधिक गर्मी की वजह से। महाराज सोचे कि खून गिरने लगा है, और शरीर में क्या रखा है? चार दिन में शरीर छूट जाई। महाराज कहें– भूख-प्यास की हमें परवाह न रहें, न भूख

लगे हमें। वो तो ठीक था लेकिन खूनवा देख के थोड़ी करुणा आ गयी, भगवान को दो-चार जद्द-बद्द कह दिया– इष्टदेव बने बैठे हो! घोर जंगल में लाके पटक दियो, न खाये का न पीये का। जब शरीरिया न रही त भजन के करि! अब खून गिरना शुरू हुआ है, चार-छः दिन में शरीर छूट जाई, और का होई! उस दिन भगवान ने कहा– ठीक है, जब खाये का उतारु हो तो कल से खाओ। महाराज सोचे– जंगल में मैं खाऊँगा क्या! यहाँ है क्या जो खायेंगे!

दूसरे दिन १२ बजे पदचाप सुनाई पड़ा कि कोई व्यक्ति आया और सीढ़िया चढ़ा। फिर वापस लौटा और चला भी गया। महाराज जी को कितनी भी भूख हो, कुछ भी हो, व्यक्ति से आशा नहीं करते थे। माँग भी नहीं सकते थे। वो भगवान भरोसे थे। फिर शाम को चार बजे जब टहलने का समय आया, टहलते-टहलते चबूतरे के किनारे आये तो सीढ़ियाँ पर आधा मन चना रखा हुआ था। जहाँ चना पर दृष्टि पड़ी, तब भगवान ने कहा– आज तुमको यही खाना है। कच्चा चना कोई कहाँ तक चबायेगा! महाराज ने एक मुट्ठी चबा के पानी पी लिया। थोड़ा खप्पर में भी भर लिया।

पेड़ों पर बंदर पहले से थे। पता नहीं उन्हें क्या हुआ, चार-छः घण्टे से चना वहाँ पड़ा हुआ था, उन्हें पहले दिखाई नहीं पड़ा। ज्योंही महाराज ने चने लिये, सब कूद पड़े। टपा-टप टपा–टप सब चना उठा के खा गये। महाराज कहे– हो, यहाँ बन्दरो

रहा। हम जब तक नहीं उठाये, तब तक उनको दिखाई नहीं पड़ा। उस दिन से अयाचित व्यवस्था होने लगी भगवान की तरफ से।

फिर महाराज सोच में पड़ गये कि भगवान ने ये रूखा वचन क्यों कहा कि खाये का है तो कल से खाओ। आखिर भगवान हमसे चाहते क्या थे? जब ये विचार आया तो भगवान ने बताया– यदि तुम २१ दिन न खाते तो जनम भर खाना न पड़ता। जस के तस यहाँ बैठे रहते। हवा भर भी चेहरा न मटकत। चेहरे पर किसी प्रकार की ग्लानि, शिकन न आती। कालान्तर में यह बातें जब महाराज बताते तो एकदम बाल पकड़के नोचने लगे, बाल उखाड़ के फेंक देते। वे कहते– का बताईं, चौदह दिन तो बीत ही गये, सात ही दिन बाकी थे। वो भी बीत जाते। भगवान भी इतनी कड़ी परीक्षा लेते हैं। खूनवा देख के करुणा आ गयी हो! बाकी भूख-प्यास का हमें भान ही नहीं था। भगवान भी इतनी कड़ी परीक्षा लेते हैं। अरे कह देते 'बेटा, सात दिन और धीरज धर' तो भगवान का क्या बिगड़ जाता। तब फिर बेटा, यहाँ पहरा लगा रहता। जल्दी तुम मोर दर्शन न पाते।

७८. डाकुओं का हृदय परिवर्तन

आरम्भ में जो डाकू महाराज को देख के चले गये थे, एक महीना बाद शाम के समय उनमें से दो डाकू दिखाई पड़े। एक तो सरदार और एक उसका सहायक। वे घोर जंगल की ओर निकल

गये। गये थे खाली हाथ, बड़े सवेरे लौटे, काफी गठरी-फठरी थी। माल-पानी से लैस। गंगा किनारे गठरी रख के सरदार तो दतुवन करने लगा। उसका सहायक चीनी का शरबत घोलने लगा। वह बोला– इहाँ एक बाबा बैइठ है, एहू के पिआय देऊँ? सरदार बोला– तोर मन हौ त पिया दे। वह वहीं बैठे-बैठे बोला– करे बाबा, चीनीआ घोरी है, पीइहै! आव ले ले। महाराज बोलबे नहीं किये। फिर बोला– बाबा, पी ले। का तोके शनीचर घेरे है, आउ पी ले। दो-तीन बार कहा तो महाराज बोले– हम चोरी का धन नहीं खाते। इतना सुनते ही दतुवन फेंक के सरदार ने लोहा बँधी लाठी उठाया, दौड़ा, बोले– तोरे बाबा की ऐसी की तैसी! हम तबै कहे रहे कि मार के फेंक दे। उपद्रव किया न! कहता है चोरी का धन! सब रजाई ओढ़ के जाड़े के महीने में घरों में शयन कर रहे हैं, हम घोर जंगल, शेर, चीतों, भालुओं से भरा हुआ, अजगर और सर्पों से भरा हुआ, झाड़ियों के इस पार उस पार कर रहे हैं, इ खरी कमाई का है कि इ चोरी का? अब लगाया सपाट दौड़ कि अभी मार के गिरा देंगे और नदिया में डूबा के चल देंगे। वो दौड़ा उधर से, इ गिलास औ लौटा फेंक उसको कमर से पकड़ लिया। अब गुत्थमगुत्थ गुत्थमगुत्थ आधा घण्टा लड़े, बोले– मार के फेंक ही न दिया तो हम डाकू किस बात के! दूसरा बोला– अरे रुक जा, मार के फेंक देइहै लेकिन हमलोग इतना माल लिये हैं, पाँच किलो

चाँदी है, ई है, ऊ है, और कोई न कोई आता होगा, पोल खुल जाई त उपद्रव खड़ा हो जायेगा। पहले माल इधर-उधर कर दें, तब आयेंगे। मार डालेंगे या बाबा डर के मारे भागी जाई। फिर उन्होंने गठरी उठाया, मुँह नहीं धोया, दाँत पीसते हुए, अड्ड-बड्ड बोलते हुए दोनों चल दिये– अच्छा त बाबा शाम के हम तोहार खबर लेब आय के। चले गये।

उस दिन तो नहीं आये लेकिन तीसरे दिन एक डाकू को और साथ में लिया। पहले थे दो, हो गये तीन। अब तैयारी से आये केवल मार करने। भगवान बताते कि अब वो लोग आ रहे हैं। आपने भगवान से कहा– प्रभो! ऐसे राग-द्वेष की जगह में काहे बैठा दिये। भगवान ने कहा– हम बैठाये हैं तो बैठे रहो। तुमसे मतलब! डाकुओं का गाँव आठ किलोमीटर पर था। अनुसुइया से दो किलोमीटर पर एक नदी पड़ती है झूरी नदी। उस पर आये, हाथ-पाँव धोया। ज्यों उससे थोड़ा ऊपर चढ़े महाराज के निवास की ओर, दो शेर आपस में लड़ गये बुरी तरह। कड़ी जमीन। उनके नाखूनों से बहुत गर्दा उड़ा। डाकूजी पास ही में थे झाड़ी में। धुप्प अंधेरा। गर्दा उनके ऊपर गिरे। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उन्हें ये नहीं समझ में आवे कि शेर आगे लड़ रहे हैं कि दाहिने लड़ रहे हैं कि बायें लड़ रहे हैं। भागे तो किधर भागें? कहीं भाग के उनके मुँह में न चले जायँ। संज्ञाशून्य होके खड़े रहे तीनों। एक घण्टा

तक युद्ध चला, फिर एक शेर आगे, एक पीछे एक तरफ निकल गया। सब बगैर एक दूसरे से बोले लौट पड़े वापस नदी किनारे। शेर की लड़ाई के समय महाराज को सगुन मिलने लगा कि अब ठीक है।

डाकू नदिया किनारे आ गये। फिर वहाँ बैठ के थोड़ा सुस्ताये। फिर सरदार बोले– चलो चलें। एक बोला– भई, जिन्दगी इसी जंगल में बीत गयी, इतनी भयंकर दुर्घटना कभी नहीं घटी। ये बाबा कुछ जानत है। सरदार बोले– बाबा का जानत है! जंगल है, शेर हैं, हमहूँ हैं, भेंट हो गयी! और क्या हो गया! चलो चलें। दूसरा बोला– जोगनी अनुकूल नहीं है। सरदार फिर बोला– अरे चलो! तब दोनों साथी बोले– हमारी हिम्मत नहीं है। उन्होंने लाठी उठाया, वापस चल दिये घर की ओर। अकेला सरदार क्या करे! वह भी पीछे-पीछे चला आया।

घर आते ही सरदार को चढ़ा बुखार सन्निपात! उनकी दुर्दशा का पता महाराज को भगवान देते रहते थे। साठ उपवास हो गया, तब उसका सहायक भाग के आया महाराज के पास, प्रणाम किया। महाराज ने कहा– का पाँड़ें, साथी का क्या हाल है? वह बोला– महाराज, जाने पर भेंट हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है! महाराज बोले– और सतइहै कउनो महात्मा के? वह बोला– हमलोग जंगली है महाराज। हमें का पता, के महात्मा है के नहीं

है! साथी बच जाता तो बड़ी कृपा होती। पता ही होता तो भला हम ई काम क्यों करते? महाराज बोले– अब तो न करिहै? वह बोला– कबौ नहीं महाराज। हमार साथी बच जात तो बड़ी कृपा होती। महाराज बोले– अच्छा, उठा विभूति! भाग जल्दी। उसने विभूति लिया, अपने खाया, लगाया श्रद्धा से, बाँधा साफी के पल्ले में। महाराज ने कहा– देख, जियत विभूति पा जाइ तो मरि ना। और मरि गया होई त हम का करें रे। इतने दिन कहाँ था? पहले क्यों नहीं आया? फिर भागा वहाँ से आठ किलोमीटर एक श्वाँस में पहुँचा। जाके मुँह में डाला। पूरे शरीर में लगाकर बोला– परमहंस बाबा भेजे हैं, अब मरिहे ना! जहाँ महाराज का नाम सुना तो सरदार साँय-साँय बोला– ओही मार डरिहौं! ओही मार डरिहौं! खटिया से नीचे गिरा जाय तो सबने दबाते हुए कहा– मार डालना, पहले नीक तो हो जा। उसे दबा के रखा। बस उसी दिन से बुखार उतर गया। दूसरे दिन जूस दिया। सरदार बोला– पहले मैं महाराज का दर्शन करिहो जिन्होंने मुझे प्राणदान दिया। फिर बैलगाड़ी में लाद के और रस्ता बनाते हुए गाँव भर के लोग उसको ले के आये आश्रम। महाराज का दर्शन कराया। वापस चले गये। सबका डाका छूट गया, चोरी छूट गयी। उनमें बहुत से साधु हो गये। गिरोह खतम हो गया। वहाँ पर और भी गिरोह थे, सब दहिने-बायें चोरी तो करे लेकिन अनुसुइया में महाराज के चारो

तरफ नहीं। वे सबको समझाते– परमहंस जी के रास्ते में बच के रहना रे नहीं तो भागे न बचिहो, मारे जाओगे। डर के मारे महाराज के चारो तरफ पाँच किलोमीटर में कोई घटना नहीं घटी २६ साल तक, जब तक महाराज ने वहाँ निवास किया।

७९. भजन की पराकाष्ठा

महाराज जिस चबूतरे पर पर थे उसके ठीक आगे बीचोबीच एक गोल चबूतरा और था। उसके बीच में झाड़-झंखाड़ था थोड़ा। वो था कुआँ। महाराज को नहीं मालूम था कि कुआँ है। वो तो छः महीने बाद झाड़ी कटी तो वो कुआँ निकला। भीतर एक कंकाल निकला। बर्बर डाकुओं का एरिया, कोई फेंक दिया होगा किसी को या कोई गिर गया होगा। महाराज ने कुएँ की सफाई करवायी और उसी का स्वच्छ पानी पीने लगे।

महाराज जब अनुसुइया पधारे, न कोई आगे था न कोई पीछे। वह अकेले अपने आसन पर बैठे रहे गये दो दिन तक। दिया-बत्ती कुछ नहीं। लेकिन दो-एक साल हो गया तो धूना जल गया था। धूने पर बैठे रहें। भगवान कहें– बस डटे रहो। यही जगह है तुम्हारी। आहिस्ते-आहिस्ते एक-दो शिष्य हो गये। साधना काल में रात-दिन भजन। सोते-जागते भजन। और कोई काम नहीं। दिन में देखो तो ध्यानस्थ होके बैठे हैं, रात में देखो तो बैठे हैं। कभी गंगा किनारे, कभी सीढ़ियों के पास, कभी झाड़ी के पास। संगदोष

नाम की कोई चीज थी ही नहीं। बरसात में तो चार-चार महीने आदमी से भेंट न हो कि आदमी होता कैसा है! बस शान्ति से भजन में बढ़िया मन लगा करे। भगवान भी कहें– बस बैठे रहो। जब दो-एक साल बीता भगवान ने बोलना बन्द कर दिया। महाराज सोचे कि कोई गलती हो गयी क्या! दिमाग ही उड़ गया। बात क्या? भगवान ने बात ही करना क्यों बन्द कर दिया? क्यों? क्योंकि आगे कुछ बताने के लिए था ही नहीं, क्या बतावें! अन्तिम स्तर पर आ गये तो एकदम शान्त।

८०. गर्भवास से छुटकारा

अनायास फिर आदेश मिलने शुरू हुए। भगवान ने फिर बताना शुरू किया। एक बार गुरु महाराज को दिखाई पड़ा अनुभव में - आकाश में एक चमड़ा तना हुआ है। पता नहीं कितना लम्बा-चौड़ा, समाशुद्ध (ओर-छोर) नहीं। उस चमड़े में अनन्त योनियाँ! सबमें एक-एक जीव मूड़ी निकाले तड़प रहे हैं, तरस रहे हैं, हाय-हाय कर रहे हैं। गर्भवास की यातना झेल रहे हैं। उन यातनाओं से मुक्ति चाहते हैं इसलिए पुकार रहे हैं। मैं भी उसी में था, उन योनियों के बीच में। अनायास दैवयोग से मैं बाहर निकल आया, खुले आकाश में चलने लगा तो सबने एक स्वर से कहा– बड़े भाग्यशाली हैं। इन्हें तो गर्भवास से छुटकारा मिल गया। ये तो मुक्त हो गये। हम खुले आकाश में उन्मुक्त वातावरण में चले जा

रहे हैं। मेरा शरीर स्वच्छ है, देदीप्यमान है। एक अनुभव गर्भवास से छुटकारा। फिर तो महाराज कोई लापरवाही करे भजन में तो डाँट के एक छड़ी मार दें, बोलें– सूतत है। एही पराक्रम के माथे भजन होई। महतारी का गरभ छुड़ावै आया है। भाग यहाँ से, घर जा। तोसे भजन न होई। एक बार डाँट पड़ जाय तो महीना भर के लिए चाभी भर जाय। फिर नींद न आवे। टाइम-टेबुल पक्का हो जाय। भजन होने लगे। महापुरुष डाँटते हैं तो कल्याण के लिए; न कि मारते हैं।

८१. यमराज से छुटकारा

एक दिन अनुभव में दिखाई पड़ा कि बड़ा भारी भैंसा, १५ फीट ऊँचा और ऐसे ही २५-३० फीट लम्बा, भयंकर सींग हाथ-हाथ भर के, डेढ़-डेढ़ हाथ के रोएँ, मस्ती में चलता हुआ। महाराज को देखा तो पीछा कर लिया। आगे महाराज, पीछे भैंसा। महाराज दौड़े, एक स्वच्छ तालाब था, जलाशय, उसमें कूद पड़े। भैंसा भी सीधा, जहाँ महाराज कूदे थे, वहाँ कूदा। महाराज पानी के नीचे-नीचे तैर के इस पार आके बाहर खड़े हो गये। महाराज को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भैंसे का रोआँ गल गये, चमड़ी गल गयी, माँस गल गया, हड्डियाँ गल गयी, सींग गल गये और भैंसा विलुप्त हो गया। तब आवाज आयी– आज से काल पर विजय हो गयी। कालजयी हो गये। इतने में वो महात्मा - शुरू में जिन्होंने आशीर्वाद दिया

था– 'जो केहू से न पटकइहैं। कहत हैं केहू से न पटकाऊँ, केहू से न पटकाऊँ, जो फिर केहू से न पटकइहैं....' वो महात्मा झण्डा लेके पीछे खड़े थे, मुस्कुरा रहे थे। महाराज की निगाह पड़ी तो आहिस्ते से उन्हें प्रणाम किया। समझ में आया– अच्छा! उन्होंने यह आशीर्वाद दिया था। शरीर से जीत भी जाते तो परिणाम हार ही थी। शरीर भी बुड्ढा होता, ये भी मरता। वास्तविक विजय है काल पर विजय।

८२. स्वरूप की प्राप्ति

एक बार महाराज ने अनुभव में देखा कि वे मर गये हैं। भजन में बैठे थे, रात्रि के समय ब्रह्मबेला में ये आते ही हैं अनुभव। सुषुप्तिसुरा सम्बन्धी अनुभव। शरीर जागता रहे, मन शयन करे। भजन के समय में ऐसे दृश्य आते हैं। मैं मर गया हूँ और अपनी लाश को गंगा किनारे मैं ही फूँक रहा हूँ। लकड़ी इकट्ठा करके, चिता तैयार करके अपनी लाश को उठा के मैं ही उसपर रख रहा हूँ। रख के तैयार करके मैं ही चिता में आग लगा रहा हूँ। धाँय-धाँय लाश जलने लगी। जलके एकदम राख हो गया। फिर वो राख गंगा में बहा दिया। फिर देखा कि जमीन में जहाँ-तहाँ कुछ काला-काला दिखाई दे रहा है तो लकड़ी से खरोंच-खरोंच के वो भी बहा दिया। हड़िया में पानी लेके उस जगह को, चितास्थली को धो दिया। और अन्त में हड़ियउ उसी में बहा दिया। वो लकड़ियों के

साथ राख और कोयले के साथ हड़ियउ बही जा रही है। तब खड़ा होके हमने देखा बहती हुई राख, लकड़ियों, कोयले के ढेर को। इतना करने में हम एकदम थक गये, पसीना-पसीना हो गये, थक के काफी चूर हैं। खड़े होके देखा गंगाजी की तरफ तो उन कोयले, राख के ढेर में से एक पुरुष निकला, एक पुतला निकला। वो आदमी का रूप बन गया। वो हमारा ही रूप बन गया। स्वर्णिम पुरुष! प्रकाश फेंक रहा था जगमग-जगमग। किरण फेंकता हुआ पुरुष हमारी ओर बढ़ा। पानी के ऊपर चलते हुए हमारी ओर चला आ रहा था। वो डूब नहीं रहा था। ऐसे चल रहा था जैसे कोई जमीन पर चले। नीचे से लहर चल रही है। हमारे सामने आया तब आकाशवाणी हुई– प्रणाम करो। महाराज ने प्रणाम किया। आवाज आयी– यही तुम्हारा स्वरूप है। अब स्थूल, सूक्ष्म, कारण वो तीनों शरीर फूँक-ताप गया, अब जो शेष बचा है, ये आत्मस्वरूप, यही परमात्मस्वरूप। अब से तुम्हें इसी स्वरूप में रहना है। यही तोहार स्वरूप है। महाराज कहें– हो! उस दिन से हमरे स्थूल शरीर का रूपवै बदल गया। पहिले करिया-करिया न जाने कैसे रहा। भद्दा। उस दिन से देहियो क रूपवा बदल गया हो। ये शरीर का स्वरूप, वो आत्मस्वरूप–आत्मदर्शन, स्पर्श और स्थितिवाला स्वरूप।

८३. माता अनुसुइया द्वारा भोजन और लक्ष्मी द्वारा सेवा

कभी-कभी वहाँ आटा आ जाय, नमक-रोटी बन जाय, कभी

अचार-रोटी बन जाय – यही रहा करे भोजन। एक दिन महाराज भजन में बैठे थे। अनुभव में दिखाई पड़ा– माता अनुसुइया छप्पनों प्रकार के भोजन से भरा थाल लेकर महाराज के पास पहुँची, महाराज के सिर पर हाथ फेरा, अपने हाथों से विधिवत् भोजन कराया और कहा– यहीं रहो! यह हमारा स्थान है, तुम्हे यहीं रहना है। यहाँ पर तुम्हारी सभी व्यवस्था होती रहेगी। चैतन्य होने पर महाराज को लगा कि उनका पेट भरा हुआ है और जिन पकवानों का आस्वादन उन्होंने अनुभव में किया था, उनके अलौकिक स्वाद और सुगन्ध की अनुभूति प्रत्यक्ष हो रही थी।

ऐसा ही एक और अनुभव महाराज को दिखाई पड़ा– महाराज अपनी कोठरी में जाना चाहते हैं, एक देवी श्वेत वस्त्र पहन के खड़ी थी गेट पर, बोली– आप अन्दर नहीं जा सकते। महाराज चिन्ता में पड़ गये, बात क्या? हमारी कोठरी, हमीं को मना कर रही है। वह बोली– अन्दर लक्ष्मीजी चरण-सेवा कर रही हैं। महाराज सोचे– के है जो हमरी कोठरी में घुस गया। डेढ़ फीट जितनी केवाड़ी खुली थी। कमरे के भीतर पूर्ण प्रकाश था। महाराज ने देखा– मैं ही सोया हूँ, एक बहुत देदीप्यमान देवी सोलहो शृंगार करके हमार चरण दबावत है। हमारा शरीर ऐसा नहीं है, जैसा है। एकदम स्वर्णिम, दकदक चमकता हुआ है। अन्दर लक्ष्मीजी चरण-सेवा कर रही है। बस दृश्य खतम।

उस दिन से आकाशवृत्ति से व्यवस्था होने लगी। चारों तरफ से व्यवस्था होने लगी। ठण्डई बनने लगी। पुष्कल भोजन बनने लगा। महाराज कहें– हो, लक्ष्मी जी मोर सेवा करत है। मैं चाहूँ तो विश्व को खिला सकत हूँ। **ता घर लक्ष्मी झाड़ू देत हैं, सम्भू करे कोतवाली। जा घर ब्रह्मा भये टहलुआ, विष्णु करे रखवाली।। तवन घर चेतिहे रे भाई। तोरा आवागमन मिटि जाई।।** हो, बिल्कुल सही है। बस इस घटना के थोड़े ही समय में लगातार एक-दो दिन के अन्तराल से फिर अनुभव मिलने लगे और भगवान की विभूतियाँ शनैः-शनैः प्रकट होने लगीं।

८४. चित्रकूट से काशी की रामलीला का दर्शन

एक बार चित्रकूट में बैठे-बैठे सुनाई पड़ा – रामनगर काशी में रामलीला शुरू होने वाली है तो महाराज बोले– हो, एक बार हमने रामलीला देखी है महीना भर। हमारा मन है कि एक बार मैं रामलीला फिर देख लूँ। फिर विचार किया, चलो देख आवें। उठ के खड़े हो गये। तब भगवान ने मना किया। चलने को तैयार हुए, जब चलने को पाँव आगे बढ़ाया तब भगवान ने मना किया– मत जाओ। रुक गये। महाराज बोले– भगवन्! देखे का मन तो था लेकिन आप मना करते हो तो नहीं जायेंगे। शाम को चिलम भर के, हाथ में लेके बैठे तो खींचा नहीं। हाथ की हाथ में रह गयी। घण्टा भर बैठे ही रह गये। चिलम बुझ गयी। फिर चेत हुआ।

बोले– यार, मैं उड़त-उड़त रामनगर पहुँच गया रहा हूँ। वहाँ रामलीला देखा। ये था, ये हुआ, वो हुआ.... और रोज....।

एक दिन महाराज बहुत उदास। शाम को घटना नहीं बताये। सुबह बताने लगे आठ-नौ बजे के करीब। महाराज बोले– गजब हो गया। राजा साहब जिस हाथी पर सवार थे, वह हाथी पगलाय गया। जनता के ऊपर चढ़ बैठा। लगता है मर जायेंगे १५-५० आदमी। मैं भी दबते–दबते बचा हूँ किसी तरीके से। रामलीला में व्यासजी भगवान रामजी का हाथ पकड़ के घिसिया के भागेन। जब रामजी भागे डर के मारे, तब बड़ी थपोड़ी बजी। बोले– रामजीऔ डर रहे हैं हाथी से। इसलिए तड़-तड़ बड़ी थपोड़ी बजी। उसी समय रामलीला देख के, तुरन्त एक भगत जो दबने से बच गया, वहाँ से भागा। कार से चित्रकूट आया रातोरात और सुबह चित्रकूट से अनुसुइया आ गया था, वो सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, महाराज की बात सुन रहा था अनुसुइया में। वह बोला– महाराज, आप कब चले आये? हम भी दबत-दबत बचे हैं। सचमुच रामजी का व्यासजी हाथ पकड़ के भागे तो बड़ी तालियाँ बजी। महाराज! आप कब चले आये। महाराज कहें– हो! हम गये नहीं थे। हम यहीं बैठे-बैठे देख रहे थे। **'ऊ जब-जब चाहिस हृदय बीच या दुनिया का नक्शा देखिस।'** महाराज कहें– हों, भगवान **'जो इच्छा करिहहुँ मन माहीं। प्रभु प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।'**

सभी रूप धारण कर सकते हैं, और जो चाहो देखना, दिखा सकते हैं। भगवान समर्थ हैं।

८५. नेहरू के बारे में भविष्यवाणी

सन् १९४७ में जब भारत आजाद होनेवाला था तो महाराज अनुसुइया गद्दी पर थे। महाराज ने कहा– अरे, मैं देखत हूँ.... नेहरू राजा हुआ है, अंग्रेज भारत छोड़ के चले गये। मैं यहाँ से गया हूँ दिल्ली। मैं अपने हाथ से तिलक करके आया हूँ। नेहरू राजा हो गया। दरबार लगा है, आज भारत आजाद हो जायेगा। जो लड़ाई चल रही है सौ वर्ष से, आज पूर्ण हुई। बड़े सवेरे रेडियो बोला कि भारत आजाद हो गया और नेहरू प्रधानमंत्री हो गये।

८६. महाराजजी द्वारा गम्भीर रोगियों पर कृपा

महाराज जब जंगल में रहने लगे भगत लोग आने-जाने लगे। वो ऐसी जगह है जहाँ से पचास किलोमीटर सतना, ६०-७० किलोमीटर बाँदा और लगभग ४०-३० किलोमीटर कर्बी। कर्बी में एक वैद्य रहे। सतना से एक वैद्य आवें। गरीबों को वैद्य कहाँ नसीब। बड़े-बड़े लोगों के यहाँ वह पूड़ी और अपने मन का भोजन किया करें। कोई दवाई नहीं, कोई डॉक्टर नहीं। कर्बी तक में कोई डॉक्टर नहीं। बाँदा में, सतना में थे। क्षेत्र की जनता मलेरिया से त्रस्त थी। तिजारी, चौथिया, अतरा – ये मलेरिया बराबर चला करे। लोग आने लगे। महाराज कहें– खो विभूति, पटक मूड़ी। कब से

आवत है? कोई बताता– महाराज, अतरा आवत है। एक दिन छोड़ के एक दिन आता है, उसको अतरा! तिजारी - तीसरे दिन ज्वर आना। चौथे दिन आता है चौथिया। किसी का रोजा था किसी को मियादी। ऐसे ही बुखार थे। महाराज कहें– उठ, खो विभूति। पापी कहीं का। पाप तुम करो, भोगे बाबाजी। कभी झापड़ मार दें या दो-चार खरी-खोटी कह दें, तब हँसें, बोलें– कब है पारी? वे कहते– गुरु महाराज, कल! कोई कहे परसों! महाराज बोले– पारी बिता के आओ, देख क्या होता है? पारी बिताकर, दही-सही लेकर वे आवें, बोलें– महाराज, बुखार तो नहीं आया। महाराज बोले– जो बेटा, गया बुखार। अब लाइन लग गयी। पूरे जंगल से हजारों केस हो गये। पागल आने लगे बेड़ियों से बाँध के, नंगे होके नाचे। महाराज कहें– खोल बेड़ी, हमरेहूँ पास बेड़ी न छूटी त कहाँ छूटी। तो पागल भागे लगें। कभी महाराज की ओर झपटें तो कभी पिता की ओर। महाराज कहते– पहले इसे गंगा में नहला के ला। वे नहलावे। महाराज कहते– खूब नहला, डूबा-डूबा के नहला। जब वे काँपने लगते,तो कहते– मैं हाथ जोड़त हूँ, मैं ठीक हो गया हूँ। महाराज कहते– हूँ, और डूबा इसको! बाद में फिर ले आवे। महाराज पूछे– खूब नहवाये है? वे बोले– हाँ। महाराज कहें– कर प्रणाम। जहाँ प्रणाम करे, एक छड़ी मार दें फिर कहें– बेड़ियाँ खोल दो। बस वे ठीक हो गये! पता नहीं सैकड़ों पगले बँध के आये, गाड़ी पर लाद के आये, अपने पैरों से गये।

८७. महाराजजी को मलेरिया ज्वर

इसके बदले में दो साल बाद महाराज को भी बुखार शाम को एक घंटा आने लगा। महाराज ने कहा– भगवन्! जब निवृत्ति हो गयी, पाप है ही नहीं तो हमें ये बुखार क्यों आ रहा है? बगैर पाप के सजा कैसी? दण्ड कैसा? भगवान बोले– छू-छू के उतार लेते हो ऊ के भोगी! महाराज बोले– अरे, हमने तो पता नहीं कितनों को छू दिया, कोई हिसाब नहीं! कब तक भोगना पड़ी। तब फिर अनुभव में एक डुमार आया। एक आँख का काना। मैले कपड़े, दुर्गन्ध आ रही थी। प्रणाम किया, वह बोला– भगवन्! तीन आना पइसा हमार मिल जाय, बाकी है। महाराज कहे– करे, तू कइसे लेइहे तीन आना हमसे? वह बोला– तीन महीना और बुखार! महाराज बिगड़े– धत् तेरी पाप की। एक आना में एक महीना भोगावत है। जोड़ो रे, कवन महीना है। लोग बोले– ये सावन लगा है महाराज आज। तो सावन, भादो, कुआर - कुआर में मोर बुखार उतर जाई। भोग लो परमहंसजी, जब लिए हो तो के भोगी! कुआर में महाराज का बुखार उतर गया।

८८. रामलखनदास जी का आगमन

पहले जो बुखार शुरू हुआ तो पानी पीने के लिए चले जायँ नदी किनारे। फिर खप्पर में पानी भर के सरकत-सरकत चले जायँ कुटिया पर ऊपर। आदेश था न इस जगह रहना है। जगह ऊँचाई

पर थी, वहाँ जाकर बैठ जायँ। फिर प्यास तड़क जाय तो फिर जो पानी लाये थे खप्पर में, वो भी पी लें। फिर प्यास ज्यों की त्यों! फिर जायँ घुसकते-घुसकते, वहाँ नदी किनारे भरपेट पी ले, खप्पर भरके फिर सरकते-सरकते आवें, अपने आसन पर बैठ जायँ। एक दिन चार पलोटन में तो सब करम हो गये। तब बुखार की सनक में महाराज बोले– का भगवन्! का एको चेला मोरे करम में नहीं लिखा है जो दो घूँट पानी तो पिआई देत। तीसरे दिन एक बाबाजी आये, सेवा में खड़े हो गये। धूना चेता के ठीक कर दिया, झाड़ू लगा दिया, खप्पर भर के पानी रख दिया। महाराज बैठे रहें, उनसे बोल ही नहीं रहें, देख रहें उनकी तरफ। थोड़ी दूरी पर हाथ जोड़ के खड़ा रहे दिन भर। फिर कोई काम उसकी समझ में आवे, कर दिया करे। एक दिन बीता, दो दिन बीता, महाराज कुछ नहीं बोले। वो दौड़-दौड़ के अपना काम कर रहा है। तीसरे दिन महाराज ने उससे पूछा– क्यूँ रे, कौन है तूँ? कहाँ से आया है? क्यूँ हमारे पीछे पड़ा है? जबकि एक चेले की सख्त जरुरत थी! वह बोला– महाराज, रामलखनदास है मेरा नाम। वैष्णव साधु हूँ। बाल्यकाल में १० वर्ष की अवस्था से साधु हो गया था। अब तक सधुआई भली प्रकार निभ गयी। सारा तीर्थ कर चुका हूँ। बुखार चढ़ा रहे तब भी गंगा-स्नान जरूर करें – इतने पक्के थे नियम के। साठ साल उमर लेकिन सच्चे नियम के। प्रयागराज में माघ मेला था। वहाँ गंगा-स्नान कर रहा था तो हमको सपने में आया कि जाओ,

परमहंसजी की सेवा करो। अनुसुइया में जाओ। हमने टाल दिया। दूसरे दिन फिर आया कि गंगा-जमुना को जो फल देना था, दे चुकीं। तुम्हारा कल्याण इसी में है। जाओ परमहंसजी की सेवा करो सती अनुसुइया। तीसरे दिन डाँट पड़ी कि सुनता नहीं है, यहीं पर पड़ा है। पड़े-पड़े मर जाओगे। तुम्हारा कल्याण इसी में है कि जाओ परमहंसजी की सेवा करो। सती अनुसुइया जाओ। तब फिर साष्टांग दण्डवत् किया गंगा-जमुना-प्रयागराज को और अपनी गठरी-वोठरी पीठ पर लादा, चल दिया। महाराज, मैं चला आया। महाराज बोले– और कोई होंगे! जंगल लम्बा-चौड़ा है, ढूँढ़ ले अपना। रामलखनदास ने कहा– नहीं गुरु महाराज। तीनों दिन आप ही के दर्शन हुए थे। बस ये पहले सेवक हुए! बड़े कर्मठ रहें।

कुछ दिन तो ठीक सेवा किया, फिर बाद में सुबह विधिवत् सेवा कर दे, और फिर गायब हो जायँ। शाम को छः बजे फिर हाजिर हो जायँ। जब आठ-दस दिन ये रवैया देखा, महाराज बोले– क्यूँ रे! दिन में तू कहाँ भाग जाता है? वह बोले– महाराज! मैं चेताने जाता हूँ। महाराज बोले– करे भीख माँगत है क्या? वह बोले– महाराज, भीख नहीं उसको चेताना कहते हैं। हम वैष्णव की भाषा में चेताना कहते हैं, वो भीख नहीं है। जनता अचेत है, उनको चेताते हैं, दान-पुण्य कराते हैं। महाराज बोले– देख, भीख न माँग, तुम्हें खाना मिलेगा। लेकिन वह जब से सन्त

हुए थे, तभी से चेताना जानते थे। जाके बोल दें– रामचंद्र जानकी, जय बोलो हनुमान की और संतों के भिक्षा माँगने का ये अलख निरंजन, नारायण हरि, भिक्षाम् देहि तमाम तरीके हैं। महाराज बोले– देख, भीख न माँग। लेकिन उसकी आदत न छूटे। तब महाराज बोले– देख, भीख माँगा हुआ एक भी दाना हमको खिलाना मत। तैं आपन भोग। जब करम तोरे नहीं पिण्ड छोड़त है तो कउनो संस्कार है, बाकी है, नहीं छोड़त है तो भोग आपन। हमें मत खिलाना। वह बोले– महाराज, कोई भूखा-रूखा आयेगा साधु तो सेवा कर दूँगा। महाराज बोले– कर उधर सेवा आपन। उसको जगह दे दिया ऊपर।

रामलखनदास बड़े नामजद महात्मा थे। वैष्णव समाज में बड़ा नाम रहा। अब उनकी आड़ में महात्मा आने लगे। मालूम रहे कि रामलखनदास ऊपर रहते हैं। महाराज की ओर ताकत-ताकत चले जायँ। महाराज से बड़ा विरोध माने क्योंकि कोई वेशभूषा तो रहे न। दिगम्बर रहें। समझ में न आवें कि संन्यासी हैं कि बैरागी हैं कि अघोरी हैं। जायँ तो ऊपर जाके विधिवत् रामलखन दास चने का टिक्कड़, कैथे की चटनी भोजन करा दें। फिर ऊपर बैठ के कीर्तन करें– सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम। महाराज कहें– हो! हमहूँ एक घड़ी बैठ के सुना करें। बाहर बैठ जाई, सुनीं। बहुत अच्छा लगे भगवान का नाम रहे। फिर हम सोचे– अब ये

खोपड़ी पर चिमटा बजा के टन्नक-टन्नक-टन्नक हमारा भजन नष्ट कर रहे हैं, शान्ति भंग कर रहे हैं। तब महाराज खड़े होकर कहें– धत् तोरी गँवार कहीं के। सीताराम-सीताराम-सीताराम! सीताराम भागल जात हैं – हे सीताराम! लौट आओ। हे सीताराम! लौट आओ। अरे, अपने खसम का नाम जोर-जोर से कहाँ लिया जाता है! मन में सुमिरन किया जाता है। सुमिरन ऐसा कीजिए, जाने सुमिरनहार। कै जाने करतार ही, न जाने संसार।। सीताराम-सीताराम.... गँवार कहीं का। न भजन जाने न चिन्तन जाने। जनम भर ककहरा ही पढ़त रहियो। तो वो भी बिगड़े। वो आठ दस जने रहें, वे कहते– रामजी की इच्छा से न तो भजन करते हैं, न करने देते हैं। तब रामलखनदास कहें– अरे चुप-चुप। भजन हमलोग क्या जानें! जिन्दगी बीत गयी, इतना ही तो करत आये हैं। आगे योग-साधना वगैरह ये परमहंसजी जानते हैं। हम भगवान के आदेश से इनकी शरण में आये थे। चुप रहो। भजन करो बैठके। तहाँ फिर बैठके भजन करने लगे।

८९. अयोध्या से वेदान्ती जी का आगमन

रामलखनदास जी जैसे नामजद टकसाली महात्मा परमहंसजी की सेवा में लग गये तो लोगों को बड़ा आश्चर्य था। चित्रकूट से कई महात्मा उनके गुरु अयोध्या के सर्वोपरि महन्त वेदान्तीजी महाराज से शिकायत करने लगे। शिकायत पर शिकायत। अन्त में वेदान्तीजी

का आसन उठ गया। ११ शिष्यों के साथ चले वहाँ से। गुरु महाराज तो नीचे रहा करें जहाँ भगवान ने आदेश दिया था। रामलखनदास ऊपरी खण्ड में रहा करें। महाराज को एक आदमी का संग भी कुसंग लगे, मंजूर नहीं था। एकान्त तो एकान्त। इसीलिए उनको आसन दे दिया – ऊपर पड़े रहो अपना। जब यहाँ आवश्यकता पड़े, झाड़ू-साड़ू लगा दिया कर और भाग जाओ ऊपर। ऊपर ही आपन रहो। तो ये नामजद महात्मा थे इसलिए लोग इनके यहाँ आवे, सीधे भीड़ लगी रहे। और रामलखनदास दो रोटी जरूर महात्माओं को दे दिया करें भिक्षा में – ये घोर जंगल है। यहाँ ८-८ किलोमीटर चारो तरफ कोई आबादी थी ही नहीं। चना का टिक्कड़, कैथे की चटनी, कभी आँवला की। यही प्रसाद सभी बड़े प्रेम से पावें, रातभर कीर्तन करें। अयोध्या से आनेवाले महात्मा ऊपर चढ़ गये। महाराज ने देखा कि एक अच्छे संत जा रहे हैं, ११ महात्मा उनके पीछे-पीछे हैं। रामलखनदास ने सादर दण्डवत किया, उनको आसन लगवा दिया, भोजन बनाया, प्रसाद पवाया।

जब गुरुजी लेट गये तब रामलखनदास रात १२ बजे उनकी सेवा से निवृत्त होकर भाग के आये गुरु महाराज के पास! लगे चरण दबाने। महाराज ने पूछा– क्यूँ रे! कौन थे? दो-चार बाबा जब ऊपर पहुँच जाते हैं तो चक-चक चक-चक कोहराम मच जाता है। ये ११ मूर्ति गये और एक शब्द की आवाज नहीं आयी,

ठक तक की आवाज नहीं आयी। कौन हैं? रामलखन दास बोले– महाराज, हमारे गुरु महाराज पधारे हुए हैं। महाराज बोले– अच्छा। रामलखनदास ने बताया– ये वेदान्ती जी महाराज हैं। दस शिष्यों के साथ हैं, वे सभी गुरुभाई हैं हमारे। महाराज ने पूछा– तो सेवा किया? वह बोले– महाराज, कौन सी सेवा करते! चना के आटे का टिक्कड़ और जो ये कैथा है जंगल में, उसकी चटनी – यही अर्पण किया। उन्होंने खाया और लेट गये। महाराज बोले– जब गुरु महाराज थे तो हमको क्यों नहीं बताया? देख, सुबह विधिवत् भोजन कराना। ये हमारे पीछे कोठरी है, उसमें जो कुछ है ले जाके खिलाओ-पिलाओ। कायदे से सेवा करना। जो कुछ है ले ले और विधिवत् भोजन बनाओ और खिलाओ।

सुबह जब उन महाराज को भोजन परोसा गया तो बढ़िया गेहूँ की रोटी थी, चकाचक घी में चुपड़ी हुई थी। चावल था, दाल था, सब्जी थी, अचार-चटनी सब कुछ। थोड़ा मिष्ठान्न भी दिखाई पड़ा। दो ग्रास खाया, तीसरी उठाया और बोले– क्यूँ रे रामलखनदास! हम तुम्हारे गुरु हैं, तुम हमारे शिष्य? वह बोले– हाँ गुरु महाराज, शत प्रतिशत सही है। वेदान्ती जी ने पूछा– झूठ तो नहीं बोलेगा? उन्होंने कहा– कभी नहीं गुरु महाराज। वेदान्ती जी ने पूछा– तो कल जब हम गुरु तुम्हारे दरवाजे आये तो तू चना का टिक्कड़ और कैथे की चटनी खिलाया और आज ये पुष्कल

भोजन! कहाँ छिपाये रहा? रातभर में कहाँ से ले आया? रामलखन बोले– गुरु महाराज! आपकी सेवा से निवृत्त होकर जब मैं परमहंस जी की सेवा में पहुँचा, उनको जब जगाया, बताया कि गुरु महाराज आये हैं तो उन्होंने कहा– गुरु महाराज आये हैं तो विधिवत् सेवा क्यों नहीं किया? कोठरी में जो कुछ दिखाई पड़े, ले जा, कर सेवा। ये परमहंस जी दिये हैं महाराज। वेदान्तीजी बोले– उनके पास कहाँ से आता है? और तू कहाँ से पाता है? रामलखन बोले– महाराज, उनके पास तो आकाशवृत्ति है। न तो भीख माँगते हैं, न किसी शिष्य को माँगने देते हैं और कोई रुपया-बीस आना चढ़ा देता है, दस गाली ऊपर से दे देते हैं– धत् तेरी धनिके की! चाँदी का जूता मारत है! उठा पइसा। चढ़ानेवाले कहते हैं– महाराज, श्रद्धा रही। तो महाराज कहते हैं– फेंक दे आपन श्रद्धा पानी में, नदिया में। श्रद्धालु हँसकर मुस्कुराकर पैसा रखकर चले जाते हैं। महाराज डाँट ऊपर से देते हैं। ये नहीं कहते कि भगत जी आपकी जय हो, भले चढ़ाय दियो। उनका आकाशवृत्ति से काम चलता है महाराज, विधिवत् चलता है। मैं रोज सवेरे भिक्षाटन पर चला जाता हूँ। और ये चारो तरफ दूर..... आठ किलोमीटर दूर से गाँव लग जाता है, गाँव-गाँव कभी इधर कभी उधर चेता के ले आता हूँ। हमारा काम चेताने से चलता है।

बस, वेदान्तीजी ने भोजन नहीं किया, हाथ धो लिया और

सीधे आके परमहंसजी के पास साष्टांग दण्डवत किया। वेदान्तीजी बुजुर्ग थे, आ के बैठ गये। यहाँ आते ही शिष्यों ने आसनी बिछा दिया। वेदान्तीजी बोले– महाराज, आसन की जरूरत नहीं है। बैठ गये। सब शिष्य भी चले आये। वहाँ आये तो कुछ बादाम के छिलके पड़े थे। पहले दिन कोई पार्टी आयी थी, भाँग पीस-पास के खा के चली गयी थी, वही छिलके पड़े थे। वेदान्तीजी ने कहा– देख, घनघोर जंगल में इनका न कहीं से बँधा है, न खेत-क्यारी, न फार्म है, न भिक्षाटन किसी को करने देते हैं न करते हैं तब तो पुष्कल भोजन और बादाम कट रही है। तू रात-दिन माँगता है और हम गुरु आये तो चने का टिक्कड़ देता है। ये सिद्ध पुरुष हैं, महापुरुष हैं। महाराज! ये लोग पीछे पड़ गये कि कोई पता नहीं अघोरी हैं कि कौन हैं आपका चेला वहाँ गलत जगह चला गया। इसलिए मुझे आना पड़ा। रामलखन! अब हमारा आदेश है तू जनम भर इनकी सेवा कर। हमारा सौभाग्य था आपके दर्शन हो गये। अयोध्या से हमें कैसे अवकाश मिलता! महाराज बोले– नहीं महन्तजी! बहुत अच्छा लगा हमें भी कि यहाँ पर आप भी चले आये। फिर विदा लिया, सन्तुष्ट हो चले गये।

९०. रामलखनदास जी का जातिगत मोह

रामलखनदास ब्राह्मण कुल में जन्मे हुए थे। भले ही दस साल का लड़का संत हुआ हो लेकिन जातिगत मोह बहुत पीछा

करता है। गुरु महाराज के यहाँ कहीं से कोई चले, महाराज जान जाय कि अच्छा, कुछ लोग आ रहे हैं। अच्छे महात्मा आवें तो महाराज जान जायँ; कहें– देख रे, दो रोटी बढ़ा लेना। कोई अच्छे संत आ रहे हैं। कोई बनावटी भेष बनाके आवे तो यहीं से गाली देना शुरू कर दें– हूँ, ससुसारी से कूड़ा ले के चले आवत हैं। अब खेत में रोपाई-वोपाई हो गयी है, निराई हो गयी है तो पुछट्टा खोल के, धोती का लुंगी बनाय के, तिलक-पताका लगाय के और बगल में कम्बली, गठरी बाँध के, खड़ाऊँ खोस के चले हैं। उन्हें गाली दें लेकिन फिरौ न मानें चढ़ जायँ ऊपर। इन्हें खाने का देव, इन्हें रहै का देव, पीये का गाँजा दे। हर दे हरवाह दे, खोदै के पैना दे। फिरौ डाँट-फटकार का जब उन पर असर न हो, हँसते-हँसते आवे, प्रणाम करें, बैठ जायँ तब सब कुछ दे। और टिन्नाय के चले जायँ तो कोई बात नहीं। अच्छे महात्मा आयें तो कह दें– कोई अच्छे महात्मा आ रहे हैं। देख लेना रे, दो-चार रोटी बढ़ा देना, कोई अच्छे संत आ रहे हैं, शकुन मिल रहा है।

एक बार पाँच महात्मा आये। महाराज को अनुभव में मिला कि इनमें से एक अच्छे संत हैं। वे आये तो महाराज बोले– आओ संतजी, किधर से आना हुआ? विराजो। दम (गाँजे का) का समय था। महाराज बोले– लेव चिलम। वो भी पीने लगे, महाराज भी पीने लगे। इतने में रामलखनदास ऊपर से उतरे नीचे। चेहरा-

मोहड़ा देखा उनका। रामलखन बोले– करे कवन जात हये रे। बोलत काहे नाहीं? महाराज बोले– गँवार कहीं के, जब हम गाँजा पियावत हँ, साथ बैठाये हैं तोके पूछे के कवन हक है रे। वह बोले– अच्छा गुरु महाराज। चले गये। फिर दाँत पीसते हुए चले आये और बोले– कवन जात है रे, बोलत काहे नाहीं है। शास्त्र में कहाँ लिखा है सब जातियों को भजन करने का? उनमें से एक जो अच्छे महात्मा थे, बोले– देखो, हम पाँचों जन्म से चमार हैं, चमारे के घरे में जन्म हुआ है। पाँचों भजन कर रहे हैं विधिवत्। रामलखन बोले– चमार जब भजन करिहें त हरा के जोती? बड़े आदमी का काम कैसे चली? महाराज कहें– करे, तोर दिमाग खराब हो गया है। भाग यहाँ से गँवार कहीं का। तीसरी बार आकर फिर कुछ टन्न देना बोल दिये तो महाराज बिगड़े– करे, हमरहुँ कहे से बुद्धि नाहीं आवत है, तोरे ऊपर पाप चढ़ा है? महाराज डाँटे तो 'अच्छा गुरु महाराज!' कहते हुए चले गये।

किन्तु थोड़ी देर बार रामलखनदास दाँत पीसते आया, कुछ कह दिया। उनमें जो अच्छे महात्मा थे, उन्होंने कहा– अच्छा संतजी, गाली तो बहुत दियो, लो तीन महीने में मरौ जइहौ। रामलखन बोले– जाओ, जाओ, डोमारे (चमार) के सरापे से डांगर नहीं मरत है। वे महात्मा बोले– अब ये तो आप जानो कि मरत है कि नहीं मरत है। वे तो चले गये। महाराज बोले– गजब कर

डाला यार। बुद्धि भ्रष्ट हो गयी इसकी। संत की कहीं जाति होता है। हरिजन चारों बरन से ऊँचा। मानस में कहते हैं, बालमीकि से पूछा जब भगवान ने 'मैं रहूँ कहाँ' तो 'जाति पाँति धन धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई। सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहिं के हृदय रहहु रघुराई।।' मैं फलाने जाति का हूँ, कुलीन हूँ, पंक्तिपावन हूँ, धनवान हूँ – ये धरम, वो धरम, कुछ टोना-टोटका पाल रखा है। ये बड़ाई, वो बड़ाई। हमें इतने लोग जानते हैं। धन धरम बड़ाई – इन सबको छोड़कर जो आपको समर्पित है, उनके हृदय में भगवन् आप रहें। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! देहाभिमानियों की गति नहीं होती।

समय बीतता गया। एक दिन रामलखनदास बोले– महाराज, वहाँ गाँव में हमारा एक मन चना रखा है। भिक्षा करके मैं वहाँ रखे हूँ। हुकुम हो तो ले आते। महाराज बोले– अरे पागल हो गया है, तुम्हें खाना मिल रहा है, रहने को मिल रहा है। क्या करेगाा चना? वे बोले– अच्छा गुरु महाराज! फिर चार दिन बाद चना। फिर चार-छः दिन बाद चना। महाराज बोले– चना एकरे कपारे चढ़ गया है, पाप सवार हो गया है। भाग यहाँ से। रामलखनदास गये चना लेने। दूसरे दिन खबर आयी– रामलखनदास सख्त बीमार हैं। महाराज बोले– अरे जल्दी दवाई करो फिर। तीसरे दिन खबर आयी– महाराज! वे सख्त बीमार हैं। बचने की उम्मीद नहीं है।

महाराज बोले– हमारे पास ले आओ तो बच जायेगा। लोग गये, उन्हें लाने का उपक्रम कर ही रहे थे, इतने में मर गये। कोई खबर ले के आया– महाराज, रामलखनदास तो मर गये। तब महाराज को याद आया, पूछा– उन सन्तों को गये कितने दिन हुए? कवन महीना है रे? शिष्यों ने बताया– तीसरा महीना आज पूर्ण हुआ महाराज। महाराज बोले– वे बाबा कह गये थे तीन महीने में मर जायेगा। हे भगवान! एक संत श्राप दे सकता है तो दूसरा निवारण भी कर सकता है। मोरे पास होत तो मरत ना। लेकिन मरे की घड़ी आयी तो मन भर चना, पाप घसीट के वहाँ ले गया। इस तरीके से रामलखनदासजी की जीवन-लीला का अंत हो गया। इसलिए साधु किस रूप में होते हैं?–इसकी पहचान वेशभूषा से मिलना मुश्किल है। वह तब समझ में आता है, एक प्रभु के प्रति समर्पण करके चिन्तन करो, भगवान बता देंगे ये संत बैठे हैं। **'संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही।।'**

(मानस, ७/६८/७)

९१. सिद्धबाबा

महाराज के अनुसुइया पहुँचने पर गाँव से भगत लोग आने–जाने लगे। महाराज ने उनसे पूछा– ये पचासों–पचीसों मकान बने पड़े हैं सुनसान। इनका मालिक-मुख्तार कोई नहीं। इनको किसने बनवाया है? तब लोगों ने बताया– महाराज! लगभग सवा सौ

साल पहले यहाँ एक सिद्धबाबा निवास करते थे। करीब सात-आठ सौ गायें थी। हर समय चार सौ गायें दूध दिया करें। खीर बना करे, मालपुआ बना करे। पूड़ी न बने। खीर, मालपुआ का भण्डारा चला करे। उनके अधिकांश भगत गृहस्थ रहे। सात विरक्त शिष्य भी थे। बड़े-बड़े जमींदार शिष्य थे। राजाओं ने, जमीदारों ने उन्हें चार गाँव दे रखा था। उनके पास ये था, वो था। वह उनकी तई रखी हुई है। तई करीब दस-बारह फीट गोल-गोल रहे जिसमें मालपुआ छनत रहा। वो महापुरुष वृन्दावन की साइड के थे। ब्राह्मण घर का शरीर था। घरवाले पता पा गये। पहले तो वैसे ही आये दर्शन करने, देखा चारो तरफ माल-पानी का चकाचक रेला। पहले तो भोजन करने आये, फिर धीरे-धीर परोसने लगे मालपुआ-खीर, और फिर वहीं टिक गये सेवा में। जो गुरु महाराज के कृपापात्र महात्मा लोग थे, उनसे राग-द्वेष करने लगे। जो कोई सद्गुरु के पास कल्याण के लिए आता है। उसको माल-पानी से, झोपड़ियों से क्या मतलब! इन मकान, खण्डहरों से क्या मतलब? उन्हें महापुरुष की विद्या से मतलब है, कल्याण से, भगवत्पर्यन्त दूरी तय करने से मतलब होता है। वे आश्रम छोड़ करके दूर जंगल में भजन करने लगे। कोई चेला नहीं बचा उनका राग-द्वेष देख के। महाप्रयाण की बेला आयी तो एक बैल को सामने खड़ा करके उसे देखते-देखते उन्होंने शरीर छोड़ दिया।

जब शरीर छूटा तो उनका भतीजा रामू बाबा गद्दी पर बैठे। दस महीनों में बोले– भइया, मैं इस गद्दी लायक नहीं हूँ। छोड़ के चले गये। उनका छोटा भाई श्यामू बाबा गद्दी पर बैठा। उसकी चाल–ढाल देखके सिद्धबाबा के भक्तों ने ही उसको मार डाला दस महीनों में। तब उसका छोटा भाई बद्री बाबा गद्दी पर बैठा। वो वहाँ गद्दी पर पहुँचा ही नहीं अनुसुइया। किसी भगत ने एक बगीचा सिद्धबाबा को दान में दिया था। सिद्धबाबा आश्रम छोड़ के कहीं गये ही नहीं। वे सुनते रहते थे, किसी ने गाँव दिया है, किसी ने बगीचा दिया है लेकिन बद्री बाबा उसी बगीचे में रहते थे। एक औरत भी उनके साथ हो गयी। उसके दो लड़के हुए। आपस में राग-द्वेष करके एक लड़कवा तो मर गया। बद्री बाबा भी इधर मर गये। आश्रम में गुण्डों का राज हो गया। गायें सब तितर-बितर हो गयीं। बद्री की औरतिया अकेली बची। वह भाग-भाग के जाया करे आश्रम, लाठी लेकर कहती रहे– हमारा है, हमारा है। कोई साधु रुके तो इतनी काँव-काँव करे कि महात्मा न टिकें वहाँ पर। वह भी मर गयी। बद्री का महंत लड़का भक्तों के सहयोग से सिद्ध बाबा के आश्रम में पचास-पचास पण्डितों को बैठा के पूजापाठ करवाया कि पिता का इसमें भूत समा गया है, ठीक हो जाय। पता नहीं कि कौन उन पचासों के गर्दन में एक साथ हाथ लगाकर उठाकर पटक दे तो पंडितवे भागे वहाँ से। लोटा, आचमनी, आसनी सब कुछ

वहीं छोड़ के भाग गये। कोई छुए ना। जो छुए, वोहू मारा जाय। मानो सिद्धबाबा सजीव रूप से हो। उनका तखत वहीं पड़ा है। गाँववालों ने बताया, महाराज यह वही जगह है।

९२. गुरुप्रसाद का आगमन

महाराज ने पूछा– कोई वंश में बचा है? गाँववाले बोले– एक लड़का है, ठाकुरों के यहाँ है सतना के पास। महाराज बोले– बुला उसको। पन्द्रह-सोलह साल के बीच का एक लड़का आया। दुबला–पतला गिलहरी जैसा। एकदम गोर अंगार। महाराज बोले– करे तूँ सिद्धबाबा का नाती है? वह बोले– हूँ महाराज! मैं नाती हूँ। महाराज बोले– वहाँ क्या कर रहा है? वह बोले– ठाकुरों के यहाँ पेट पालत हूँ और का करत हूँ! महाराज बोले– पेट न पाल, चला आव, तुम्हें खाना मिलेगा। वह बोला– ठाकुरों को बता आऊँ। महाराज बोले– ठीक है, बता आ। वह चला गया। तीसरे दिन अपने बराबर एक लड़की लेके चला आया। महाराज ने पूछा– ई कौन है रे! उसने कहा– मोर औरत है महाराज! महाराज बिगड़े– करे हरामी, एको बार नहीं कहा मोर बियाह हुआ है। भाग इहाँ से। अब नहीं रहना है यहाँ पर। हम तो सोचे तूही भर है। अब एक ओर बैठ के लड़की रोवे, तो दूसरी ओर बैठ के लड़कवा। तब महाराज कहे– हे भगवान! **दया बिनु संत कसाई। दया करि तो आफत आई।।** महाराज उन्हें भगावें, डण्डवो मारें। फिर रुलाई।

फिर रोवें, जइबै न करें। रात में रह गये। महाराज भी शान्त हो गये। फिर वे दो-तीन महीना रुक गये। बच्चे तो बच्चे! वह पन्द्रह साल की लड़किया महाराज की सेवा करने लगी। बल्ली गाड़कर उसने झूला बना लिया। कभी-कभी महाराज को भी झुलाया करे। हल्ला हो गया चित्रकूट में, महाराजजी के लड़का-लड़की आये हैं। महाराज बोले– हे भगवान, कहाँ से आफत आ गयी।

९३. पाप-ग्रह से मुक्ति

गुरु महाराज के पास कानपुर साइड से दो-चार सत्संगी आ गये। शाम को चर्चा चल रही थी धूने पर उनकी। बढ़िया प्रश्न चल रहा था। उधर वो दोनों थोड़ी दूर पर काँव-काँव कर रहे थे। वह उसको कुछ कह रही थी, वह उसको कुछ कह रहा था। इतने में लड़के ने एक झापड़ मार दिया अपने औरतिया के। वह टिन्ना के उठी और गायब हो गयी। अब लगा ढूँढ़ने तो पाया ही नहीं। अब गिर पड़ा महाराज के सामने आके। सत्संग चल रहा है उसके बीच में। महाराज! हमार मेहरिया भाग गयी। महाराज बोले– करे तोरी हरामी की! मेहरिया जब इतनी प्यारी रहे है तो काहे झापड़ मारा रे? आरती काहे नहीं किया? गोड़े काहे नहीं गिरा? ढूँढ़, कहीं होई! सत्संग चौपट कर दिया। वह दौड़ा। बेतहासा दौड़ के गया अनुसुइया मंदिर, फिर जंगल में, फिर इधर हल्ला किया, कभी उधर आवाज दिया। वह नहीं बोली। गुरु प्रसाद भोकार छोड़कर रोने लगा।

एक घण्टा बाद महाराज ने कहा– ढूँढ़ो रे, ई जंगल का मामला! ढूँढ़ो। सब ढूँढ़ने लगे इधर-उधर। जो तीन-चार भक्त आये थे, वे भी ढूँढ़े लगे। महन्तवा ढूँढ़ने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ गया। पौने दो सौ के करीब सीढ़ियाँ हैं। तीन-तीन सीढ़ियाँ लाँघत चला जा रहा था। रोवतौ चला जात रहा कि तू कहाँ छिप गयी? कहाँ चली गयी? थोड़ी देर के बाद लौट के बोला–नहीं मिली महाराज। लगता है शेर खा गया। रोने लगा।

महाराज उठके खड़े हो गये। महाराज ने विचार किया– कहाँ हो सकती है? तो सगुन मिला छत के ऊपर। महाराज एक-एक कदम चलते हुए छत के ऊपर चले गये तीसरे मंजिल पर। तीसरा मंजिल की छत पहाड़ से सटी है। खड़ा पहाड़ है। कितना भी मंजिल बनाओ, पहाड़ तो बगल में सटा ही रहेगा। जहाँ चढ़े तो एक छत, बीच में मुँड़ेरी डेढ़ फीट की, फिर दूसरी छत। दूसरी मुँड़ेरी के पास वह लेटी हुई थी। काला-काला दिखाई पड़ा। महाराज ने सोचा– हूँ! दस दिन पहले हमने यहाँ झाड़ू लगवाया था, यहाँ सफाई थी। कोई कोलभील यहाँ लकड़ी रख गया क्या? या अजगर रेंग के चला आया, पड़ा है क्या? क्या हो सकता है? एक-एक कदम आगे बढ़े। तब तक महंत की औरत उठकर दोनों हाथ फैलाकर महाराज की ओर दौड़ी। महाराज को भयंकर अपशकुन हुआ। उन्होंने उठाया छड़ी– धत् चुड़ैल कहीं की हरजाई, जब

मनसेधुवै ढूँढ़ै के रहा तो गाँव में कौन कमी थी? वहाँ काहे न चली जाती है! हम बुढ़ापा के ऊपर झाँकत है। जहाँ खरी-खोटी कहा तो अपनी मर्यादा में आ गयी। बहुत करीब होती तो महाराज मार के गिरा देते। महाराज छड़ी लिए तो डर गयी, थोड़ी दूरी बनाकर एकदम जड़वत खड़ी हो गयी। महाराज बोले– देख महन्तवा! हे देख, यहाँ पड़ी हुई है। महन्त आया, उसे ले गया। उस दिन भगवान ने अनुभव में बताया कि आज पापग्रह खतम। महाराज बोले– हे भगवान! इन मासूम बच्चों में घुस के पापग्रह बैठा है। हमें तो कल्पना ही नहीं थी कि पन्द्रह साल के बच्चों में भी पापग्रह होता है। फिर पापग्रह खतम।

महाराज ने बड़े सवेरे एक आदमी भेजा पथरा गाँव। वहाँ का नम्बरदार गणेश पंडित को बुलवाया। वे बड़े आदमी थे, भगत हो गये थे, आते-जाते ही रहते थे। महाराज ने उनसे कहा– कितना भी रुपया लगे, लगाओ। एक घर खरीदो और इनको ले जाके उसमें रखो। वह बोले– महाराज, एक लाला हैं, यहाँ से छोड़ के चले गये हैं। बढ़िया बना हुआ घर है, बिकाऊ है। साढ़े तीन सौ रुपया माँग रहा है। महाराज बोले– जल्दी दे दो। कांव-कांव मत करना। तुरन्त घर खरीद दिया और उन दोनों को उसी में रख दिया। वे नहीं बोले कि हम नहीं जायेंगे क्योंकि पकड़ में आ गये न। अब खायें क्या? सात दिन में वो लड़कवा आया, बोला– हम

भूखे मर रहे हैं! बोले– ले जा! जवन होय। उसको सबकुछ दिलवा दिया करें।

वहाँ एक मन्दिर पड़ा था अनुसुइया का खण्डहर। महाराज ने उनके परवरिश के लिए उसे दिलवा दिया। आज भी उसके नाती वगैरह जी रहे हैं उसी में। इस प्रकार महाराज का जीव छूट गया पापग्रह से। पापग्रह कहीं भी हो सकता है। इसीलिए साधकों को महाराज कहें– हम अपनी माताजी को रखें, बहन को रखें, बेटी को रखें, लोग क्या जाने? लोग तो यहीं कहेंगे–बाबा मेहरिया रखे हैं। इसलिए **'यद्यपि शुद्धम् लोकविरुद्धम् न करणीयम्'**– यद्यपि शुद्ध है बिल्कुल, किन्तु लोकदृष्टि के विरोध में है तो नहीं करना चाहिए।

९४. ब्रह्मचारी जी (धारकुण्डी महाराज) का आगमन

अनुसुइया क्षेत्र डाकुओं से निरापद हो गया। पहले तो महात्मा वहाँ रहते नहीं थे, अब आने-जाने लगे। महाराज के पास शिष्य बढ़ने लगे। रामलखनदास आये। उसके बाद कोल-भील आवें, महात्मा लोग आने-जाने लगे। एक साधु नवयुवक दो महीना वहाँ रहा। महाराज को दूर से ही प्रणाम कर लिया करे और आगे बढ़ जाय। बेल की पत्ती, आँवला की पत्ती, आँवले का फल खाकर रहा करे। फिर गायब हो गया। फिर वहाँ बहुत बड़ा मठ है जानकी कुण्ड। वहाँ के महंत रणछोड़दासजी ने होनहार बालक देखा,

अपनी गद्दी दे दिया, मालिक बना दिया। उनके यहाँ तीन-चार सौ करीब महात्मा रोज भोजन किया करें। ये बहुत बड़ी चीज थी उस जमाने में। उस गद्दी को चाहनेवाले महन्तजी के कई शिष्य दहिने-बायें से खुराफात कर रहे थे। इन नवयुवक ब्रह्मचारीजी ने सोचा– हमें गद्दी से क्या मतलब? ये लोग ले लें। हम तो भजन करने आये थे। भजन तो यहाँ है नहीं। छोड़-छाड़ के गद्दी भाग गये। अयोध्या चले गये। वहाँ भण्डारा किया। जब पास में कुछ नहीं रह गया, तब सोचा– यार, यहाँ रहेंगे तो हम नष्ट हो जायेंगे। ऐसी सधुआई से तो गृहस्थी भली! पहले परमहंस जी के दर्शन कर लें, फिर न हो तो घर ही चले जायँ। वह महापुरुष हैं। पहले लोगों ने कहा था कि पास से दर्शन न करना, वे जादू जानते हैं। देखो न रामलखनदास पर जादू कर रखा है। लेकिन जब घर ही जाना है तो जादू क्या करेंगे? हमें सम्प्रदाय से क्या मतलब? वे चले परमहंसजी का दर्शन करने। उधर महाराज के अनुभव में आया– एक भ्रष्ट योगी चला आ रहा है। उसको रक्खो, उसको ब्रह्मविद्या का उपदेश दो, भजन की शिक्षा दो, देखरेख करो। इसलिए महाराज प्रतीक्षा में थे।

सुबह चित्रकूट से वह लड़का चला तो महाराज कहें– अरे आवत है रे! जो वहाँ थे, उनसे बतावे। दुःखी आदमी! कभी चलता है, कभी बैठ जाता है पेड़ के नीचे। महाराज बोले– बैठ

गया। हूँ, फिर चला। फिर बैठ गया। फिर चला। एक-एक श्वास गिना करें। ठीक शाम के समय में, अँधेरा हो चला था तब दिखाई पड़े। दृष्टि पड़ते ही भगवान ने कहा– यही है। और नजदीक आया तो पहचाना और बोले– अरे ये तो वही लड़का है जो दो महीना यहाँ रहा और हमारे पास कभी आया ही नहीं। क्या ये मोरे पास आयी? वे सीधा महाराज के पास गये। किया साष्टांग दण्डवत्। एक प्रश्न कर डाला रामायन से। महाराज ने उत्तर दिया तो एक और कर डाला। उसका भी उत्तर दिया तो एक और कर डाला। बैरागी रामायण के अभ्यासी होते हैं। उन्हें कण्ठस्थ होती है। प्रश्न-परिप्रश्न करते-करते रात्रि के बारह बज गये। महाराज ने पूछा– और कुछ! वह बोले– महाराज, सब प्रश्न हल हो गये। महाराज ने कहा– जाओ कहीं एकान्त में बैठ के भजन करो। 'जाओ सोवो' महाराज कभी न कहें। महाराज की दृष्टि में 'सोना' एक अपशब्द था। वह चले गये। बड़े सवेरे जब वह आये तो महाराज कहें– मैं जानत हूँ, एके कहीं नहीं जाये का है! इसको यहीं रहना है और हमें रखे का है। लेकिन महाराज किसी को गुड़ दिखा के नहीं रखते थे। महाराज ने कहा– भागो यहाँ से, अब जहाँ जाये का है तहाँ जाओ। वह बोले– गुरु महाराज, अब कहाँ जाना है! जनम भर यहीं रहना है। आपकी सेवा करूँगा। जैसे-जैसे बतायेंगे, भजन करूँगा। महाराज बोले– देख, बैरागी महात्माओं में बड़ी एकता होती है। अबै सब इकट्ठे हो जइहैं। कहेंगे कि मेरा चेला फोड़

लिया। जाओ, अपने गुरु से आदेश लेके आओ। जबरदस्ती भगा दिया।

वे पुन: गये अयोध्या। वे वेदान्ती जी के चेले थे। १६ गुरुभाई थे। उनसे मिले। उन्होंने कहा– गुरु महाराज से कह देना अब हमारा आसरा छोड़ दें। हम परमहंस जी की शरण में चले गये। फिर चले आये। गुरु महाराज से नहीं मिले। १५ दिन बाद लौटे। महाराज के पास रहने लगे। नाम पड़ा सच्चिदानंद। वे ब्रह्मविद्या, साधना, भजन-चिन्तन, स्वाँस पकड़ के महाराज के साथ रहें और कोई सेवा हो तो वह भी करें। आश्रम का कोई सामान हो तो ब्रह्मचारी चित्रकूट से पैदल ले आया करें।

९५. ध्यान के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह

गुरु महाराज ने उन्हें समझाया कि ध्यान कैसे धरा जाता है? नाम कैसे जपें? नाम किसका जपें? ब्रह्मविद्या का चिन्तन कैसे करें? सबकुछ आद्योपान्त बता दिया। ब्रह्मचारीजी की साधना विधिवत् चलने लगी। गुरु महाराज ने उन्हें अपना ध्यान बताया था। महाराज जी ने मानसिक पूजा जिस तरह से बताई थी, उसी तरह वह करते लेकिन ध्यान धरते तीर-धनुष वाले रामजी का, क्योंकि जब से वे साधु वेश में आये थे, तीर-धनुष वाले रामजी का चित्र सामने रखकर उसी की पूजा किया करते थे। बाहर पूजा करने का उनका अभ्यास था। महाराज जी की शिक्षा से अन्तर इतना

आया कि तीर-धनुष वाले रामजी को वह हृदय में देखने का प्रयास करने लगे।

दो-तीन महीने बीत गये। महाराजजी ने कहा– क्यों रे! मोर रूपवा देखत है? उन्होंने गर्दन नीची कर कहा– हूँ। महाराज ने कहा– फिर कहत है हूँ! करे, मोर रूप देखत तो मोरेउ भीतर कुछ खटकत। हमें तो तोरे हृदय में अंधेरा दिखाई देत है। चौथे महीने में महाराज ने फिर पूछा– क्यों रे! कुछ दिखाई-सुनाई पड़ता है तुमको? भगवान भीतर से कुछ बताते हैं? वह बोले– कुछ नहीं गुरु महाराज। कुछ भी दिखाई-सुनाई नहीं देता। महाराज ने कहा– इसका मतलब तूँ हमारी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। तोरे अन्दर कुछ गड़बड़ी है। तू ऊपर से देखने में चिकना–चिकना है, भीतर से बदामे का बोकला है। इसके पश्चात् गुरु महाराज ने हृदय से समझाना शुरु किया। अनुभव में गुरु महाराज ने दर्शन देकर कहा– करे न मनिहै! क्या है रामजी के पास? मुकुट है! तो मुकुट सजीव होकर रामजी के सिर से उतर कर महाराज के मस्तक पर लग गया। महाराज ने कहा– और क्या है! पीताम्बर! वह भी महाराज के शरीर पर लिपट गया। तीर-धनुष, तरकश सब महाराज के पास आ गये। महाराज बोले– अब मनिहै! तोके यदि सचमुच भगवान राम की जरुरत है तो मोरे रूपवा का ध्यान कर, नहीं तो एकाध जन्म ऐसे ही भटकत रहिहै। उस दिन से वह गुरु महाराज

के स्वरूप का ध्यान धरने लगे। पन्द्रह दिन में ही भजन जागृत हो गया, भगवान उठाने-बैठाने-सुलाने-जगाने-चलाने लगे। जब साधक सो जाता है तब भगवान जाग कर पहरा भी देते हैं, पहरा देने लगें। फिर तो ब्रह्मचारी जी का भजन-चिन्तन विधिवत् चलने लगा। वास्तव में ध्यान सद्गुरु का ही किया जाता है।

९६. १३ वर्षीय बालक का साधु बनने हेतु आना

जब आहिस्ते-आहिस्ते शिष्य आने लगे तो महाराज कहें– हो, हम विरक्त शिष्य बनाते तो एक हजार से कम न होते लेकिन भगवान मना कर दें–इसमें लक्षण नहीं। तो घर में चिट्ठी लिखवा के, किसी से सूचना दिलवा के, पकड़वा के भिजवा दें। किसी को समझा-बुझा के, किसी को गाली-वाली दे के, डाँट-फटकार के जरूर भगा दें। न रखें। भगवान मना कर दें, इसलिए न रखें।

ऐसे ही भटकता हुआ १३ वर्ष की उमर का एक ब्राह्मण का लड़का, गोर अंगार, तेज तर्रार, आकर महाराज को प्रणाम किया और लगा झाड़ू लगाने, बगैर पूछे। लकड़ी-वकड़ी रखने लगा। जो कुछ सेवा हो, अपनी बुद्धि से सोच-समझकर करने लगा। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गया। बढ़िया-बढ़िया बातें पूछे! पता चला घर में एक फैक्ट्री भी है। सबकुछ ठीक लेकिन खाना न खाये। तेरह दिन बीत गया। तब महाराज कहे– रे, ई अज्ञानी है रे। बहुत समझावे महाराज तबौ न समझे। वह बोले– नहीं महाराज,

खाने की कौन जरूरत है। हवा भर भी चेहरे में शिकन न आवे। बिल्कुल प्रसन्न मुद्रा में दौड़-दौड़ के सब काम करे। लकड़ी ले लावे, कमण्डल माज लावे, थाली माज लावे, सब सेवा करे, सबको खिलाये लेकिन अपने खाना नहीं खाये। १५ दिन हो गया तब महाराज कहें– ई अज्ञानी है। इसको खिला रे सच्चिदानन्द! ब्रह्मचारी जी ने सतुआ घोल के गिलास में पतला-पतला, उसे डाँट के जबरदस्ती पिला दिया। पी तो लिया, फिर कुएँ पर गिलास धोवत जाय, रोवत जाय..उँ-उँ-उँ-उँ और बोला– महाराज, हमार धरम नष्ट कर दिया! महाराज ने कहा– पूछो एसे, कवन धरम नष्ट कर दिया रे! वह बोला– हमें सतुआ खिला दिया, हमार धरम नष्ट कर दिया। महाराज बोले– करे, हम लोग खाते हैं, क्या हम साधु नहीं हैं? वह बोला– नहीं, आप लोग साधु नहीं हैं। साधु कहाँ खाते हैं? महाराज बोले– देखो हो! ई का कहत हैं!

महाराज बोले– देख, तू जब २२ साल, २३ साल का हो जायेगा, तब चले आना, हम तुमको रख लेंगे। अभी तू घर जा। माता-पिता की सेवा कर, पढ़-लिख। हम तुम्हें अवश्य रख लेंगे। अभी भगवान का मन नहीं है, तुमसे पार नहीं लगेगा। समझाये, उ माने ही ना। महाराज सोचे– भगवान कहते हैं–इसको मत रखो, इससे पार नहीं लगेगा। इससे हम जीव कैसे छुड़ावे? उसी समय पाँच महात्मा शरीर पर विभूति पोते, छोटी-छोटी झोलिया बगल

में लटकाये, एक तरह तुम्बड़ी लिए, हाथ में एक तरह का कमण्डल लिए आते हुए दिखाई पड़े। महाराज बोले– देख, इतने सुन्दर-सुन्दर महात्मा आ रहे हैं, इनके साथ चला जा। महाराज का मन रहा उसे घर भेज दें लेकिन घरवालों का पता वह बताता ही न था। इसलिए उन महात्माओं के साथ जाने को कहा। उन महात्माओं ने भी सुन लिया कि वहाँ कोई है जिसे भेजना चाहते हैं। वे तुरन्त चढ़ गये सीढ़ियाँ। महाराज को दण्डवत किया और बोले– चलो बच्चा! राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे.... लगे राम नाम के तमाम मंत्र सुनाने– अरे, रामजी से बढ़कर कौन है? राम घट-घट में रमण करता है, मन में रमण करता है। चलो बच्चा। अब भोला भगत, महाराज को छोड़ के जाने का मन न करे किन्तु महाराज रख ही नहीं रहे हैं। तब वो किसी तरीके से रोते-गाते चला। वे कहने लगे– ये मंत्र देंगे, वो मंत्र देंगे। फुसलाते हुए ले चले। किसी तरीके से वह चला जा रहा था, जाते-जाते वह महाराज की ओर देखता जा रहा था।

एक दिन तो प्रयाग पहुँचने में लगा, दूसरे दिन रावटी (कैम्प) में जवन खुराफात शुरू किया उनलोगों ने, उस लड़के के साथ दुराचार शुरू कर दिया तो लड़का चिल्लाया बड़ी जोर से। उन सबने सोचा, हम पकड़ जाब। बाबा लोग डर गये। उसने बाबा लोगों को डरा दिया। होशियार बहुत रहा। बाबा डर गये कि पुलिस

पकड़ लेई, बगल में कैम्प है। हमलोगों को कैद कर लेई। दुष्चरित्र रहें सब, केवल राख भर पोते रहें। डरे रहे, फिर भी पहरा लगाये रहे पारा-पारी। कोई घूमे, कोई पहरा दे। किसी तरह वह लड़का राउटिया में कहीं से छेद करके भागा मेले में।

उनकी निगाहों से ओझल होके वह भाग के तीसरे दिन अनुसुइया चला आया। महाराज को देखते ही लगा भोकार छोड़ के रोने। महाराज के ऊपर वह ऐसे बिगड़ा जैसे कोई लड़का अपने बाप के ऊपर बिगड़े, कहने लगा– आप जानते थे वो नीच हैं, अभागे हैं, विषयी हैं, दुराचारी हैं, उनके साथ हमको क्यों भेज दिया? महाराज बतावें– हो, हमरौ आँखों में आँसू आ गया। मारो धूर्तों को, वेश बना के दुष्ट पड़े हैं....कालनेमि... कपटी मुनि। अब कोई कहाँ जाये? सान्त्वना दिये, बोले– कुछ बिगड़ा नहीं है। तू ठीक है। हमने कहा था अभी संस्कार नहीं है तुम्हारा। अब तो समझ में आया कि संस्कार में नहीं है। जहाँ जाओगे, खतरा ही मिलेगा। अब चले जाओ घर। किसी तरीके से खर्चा भी दिया और भेज दिया। चल तो दिया बेचारा। महाराज बोले– ऊ गया नहीं, इसी जंगल में है। ढूँढ़ों उसको। फिर ढूँढ़वाया उसको। महाराज बोले– उसकी साँस बोल रही है, जंगल में है यहाँ। जो भी आवे, उससे ढूँढ़वाये। लोग बोले– महाराज, इतना छोटा लड़का इस बियावान जंगल में, जहाँ कदम-कदम पर शेर, चीते, भालू घूम

रहे हैं और नरभक्षी भी इसमें हैं, नहीं हो सकता। चार दिन बुरी तरह ढूँढ़वाया महाराज ने। महाराज कहें– इसकी साँस बोल रही है। वो है यहाँ पर। लोग ढूँढ़ें, आवाज दें लेकिन वो बड़ा टिन्नी रहा। सुने आवाज, बोले न। फिर कुछ पहाड़ चढ़ के ढूँढ़े, इधर ढूँढ़े। चार दिन बाद महाराज बोले– चाहे मर गया हो, चाहे कहीं चला गया हो, अब तो नहीं समझ में आवत है। फिर बैठे-बैठे महाराज बोले– अरे, अभी जिन्दा है, यहीं है। उसकी स्वाँस बोलत है, फिर ढूँढ़ो। है जंगल में ही। वह सीधा खड़ा पहाड़ चढ़ के ऊपर चला गया था। उसे किसी जानवर ने तो नहीं छुआ, उसने खुद शरीर त्याग दिया मारे ग्लानि के। चद्दर ओढ़ के पड़ा रहा। गिद्धों ने चद्दर-वद्दर छुआ, गिरा ऊपर से धड़ाम। सातवें दिन उसकी शरीर गिरी। पुजारी वगैरह उधर से चिल्लाये, बोले– महाराज, एक लाश गिरी है पहाड़ से। महाराज बोले– तुमने देखा है? वह बोले– हाँ महाराज, इधर से गिरी है। वहाँ गिरी है। महाराज बोले– जाओ, पुलिस को रिपोर्ट करो। अनुसुइया कामतानाथ थाना क्षेत्र में पड़ता था। वहाँ से पन्द्रह किलोमीटर दूर से पुलिस आयी। उस लाश को ला के रखा महाराज के सामने तो वही लड़का था। प्राण त्याग दिया। महाराज कहे– हे भगवान! हम सोचे कवने रँगे घर चला जाय। यह पता होता कि प्राणइ देइ देई त एक ठे पतित सही, रख लेते। ऐसे ही बहुत टेक के पक्के लोग.... किसी ने घर

में डाँट दिया तो भागा, स्कूल में मन नहीं लगा तो भागा, कोई कारण पड़ गया तो भागा। इसलिए लड़कों को नहीं डाँटना चाहिए।

९७. महाराज जी की आगरा-यात्रा एवं अत्रि जी का दर्शन

एक बार बुखार महाराज को इतना चढ़ा कि सोचा, आगरा में बड़े अच्छे-अच्छे भगत हैं और डॉक्टर भी बहुत हैं। चलो, दो दिन दवाई खाके चला अइहों। चले गये। जहाँ पहुँचे तो जितने भगत थे सब इकट्ठे हो गये, बोले– गुरु महाराज आ गये, गुरु महाराज आ गये। भीड़ लग गयी। फिर जहाँ के तहाँ चले गये सब। रात को फिर अत्रि महाराज पहुँचे। अनुसुइया वाले अत्रि महाराज। वह बोले– अरे, शरीर की इतनी चिन्ता करिहो तब भजन कैसे होई? चलो-चलो, आश्रम चलो। तब महाराज कहें– अरे भगवन्! आपने कष्ट क्यों किया यहाँ आने का? वहीं से इशारा कर देना चाहिए था, हम चले आते। वे बोले– हम न आते तो कौन आता? वहाँ है कौन? हम हैं और फिर इसके बाद तुम हो? और कोई है ही नहीं तो कौन आता? इसलिए हमें आना पड़ा। महाराज तुरन्त उठे और चल दिये रात को दो ही बजे। और सीधे वापस चले आये। उन भक्तों के ऊपर जो सुख-दुःख बीता हो, वो जाने। फिर दवाई नहीं करवाये। महाराज कहें– महात्मा का रोग भी एक भोग होता है। भोग खतम, रोग खतम। अत्रि महाराज अपनी जगह

पर आज भी यथावत् हैं और जो श्रद्धा से देखेगा, दर्शन देते हैं, कल्याण करते हैं। मैंहुँ मरिहो ना, शरीर तो कउनो न कउनो बहाना से छूटेगा ही। कोई महापुरुष, बड़े-बड़े हुए, किसी का भी तो नहीं दिखाई देता शरीर। रामजी का भी नहीं, कृष्ण का भी नहीं, किसी महापुरुष का नहीं। लेकिन सूक्ष्म स्वरूप से मैं सदैव अपने आसन पर ऐसे ही बैठा रहूँगा। जो श्रद्धा से स्मरण करेगा, मैं सदैव कल्याण करता रहूँगा। और है भी ऐसा ही। आज भी कोई देश-विदेश में कहीं भी श्रद्धा से स्मरण कर लेता है, महाराज उसके कल्याण का विधान करते रहते हैं।

९८. दर्शन की छात्रा चित्रकूट में

उन्हीं दिनों दर्शन की एक छात्रा यहाँ-वहाँ शास्त्रार्थ करते बंगाल से अनुसुइया तक आ गयी। उसके छः भौजाइयाँ थी और वो छः भाईयों के बीच में एक बहन थी। वो थोड़ी साँवली थी। जहाँ शादी तय करे तो कोई पसंद न करें तो भौजाइयाँ ताना मारे– बाईजी जवन रूप-स्वरूप लेकर अवतार लिये हैं कोई पसन्द नहीं करत है। कालिका का अवतार हैं। बिगड़ खड़ी हुई। अकेली बहन दुलारी होती है, वह बिगड़ खड़ी हुई– मैं ऐसा पति लाऊँगी तोहरे सारे पतियन के पटक के चढ़ बैठे। और ज्ञानी होगा, ध्यानी होगा। वो पति ढूँढ़ती-ढूँढ़ती पहुँच गयी मथुरा। वहाँ लगी शास्त्रार्थ करने झूम के। बंगाल में कृष्णभक्ति बहुत है। फिर पहुँच गयी अयोध्या।

वहाँ भी पटकनी दिया इधर-उधर। फिर पहुँच गयी चित्रकूट। चित्रकूट में जउने-जउने कुटिया में पहुँच जाय, सब महात्मा भाग खड़े हों। के ओके मुँह लागे।

९९. सिरसा बन में परशुराम जी

वह पहुँच गयी सिरसा बन। वहाँ परशुराम नाम के एक अच्छे महात्मा, बाँदा जिला के नामजद महापुरुष थे। उनके यहाँ दस-पन्द्रह शिष्य भी थे। दस-पन्द्रह भगत मोटे-मोटे बैठे हुए थे। शास्त्रार्थ छेड़ दिया– ब्रह्म शाश्वत है, कण-कण में व्याप्त है, हमारे अन्दर ही है, मैं वहीं स्वरूप हूँ तो भजन करने की कौन जरूरत है? वह बहुत तार्किक रही। भजन करके किसको ढूँढ़ें, जब हमहूँ ईश्वर-रूप हैं? **'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति'।** रगड़े पड़ी रही उल्टा-सीधा। परशुराम जी भी अपने को ब्रह्मज्ञानी कहते रहे। भजन वोहू नहीं जानत रहें। उसका समाधान न कर पावें। कहीं न कहीं फँसाती चली जाय।

१००. दर्शन की छात्रा का समाधान

इतने में ब्रह्मचारीजी गठरी लेके चले आये। परशुराम जी बोले– आइए स्वामी सच्चिदानन्दजी, बहुत अच्छे ब्रह्मचारी हैं। इनके गुरु महापुरुष हैं, जंगल में रहते हैं। उनके शिष्य हैं। आइए, ब्रह्मचारीजी, बैठिए। वह बोली– यही उत्तर दे दें। वो शास्त्रार्थ नहीं करत रही, कुछ खोज रही थी। स्वामीजी पहले पहलवान रहें,

अच्छी कुश्ती भी लड़ते रहें। देखा शारीरिक सौष्ठव, गठन और जहाँ वे बैठे, उसने प्रश्न किये, पाँच मिनट में उसके सारे प्रश्नों का हल हो गया। वह बोली– मैं जिस रतन, जिस फूल, जिस खुशबू को ढूँढ़ती थी, मुझे मिल गया। जिस पारस मणि की मुझे जरूरत थी मिल गयी। परशुराम जी बोले– बचना स्वामी सच्चिदानन्द जी! **'मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं।। तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।।'** (मानस, ३/१६/९–१०) बचिये स्वामी सच्चिदानन्द जी! ये रतन पा गयी है, पारस मणि पा गयी है। अब स्वामीजी तो मारे शरम के एकदम डूब गये। वह उस समय नवयुवक साधक ही तो थे। उन्होंने परशुराम जी को तुरन्त प्रणाम किया और चल दिये। वह बोली– हम भी चलेंगे आपके साथ। ब्रह्मचारीजी बोले– हमारे साथ जइहे न तो वो साधारण महात्मा नहीं हैं अनुसुइया के। हमहूँ के मार भगाय देइहैं, तोहूँ के काटि के नदिया में फेंक देइहैं। हमारे साथ कोई नहीं जा सकता। वह बोली– हम अकेले जायेंगे। संत हैं, दर्शन करेंगे। **'साधु ते होइ न कारज हानी।'** (मानस, ५/५/४) साधु कैसे काट के फेंक देंगे! हम अलग से जायेंगे।

१०१. दर्शन की छात्रा अनुसुइया आश्रम में

स्वामीजी जब निकल गये तब वह भी चश्मा लगा कर, चप्पल पहन कर खटर-खटर करते निकली। स्वामीजी ने मुड़कर

देखा, आवत है पीछे तो तीव्र गति से चले कि उससे एक घण्टा पहले पहुँच गये। जाकर सब बता दिया– ऐसे–ऐसे शास्त्रार्थ हो रहा था, हमने ऐसे-ऐसे बताया तो वो कहत रही रतन पा गयी, जिस रतन के लिए मैं निकली थी; वो खुशबू पा गयी। ऐसे-ऐसे बोलत रही। परशुराम जी ने व्यंग्य में कहा– **'तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।।'** बचिहे स्वामी सच्चिदानन्द जी! वो हमारे साथ आना चाहती थी, मैं भाग आया लेकिन देखा हमने वो पीछे-पीछे आ रही थी। आवत होई। महाराज कहें– हूँ!

एक घण्टा बाद वह भी पहुँच गयी अनुसुइया। महाराजजी को सादर प्रणाम किया। एक प्रश्न कर लिया। तब महाराज कुछ बतावें, महाराज बोले– वहाँ बैठ, उस कोने में। जब प्रश्न का उत्तर दें तो घुसकत-घुसकत महाराज के पास तक चली आवे। महाराज उठाये छड़ी, बोले– धत् चुड़ैल कहीं की, चढ़ी चली आवत है। वह हँसे और जाके दूर बैठ जाये। फिर टुन्न देना प्रश्न पूछ ले। जहाँ महाराज बतावें तो सुनत-सुनत घुसकत-घुसकत फिर पास में चली आवे। बड़ी मायावी रही। वह बोली– भगवन्! मैं यहीं रहकर भजन करूँगी। महाराज बोले– भाग यहाँ से, यहाँ कन्याओं का प्रवेश नहीं है। महाराज ने भगा दिया– बस हो गया, अब नहीं रहना यहाँ।

उसने प्रणाम किया और चली गयी। थोड़ी दूर पर अनुसुइया मन्दिर रहा, वहाँ का पुजारी उसको खाना दे दे। आश्रम से तो पत्ता कट गया, पुजारी ने आश्रय दे दिया। वह रोज आवे, महाराज का दर्शन करे। एक दिन आधी रात को पुजरिया के यहाँ से आयी और महाराज जहाँ लेटे थे, उसके पीछे दो-ढाई फीट चौड़ी नीची जगह थी, उसमें आके सो गयी। धूना जल रहा है। महाराज को अपशकुन हुआ–भयंकर खतरा! मृत्यु जैसा खतरा!! सरप है कि क्या है? टार्च उठाया, देखा तो कुछ नहीं। उल्टा-सीधा जो संकल्प कर रही थी, महाराज बैठें, टार्च उठावें तो संकल्प करना बन्द कर दे। फिर थोड़ा लेटें, फिर वैसे ही संकल्प करे। तब महाराज उठ के खड़े हो पीछे देखा टार्च से, वह लेटी थी। तब महाराज ने उठा ली छड़ी। महाराज दिगम्बर रहते थे, कभी-कभी मलमल का एक कपड़ा लपेटे रहें। उस दिन भी हल्का सा कपड़ा था। ओहू उठा के फेंक दिया और बोले– देख, मोरे माथे तोर काम न चली। हम सचहूँ के साधु हैं। मोके भगवान साधु बनाये हैं। उठाया छड़ी, वह भागी फन-फन-फन।

दूसरे दिन सुबह फिर चली आयी। कहने लगी– गुरु महाराज नग्न रहते हैं, मैं भी नग्न रहूँगी अब तो। स्वामी सच्चिदानन्दजी उधर लेटे रहे, जाकर उनके पेट में खोदा– क्यों गुरुभाई! अब तो हम-आप गुरुभाई हो गये। स्वामीजी के रोआँ-रोआँ खड़ा हो गया।

आके बोले– महाराज! इस चुड़ैल के भगाओ नहीं तो हमारा सब कुछ लुट जायेगा! मैं घरे जात हूँ। महाराज बोले– तोरी मेहरा की, बदाम के बोकले की, पहले तो ज्ञान बघार के पीछे-पीछे ले आवा। अब काहे चिल्लात है! अरे, ज्ञान अधिकारी को दिया जाता है कि जिसको मन आवे उसी को।

इतने में गाँव से दो भगत आ गये। महाराज बोले– देखो, इसको ले जाओ। इज्जत के साथ ले जाओ। गाँव के उस पार छोड़ देना। वह बिगड़ खड़ी हुई– तुमलोग जानते नहीं मैं कलकत्ता की काली हूँ, छुओगे तो भस्म हो जाओगे। वे बोले– महाराज, बाईजी बहुत बिगड़े हैं। महाराज बोले– करे, हमहूँ से बड़ी सिद्ध हो गयी। तब उनलोगों ने कहा– बाईजी, अब हम चाहे भस्म होई जाई, जब गुरु महाराज का आदेश है तो अब न छोड़ब। अब तूँ घुड़कती रह। पकड़ा गट्टा, घसीट ले चले। वह बोली– अरे मेरा चप्पल छूट गया.... दर्शन तो कर लूँ....। उन लोगों ने कहा– अभी दर्शन नहीं हुआ क्या? यहीं से कर! उसने कहा– चप्पल....? वे बोले– हम ले आते हैं। एक उसका चप्पल ले आया। उसे ले गये गाँव। गाँवभर की औरतें खड़ीं हो गयीं ओके देखे खातिर! जानते रहे ९ दिन से महाराज को तंग किये रही। फिर बड़ा उपदेश दिया गाँव में– परमहंस जी महापुरुष हैं। हम सब जगह.... भारत घूम के आये यहाँ, ऐसा महापुरुष हमने कहीं नहीं देखा। ब्रह्मचारी भी

महान् संत होंगे, उनमें भी कोई कमी नहीं। अहोभाग्य हमारा जो यहाँ आये। और चली गयी। इस तरह जंगल में प्रारम्भिक साधक के लिए एकान्त में खतरा ज्यादा है और महापुरुष के लिए कहीं खतरा नहीं है क्योंकि रक्षक स्वयं भगवान होते हैं।

१०२. महुआ बीनने वाले बैरागी महात्मा

जब महाराज का निवास अनुसुइया में हो गया। लोग आने-जाने लगें तो एक गृहस्थ बाबा ने बगल में आसन लगा लिया, झोपड़ी बना ली। वह मंदाकिनी के उस पार महुआ बीना करें। जब यात्री दिखाई पड़ें तो नदी डाक के चला आये और नदी किनारे पेड़ के नीचे बैठ के रामायण पढ़े– **'आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत निअराया।।'** (मानस, ४/१/१) सीताराम.... सीताराम....। महाराज कहें– धत् तेरी ढोंगी की, और थोड़ा आँसू भी बहा ले। अब तक भजन नहीं किया, यात्री देख के करत है जउने कि चार रुपया कोई चढ़ा दे। कपटी कहीं का। वह वहीं पर कहीं न कहीं रहे और महात्माओं को उकसा-उकसा के लाया करे।

१०३. साधकों पर महाराज जी की सतर्क दृष्टि

सुबह भजन में बैठें सब। शान्त बैठे रहें। चिड़िया की आवाज आवे, कभी-कभी शेर की दहाड़। कभी बन्दर कभी मृगा। कभी-कभी एकदम सन्नाटा। कोलाहल का वायुमण्डल नहीं था। भजन छोड़कर और कुछ नहीं। अनायास वो सामने का पहाड़। एक

किलोमीटर ऊपर से शहनाई, मसक बीन बजाते लोग उतरे। साथ में उतरी औरतें। नीचे थोड़ा मैदान है उस पार, उसमें उतर आयीं। गाना गा रही थीं। ब्रह्मचारी जी भजन छोड़कर उठकर खड़े हो गये, सीढ़ियों पर खड़े होकर देखने लगे। फिर सीढ़ियों के उस पार जाके पत्थर पर खड़े हो गये। फिर पंजे के बल उनको देखने लगे। महाराज ऊपर बैठे थे, दस-पन्द्रह सीढ़ियाँ ऊपर। महाराज ब्रह्मचारी को देख रहे थे। इतने में ब्रह्मचारीजी को याद आया– कहीं महाराज तो नहीं देख रहे हैं? घूम के देखा तो महाराज देख रहे थे। सकुचा के आ के बैठ गये भजन में। १२ बजे के करीब गाँव से, आठ किलोमीटर दूर सेमरिया ग्राम से जमुना पांड़े पहुँचा। दर्शनार्थ प्राय: पहुँचता रहे। प्रणाम किया गुरु महाराज को। फिर ब्रह्मचारीजी की ओर बढ़ा। महाराज बोले– कहाँ जात है? वह बोला– ब्रह्मचारी जी का दर्शन कर लूँ। महाराज बोले– ई हरामी ब्रह्मचारी की! ऊ तो मेहरिया ताकत है। पांड़े बोला– का ब्रह्मचारीजी, महाराज का कहत हैं। ब्रह्मचारी बोले– भाई, हम तो किसी को नहीं ताक रहे थे। महाराज बोले– क्यों रे, का ताकत रहा। जब नीचे से नहीं दिखा तो पथरे पर चढ़ गया। फिरौ नहीं दिखा तो पंजे पर खड़ा होके हे तरे ताकत रहा, उचक-उचक के ताकत रहा। तोरे बादाम के बोकले की। अब ५० ठो खरी-खोटी। जब एक बार डाँट पड़ जाय तो पन्द्रह दिन के लिए चाभी भर जाय। फिर भजन छोड़ के मन कहीं न जाय। महापुरुष की डाँट भजन की, हृदय की, मन

की सफाई के लिए ही होती है। फिर १५ दिन के लिए लाईन पक्की हो जाय। फिर थोड़ा दहिने-बायें उच्चाटन होने लगे तो फिर एक बार पटकनी लग जाय। साधकों की देख-रेख के लिए गुरु महाराज की सतर्कता सदा बनी रहे।

१०४. करपात्री जी का धर्म-संघ एवं महाराजजी का संदेश

गुरु महाराज जब अनुसुइया में रहने लगे उस समय धर्मसंघ करपात्री जी ने बनाया था। वह प्रचार करते हुए पहुँच गये चित्रकूट। रामराज्य परिषद की स्थापना किया था.... धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, विश्व का कल्याण हो, प्राणियों में सद्भावना हो, गोवध बन्द हो, रामराज्य हो। महाराज कहें– आफत करके धर दिया! ये तो अच्छे महात्मा थे, इनको कौन सनक सवार हो गयी? रामराज्य हृदय में होता है कि बाहर दुनिया में? उस समय ब्रह्मचारीजी महाराज के पास थे। महाराज बोले– करे सच्चिदानंद, जा तो। जाके पूछ– भगवान ने आदेश दिया है आपको ये करने के लिए? साधु हो तो भजन करो। भगवान आदेश न दें तब तक समाज में कूदना पाप है, वर्जित है। भगवान आदेश दें तो अवश्य कूदे का चाही। आदेश न दें तो नहीं कूदना चाहिए, सफलता नहीं मिलेगी। रामराज्य हृदय में होता है कि दुनिया में!

जब जाके ब्रह्मचारी जी ने पूछा करपात्री जी से, तो उन्होंने पूछा– आप कहाँ से आये? ब्रह्मचारीजी बोले– हमें परमहंसजी

महाराज भेजे हैं, अनुसुइया के परमहंस जी। करपात्री जी बोले– भाई, नाम सुना है हमने। हम दण्डवत करते हैं। अब हम तपस्या करें, आदेश मिले तब तक इंतजार करें तो देर हो जायेगी। संसार डूब रहा है, धर्म भ्रष्ट हो रहा है। अब हमारे पास एक लोटा पानी है तो हम उतना तो पिला ही देंगे। ब्रह्मचारीजी बोले– तब गुरु महाराज ने कहलाया है 'तुमसे कुच्छौ न होई'। बस वोहू भुनभुनाये। ब्रह्मचारीजी बोले– भुनभुनाओ केतनो, आदेश तो यही है। वो बेचारे थोड़े दुःखी हुए, उदास हुए। ब्रह्मचारीजी लौट आये। फिर रामराज्य परिषद समाप्त हो गया।

महापुरुष गोवध बन्द कर गो-रक्षा पर बल देते रहे हैं। गो-रक्षा– गो माने मनसहित इन्द्रियाँ! इनका वध होता है अनन्त इच्छाओं से, वासनाओं से, काम-क्रोध-लोभ से। इनकी रक्षा होती है इन्द्रिय-संयम से, मनोनिग्रह से, अनन्त इच्छाओं और वासनाओं के संयम से। थी अंदर की चीज किन्तु लोग बाहर एक पशु को लेकर दौड़ लगाने लगे। यहीं से पूरा भारत भटक गया। पहले बकरी पाँच का नोट तो गाय सौ का नोट था। घोड़ा और हाथी तो बड़े लोगों की चीज थी, रजवाड़ों की चीज थी, जमींदारों की चीज थी। जब दान-पुण्य में गाय मिलने लगी तो पंडितन का लहान बैठ गया, गोधन लेने लगे। वैतरणी पार करे एहि से। वैतरणी माने जानते हो? जिस नदी में तरणी माने नाव न हो, वहाँ गाय पार

करेगी? इसको उछाल दिया– गाय दान दो, गाय दान दो। अब गाय मुफ्त में कोई नहीं लेता है। मानस का उल्लेख है–**'जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेट सकहिं त्रिपुरारी।।'**(मानस, १/६९/५) यदि पार्वती तपस्या करे तो प्रारब्ध भी मिटा सकते हैं शंकरजी। शंकर एक योगेश्वर थे। शंका अरि स शंकर। शंकर शंकाओं से अतीत एक महायोगेश्वर, सद्गुरु थे। गुरु महाराज में ये क्षमता थी।

१०५. आश्रमीय भक्त का शेर से सामना

यात्री आवें तो शेर-बाघ जैसे जानवर प्राय: टकरा ही जाँय। कई-कई किलोमीटर गाँव थे ही नहीं। गाँव से श्रद्धावश लोग आया ही करें। एक पंडित चला आ रहा था। एक शेर ने सुअर मारा। पगडण्डी के उस पार से घसीट के इस पार ले लिया और झाड़ी में खींच रहा था आगे। पंडित ने सोचा कि सुअर खुर्र-खुर्र कर रहा है, कुछ खोद रहा है, तो बोले– हूँ। शेर ने सुअर को तो छोड़ दिया, हाऊँ करके झाड़ी के ऊपर से पाँव इस पार पटका। पंडित के हाथ में दही की एक हड़िया थी, वो गिरी धड़ाम। झाड़ी तो गयी दब। अब पंडित गिरा धड़ाम पीछे की तरफ और पंडित के पाँव के पास शेर का मुँह। फिर देखा पंडित ने तो आँखें फटी रह गयीं। वह देख रहा था शेर को, शेर उसको। फिर शेर घूम गया सुअर की तरफ। पीछेवाले पाँव पण्डित के पाँव के पास। फिर खुरचाली मारे, पीछेवाले पाँव से ऐसे घूम के देखा करे। पूँछ पटके तो पंडित

के पाँव पर पड़े सटाक-सटाक। पंडित के तो होश उड़ गये। फिर आहिस्ते से शेर १५ मिनट बाद उठा और पहाड़ चढ़ गया। लगता है शेर का पेट उस समय भरा था। उसके पाँव चुटुर-चुटुर बज रहे थे। वो पुराना शेर था। चढ़ता चला गया। आवाज सुन रहा था पंडित कि इतना दूर गया! जब काफी दूर चढ़ गया तब आहिस्ते से उठा, दबे पाँव से भागा और महाराज के ठीक सामने पहुँच गया। तब रुलाई फूटी– हा महाराज, शेर खा गया, शेर खा गया। महाराज बोले– धत्, शेर खा गया। आश्रम है कि शेर खा गया। तब फिर हाँफते-हाँफते किसी तरीके से होश आया। बोला– अरे महाराज, शेर तो खा ही गया था। कृपा रही जो हम बच गये।

१०६. एक भीलनी का उपद्रव

सबेरे-सबेरे अनुसुइया आश्रम में दूर-दूर तक न कोई आदम न आदम की जात। गाँव से कोई चाहकर भी साढ़े नौ-दस बजे से पहले आश्रम न पहुँच सके। बस बियावान जंगल। मोर बोले, चिड़िया बोले, बंदर बोले, शेर दहाड़े, कल-कल बहता हुआ पानी, पहाड़, नीरव जंगल। रात भर मस्ती में भजन, दिन भर मस्ती में भजन। दस बजे साढ़े दस बजे तक तो कोई पहुँच ही न पावे। शान्ति से भजन चलता रहे। रात्रि में भजन, ब्रह्मबेला में, फिर सुबह नित्यक्रिया से निवृत्त होके ठीक छः बजे गुरु महाराज भजन में बैठ जाय, और सब भजन में बैठ जाय। दो-चार शिष्य थे उस

समय। ठीक चल रहा था विधिवत्। अनायास पता नहीं कहाँ से एक औरत सुबह निकल आवे रास्ते पर तो झन्न-खट, झन्न-खट, झन्न-खट सुनाई पड़े महाराज को। महाराज बोले– करे, हमरे कान में सुनाई पड़त है झन्न-खट, झन्न-खट। कोई माई-दाई आती है क्या? एक ने कहा– हाँ महाराज, यहाँ से ५-६ किलोमीटर दूर उस गाँव की एक भीलनी है। पता नहीं रात में कब चलती है कि सवेरा होते-होते यहाँ आ जाती है लाठी लिए, झोला टाँगे। कोल-भीलों के घर की औरतें एक पाँव में कड़ा पहने रहती हैं। कड़े के अन्दर कुछ ठोस कंकड़ भरे रहते हैं। जहाँ पाँव जमीन पर रखती हैं तो झन्न की आवाज आती है। जूता दोनों पाँव में होता है। जूते में नाल लगी रहती है। इसीलिए दूसरा पाँव पड़ते ही खट् की आवाज आती है इसीलिए झन्न-खट, झन्न-खट की धुन बराबर चलती रहती है। महाराज ने कहा– देख उसे मना कर दे।

उसके बाद तीन-चार दिन बीत गये। महाराज बोले– करे, अबहूँ मोके झन्न-खट सुनाई देत है। एक शिष्य बोले– महाराज, रोज मना करते हैं, वो मानती ही नहीं है। कहती है– अरे बाबा, गली छीदे देत है (रास्ता रोकत है)। ये तो हमारे पूर्वजों की चली हुई गली है। वो मानती ही नहीं महाराज। महाराज बोले– करे, कही देब, मना ही कर देब त काहे न मानी। तोके मना करे का सहूर नहीं है। देख, आज मैं मना करत हूँ, कैसे नहीं मानत है।

उस दिन दम लगा के, मूँछ में ताव देके बैठे रहे। इतने में सुनाई पड़ी झन्न-खट, झन्न-खट, महाराज ललकारे– झन्न-खट! झन्न-खट! जंगलों आये में बाधा? हथिनी बनी है! ला रे सड़सा लाल करके। ला दाग दे। पकड़-पकड़। न एकर मुँहै देखे लायक, न ब्याहै करे लायक, झन्न-खट झन्न-खट आफत कर दिया। महाराज की भाषा अटपटी रहे। वह भागी छन-छन-छन-छन और उस पार से दूसरा रास्ता पकड़ के निकल गयी। महाराज बोले– अब देखें कैसे आवत है? कहत है मानत नहीं। तुम लोगन के मना करै के सहूर ही नहीं है। कैसे न मनिहै! अब आवे तब हम जानी। फिर नहीं आयी।

छः महीने बाद १५-१६ औरतों के बीच में वो आयी। महाराज पहचान लिये। बोले– अरे माई, छः महीने मोके तू खूब गरियाये होइहै। मैंहूँ तोके गरियावे हूँ, तोहूँ मोके गरियाये है, चल पटापटी हो गया, बदला बराबर हो गया। वह बोली– अरे बाबा, मैं तोहीं नहीं गरियाये रही हूँ। मोहीं का पता कि मोरे रेंगे से तोरे कलेजे में हूक उचत है। सब हँसने लगे। महाराज ने प्रसाद दिलवाया। सब बराबर। सबके भाव बड़े निर्मल।

१०७. बालकों द्वारा सिंह शावक को लाना

आश्रम में एक लड़का गुरु महाराज का चरण दबाया करे। यादव का लड़का। पन्द्रह साल उमर। रामलीला हो रही थी गाँव

में, वहाँ से आठ किलोमीटर दूर। रात को चरण दबा के भागा। जाते समय अकेला था। गया रामलीला देखा और रामलीला खतम हुई तो रात को एक बजे फिर वापस चला कि नहीं तो महाराज डाँटेंगे। आते समय एक लड़का को और ले लिया। बड़े सवेरे उजेला हो चला था। शेर का एक बच्चा झाड़ी में बैठा था सड़क के किनारे। उसे उठा के साफी में लपेट लिया। अब पुचकारत-पुचकारत चला आवे। शेरनी ने किया पीछा। आश्रम के करीब जब आ गये, एक फर्लांग-डेढ़ फर्लांग जब रह गया तब शेरनी पहुँच गयी पीछे सूँघत-सूँघत। जो बच्चा चूँ कर देता तब तो मार डालती। लेकिन वो बेचारा पुचकारे से शान्त हो गया था तो शान्त रहा। शेरनी गुर्राये, पत्थर फेंकत, डाँटत, फटकारत दोनों लड़के चले आये आश्रम में। महाराज के सामने लाकर रख दिया। महाराज बोले– करे, तोहार महतारी खा जाती तब? काहे के ले आया रे। उन्होंने कहा– कैसे खा लेती महाराज आपके रहते? हँसा करें दोनों। महाराज ने पिंजरा बनाया। दूध पिलावें। लेकिन उसको चाहिए था माँस। अब बाबा कहाँ से लावें। वह शेर लगभग तीन महीना तक आश्रम में रहा।

धीरे-धीरे लोग पता पा गये। ग्यारह नाल बंदूक लेके थानेदार साहब पहुँचे, इधर-उधर झाँकने लगे और बोले– महाराज, सुना है आपने शेर पाला है, कहाँ है? महाराज ने कहा– वो वहाँ है! वो

लकड़ी के सींकचा लगे हैं, उसी के अन्दर। दरोगाजी और सब देखने लगे। शेर का बच्चा बड़ा चुस्त, चालाक होता है। इधर से देखनेवाले आये तो पिंजरे के उस किनारे जाके दुबक गया। जहाँ देखने वाले पिंजरे के पास आये तो हाऊँ करके आया और पिंजरे के इस किनारे को ठक्कर मारा तो ग्यारहो नाल बंदूक लेके लोग उलट गये। दरोगाजी इधर गिरे पिस्तौल लेके। महाराज हँसे, बोले– अरे, उसको दाँतौ नहीं जामे हैं, नाखूनो नहीं हैं। दरोगाजी बोले– महाराज, शेर का नामै खतरनाक है। हमलोग वैसे ही डरे हुए हैं। उन लोगों ने चिड़ियाघरवालों से बताया। महाराज ने कहा– हमलोग बाबा हैं, हमें नहीं जरूरत है। वो तो मर जाता इसलिए परवरिश हो रही है। ले जाओ, जल्दी करो। कोई ले ही नहीं गया। फिर उसको जंगल में छोड़ दिया कि उसकी माई पा जाई। लेकिन ऐसा लगा कि वो पायी नहीं। तीन महीना तक तो सुनाई पड़ा कि है, फिर जो बीता हो।

१०८. ब्रह्मचारी बन्दर

आश्रम में एक ब्रह्मचारी बंदर हजार फीट ऊँचे पहाड़ पर रहा करे। बड़े सवेरे जब महात्मा लोग भजन में बैठ जायँ तो वह भी आके बैठ जावा करे। महाराज के आसन से ८-१० फीट की दूरी पर एक खंभा रहे, उसके पास आश्रम के अन्दर घुस के बैठा करे। महाराज चुपचाप ध्यान में बैठे तो वह भी बैठा रहे। एकदम

सीधा। सिर बिल्कुल न हिलावे। आँख मटका के देख लिया करे महाराज की ओर। घण्टा, दो घण्टा, तीन घण्टा बैठा ही रह जाय। जब महाराज खाँसने लगे तब वोहू पीठ खजुवावे लगे। नहीं तो खुजली हो तबौ न हरकत करे। तब महाराज चोकर, पैथन में कुछ आटा मिला के मोटा-सा टिक्कड़ बना के पकड़ा दें। वह खड़ा होकर एक हाथ में ले ले फिर पहाड़ पर चढ़ जाय। एक दिन महाराज बोले– अरे ब्रह्मचारी! बरसात का समय है बेटा! सूखी लकड़ी तोड़ नहीं देगा? यहाँ सूखी लकड़ी पेड़ पर है। उस दिन वह पहाड़ पर नहीं चढ़ा। कुएँ पर बैठ के रोटी खा लिया, हाथ झाड़ दिया फिर चढ़ गया पेड़ पर और उसी लकड़ी को तोड़ने लगा जो सूखी थी। लोगों ने कहा– अरे महाराज, ये तो सचमुच लकड़ी तोड़ रहा है, वही सूखी वाली। जब नहीं टूटी तो लकड़ी जहाँ सूखी थी, उसके ऊपर वाली डाल, जो १० फीट ऊपर थी, उस पर चढ़ गया। वहाँ से सूखी डाल पर कूदा झम्म! और हिलाने लगा। महाराज बोले– शाबाश बेटा, और जोर लगा! फिर भी नहीं टूटी तो बोले– एक बार और। तीसरी बार जोर लगाया तो थोड़ी लकड़ी टूट के गिर गयी। महाराज बोले– बस बेटा, अब रोटी बन जाई। अब तुम्हें मेहनत करने की जरूरत नहीं है।

एक दिन महाराज ने कहा– देख, जब ब्रह्मचारी हो, भजन करते हो, हम १५ किलोमीटर से गेहूँ-चना पिसवा के सिर पर

मँगवावें और तोके भोजन बना के खिलावे। जब साधु हो तो अपना चेता के ले आओ। अब कल से नहीं मिलेगा। दूसरे दिन बड़े सवेरे एक कुर्मी जमींदार सिर पर आधा मन चना लेके पहुँच गया, बोला– महाराज, यहाँ कहीं ब्रह्मचारी बन्दर है? महाराज बोले– तू कैसे जानत है? वह बोला– महाराज, रात को दो ही बजे जब मैं जंगल के खेत में खेत की रखवाली के लिए सोया हुआ था तो हमारा हाथ पकड़ के पखौरा हिलाया, बोले– सो रहे हो जमींदार, उठो। मैं अनुसुइया का ब्रह्मचारी बंदर हूँ। मेरे लिए चने लेकर चलो। हम उठ के खड़े हो गये। हमने कहा– कौन है भइया, हमको किसने पकड़ के हिलाया? 'ब्रह्मचारी बंदर अनुसुइया में रहता हूँ'–कौन बोला? वहाँ कोई था ही नहीं। थोड़ा घूम-फिर के हम फिर लेट गये तो एक झापड़ मारा– फिर सोता है, सुनता नहीं है। चल चना लेके। हमने सोचा– पहले हाथ पकड़ के हिलाया, दुबारा झापड़ मारा, तीसरी बार गर्दन न दबा दे, इसका कौन भरोसा? हम तुरन्त नहा के, चना ले के सीधे चले आवत हैं महाराज! क्या सचमुच ब्रह्मचारी बन्दर है? महाराज बोले– आने ही वाला है। बैठ इधर, अभी दर्शन हो जायेगा। इतने में ठीक ५ बजे ब्रह्मचारी बंदर चला आया कूदत-फाँदत। बैठ गया। महाराज बोले– ई है ब्रह्मचारी बंदर। कल हमने इसको डाँटा था– जब साधु हो, भजन करते हो तो हम तुम्हें बना के खियावें? आपन चेता लो। चेता के ले आवो, नहीं तो नहीं मिलेगा। इसलिए तुम्हे चेताया

है इसने। ये साधु है। तुम भाग्यवान हो जमींदार। तब महाराज ने कहा– ब्रह्मचारी! अब तुमको चेताने की जरूरत नहीं है। तुम्हें भोजन बराबर मिला करेगा। तुम भजन करो, निश्चिन्त रहो। जमींदार बोला– महाराज, मैं बराबर ब्रह्मचारी जी की सेवा करूँगा जब तक जिऊँगा। वो बराबर आधा मन चना हर हफ्ते लाके वहाँ पहुँचा दिया करे। अनुसुइया में जितने भी बंदर थे, उन सबको गुरु महाराज चना दिलाया करें।

१०९. आश्रम में सुग्गा

महाराज सुग्गा पाला करें। सुग्गा का शौक इसलिए लग गया, रामायण में लिखा है जब सीताजी का विवाह हो गया, चली गयी तो सीताजी ने जिस सुग्गे और सारिका को पाल रखा था वे चिल्लाये, कहने लगे– कहाँ गयी वैदेही? सीता कहाँ गयी? बुलाओ सीताजी को! कहाँ गयी वो? तो जो शुकसारिका सीता जियाये वो चिल्ला-चिल्ला के कहाँ गयी वैदेही, कहाँ गयी सीता? महाराज बोले– इतने समझदार होते हैं, अपने मालिक को पहचानते हैं, हम भी पालेंगे। सुग्गा पाले। बढ़िया पढ़ा करे। राम-राम सीताराम.. सीताराम-सीताराम... ओम्-ओम्-ओम्।

११०. सुग्गे को जीवनदान

एक बार वह सुग्गा बीमार पड़ गया। सात दिन से कुछ न खाया न पीया। महाराज सुग्गे को गोद में लेके बैठे थे शाम को।

चार-छः जने ऐसे बैठे थे धूने पर। महाराज कहे– हो, ई छोटी सी जान, ई भूखा-प्यासा कब तक जियेगा? ये जरूर मर जायेगा, जब कुछ खाता ही नहीं है। इतने में खाँसने की आवाज आयी कुएँ के नीचे से। महाराज ने पूछा– के है रे, तो लप्प देना दूसरी ओर से खाँसने की आवाज आयी। महाराज बोले– पल भर में वहाँ पहुँच गया! तू है के? इधर से खाँसने की आवाज आयी उतनी ही दूरी से। महाराज बोले– ओह, हवा की तरह चलता है, आखिर तू है कौन? फिर कुएँ के पास आ गया। महाराज बोले– हूँ, लगता है, मेरे सुग्गे को लेवे आवा है यमराज। इतने में उस पार नदी के, वहाँ से खाँसा। फिर कुएँ के पास, फिर इधर से, फिर उधर से। सावित्री के हाथ से उसके पति को नहीं ले जा पावा। और मोरे हाथ में सुगा है, ले जा नहीं पा रहा है। जती सती का बोलबाला। वो सती थी नहीं ले जा पाया, मैं जती हूँ मोरे हाथ से भी ले जाने में इसको आँच लग रही है इसलिए इधर-उधर से खाँस रहा है, अपनी उपस्थिति जता रहा है। देखो रे, तुमलोग भागो, अपनी-अपनी कोठरी में जाओ, भजन करो। एक नाई रहा, वह बोला– महाराज, जब यमराज आपके यहाँ आई जात है, आपके पास रहब त हल्ला मचाउब, आप छोड़ाओगे। दूर चला जाब, कहीं हमें पकड़ ना ले। हम न जाब। महाराज बोले– नहीं रे, जिसकी मौत आवत है, उसी के लिए आवत है। दूसरो को वो छू नहीं सकता। काल भी जिसका

समय आता है, उसको छेड़ता है, उसी को खाता है लेकिन उसके विश्वास न पड़े। वो तीसरी कोठरी के दरवाजे में बैठा चौखट में, बोला– देखो महाराज, ध्यान रखिहो। महाराज बोले– अन्दर न जइहे! वह बोले– अन्दर तो हम न जाब। बाहर चौखटे में बैठा रह गया।

महाराज सुग्गे को लेकर अंदर चले गये कोठरी में। आसन में बैठ के उसके ऊपर हाथ घुमाते रहे, भजन करते रहे। इतने में धड़ाम से दरवाजा खुला तब महाराज छड़ी लेकर दौड़े। बोले– धत् तोरी खल की, दरवाजा खोल के भीतर चला आ रहा है। देखा, काफी लम्बा नेवला। जंगली नेवला, किनारे-किनारे सीढ़ियाँ थी एक पट्टी, उसके ऊपर-ऊपर भागा जा रहा है। अब छड़ी लेके महाराज दौड़े। इतने में सट देना जंगल में ओझल हो गया। तब महाराज को याद आया। सावित्री को एक स्वरूप बना के इधर भरमा दिया, और दूसरे स्वरूप में उसके पति को लेके भाग गया। हमको ई नेवले का रूप बनाके इधर भटका दिया और दूसरा रूप बनाके कहीं ले न जाय सुगवा के। तब जितनी ताकत थी, उतनी ताकत से दौड़ लगाये। आके देखा तो अभी श्वास चल रही थी। महाराज बोले– इस बार तो बच गया। अब इसे छोड़े लायक नहीं है। लेके बैठ गये। थोड़ी देर बाद महाराज को सगुन मिलने लगा। लगता है काल की गति टल गयी। इतने में सुगवा बोले लगा–

सीताराम-सीताराम सीताराम-सीताराम। महाराज बोले– तोरी हरामी की, सीताराम ही कहते तो काल काहे आवत खाये खातिर। सुग्गा बोले– गुरु महाराज, ब्रह्मचारीजी को बुलाइए, भूख लगी है कुछ सत्तू-वत्तू दें। तब महाराज उसको पिंजरे में रखकर बाहर टाँग दिया और बोले– ले खिला रे इसे। काल आया था, अब काल की गति टल गयी। फिर बहुत दिन जिया वह। बाद में किसी भगत को दे दिया उसे।

१११. आश्रम में सुग्गी

ऐसे ही एक सुग्गी थी। वो धारकुण्डी महाराज ब्रह्मचारीजी को देखे, पंजा उठा के, आँखें सफेद-सफेद निकाल के किट-किट-किट बिगड़े। तब स्वामीजी कहें– कउनो दिन गर्दन मुरेड़ के मार डालब। सुगिया चिल्लाये– गुरु महाराज, ब्रह्मचारी की पिटाई कीजिए, हमें मारे के कहत है। महाराज हँसे– पिछले जन्म में कबौ तोर मेहरिया रही, तू धोखा दिये, एके मारे बिगड़त है। फिर हँसी-विनोद चले लागे। एक दिन मर गयी तो महाराज बोले– यार, हमरे हाथ का खाना खाया, पानी पिया, साधु के छुए से कोई लाभ होता है कि नहीं? आखिर हमार सुग्गी कहाँ गयी। महाराज को अनुभव में आया, नवल पंडित के यहाँ कन्यारूप में जन्म लेगी। महाराज ने नवल पंडित को बुलाया। वो पुरोहितिया पंडित, भागवत पढ़नेवाला, सेमरिया गाँव में। महाराज बोले– क्यों रे, तोरे लड़के

कितने हैं? उसने कहा– महाराज, चार लड़के हैं। महाराज बोले– बिटिया? उसने दण्डवत किया, बोला– महाराज, प्रबल इच्छा है। कन्या जेके न हो, ओकर उद्धार नहीं होत है। एक आशीर्वाद में कन्या मिल जात तो बड़ी कृपा होती। महाराज बोले– देख, मोर सुग्गी तोरे घर गयी है, खूब सेवा करना। बहुत खुश हुआ। उसके यहाँ लड़की जन्मी, नाम रखा सुग्गी। जब ओकर विवाह होने का समय आया तो निमन्त्रण लेके पहुँचा तब महाराज ने कहा– अब सुग्गी तोहार। हमार सम्बन्ध वहीं तक था कि साधु के छूने से, स्पर्श से जीवों का कल्याण होता है कि नहीं। अब सुग्गी तोहार। तू शादी-विवाह कर, पाल-पोस। महाराज कहें– देखो हो! छोटी-सी चिड़िया हमारे हाथ से दाना-पानी पाकर मानव-तन पा गयी।

११२. आश्रम में शेर द्वारा बन्दर पर हमला

महाराज अपने आसन पर बैठे थे। ये शुरू-शुरू की बात है। धारकुण्डी महाराज ब्रह्मचारी जी कुएँ पर आसन लगा के बैठ के भजन कर रहे हैं, रात्रि ९-१० बजे के बीच का समय था। इतने में ऊपर से बन्दर भाग के महाराज के धूने के पास गिरा धम्म और गुरु चेला के बीच से भागा। पीछे से धम्म देना भारी भरकम दूसरा जीव कूदा और भागा पीछे। महाराज उठ के बैठ गये। धारकुण्डी स्वामी खड़े हो गये। महाराज कहें– करे, सच्चिदानंद, कौन भागा रे? के आगे है, के पीछे है? ब्रह्मचारीजी बोले– महाराज, आगे

बन्दर है, पीछे शेर है, वो पकड़ लिया। महाराज बोले– पकड़ लिया! करे, मार, छुड़ा रे। संतों के आश्रम में हिंसा कहाँ होत है। मार एके, छोड़ाव। अब ब्रह्मचारीजी की हिम्मतै नहीं कि शेर के मुँह से बन्दर छुड़ा लें। महाराज इधर-उधर ढूँढ़त रहे कुछ, इतने में एक पत्थर हाथ लग गया। खींच के मारा शेर को तो पेट में लगा। लद् देना आवाज आयी। पकड़ थोड़ी ढीली हुई, बन्दर चट देना पेड़ पर चढ़ गया। महाराज ने कहा– क्यों रे! इतना बड़ा जंगल है, आश्रम ही है हिंसा करने को? शेर खड़ा-खड़ा देखत रहा महाराज की ओर, फिर आहिस्ते से चला गया। उसने फिर कभी आश्रम परिसर में हिंसा नहीं किया।

११३. शहद तोड़ने वाले कोल-भीलों का उपद्रव

दो कोल-भील महाराज के बगल से चढ़ने लगे पहाड़। मधु, शहद उतारनेवाला यंत्र–तंत्र लेके ऊपर चढ़ने लगे। लोगों ने कहा– महाराज, ये मधु तोड़नेवाले हैं। आश्रम के ठीक ऊपर जो मधु लगा है, इन्हीं को तोड़ना चाहते हैं। महाराज ने कहा– देखो रे, पूरा पहाड़ तुमलोगों का, पूरा जंगल तुमलोगों का। देख ये सैकड़ों छत्ते लगे हैं, सब तोड़ो-खाओ। ऊपर जो हमारे ठीक आश्रम के ऊपर दो एक छत्ते हैं, इनको मत तोड़ना। लोग दर्शन करते हैं। ये सुन्दर लगते हैं, रहने दो। इसको मत तोड़ना। फिर ऊपर से जला देते हो मधुमक्खी, ये जली हुई मधुमक्खियाँ आके हमारे सामने

गिरती हैं, भद्दा लगता है लोग देखते हैं तो। यहाँ हत्या न करना। बोले– हौ! चले गये। ऊपर पुराने गिरे-पड़े मकान, दो-चार छत्ते थे। अब भी हैं। उनके ऊपर बैठ के, बाँस में बाँस -बाँस की छाल से बाँधते हैं, रस्सी का उनको भरोसा नहीं.... और बाँस में एक बाँस, दो बाँस, तीन बाँस, छः बाँस बाँध देते हैं और सीढ़ी, निसेनी बन गयी। बाँस की खूँटियाँ रखते हैं, उनमें पाँव देके ऊपर चढ़ जाते हैं। यहीं उनकी सीढ़ी है। दो-तीन बाँस बाँधा, पता नहीं कितना। लोगों ने कहा– महाराज, वे तो इन्हीं को तोड़ना चाहते हैं। महाराज बोले– करे तोरी खलन की! नालायकों! मना किया तब भी नहीं माने। महाराज डाँटते हुए ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ने लगे तो वो भी गुर्राने लगे, बोले– अरे मधु तो हमारा पुश्तैनी बाप-दादों की कमाई है। पहाड़ हमारा है। ये सम्पत्ति हमारी है। आप जंगल रोक रहे हैं महाराज। महाराज डाँटे तो और भी गुर्राने लगे। फिर भी महाराज डांटते हुए आगे बढ़े तो धारकुण्डी महाराज उस समय नये थे, आगे बढ़कर बोले– महाराज, ये कोल-भील हैं। ये क्या जाने संत-महात्मा किसे कहते हैं? पत्थर-वत्थर मार देइहैं तो चोट लग जाई। महाराज बोले– करे, पत्थर कइसे मारी रे! तू तो कहत रहा मैं मिलिट्री में रहा हूँ। एही छाती के माथे मिलिट्री में रहा। धत् तेरी बादाम के बोकले की, भाग यहाँ से। वह बड़ी प्रार्थना किये तब चले आये। महाराज बोले– अच्छा बेटा, उल्टी माला जपत हूँ, अब तूँही जनिहै। आके बैठ गये भजन में।

एक लम्बे बाँस में टोकरी बँधी रहती है उसमें मधु उतार के भरते हैं, वो रहता है। दूसरे में आग लगी रहती है किनारे। उससे मधुमक्खी का छत्ता फूँक देते हैं। कुछ जल जाती हैं, कुछ अधजली हो जाती हैं, कुछ उड़ जाती हैं। वह आग लगा रहा था। दैवयोग से आग लग गयी उस बाँस में जिससे उतरना था। वह चिल्लाया, अरे मोरे बिन्दकी में आग लग गयी। मैं मरत हूँ, मोहे बचा। इधरवाला दौड़ा। जिस छत पर बैठ के उन्होंने सीढ़ियाँ बनाई, ऊपर चढ़े, उसके छत के किनारे जो रेलिंग होती है, उसके किनारे-किनारे पत्तियों का ढेर था। उस ढेर के अन्दर अजगर बैठा था। पहले उनलोगों को मालूम ही नहीं था। खन्न-खट किया, वो चुप पड़ा था। जहाँ धम्म-धम्म चला तेजी में, अजगर फूँ करके खड़ा हो गया सामने। वह बोले– अरे मोही अजगर घेरे हैं। मैं मरत हूँ। वह बोला– मोरी सीढ़िया में आ लग गयी, इसने कहा– मोहीं अजगर घेरे हैं। महाराज कहें– और सतइहो महात्मन के। इतने में गिरा धड़ाम। पता नहीं कितनी ऊँचाई से! चोट तो लगी लेकिन बच गया। फिर दोनों ने मिलकर उस अजगर को काट डाला। दोनों बोले– भागो रे, बाबा कुछ जानत हैं। हमलोग बचब ना। बाबा कुछ कर दिये हैं। चले गये।

वहाँ से थोड़ा नीचे गये होंगे, एक फर्लांग के करीब, एक विशाल वटवृक्ष था। उसमें भी एक छत्ता था मधु का। उसमें भी

वही व्यक्ति चढ़ा जो यहाँ चढ़ा था। वहाँ उसका संतुलन बिगड़ गया। वह गिरा धड़ाम और मर गया। अब दूसरावाला साथी उसे चद्दर में बाँध के, पीठ में लाद के ले गया घर। शोक मना गाँव में। तीसरे दिन गाँव में आग लग गयी। ४० घर थे कोल-भीलों के, चालीसों घर जल गये। वे भाग गये रिश्तेदारियों में जहाँ-तहाँ। गाँव उजड़ गया। जो रिश्तेदारियों में रहें, उन्हें महाराज स्वप्न में दिखाई पड़ें। खड़े रहें तब भी कि परमहंसजी त्रिशूल ले के पीछा कर रहे हैं मार डालने के लिए। सो जायँ तो छाती पर त्रिशूल रखकर कह रहे हैं– और तंग करेगा महात्मन के! त्रिशूल लेके पीछा कर रहे हैं।

११४. कोल-भीलों की क्षमा-याचना

तब सब इकट्ठे हुए पथरा गाँव में! गणेश नम्बरदार पंडित पाड़े, बड़े आदमी वहाँ के। उनसे कहा– नम्बरदार चलो, महाराज से माफी दिलवा दो। हमलोगों को बोलना नहीं आता है। नारियल, बताशा, अगरबत्ती का पैसा हमलोग देंगे। आगे-आगे चलो, हमें माफी दिला दो।

उस क्षेत्र में उहै पंडित रहे। सबकी कथा बाँच दे। पढ़े रहे कि नहीं भगवान जाने, मन्तर बड़ा बढ़िया पढ़ा करें। हमलोगों के पुरोहित उहै रहें। पंडित दूर से ही कहने लगे– महाराज! **'पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं।।'** (मानस,

२/२५०/५) **'यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चुराई।।'** (मानस, २/२५०/३) जब रामजी को ये नहीं छोड़े, सीताजी का जेवर लेकर खटखटा चोर भाग गया वहाँ गुप्त गोदावरी में; लक्ष्मण ने पीछा किया, उसको मारकर आभूषण ले आये। तुलसीदास के भी ये नहीं छोड़े। तबौ इहै करत रहे ये लोग। तो महाराज! आपके कैसे छोड़ देइहैं। इन लोगों की कौन गलती है? इन लोगों का तो यही धन्धा ही रहा। क्षमा करें, इनके माफी दें।

११५. कोल-भीलों द्वारा महाराज जी की सेवा

तब महाराज बोले– करे, सेवा करिहो। एक दूसरे का मुँह ताक के वे बोले– सेवा? पेट भरत नहीं, कवन सेवा करें। महाराज बोले– अच्छा, लकड़ी लइहौ। वे बोले– हाँ, ये कर लेंगे। नम्बरदार बोले– कोई भी इस अनुसुइया आश्रम में आवे, कहीं से भी तुम्हारी बिरादरी वाला, एक बोझ लकड़ी ला के डाल दिया करो।

रोज चार-छः गठ्ठर आवे, पड़ जाया करे वहाँ। रिश्तेदारी में सूचित कर दिया सबको। धड़ाधड़ वहाँ गठरी पड़ा करे। फिर आके महाराज को प्रणाम करें। महाराज उनको गाँजा प्रसाद दे दें। दम लगा लें, नशे में धुत होकर चले जायँ। न रोटी, न पंजीरी, न मिठाई। सारे कोल-भील, पूरा जंगल भगत। बराबर सेवा में रहें। आधी रात को भी जरूरत हो तो हाजिर रहा करें। यादव लोग बहुत बढ़िया थे, वो सब भगत। पंडित सब भगत। और भी जितने थे,

जब चित्रकूट में कोई पूछे– यहाँ महात्मा कौन है? तो सब बता दें– परमहंस जी के वहाँ चले जाओ। तुम्हारा समाधान वहीं होगा।

११६. अखण्डानन्दजी का आगमन

एक महात्मा आये। अनुसुइया मंदिर के महंत ने उनको वहाँ का पुजारी बना के रख दिया। वह रोज दर्शन करें और एक घड़ी बैठकर महाराज का उपदेश सुनकर चले जायँ। मन में सोचे– चालीस बरस हो गया साधु बने, कुछ पाये नहीं। परमहंसजी अच्छे महापुरुष हैं। यदि इनकी जाति बढ़िया होती तो हम इनके शिष्य हो जाते। जिन्दगी व्यर्थ में चली गयी हमारी। तब उनको अनुभव में दिखाई पड़ा– परमहंसजी आकाश-मार्ग से भगवा वस्त्र पहने उड़ते हुए चले जा रहे हैं। आवाज आयी– ये नारायणस्वरूप में स्थित हैं। यही स्वरूप है। यही इनकी जाति है। तब दूसरे दिन वह थाली में अस्सी रुपया (अस्सी माने उस जमाने की बहुत बड़ी धनराशि), जंगली फूल-पत्ती, बेल-पत्ती रख के लाया। मथुरा वृंदावन का प्रकाण्ड पण्डित रहा वो, लगा सूत्र पढ़ने। महाराज कहें– करे, कहाँ चले आये? के भरमा दिया तोके? हमार जात-पाँत ठीक नहीं है। **'माई धोबिन बाप चमार। ताकल जनमल हम बनवार।।'** वह बोले– महाराज, इसी जाति-पाँति ने तो २०-२५ दिन हमें आपसे दूर रखा, नहीं तो हम उसी दिन शरण में आ गये होते। अब हम समझ गये आप नारायणस्वरूप हैं।

आपकी कउनो जात हो, हमें फरक नहीं है। हमें शरण में रख लें। वो हुए अखण्डानंदजी।

उसके कुछ दिनों बाद उन्होंने पूछा– महाराज, 'माई धोबिन बाप चमार...' का मतलब क्या हुआ? महाराज ने बताया कि शरीर का जन्म तो माता-पिता से होता है लेकिन दूसरा जन्म आत्मिक जागृति होती है जिसमें ध्यान ही धोबिन है, चित्त ही चमार है। सृष्टि में वायु से भी तेज विचरनेवाला यह चित्त जब ध्यान में समाहित हो जाता है तब परमात्म-स्वरूप का जन्म होता है। वही हमारा जन्म है। वही तुम्हें पाना है। अखण्डानन्दजी बड़े अच्छे महात्मा थे। वे वृद्धावस्था में महाराज की शरण में आये थे। खाया-पिया शरीर! यहाँ जंगल में चने का टिक्कड़ खाके सूखने लगे तो महाराज ने उनको मधवापुर आश्रम में रख दिया। वहाँ सारी व्यवस्था हो गयी। बहुत दिनों तक उन्होंने वहाँ निवास किया। उनका शरीर भी वहीं शान्त हुआ और वहीं उनकी समाधि भी बनी है।

११७. भगवानानन्दजी का आगमन

गुरु महाराज के यहाँ शिष्यों की नियुक्ति होने लगी। कानपुर सिकटियापुरवा का बाबू नाम का एक लड़का, बाइस साल करीब उमर, रोजगार के सिलसिले में बाँदा आया। बाँदा से विचार हुआ कि चलो चित्रकूट! देख लें कि तीरथ में क्या है? चित्रकूट आया। इधर-उधर घूमे। फिर विचार हुआ कि सती अनुसुइया है, चलो

वहाँ भी देख लें। सती अनुसुइया चला आया। चारों तरफ घूम के पहुँच गये महाराज के पास। कभी संतों का दर्शन तो किया ही नहीं था। खड़े ही खड़े हाथ जोड़ के बोला– महाराज दण्डवत! महाराज बोले– करे, कहाँ से आया है रे? वह बोला– कानपुर से। महाराज बोले– करे, कनपुरिया तो पक्का ठग होते हैं। ई का लिए है? वह बोला– महाराज, मिठाई लिए हूँ। महाराज कहें– ला इधर। ले लिया, थोड़ा सा खाया और फेंक दिया पीछे कोठरी में। अब बाबू घबराये, सोचा– ई पूरा जंगल तो यही खाके हमें पार करे का रहा, ई वोहू ले लिया, कइसन बाबा है! तो महाराज उनके भाव को समझ गये। एक शिष्य से कहा– दे तो दो टिक्कड़ इसको। चने के मोटे-मोटे टिक्कड़। उन्होंने चने के दो टिक्कड़ और नमक-मिर्ची दे दिया। महाराज ने कहा– जो खो। वह गंगा किनारे बैठ के खाता जाय, विचार करता जाय– भइया, दो टिक्कड़ रोज मिलते तो हम यहीं रहके इन महाराज की सेवा करते। फिर आहिस्ते-आहिस्ते वह रुक गये। खूब दौड़-दौड़ के सेवा करें। साधु होने का मन नहीं था लेकिन वे टिक्कड़ साधु बना डाले। बड़े सभा-चतुर रहें। समझ गये कि गाली देना महाराज का शकुन तकिया है।

११८. भगवानानन्दजी की घर-वापसी

कानपुर के लोगों का तीर्थ ही है चित्रकूट। लोग बराबर दौड़-दौड़ के आवें उधर से। हर अमावस्या को अवश्य भीड़ आया करे।

देख लिया किसी ने। वे बोले– अरे, बाबू तो यहाँ घूम रहा है। जहाँ सूचना मिली तो ७०-७५ लोग आ गये गाँव से। महाराज के पास आके दिया धरना। यह बोले– मैं नहीं जाऊँगा। दो-तीन बार दिया धरना। फिर गये, फिर आये। महाराज बोले– औरत भी है न घर में। देखो, तुम्हारे और तुम्हारी औरत के बीच में एक आत्मा भटक रही है। एक लड़का हो जाय तब तुम चले आना। तब मैं तुम्हें नहीं भगाऊँगा। पकड़वा के, बँधवा के भेज दिया। ले जाओ रे माईलोगों। माईलोगों को और क्या चाहिए! उसकी माँ, औरत और दो-एक अन्य औरतें साड़ी से बाँध के उन्हें ले गयीं। बढ़िया स्वागत हुआ। ६०-७० आदमी साथ में। वो सबके चहेते थे वहाँ पर। नौटंकी हो तो उसमें भाग लेते रहें। साथी लोग उन्हें विधिवत् ले गये– चल बाबू, तोहरे बिना तो हमलोगों की मण्डलियै चौपट हो गयी।

११९. भगवानानन्दजी का पुनः आश्रम-आगमन

जाते समय महाराज ने उनसे कहा– इन लोगों के जीये-खाये का कुछ खेत बना देना। जमींदारी पीरियड था। जमींदारों का खेत पड़ा हुआ था जहाँ-तहाँ। जो खोद-खन के जितनी जमीन बना ले, वो उनकी। बाबू ने घर जाके खूब परिश्रम किया, १६ बीघा खेत बना दिया। पसीने में तर घर आवें। एक लड़का भी हो गया, तब श्रीमती जी कहने लगीं– आइए स्वामी जी, हाथ धो लीजिए। स्वामी जी, प्रसाद पा लीजिए। स्वामी जी, ये कर लीजिए। स्वामी

जी, वह कर लीजिए। अब स्वामी जी का मन वहाँ न लगे। उन्होंने सोचा– लो, अब यह भी ताना मारने लगी। महाराज जी के आदेश का पालन तो हो चुका। यह भी स्वामी जी कह रही है। इधर से भी छुट्टी लगता है मिल गयी।

एक दिन रात में उठे और गायब हो गये। रातभर में चले २५ किलोमीटर और फिर जमुना पार कर गये। डेढ़ साल बाद महाराज कहें– अरे, ऊ चला है कनपुरिया। आ रहा है। एक स्वामी अखंडानंदजी थे। वह बोले– अरे ऊ क्या आयेगा? महाराज बोले– नहीं रे, संस्कारी है, आ रहा है। किसी को विश्वास न हो कि महाराज सच कह रहे हैं। इतने में वो सीधे चित्रकूट पहुँचे। रात को ९ बजे करीब आश्रम पहुँच गये। सामने मंदाकिनी गंगा के किनारे हाथ-पाँव धोने लगे। महाराज बोले– जंगल में है रे, पास ही में है। अखण्डानन्द बोले– भगवन्! इतनी रात को कोई एक आदमी इस जंगल में कैसे प्रवेश करेगा? महाराज बोले– वह आ गया है। वो बड़ा निर्भीक है। ओके शेरन का डर नहीं है। ओकर लगन लगी है मोसे। इतने में पानी में छप-छप की आवाज आयी। वह पानी उछाल रहे थे, मुँह धो रहे थे। महाराज बोले– वो देख। टार्च जलाया सीधे तो बोले– वो बैठा है देख! सबने देखा– महाराज ठीक कह रहे हैं। ये आदमी की चाल पहचानत हैं, कहाँ आ गया, कितनी दूर! उसने आ के प्रणाम किया। महाराज बोले– क्या हाल

है? वे बोले– महाराज! आपके आदेश का पालन हो चुका। लड़का भी आपकी दया से हो गया है और सोलह बीघा खेत हो गया। महाराज ने पूछा– आदेश लिया कि नहीं? वे बोले– भली प्रकार महाराजजी! श्रीमती जी भी स्वामीजी कहने लगी थी। और कैसे आदेश मिलत है? फिर लोग आये, ६०-७० मिल के। फिर नहीं गये। फिर आश्रम छोड़ के विचरण में निकल गये। वे थे स्वामी भगवानानंद जी महाराज। महाराज कहें– हो! ई विचित्र खोपड़ी है। बड़े अच्छे महापुरुष थे। महाराज के महाप्रयाण के पश्चात् सबने उन्हें जबरदस्ती पकड़ के उनको गद्दी में बैठा दिया।

गुरु महाराज गाँजा पिया करें तो भगवानानंद जी उन्हें चिलम भर-भर के दिया करें, अपनो लहा के थोड़ा पी लिया करें। आहिस्ते-आहिस्ते अभ्यास बढ़ गया। फिर खूब पीने लगे। डेढ़-डेढ़ पाँव गाँजा रोज। सिगरेट के बंडल के बंडल धरे रहें। भोजन भी उन्हीं को बनाना था। बरसात का सीजन। सिल जिसपर मसाला पीसा जाता है, उस पर लाल-लाल जो होती हैं ग्वालिन, कीड़े चलते हैं झुण्ड का झुण्ड, सैंकड़ों की संख्या में चलती हैं, वो रेंगती हुई चली आयी सिल के ऊपर। सिल में पूरी छायी हुई थी। भगवानानंद जी नशे में धुत। आँखें लाल-लाल। जब सिल को देखा तो चमक रही थी सिल। स्वामीजी को लगा धुली-धुलाई है इसलिए चमक रही है। उन कीड़ों के ऊपर ही मसाला डाल के

पीस दिया। जब मसाले की रगड़ लगे तो कोई-कोई कीड़ा भागने लगे तो झटक दिया करें भीतर। सबको पीसते चले गये। बाद में मसाले की सब्जी बना के खिला दिया। सबको वमन हो गया। गुरु महाराज को भी वमन हो गया। जिसने खाया, सबको वमन हो गया। धारकुण्डी महाराज को हजम हो गया लेकिन १५ दिन तक उन्हें भयंकर बुखार आया, उतरे ही न। महाराज ने सोचा– बात क्या? हो क्या गया? महाराज ने ध्यान लगा के देखा– जो कुछ है भोजन में है। भोजन में है क्या? ध्यान लगा के देखा तो ग्वालिन चलती हुई दिखाई पड़ीं। तब उठाया छड़ी और चार-छः छड़ी मारा– तोरी हुड़दंगा की, भड्डरी की, जहर खिलाय दिया, ई भलुइया पीस के पिला दिया। वे बोले– हाँ गुरु महाराज! सील पर कुछ इधर-उधर रेंगत-भागत रहे, मैं झटकत जरुर रहा हूँ। महाराज बिगड़े– आज से गाँजा पीयेगा तो या तूँही रहिहै या हमीं रहब! तोके मार-मुर के फेंक देब। आश्रम में मुँह मत दिखाना। निकल जाओ। काला मुँह करो यहाँ से। उस दिन से उन्होंने गाँजा छोड़ दिया। फिर कभी चिलम को हाथ नहीं लगाया। गाँजा भयंकर नशा! जल्दी छूटता नहीं। लेकिन स्वामीजी ने छोड़ा तो फिर कभी नहीं छुआ। टेक हो तो कुछ भी असंभव नहीं।

जब भगवानानंद जी महाराज अनुसुइया आश्रम में स्थायी शिष्य हो गये तो उनके गाँव से कई नवयुवक दौड़ पड़े साधु होने

के लिए, तो महाराज ने समझा-बुझा के सबको वापस कर दिया। किन्तु दो-एक टिक गये। एक थे स्वामी महादेवानंद! वे आश्रम में काफी दिन सेवा किये और फिर मधवापुर आश्रम, जो अयोध्या के पास है मनिकापुर स्टेट के अन्तर्गत, वहाँ उनको निवास दे दिया गया। वे वृद्ध थे। बड़े ढंग से रहे। आज उनकी वहाँ समाधि बनी हुई है। दूसरे थे शरणार्थी स्वामी। वो गुरु महाराज के दम में दम भिड़ावें, कभी एक कदम पीछे न रहें। इनका नाम था गुदड़िया बाबा। बड़ी निर्मल सेवा किया करें। फिर आहिस्ते-आहिस्ते चले आये यहाँ मीरजापुर के पास हाई माई। हाई माई एक स्थान का नाम है ठीक मीरजापुर से छः किलोमीटर पूरब की पहाड़ी में। वहाँ उनकी कुटिया आज भी आबाद है। ये भी बड़े मस्त महात्मा रहे। जब बिगड़ा करें तो इन्दिराजी से शुरू करें। ये भी पूरे फक्कड़। कोई संग्रह नहीं। सुबह से शाम तक जो आटा-भाटा इकट्ठा हो जाय, पत्थरकटों को बुला लें– लेओ, लगाओ बेटा लिट्टी-बाटी! बस शाम को लिट्टी-बाटी लगा के बराबर कर दें। थे एकदम त्यागी।

१२०. शिवानन्दजी का आगमन

एक लड़का, करीब चार-साढ़े चार फीट लम्बाई, एकदम गठीला शरीर, जटा घुटनों तक लम्बी, लँगोटी लगाए, खड़ाऊँ पहने, त्रिशूल हाथ में लिए, डमरू टाँगे खटर-खटर खटर-खटर

चला आया, किया महाराज को दण्डवत। महाराज कहे– करे, कहाँ रहत है? वह बोला– हम बद्रीनाथ से आ रहे हैं। महाराज बिगड़े– धत् तेरे ढोंगी की! नानी के आगे ननिअउरे का बखान। कहाँ घर है रे? वह बोला– महाराज, मैं हमीरपुर जिला का हूँ। महाराज ने कहा– हूँ, तो ये त्रिशूल काहे लिए है? वह बोला– महाराज, हाथ में गुण रहा, घर में यही काम होता है, ठोक-ठाक के मैं गढ़ लिए हूँ। महाराज बोले– अच्छा! तो वेश काहे बनाये है? वह बोला– महाराज, इससे टिकट-विकट कोई नहीं पूछत है, घूम आये हूँ चारो धाम। महाराज बोले– ला त्रिशूल इधर। लेके धूनी में गाड़ दिया। न मंत्र न तंत्र। फिर कहा करें– सत, रज, तम तीनों गुण कूटस्थ हो जाय, न सात्त्विक तरंग उठे, न राजसी, न तामसी! जो त्रिगुणातीत है, वही संत होता है। त्रिशूल त्रिगुण का प्रतीक है। शिव त्रिगुणातीत हैं, काशी त्रिगुणातीत महापुरुष की नगरी है, उनका धाम है। ध्यान ही धूनी है। ध्यान परिपक्व हो गया तो योगाग्नि अग्नि है। उसमें जो अवशेष बचता है, ईश्वरीय विभूति है, अजर-अमर है, शाश्वत है। विधिवत् समझा दिया। अन्त में बोले– जो, कर सेवा। वह सेवा करने लगे। उनका नाम महाराज ने रखा शिवानन्द। महाराज के अनुभव में आया कि पिछले जन्म में इसका सम्बन्ध आपसे रहा है, वही संस्कार इसको यहाँ खींच ले आया है।

१२१. स्वयमानन्दजी का आगमन

उड़ीसा महाराजा के राजपुरोहितों के खानदान का बी.ए. पास एक लड़का महाराज की शरण में आया। वह बंगाली फर्स्ट क्लास बोले, इंग्लिश फर्स्ट क्लास बोले, उड़िया फर्स्ट क्लास बोले, हिन्दी भी बढ़िया बोलना सीख लिये। कई भाषा के विद्वान हो गये। महाराज ने नाम दिया स्वयमानंद जी। उन्होंने ही हमें बताया कि चार वर्ण क्या है? हिन्दू धर्म क्या है? वे कभी-कभी जनेऊ पहन लें। हमने पूछा– महाराज, ये जनेऊ क्यों पहने हैं? वे बोले– हम ब्राह्मण खानदान के हैं। हमने कहा– ब्राह्मण क्या होता है? वह बोले–**'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।'** (गीता, ४/१३) हमने कहा– भगवान ने तो गुणों के माध्यम से कर्म को चार भागों में बाँटा न कि मनुष्य को। फिर भी प्रचलित व्यवस्था में क्या चल रहा है, वह बताइए? उन्होंने कहा– चार वर्णों की सृष्टि भगवान ने की। इसमें सबसे ऊँचे ब्राह्मण हैं। हमने पूछा– प्रकृति तो त्रिगुणमयी है। विश्व के सारे मनुष्य तीनों गुणों के अन्तर्गत है? वह बोले– हाँ। हमने पूछा– तो पूरी सृष्टि में मनुष्यों को न बाँटकर भारतवर्ष में ही क्यों मनुष्यों को बाँटा भगवान ने? अमरीका, इंग्लैण्ड, चाइना, पाकिस्तान, अरब, अफ्रीका.... इनमें भगवान को मनुष्य नहीं दिखाई पड़े? उनको क्यों नहीं बाँटा? स्वयमांनन्द ने बताया– ऊ इतने इडियट थे कि शूद्र भी बनाने लायक नहीं थे

इसलिए नहीं बाटा। हमने कहा– महाराज, अब तो वे जहाज उड़ा रहे हैं, इडियट नहीं रह गये, अब तो उनको ब्राह्मण बना लेना चाहिए? उन्होंने कहा– देखिये, आपसे बात करके एक दिन मैं रोया, आज भी रो रहा हूँ। हम बोले– महाराज, झूट्ठै रोवत हौ, लेओ चाय पीयो ना। हमलोगों के लिए वह पूरा खिलौना रहें। चाय से प्रसन्न हो जाते थे।

उन्होंने हिन्दू-धर्म का सब इतिहास हमें बताया। पहले हमें कुछ मालूम ही नहीं था। वह बहुत अच्छा बताया करें। हम बोले– महाराज, ब्राह्मण क्या होता है? वे बोले– ब्राह्मण मुक्त होता है, उसको भजन करने की जरूरत नहीं है। हमने कहा– बड़े भाग मानुस तन पावा। मनुष्य तन पानेवाले सभी भाग्यवान हैं। वह बोले– हाँ, मनुष्य का शरीर बड़े भाग्य से मिलता है। उसमें भी पहले डुमार के घर में जन्म होता है, फिर थोड़ा प्रोग्रेस हो गया तो चमार के घर में, धरकार के घर में; फिर अहीरे के घर में, फिर ठकुरे के घरे में और जब देखा कि एकदम पावन हो गया तो ब्राह्मण के घर में जन्म दे देते हैं। ब्राह्मण एकदम मुक्त है। वो चलता-फिरता तीरथराज प्रयाग है। हमने कहा– महाराज, जब आप मुक्त ही थे, तब घर काहे छोड़ दियो? वह बोले– ब्राह्मण का जरा सा बाकी रहता है। इधर घर छोड़ा, इधर ये! मुक्ति! उनकी बात सुनने में बड़ी अच्छी लगे। लेकिन वो हृदय के कठोर नहीं थे,

हृदय से संत रहें। हृदय से गुरु महाराज की विद्या भली प्रकार जाने, उसी पर चले। हमारे बारे में जानते थे कि इसे कुछ नहीं मालूम है भारत में क्या चल रहा है? इसलिए यह सब हमें बताया करें। सही पूछो, अनुसुइया आश्रम में सबसे बढ़िया जानकार वही थे।

१२२. बग्गड़ बाबा का आगमन

कलकत्ता में एक गरीब मजदूरी कर रहे थे। कहार का बालक। सिनेमा देख लिया भक्त प्रह्लाद का। प्रह्लाद को फेंक दिया समुद्र में तब भी जिन्दा, हाथी से कुचलवाया तब भी जिन्दा, होलिका लेके बैठ गयी तबौ जिन्दा। इतना अनुराग जगा कि छोड़-छाड़ के चला आया। पता नहीं किस रास्ते से चढ़ गया और सिद्ध बाबा के तखत पर जा के बैठ गया। वहाँ आवाज आयी कि तू इस तखत पर बैठने लायक नहीं है, नीचे जो, शंकरजी की सेवा कर। लेकिन वो भक्त प्रह्लाद का सिनेमा देख चुका था। ओकर विश्वास भी सुदृढ़ था। वो न सुने। दृढ़ होके बैठा रहा। दूसरे दिन भी कहा गया तो न सुने। तीसरे दिन सिद्ध बाबा आये, हाथ पकड़ के घसीट के सीढ़ियों में गिरा दिया। वह बोले– इतना कहा गया सुनता नहीं है। नीचे जा, शंकरजी की सेवा कर। फिर मारा लात, चार सीढ़ियाँ और ढकेल दिया। फिर उठ के पीछे ताका, मारा लात तो दस सीढ़ियाँ फिर, दस सीढ़ियाँ फिर दस सीढ़ियाँ.... और शंकरजी का चबूतरा। ५ बाई ५ फीट का चबूतरा, उसके ऊपर शंकर जी

आश्रम के ठीक नीचे कोने में हैं, वहाँ आके गिरा धड़ाम!

महाराज आधा घण्टा पहले से ही कह रहे थे– देख रे, कोई घबड़ाया हुआ आ रहा है। चार-छ: लोग उस समय बैठे थे, वे बोले– महाराज, इतनी रात को इस जंगल में कौन आ सकता है? उम्मीद तो नहीं। महाराज बोले– ओकर स्वाँस बोलत है यार, घबड़ाया हुआ कोई आवत है। मैं देखत हूँ कोई आ रहा है। इतने में आके गिरा धड़ाम। कहने लगा– दैत्र-दैत्र-दैत्र.... महाराज बोले– देख, ये आ गया। देख रे कहाँ का दैत्र है? उस समय ब्रह्मचारी जी (धारकुण्डी महाराज) सेवा में वहाँ थे। वे बोले– अरे, ये आश्रम है। कोई दैत्र नहीं यहाँ पर। पर उसे तो जक्का चढ़ गया। बस दैत्र-दैत्र-दैत्र.... चारो तरफ। वह बोले– महाराज, ये तो दूसरी बात सुनता ही नहीं। तब महाराज बिगड़े– सड़सा लाल करके मार। कहाँ का दैत्र चला आया। मार एके चार डण्डा। उसका जक्का छूटा तो म्याउँ-म्याउँ बोलने लगा– महाराजजी! सिद्ध बाबा हमें मारत-मारत यहाँ तक लाये हैं। अभी यहाँ खड़े रहे, अभी-अभी चले गये। महाराज बोले– सिद्ध बाबा ने क्या कहा? उसने बताया कि सिद्ध बाबा ने कहा– नीचे जा और शंकर जी की सेवा कर। तीन दिन लगातार कहे। हम सुने नहीं दो दिन तो तीसरे दिन मारत-मारत ला के यहाँ पटक दिया। महाराज बोले– तोरी हरामी की, हमीं हैं शंकरजी। बेटा! जा कड़ाही माज के ला। छोटी-सी

कड़ाही रही। उसे मंदाकिनी गंगा के किनारे ले गया, माजके लाके रख दिया। एकदम लप्प देना चमका के रख दिया।

१२३. बग्गड़ बाबा की सेवा

उन्होंने बढ़िया सेवा किया तीन साल। वह रात-दिन भजन करे। चद्दर ओढ़ ले, भजन किया करे। महाराज कहें– देखो न मेहरिया की तरह घूँघुट काढ़ के बैठा है। वह बोले– महाराज, भजन किया करत हूँ। एक दिन बैठे-बैठे चावल साफ करे। महाराज बोले– का होई चावल रे? वह बोला– एक आदमी दूध ले के आवत है गाँव से, आप कहिबै करोगे कि खीर बना त खीर में चावलो पड़ी। एके मारे चावल साफ करत हूँ। महाराज बोले– ई तो सिद्ध हो गया रे। थोड़ी देर में दूध आ गया। फिर खीर बनी। बग्गड़ बाबा बहुत अच्छे महात्मा हुए। सब जान जाय कि कौन आ रहा है? क्या ला रहा है? क्या परिस्थिति है? कालान्तर में दिगम्बर होके पड़े रहे जंगल में। बेधक के जंगल में एक कन्दरा थी, वहीं रहने लगे। फिर शरीर छूट गया। शरीर छूटने बाद भी अनुभव में लोगों को दिखाई पड़े कि वे भजन कर रहे हैं। प्राप्ति के लिए कई जन्म लेना पड़ता है।

१२४. छड़ी-कमण्डल का लुढ़कना

हमारे अनुसुइया प्रवेश से पूर्व की घटना है। धारकुण्डी महाराज इत्यादि दो-एक शिष्य महाराज के पास उपस्थित थे।

धारकुण्डी महाराज की छड़ी और कमण्डल दीवार के सहारे ऐसे रखे हुए थे। गुरु महाराज का सत्संग चल रहा था। अनायास छड़ी भी गिरी, कमण्डल भी गिरा, सीधा ढलान में गंगा की ओर चला गया नीचे तड़-तड़ तड़-तड़, गंगा की तरफ एक पचीस हाथ नीचे। महाराज ने कहा– देखा, वैराग्यरूपी लठिया, करमरूपी कमण्डल। तुम्हारा कर्म गिरा हुआ है, तुम्हारा वैराग्य गिरा हुआ है। जाओ, निराधार विचरण करो। बैराग्य का मतलब ये नहीं कि राग का त्याग वैराग्य है। गुरु महाराज के शब्दावली में वैराग्य का मतलब था निराधार विचरण। रात-दिन भजन करो। इसकी जरुरत है बेटा। भगवान ने ये कमी बता दिया। वास्तव में सत्संग में वैराग्य का प्रकरण ही चल रहा था। लेकिन महाराज के प्रति इतना मन लग गया था ब्रह्मचारीजी का सेवा में कि वो न हटे। सोचा– जंगल है, एकान्त है, सेवा भी है, भजन भी चल रहा है। बहुत कहें, न जायँ। किसी न किसी सेवा का बहाना लेकर, किसी न किसी तरीके से रुके रहें।

१२५. साधकों का बैराग्य

एक दिन एक महात्मा आ गये। महाराज ने कहा– देख रे, बड़े अच्छे महात्मा आये हैं, इनका भी भोजन बना लो। और ये ब्रह्मचारीजी भोजन बना चुके थे तो मुँह बना के बोले– गुरु महाराज! ये तीरथ है चित्रकूट। यहाँ तो कोई न कोई आता ही

रहेगा। मैं जब दिन भर भोजन ही बनाता रहूँगा तब भजन कौन करेगा? भजन कैसे होगा? इनको आटा-दाल दिलवा दिया जाय, ये अपना भोजन बना खा लें और हम जल्दी से निपटा के भजन करूँ। तो महाराज बोले– हूँ, हमारा भोजन इन महात्मा को करा दो, आज मैं भोजन नहीं करूँगा। मजबूरी थी, भोजन बनाना पड़ा। महात्मा ने प्रसाद पा लिया। गुरु महाराज ने भी प्रसाद पा लिया। जब ब्रह्मचारीजी परोस के बैठे चौके में, तो जान गये महाराज कि अब परोस के बैठा है तो आहिस्ते से उठ के गये चौके में, चौका माने भण्डार-घर में, और थाली खींच लिया। अभी ग्रास उठानेवाले थे कि खींच लिया, गर्दन पकड़ के उठा दिया– उठ, भाग यहाँ से। तू सेवा न करी त हमार सेवा ही न होई। कहता है 'भजन कब करूँगा?' जा, भजन कर। और भगा दिया। चौबीस घण्टे में एक बार भोजन मिलता था दिन में बारह-एक बजे। वो परोसी थाली खींच लिया और भूखे विदा कर दिया। वे सीढ़ियों के नीचे खड़े हो गये, सोचा– महाराजजी का गुस्सा तो दस-पन्द्रह मिनट का, थोड़ी देर में गुस्सा शान्त हो जायेगा। पन्द्रह-बीस मिनट बाद जहाँ सीढ़ियाँ चढ़ने लगे तो बोले– सीढ़ियाँ पर पाँव मत रखना नहीं तो तोरे गोड़वा तोड़ के फेंक देब नदिया में। अब मजबूरी थी आहिस्ते-आहिस्ते जाने लगे। इतने में एक पाड़ेजी गाँव से दर्शन करने चले आ रहे थे। उन्होंने किया प्रणाम– ब्रह्मचारीजी दण्डवत। बोले ही नहीं। उनकी ओर देखा ही नहीं। तब पाड़े दौड़ के आया, महाराज

को दण्डवत किया, बोले– गुरु महाराज! ब्रह्मचारीजी रोनी-सी शकल लिए कहाँ चले जा रहे हैं? बोले– मोरे ऊपर नाराज होके जा रहा है। देखो न, कइसन टेढ़ा-टेढ़ा चला जा रहा है। बोले– अरे चले आओ ब्रह्मचारीजी, गुरु महाराज नाराज नहीं है। तब जहाँ वो वापस लौटे, बोले– लौटिहे ना, नहीं तो तोके काट के नदिया में फेंक देब। बस अब तो अन्तिम अल्टीमेटम मिल गया। सनक में चले गये।

चलते ही रहे। जंगल में रात हो गयी। जंगली कोल-भील एक लाश फूँक रहे थे नाले के किनारे। सोचे– ई कड़ाके की ठण्डी है। ये फूँक-फाँक के चले जायेंगे तो यही धूना तापूँगा, आज रात यहीं निवास करूँगा। वे चले गये तो जहाँ लाश फूँकी थी, उस चिता के पास में बैठ भी गये। बारह बजे करीब ये भाव आया– ये मुर्दा फूँका गया है, कहीं भूत न हो गया हो। फिर आहिस्ते-आहिस्ते विचार ने इतना जोर पकड़ लिया कि जरूर भूत हो गया है और जरुर पकड़ लेगा। अब तो डरने लगे, कँपकँपी छूट गयी। हे गुरु महाराज! हे भगवान! और आँख खोल के देख लें। कभी इधर देखें कभी उधर कि कहीं भूत आ तो नहीं गया। फिर आँख बन्द कर लें। इतने में गुरु महाराज की आवाज गूँजी वहाँ पर– धत् गँवार कहीं का। मैं तोरे साथ-साथ चलत हूँ। मैं तोके देखत हूँ। मैं तोर रखवाली करत हूँ। तब तैं कउने भूते से डरात है रे! कर

भजन, बैठ यहीं पे। ब्रह्मचारीजी ने सोचा– महाराज आ गये। सोचा पीछे खड़े हैं। मुड़ के देखा तो पीछे कोई नहीं। गुरु, भगवान और माया – ये सदैव सर्वत्र रहते हैं। गुरु शरीर–चमड़ी का नाम नहीं है। गुरु 'नास्ति तत्त्वं गुर्रोपरम्'– जिसका कभी विनाश नहीं होता, वह परम तत्त्व है, उसका नाम गुरु है। जो गुरुत्व को प्राप्त है, वो सद्गुरु है। ये सद्गुरु सहज सूक्ष्म स्वरूप से सदैव साथ रहते हैं। शरीर तो उनके रहने का मकान है। इस शरीर के होते हुए ही स्थिति प्राप्त होती है। जिन्हें वो स्थिति प्राप्त हो गयी वो सद्गुरु हैं। सद्गुरु, भगवान और माया सर्वत्र सदैव रहते हैं। सद्गुरु की शरण में भजन जागृति के पश्चात् तुम समुद्र के बीच में हो तो गुरु महाराज बिल्कुल साथ में, पास में, आगे-पीछे, जितना कि हाथ-पाँव आपके साथ है, आपका मन जितना आपके पास है। और जागृति नहीं आयी, भजन नहीं जागृत हुआ तो फिर पास में बैठो तब भी समुद्र पार, नहीं के बराबर। भजन एक जागृति है।

अब ब्रह्मचारीजी चलते ही चले गये। डेढ़ साल तक विचरण करते रहें। भूत का भय सदा-सदा के लिए चला गया। न भूत का भय, न किसी का भय, जब गुरु महाराज साथ चलते हैं। मैं देखत हूँ, मैं पहरा देत हूँ, तैं कउने भूते से डेरात है रे! निर्विघ्न चलते रह गये। डेढ़ साल तक तो ठीक चला। एक दिन महाराज चौंक पड़े, बोले– अब तक तो वैराग्य उसका ठीक रहा। अब गड़बड़

है। तीन दिन से अपशकुन हो रहा है। अब वो संकट में पड़ा हुआ है। अब उसकी घड़ी टल रही है। अब उसको आश्रम आ जाना चाहिए। तब उनमें प्रेरणा हुई, ब्रह्मचारीजी में कि चलो आश्रम! तो न आवें। बोले– भगवान मिल जायेंगे, तब जाऊँगा। वो मन में हठ कर रखा था। तब डाँट पड़ी– तूँ सोचता है मैं भक्ति कर रहा हूँ। तुम्हारी भक्ति नष्ट हो जायेगी। जाओ, गुरु महाराज के चरणों में गिरो, माफी माँगो अन्यथा भक्ति नष्ट हो जायेगी। यही उपाय है बचने का।

उस समय प्रयागराज में थे और रात ही में, जहाँ ये आदेश मिला तो उठ के भागे। ट्रेन पकड़ा पैसेंजर। आये मानिकपुर के आगे टिकरिया एक स्टेशन है जंगल में, वहाँ उतरे। जंगल ही जंगल चले। महाराज कहें– आवा नहीं चाहत रहा। मैं नाक में रस्सी डाल के, पतंग की तरह ला के यहाँ गिराये हूँ। आउते है बेटा। अब ज्यादा दूर नहीं, अब इतना दूर है, अब इतना दूर है, अब आता ही होगा। सब लोगे सोचे कि डेढ़ साल से गया हुआ साधक, महाराज कैसे जानते हैं कि अब इतनी दूर है। महाराज झूठे कह रहे हैं। इतने में दिन के ९ बजे के करीब दिखाई पड़े। बोले– देख, वो आ गया। जहाँ दिखाई पड़े तो मन में रहे कि कब चला आवे, लेकिन जब पास में आये तब बोले– हे लो, फिर मोरे कपारे पड़ गया! इन्हें भईया खाये का देव, रहे का देव, ज्ञान देव, 'हर

दे हरवाह दे, खोदे का पैना दे।' फिर लगे खरी-खोटी सुनाने। लेकिन वो कुछ नहीं सुने। सीधे चले आये ऊपर। आके किया साष्टांग दण्डवत। तब खुश हो गये, बोले– बोल बेटा, कैसा रहा वैराग्य? ब्रह्मचारी जी बोले– गुरु महाराज, बहुत अच्छा रहा। हर स्वाँस-स्वाँस पर, पल-पल पर, कदम-कदम पर आप साथ में रहे और भली प्रकार भजन चलता रहा। महाराज जी बोले– करे, तीन दिन से अपशकुन बहुत होत रहा, क्या बात थी? ब्रह्मचारी जी बोले– गुरु महाराज! प्रयागराज में एक रानी साहब चेत गयी थीं। वो कार में बैठा के प्रयाग में घुमाने ले गयी थीं – इस मंदिर, उस मंदिर, कभी जमुना, कभी गंगा, कभी संगम। महाराज बोले– करे, हम तोके बैराग्य करे भेजे रहे कि रानी चेतावे भेजे रहे? बेटा, घड़ी टलत रही तोर, नहीं त तू खतम होई गया रहा। ब्रह्मचारी जी ने कहा– बड़ी श्रद्धा से घुमावत रही। महाराज बोले– श्रद्धा बच्चे-बच्चे में है बेटा। तू श्रद्धा लेवे जात है कि भजन करने। श्रद्धा से किसी ने भिक्षा में एक रोटी दे दिया, ले लिया। इसके आगे श्रद्धा तुम्हारे किस काम की? एहि से बुलाये रहे। बस फिर खूब सेवा किये रहे। फिर कोई गड़बड़ी नहीं।

१२६. कुत्ते द्वारा वेद-पाठ

एक दिन ब्रह्मचारी जी ने कहा– महाराज, कुत्ता वेद पढ़ रहा है। बोले– क्या कहा? कुत्ता वेद पढ़ रहा है। आज दिखाई पड़ा।

बोले– हूँ, कोई बहुत अच्छे महात्मा आ रहे हैं आज, ध्यान रखना निकल न जायँ। इतने में सुबह ९ बजे करीब एक महात्मा जाँघिया का नाड़ा गले में डाले, एक जाँघिया पहने लम्बा-लम्बा और डालडा का टिन लिए, उसमें लम्बा-सा तार डाले, तार पकड़े रहें कभी-कभी जमीन में छू जाय तो खर्र आवाज आये और चले आ रहे थे ॐ-ॐ-ॐ-ॐ-ॐ। भीड़-भाड़ देखे तो बोले– हों-हों-हों-हों ताकि लोग समझें कि पगला है। उनका नियम था कि एक भी स्वाँस व्यर्थ न जाने पाये। हर समय ॐ-ॐ-ॐ। तो नीचे यहाँ महाराज आसन पर विराजे, वहाँ गंगा किनारे वो हों-हों-हों.. ऐसे-ऐसे करत रहें। महाराज बोले– देख रे, वो कुत्ता वेद पढ़त है। दौड़ के बुला ला। स्वामीजी गये। सादर प्रणाम किया। पकड़ के ले आये तो महाराज के पास आके भी हों-हों-हों...ॐ-ॐ-ॐ। महाराज जी बोले– तोर ढोंग-धतूर यहाँ भी नहीं छूटा। देखत नहीं हो कहाँ आये हो? तब हँसे और सादर प्रणाम किया, बोले– महाराज, अच्छा तो आप विराजे हो यहाँ पर। तब जान-पहचान हो गयी। प्रणाम किया और बैठ गये। रहे दो-तीन दिन कायदे से।

ब्रह्मचारीजी ने बड़ी सेवा की उनकी, तब बोले– छः साल सेवा करो गुरु महाराज की, तुम्हें प्राप्ति हो जायेगी, तुम्हें निवृत्ति हो जायेगी। और फिर ताके इधर-उधर, बोले जंगल की ओर देखकर– ये जंगल कट जायेगा। फिर बोले– यहाँ गायें चरेंगी। दो-

तीन बातें बतायीं और फिर विदा हो गये। स्वामीजी पहुँचाने गये एकाध किलोमीटर।

१२७. योगक्षेम का वहन

धारकुण्डी महाराज, भगवानानन्दजी वगैरह दोपहर में जब रेस्ट का समय हो तो चले जायँ जंगल। दस दिन में एक कुटिया बना डाला, तब बोले– गुरु महाराज, आदेश होता तो मैं कुटिया में रहता। बोले– मैं जानत रहा हूँ तुमलोग जंगल में आते-जाते हो, कुछ खुराफात जरुर करोगे। ठीक है, सात दिन में एक दिन मोर दर्शन कर लिया कर और रह वहीं। घोर जंगल में वो कुटिया तो बढ़िया, साफ जगह में बनाये रहें लेकिन पहाड़ से शेरों के उतरने की पगडण्डी वहीं थी। इधर कुटिया और दस फीट दूर पगडण्डी जहाँ से शेर आया-जाया करते थे। वही उनका रास्ता था। एक दिन स्वामीजी को आदेश हुआ कि सोना मत, बैठो रहो। बैठे रहें। बारह बज गया तो जोरों से आदेश हुआ– सोना मत। तो नहीं सोये, बैठे रह गये। करीब एक बज गया। तो बोले– अच्छा सोऊँगा नहीं, थोड़ा कमर में दर्द हो रहा है, कमर सीधी कर लूँ। मचान का मतलब होता है लकड़ी के ऐसे-ऐसे टुकड़े पड़े रहते हैं, उसी का नाम मचान है, गद्दा नहीं रहा। यही महात्माओं का सब ठाठ-बाट है। अपशकुन हो रहा है, थोड़ा सा कमर सीधा करने के लिए लेट गये। जहाँ मचान की लकड़ियों से पीठ लगा, फक्क देना नींद आ

गयी। इतने में एक शेर आया, आके मचान से थोड़ी दूर बैठ गया। पीछे का पाँव जमीन पर रखा, आगे सूँघत रहा कि इस मचान के ऊपर नाश्ता-पानी है कि नहीं! और का, दर्शन करे थोड़े ही आया रहा! एक छलाँग में ऊपर आता, उठाता, लेके चल देता। इतने में गुरु महाराज की आवाज तड़की। आवाज ही नहीं तड़की, हाथ पकड़ के डेढ़ फीट, करीब सवा फीट ऊपर उठा दिया– उठ गँवार कहीं का, कहा था न सोना मत। नींद में जल्दी आँख नहीं खुलती। जब इतना उठा दिया जमीन से– उठ गँवार कहीं का, कहा था न सोना मत। सूतत है। तब सोचा– महाराज खड़े हैं ऊपर। तब डर के मारे ताके उधर। महाराज के देखे, महाराज थे ही नहीं। ऊ छोड़ दिया। तो फिर तुरन्त देखा इधर तो शेर बैठा था। ब्रह्मचारी जी ने सोचा– ई करिया-करिया का है। टार्च उठा के मारा तो उसके मुँह पर पड़ा तो आहिस्ते से उठा, झाड़ी के आड़ में चला गया। फिर रात भर स्वाँस रोक के शेर खड़ा रहा। अब स्वामीजी की नींद हवा हो गयी। अब नींद आवत है! रातभर स्वामीजी सचेत बैठे रहे। सुबह पाँच बजा तो शेर ने गति पकड़ लिया। सर्र-सर्र-सर्र चार-छः कदम में गंगा पहुँच गया, एक छलांग में गंगा उस पार कर लिया। जंगली शेर बहुत मजबूत होते हैं। और उस पार फिर मृगे बोलने लगे पिक-पिक-पिक... भागने लगे, बोले– अच्छा, तो अपने भोजनालय में पहुँच गया। और क्या! मोर

बोलने लगे, साँभर बोलने लगे, मृगा बोलने लगे। बोले– अपने.... वही तो उनका भोजनालय। और क्या? एकाध की गर्दन पकड़ लेगा, हो गया। इस तरीके से गुरु, भगवान और माया सर्वत्र रहते हैं। भजन साधक का तब पार लगता है जब स्वयं गुरु आगे-पीछे सदैव रहें, वो देख-रेख करें, उन्हीं के निर्देशन में चलता हुआ साधक माया के खोह-खंद को काटते हुए पार हो जाता है। भगवान का दर्शन, स्पर्श, प्रवेश नहीं मिल जाता तब तक गुरु महाराज ऐसे ही देख-रेख किया करते हैं। अन्यथा मन और बुद्धि– इनमें कहाँ क्षमता कि रास्ता देख लें। क्यूँ? क्योंकि मन और बुद्धि माया तक सीमित हैं। **'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।'** (मानस, ३/१४/३) इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषयों में जहाँ तक मन उड़ान भरता है, बुद्धि निर्णय लेती है, **सो सब माया जानेहु भाई**– सब माया है। बुद्धि माया तक निर्णय ले पाती है, मन माया तक संकल्प कर पाता है। भगवान अचिन्त्य हैं, अगोचर हैं, इन्द्रियों से परे, चित्त और चित्त की तरंगों से परे, बुद्धि के विचारों से परे तो भला बुद्धि, आपके विचार, आपका चिन्तन भला उसका निर्णय कैसे ले लेगा?

बस छः ही महीने के अन्दर सामने का जंगल कट गया। एक महात्मा चालीस गाय ले के आये। मैदान देखा तो उसमें चराने लगे। महाराज ने कहा– देख रे, वो सफेद-सफेद क्या दिखाई देता

है पहाड़ पर? ब्रह्मचारीजी बोले– महाराजजी, गाय चर रही है। महाराज ने कहा– यहाँ तो जंगल था? फिर ब्रह्मचारीजी बोले– भारत आजाद हुआ, तब से ठेका मिला और कउनो कटवा लिया। महाराजजी ने कहा– उन महात्मा ने क्या कहा था? ब्रह्मचारीजी ने कहा– जंगल कट जायेगा, गायें चरेंगी। महाराजजी बोले– दो बातें तो सही हो गयी उनकी। और क्या कहा था? उन्होंने बताया– हमसे कहा था कि छः साल विधिवत् सेवा कर, तुम्हें निवृत्ति हो जायेगी, आवागमन से छुटकारा मिल जायेगा। तुम्हें भगवान की प्राप्ति हो जायेगी। फिर तो वे इतने लगन से लगे कि छठें साल में महाराज ने कहा– बाँध बिस्तर यहाँ से! अब नींबूआ फट गया बेटा। निर्गुण दो भागों में बँट गया। जल्दी भाग धारकुण्डी जा। वहाँ जा, तुझे सब प्राप्ति हो जायेगी। जबरदस्ती भेज दिया धारकुण्डी।

दो ही तीन महीनों में दर्शनार्थियों की वहाँ लाइन लग गयी। माई बड़ी श्रद्धालु होती हैं। माई लोग पहुँच गयीं, तब महाराज बोले– पाड़े को बुला। पाड़े, जा रे, कहीं गड़बड़ाय न। पाड़े बोले– अब का हुआ महाराज? महाराज ने कहा– तोर ब्रह्मचारी वहाँ भीड़ में मेहरिया ताकत है। महाराज की भाषा! तो गये, बोले– का ब्रह्मचारी जी, महाराज ने ऐसन कहा। बोले– भई हम केहूँ के नहीं देखत है। देख, चश्मा लगाये हैं काला वाला। तब महाराज सुने तो बोले– सार, चश्मा के भीतर से ताकत है। तब बोले– यार,

हम कैसे जिये तोही बता। तब फिर नियम बनाया– माईलोग इधर विराजें, पुरुष इधर विराजें। वही नियम यहाँ भी लागू है। तभी आपलोगों को अलग बैठाते हैं इधर। ये गुरु महाराज का दिया हुआ नियम है। वहाँ जाते ही उन्हें भगवत्-स्वरूप की प्राप्ति, स्थिति, रहनी सब कुछ मिल गया। वो हैं स्वामी सच्चिदानन्द। अभी हैं शरीर से। काफी दिन जीवन, ९२ साल करीब उमर है। वो सिद्धपुरुष हैं।

१२८. एक महात्मा का सिद्धबाबा के तखत पर बैठना

आश्रम में तखत था ही नहीं। सिद्ध बाबा का तख्त मँगवा लिए। पहाड़ के आधे पर लगभग दो सौ सीढ़ी ऊपर पड़ा था, मँगवा लिया। उसी पर बैठा करें। वैष्णव संतों का तीर्थ है चित्रकूट। कुछ महात्मा आये, देखे, बोले– अरे, सिद्धबाबा के तखत पर आप काहे बैठ गये? महाराज बोले– सिद्धन के तखत पर सिद्धै बैठा करत हैं इसलिए मैं बैठ गया। वे बोले– क्या हम नहीं बैठ सकते? महाराज बोले– ऊँहूँ, तुम नहीं बैठ सकते। वे बोले– हम बैठेंगे। महाराज कहें– दे दो रे, यह बैरागी तो खोपड़ी खा गया। वह अकड़ के बैठ गया। हजारा या पाँच सौ गुरिया की माला लिया रहा, झोली में हाथ डाल के अकड़ के बैठ गया। सीताराम-सीताराम, राम-राम-राम-राम करने लगा। सुबह ढूँढ़ा तो बाबा था ही नहीं तखत पर। महाराज बोले– का हो गया रे? तखत खा

गया का ओके? बहुत ढूँढ़ा उसको। ७ बजे तक मिला ही नहीं। जंगल छान डाले। फिर सीढ़ियाँ चढ़ते समय एक कोठरी है, ब्रह्मचारी जी उसमें झाँकें तो बुखार की दुर्गन्ध आ रही थी। भीतर झाँका तो वही बैरागी भैंसे की तरह लाल-लाल आँखें करके झाँकत रहा अंधेरे में। स्वामी जी ने जाकर डाँटा– ऐसे ही काँपत-काँपत मर जायेगा। जा, परमहंस जी के गोड़े पर गिर। क्षमा माँग। कल अकारण आके तंग कर दिया। तब उठ के गया, गुरु महाराज के चरणों में गिरा, माफी माँगा। महाराज बोले– खो विभूति। महाराज ने छू-छा दिया, बुखार उतर गया। महाराज ने पूछा– का हो गया महात्माजी। वह बोले– अरे महाराज, हमें नहीं मालूम था कि तखत इतना खतरनाक है। रात में तखतवा उलट के हमरे ऊपर चढ़ बैठा। हमें लगा हमारा प्राण निकल गया। किसी तरह छूटे तो घबरा के भागे हम। छिप गये वहाँ पर। छिपे क्या वहाँ भी वे देख रहे थे। सिद्ध बाबा आये, हमारी पिटाई कर दी। महाराज बोले– बेटा, वो महापुरुष हैं। ऊ किसी का अनिष्ट नहीं कर सकते। वो ढोंगी को बर्दाश्त नहीं कर सकते। तू ढोंगी रहा। सिद्धों के तखत पर सिद्ध बैठत हैं। उस तखत में ये गुण था– कोई बैठे तो उठा के फेंक दे। वह वैरागी बोले– महाराज, आशीर्वाद मिले। महाराज बोले– चल कुच्छौ नहीं, वे महापुरुष हैं, नष्ट न करिहैं। तोके सीख देनी थी, मिल गयी। ढोंग मत कर, कर भजन। कुछ दिनों में

आश्रम में तखत की व्यवस्था हो गयी तो महाराज ने सिद्ध बाबा का तखत पहाड़ी के ऊपर उसी जगह रखवा दिया।

१२९. स्वरूपदास का उपद्रव

महाराज का विरोध करने वाला स्वरूपदास महाराज के विरोध में लगा रहा। एक बार पचीसों संतों को ले के आया, वे कहते– यहाँ से हटिए परमहंसजी, नहीं तो आपको काट के नदिया में फेंक देंगे। यह वैष्णवों की गद्दी है। आपका पता भी नहीं, संन्यासी हैं कि क्या है? करीब २४-२५ लोग थे। महाराज ने भगवान से पूछा– भगवन्! भजन ही तो करना था तो ई राग-द्वेष की जगह ला के क्यों पटक दिया हमको? हमें इन पत्थरों से क्या लेना देना? इन खण्डहरों से क्या लेना-देना? यहाँ है क्या? ऐसी जगह पर रखना चाहिए था जो किसी की न हो। तब भगवान ने कहा– जब हम रखे हैं तो बैठे रहो, तोसे का मतलब। तब महाराज निश्चिन्त हो गये। जहाँ आकर बोले– उठिये परमहंसजी; तब महाराज बिगड़े पहली बार, बोले– देख, त्रिशूल की नोंक पाताल में चली गयी बेटा। शेषनाग के फन पर टिक गयी। अब दुनिया में कोई जन्मा ही नहीं जो हमें हटा दे। न भजन जाने न चिन्तन। जो करते हैं, उन्हें भी विघ्न डालने चले आये। झोलिया में हाथ डाल दिया, सीताराम-सीताराम.... सीताराम भागे जा रहे हैं क्यों? **चींटी के पग नुपुर बाजे, वह भी साहब सुनता है।**

अज्ञानी कहीं के! भागो यहाँ से! अब थोड़ा कड़ा होकर बोल दिया। वे बोले– भागो रे, हमलोग सोचे सीधे-सादे हैं, ये तो खतरनाक हैं। भाग गये सब के सब।

१३०. हनुमानगढ़ी के नागा का उपद्रव

स्वरूपदासजी माने नहीं। हनुमानगढ़ी में गये, एक नागा को ले आये। अउर ८-९ बाबा आ गये, जंगल में जो बगीचा है, कुँआ है एक, वहाँ टिक गये झोपड़ी बना के। नागाजी शाम को निकले छः बजे करीब। छुरा निकाल के दिखाया महाराज को– परमहंस जी, ये छुरा आप ही के स्वागत के लिए है। आज पट्ठे से दो-दो हाथ होंगे। महाराज देख लिये, सुन लिये। नीचे-नीचे ऐंठत चला जा रहा था। अपशकुन हो रहा था महाराज को कि इसकी नियत खराब है। अब भगवान कहें– बैठो रहो, इसको कहने दो। रात को ९ बजे के करीब शगुन मिला महाराज को कि सब ठीक हो गया। महाराज सोचे– भगवान अन्तर्यामी हैं। उसके हृदय में भी भगवान ही विराजमान हैं। बुद्धि पलट गयी होगी।

वास्तव में रात को ९ बजे उसके स्वागत में विशिष्ट भोजन बना हलवा-पूड़ी। जहाँ तीसरा ग्रास मुँह की ओर ले चला, लकवा मार दिया। दाहिना अंग एकदम साफ। अब वह गिर पड़ा। रातभर सेंकाई हुई लेकिन कोई लाभ नहीं। तब चद्दर में बाँध के, डण्डा डाल के, कन्धे पर लाद के दो महात्मा आगे-पीछे और एक

महात्मा उसकी झोली-झण्डी लेके पीछे चल रहा था। ठीक आश्रम के सामने से, गंगा किनारे से, रास्ते से चले जा रहे थे, १५ किलोमीटर चित्रकूट की ओर। जो उसका हाथ सही था, झोली से निकाला– परमहंसजी दण्डवत! महाराज बोले– कवन है रे? नागा बोला– वही हूँ महाराज जो कल आपको दिखा रहा था छूरा। महाराज बोले– अरे, क्या हो गया तुमको? नागा बोला– अरे महाराज, जहाँ तीसरा ग्रास उठाया, मुँह तक नहीं गया और लकवा मार दिया, पूरा अंग साफ हो गया। महाराज बोले– अउर सतइबे कउनो महात्मा के! तोरी खल की! मरो जइहे ऐसे। नागा बोले– अरे महाराज, एही चिट्टा-पट्टी दे के लाये थे कि परमहंसजी महात्मा नहीं हैं, संतों को सताते हैं, ई हैं, ऊ हैं। महाराज बोले– और सतायेगा, मर ही जायेगा ऐसे तू सड़ के। नागा बोला– महाराज, दया करें मैं ठीक हो जाऊँ। हमारे आगे-पीछे कोई नहीं है। हमलोग अज्ञानी हैं। अज्ञानवश भयंकर भूल हुई है, हमने किया नहीं है। बहुत गिड़गिड़ाया। महाराज ने कहा– जो फिर, चल हमारा आशीर्वाद है। ठीक रहेगा तो ठीक ही होगा तुम्हारा। फिर वैष्णव महात्माओं के झगड़े एकदम खतम।

१३१. पण्डों द्वारा सामूहिक विरोध

अब मेला आने लगा तो पंडा पीछे पड़ गये। पंडों का नौकर आवे– चलो परमहंसजी सिद्धपुरुष हैं, साक्षात् अत्रि महाराज

स्वरूप हैं, ये नारायणस्वरूप हैं। भोली-भाली जनता पाँच-सात रुपया चढ़ा दिया। तब हम वहाँ थे। तब पंडवा नीचे से फिर चढ़के ऊपर आया। महाराज मना करें– क्यूँ रे, क्यूँ कहता है इनसे परमहंस जी अच्छे हैं? क्यूँ तारीफ कर रहा है? ऊ रोज बढ़-चढ़के लगा बताने। फिर आया। मेला उतनी दूर चला जाय गंगा किनारे, तब आया, बोले– महाराज, आधा पइसा हमार होत है। ये सात रुपया चढ़ा है न, उनमें से आधा हमारा होत है। महाराज बोले– कइसन रे? वह बोला– हम जो तारीफ करके चढ़वाये रहें। महाराज कहें– हम कहे रहें कि हमार तारीफ कर और चढ़वा। क्यूँ तारीफ किया, क्यूँ चढ़वाया? भाग यहाँ से। तो नीचे जा के कहत है– अब बोहनी न होई परमहंसजी! अब मेला न चढ़ी ऊपर। महाराज बोले– धत् तेरे ढोंगी की, हम तोरे माथे हैं कि तोरे मेले के माथे?

तब सब पण्डों ने मीटिंग किया, बोले– परमहंसजी हमलोगों का धन्धा चौपट कर देइहैं। वे हर महात्माओं के यहाँ ऐसे ही किया करते रहे। छः महीने ऐंठे रहे। जहाँ मना करे – परमहंस जी महात्मा नहीं हैं, बेकार हैं; यात्री बोलें– तुमसे हमने पूछा था। इन्हीं के दर्शन करने हम आये हैं। तोरे ई पत्थर-पहाड़ देखने नहीं आये। अनुसुइया में क्या रखा है? किसी ने मूर्ति गढ़ के रख दिया। हम इन्हीं संतों की तलाश में आये हुए हैं। वे महाराजजी से कहें–

महाराजजी, ई पंडवा आपका दर्शन करने के लिए काहे मना करते हैं? महाराज बोले– दलाली चाहत रहें, इसलिए तारीफ करत रहें, हम कहे– मत कर तारीफ, तू निन्दा कर, चल भाग यहाँ से! इसलिए कर रहे हैं। यात्री बोले– महाराज, हमारा सौभाग्य था आपका दर्शन हो गया। फिर पंडा लोग आये मीटिंग करके और बोले– महाराज, वे लड़के थे, अज्ञानी थे, भूल हो गयी। वयोवृद्ध पंडे आये, वे भी पैसा चढ़ाये और बोले– महाराज, लड़के अज्ञानी हैं, गलती हो गयी। तब से सब प्रेम से आते-जाते रहे।

१३२. आश्रमीय व्यवस्था

अनुसुइया में घोर जंगल में बहुत बढ़िया व्यवस्था रही – चने का टिक्कड़। उस समय गेहूँ प्रचुर मात्रा में नहीं था। सही पूछो तो इधर यूपी में और जंगली क्षेत्रों में गेहूँ था ही नहीं। सिंचाई का प्रबन्ध नहीं था इसलिए सम्भवत: न रहा हो। गेहूँ की रोटी तो कोई मेहमान आ जाय, तब बने। आश्रम में भी चने के टिक्कड़। बारह आने चने का आटा, चार आना गेहूँ का मिला दे इसलिए आटे में लोच आ जाय, रोटी बनाते बन जाय। दाल, कभी-कभी सब्जी। भोजन २४ घण्टे में एक टाइम बारह-एक के बीच में। सुबह बालभोग कुछ भी नहीं। कभी-कभी गुरु महाराज को भजन से उठें तब याद आ जाय, १० बजे के करीब तो भण्डारी जी से कहें– क्यों रे शिवानन्द, एक-एक भेली सबको दे दो। गुड़ निकाल,

बालभोग हो जाय। एक-एक भेली मिल जाय। ये था बालभोग। याद न आवे दस दिन तो कोई बात नहीं। एक समय भोजन। शाम को कुछ नहीं। दोपहर का एक-दो टिक्कड़ बच जाय तो तोड़ के आधा-चौथाई टुकड़ा खा लिया करे जिसको भूख लगे। नहीं तो नहीं। २४ घण्टे भजन-सत्संग। यही रहनी थी।

कभी-कभी महाराज शाम को कहें– धूना चेताव। ला रे कड़ाही तो एक किलो गाय का घी, एक किलो आटा, एक किलो चीनी से बने हलुआ रात को नौ बजे। और जब हलुआ तैयार हो जाय, कै जने हो रे! लोग बोले– महाराज, आठ जने। आठ बखरा कर दे। आठ जगह बाँट दें। तो एक किलो आटा से बन जाता है करीब सात किलो हलुआ तैयार हो जाता है सब मिला के। बस सबको अलग-अलग कटोरा में, तीन-तीन पाव के करीब सबको मिल जाय। दे दें– लो खावो। सबलोग बहुत खुश हों। धूनी में फिर हवन करें। ॐ गणेशाय नमः स्वाहा, ॐ ब्रह्माय नमः स्वाहा, ॐ विष्णवे नमः स्वाहा, ॐ शंकराय नमः स्वाहा, ॐ गुरुदेवाय नमः स्वाहा और पाँच बार कहके प्रणाम कर लें। हमें मालूम नहीं कि कह क्या रहे हैं? हम बोले– क्या करते हो? क्यों डालते हो आग में? वह बोले– हवन कर रहे हैं! हम बोले– के हैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश? तब हमारी समझ में न आवे। वे बोले– पाँच बार ऐसे डाला जाता है। डाल दिया। हवन हो गया। बहुत समय बाद

समझ में आया कि लोग कह क्या रहे हैं? गणेश का मतलब है आरम्भ। वे गणों के ईश थे। मनसहित इन्द्रियाँ जब संयम हो जाती हैं। संयम शुरू में तो होता नहीं! संयम करने की शुरुआत होती है... जागृति-काल...गणों के ईश गणेश...ये तो अलग व्याख्या।

कभी-कभी धूना चेतायें तो पकौड़ी बन जाय। बढ़िया ढंग से बने। बेसन में सब्जी कटे, फिर क्या-क्या डालें और फिर बन जाय। जब महाराज भूल जायँ तो हमलोग याद दिलावें। महाराज से न कहें, आपस में कहें– यार, धूना चेते बहुत दिन हो गया। महाराज बोले– हूँ! भजन नहीं होत है, हलुआ-हलुआ-हलुआ करत है मन। राम-राम-राम नहीं करत है, हलुआ-हलुआ-हलुआ करत है। तब फिर चेतावें। १५ दिन में एक बार धूना चेत जाय। उस क्षेत्र में मिठाई थी ही नहीं। मिठाई का मतलब गुड़, और कुछ नहीं। जब धूना चेत जाय तब क्या कहना! वो एक मन बहलाव था।

१३३. कुलानन्द जी के यहाँ कुत्ते का स्वप्न बताना

कर्बी में कुलानन्दजी की कुटिया थी। वे बहुत अच्छे महात्मा थे। उस समय उनका बड़ा नाम रहा। महाराज से प्रेम रहा करे तो पहुँच आया करें समय-समय पर। एक दिन उन्होंने कहा– महाराज, कर्बी में हमारी कुटिया पर पधारें, दर्शन दें। बहुत कहा तो एक दिन चले गये। महाराज बोले– मैं आश्रम छोड़ूँगा तो हमारे ही सब

कर्म हो जायेंगे। वे बोले– महाराज, कुछ नहीं होगा। महाराज बोले– चलो फिर। उनके साथ एक बिटिया रहती रही है। उस बिटिया से मोसम्मी के रस में थोड़ा पानी धोखे से मिल गया। उसने छन्नी धोकर उसी कपड़े को निचोड़ दिया। मोसम्मी के रस में सादा पानी मिल गया। उससे महाराज को बुरी तरह खाँसी आने लगी। महाराज पानी उबालकर पीते थे, वह बोले– हम कहे रहे न वहाँ जाब त हमारे सब कर्म हो जायेंगे। फिर भी ले आये, माने नहीं।

इतने में देखा कि कुत्ता पड़ा-पड़ा भौं-भौं-भौं-भौं कर रहा है। कुलानन्द बोले– परमहंसजी, कुत्ता काहे भौंकत है? महाराज बोले– ई स्वप्न देखत है। इहाँ भण्डारा होई, इ गाई-वाई भगावत है। पत्तल फेंका जाई और सबलोग खायेंगे, पत्तल फेंकेंगे। ई भगावत है और कुत्तों और गायों को, अपने खाये खातिर। कुलानन्द बोले– भण्डारे का तो यहाँ कोई आयोजन है ही नहीं। महाराज बोले– भण्डारा होई भाई, ई बतावत है कुकुरवा हमके। जब रात में नौ-दस बजे के करीब सेठों को पता चला कि परमहंसजी आये हैं वहाँ पर, वे दौड़ के आये। रातोरात आटा-भाटा इकट्ठा किया, भण्डारा शुरू कर दिया। सुबह महाराज जब आसन से उठे तो भण्डार चेता हुआ था। जमके भण्डारा हुआ। पत्तल फेंका गया। वही कुत्ता दौड़-दौड़ के गायों को भगावत रहा। महाराज कहें– देख रे, वोही भगावत है।

१३४. महाराज द्वारा पशुओं की मूक भाषा को पहचानना

पशु-पक्षियों की भाषा भी महाराज भली प्रकार जान जाया करें। अनुसुइया आश्रम में पीडब्ल्यूडी के कोई अफसर कागजात सहित झोलिया रखके घाट पर घूमने लगे इधर–उधर, लौट के आये तो झोलिया नहीं थी। महाराज से कहे– महाराज, और तो कुछ नहीं, पैसा की कोई बात नहीं लेकिन वो कानूनी कागजात जिसमें थे हमारे, मैं तो संकट में पड़ जाऊँगा। कौन ले गया? कोई आया भी नहीं? तो महाराज बोले– ऐं, ढूँढ़ो, ढूँढ़ो कहीं बन्दर न ले गया हो। तो ढूँढ़ा गया। नहीं मिला। तब महाराज उठ के खड़े हो गये। देखा इधर-उधर बन्दरों की तरफ। तो वहाँ दूर बैठ के एक बन्दरिया बोली– ऊँ। महाराज बोले– हूँ, क्या कहत है रे? वह बोली– ऊँ। नीचे पंजा ऐसे लटका के कहा– ऊँ। महाराज बोले– देख रे, वो बतावत है वहाँ पड़ा है। गये तो वहाँ पा गये। तो महाराज से बन्दर सब बताया करें, इशारा कर दिया करें।

१३५. एक यात्री के चोरी गये लोटे की वापसी

घाट पर लोटा रखके एक यात्री इधर-उधर घूमने लगा, लोटा गायब। एक पंडित बोले– महाराज, यहीं लोटा रखा था, पता नहीं किधर चला गया? महाराज बोले– हूँ, यहाँ चोरी-वोरी होती नहीं, कैसे हो गयी? ढूँढ़ा नहीं मिला। हमारे यहाँ चोरी कैसे हुई? सब डाकुओं ने डाका बन्द कर दिया, ये चोर कहाँ से

आया? तीसरे दिन एक आदमी लोटे में घी भरके, बड़ा लोटा रहा एक किलो के करीब घी आ जाता रहा, भरके ला के रखा महाराज के बाजू में आसन के नीचे और चुपचाप प्रणाम किया फिर सीढ़ियाँ उतर गया। महाराज बोले– के है रे, कौन आया, प्रणाम किया और चला जा रहा है! बुला, बुला, बुला। करे, लोटा भूल गया रे यहाँ पर। ले जो लोटा। वह बोला– महाराज, आप ही का है, यहीं का। महाराज बोले– ओ कैसे? वह बोला– परसों मैं ही ले गया रहा हूँ घाट पर से चोराय के। महाराज बोले– करे काहे लाये? वह बोला– आप त्रिशूल ले के छाती में भोंक दिहे रहों। तब आप बोले– चल लोटा लेके, हमारे यहाँ चोरी करिहे। महाराज, हाथ जोड़ेउँ, माफी माँगेउँ। हम सोचे, खाली हाथ काहे जाऊँ। जब महाराज जी का है तो घी भर के लाया हूँ। इस प्रकार अनुसुइया आश्रम के चतुर्दिक चोरी-डाका नहीं होता रहा। किसी डाकू को बुखार चढ़ गया, किसी को शेर ने घेर लिया, चोर की छाती में त्रिशूल लग गया। तो महाराज का स्वरूप सब जगह पहुँच जाया करे। स्वरूप से डाँट पड़ जाया करे। कोल-भीलों के साथ भी यही बीता था।

१३६. महाराज जी के दो प्रिय भजन

क. भज ले मन राम सिया राम सिया रामा

गुरु महाराज सुबह-सुबह दो ही बजे उठ के स्वयं बैठ जाय, तीन बजे से सबको बैठा देखना चाहें। सभी भजन में बैठ जायँ।

चार बजे के करीब भजन गुनगुनाया करें। दो भजन बड़े प्रिय थे गुरु महाराज को। एक तो **'जाग री मोरी सुरत सुहागिन।'**, दूसरा **'भज ले मन राम सिया राम सिया रामा।'** तो–

भज ले मन राम सिया राम सिया रामा।
भज ले मन राम सिया राम सिया रामा।
राम नाम कमल फूल संतन मन भँवर भूल।
पीवत रस झूम-झूम अमृत अनुपाना।
भज ले मन राम सिया राम सिया रामा।
राम नाम निर्मल नीर संतन मन सरयू तीर।
मज्जत निर्मल शरीर पावत विश्रामा।
भज ले मन राम सिया राम सिया राम।।
राम नाम वेद मूल तेहि समान नाहीं तूल।
कोविद करत गान पावत विश्रामा।
भज ले मन राम सिया राम सिया रामा।
राम नाम ओंकार तुलसीदास नमस्कार।
दीजै प्रभु भक्ति सार पल-पल परनामा।
भज ले मन राम सिया राम सिया रामा।।

भक्ति का सार है **'पल-पल परनामा'**–हर पल हम प्रणाम करें, समर्पित रहें चरणों में, झुके रहें, चरणों में नत रहें, एक भी पल भटकने न पावें। यही भक्ति का सार है। **'दीजै प्रभु भक्ति**

सार, पल पल परनामा'– पल-पल प्रणाम चलता रहे। एक भी पल आपके प्रति समर्पण से भटकने न पावे, व्यर्थ न जाने पाये।

ख. जाग री मोरी सुरत सुहागिन

दूसरा भजन था– सोना और जागना। जागना परिश्रम है, सोना परिश्रम का निवारण है। खाना अनिवार्य है शरीर के निर्वाह के लिए, ऐसे सोना भी अनिवार्य है। ये एक भोजन है शरीर का। जागना थकान है, सोना थकान का निवारण है। स्वस्थ व्यक्ति को यदि १५ दिन नींद न आवे तो पागल हो जाय। ये शरीर की खुराक है। इसी आधार पर ये बना हुआ है। लेकिन मन का वासनाओं में बहक जाना सोना है, और इससे सचेत हो जाना जागना है। **मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।** (मानस, २/९२/२) मोहरूपी निशा में सभी लोग निश्चेष्ट पड़े हुए हैं। दीर्घ बेहोशी में, गाढ़ निद्रा में पड़े हुए हैं। रात-दिन जो अर्जित करते हैं, दौड़-धूप करते हैं, मात्र स्वप्न देखते हैं। यह सपना घड़ी दो घड़ी का! जीवन का सपना ८०-८५ साल का! और क्या? सपना ही है। लौट के अपने घर परिवार की रहनी को कोई नहीं देखता। सदा के लिए छूट जाता है ये सपना। फिर सपना है। इसलिए जगतरूपी रात्रि में संयमी पुरुष जाग जाता है। इसी आशय का भजन, गुरु महाराज का बहुत प्यारा भजन। तो जागती है मनोवृत्ति, जागती है मन की दृष्टि, उस दृष्टि का नाम है सुरत।

हम यहाँ पड़े हैं, बढ़िया भजन की चर्चा हो रही है, मन लगा है। सहसा कोई कह दे कि छोटा लड़का छत से गिर गया, बेहोश है, अस्पताल गया। तो यहाँ चाहे सब कुछ बढ़िया चलता हो, सत्संग चलता हो, दृश्य बढ़िया दिखाई देता हो.... आँखें खुली हैं, न दृश्य दिखाई पड़ेगा.... कान खुले हैं, न शब्द सुनाई पड़ेगा। लड़के का एक-एक रोआँ दिखाई पड़ेगा कि बरौनी कैसी? पलकें कैसी? हाथ की उँगलियाँ कैसी? क्यूँ? आँखें खुली, यहाँ नहीं दिखाई पड़ेगा। आँखें नहीं देखती, इसके पीछे विचार देखता है। विचार तो वहाँ चला गया जहाँ लड़का है। कान नहीं सुनते, विचार सुनते हैं। विचार वहाँ चला गया। जो देखती है, उस दृष्टि का नाम सुरत है। मन की दृष्टि का नाम सुरत है। इस जगतरुपी रात्रि से हटकर परमात्म-चिन्तन में लग गयी तो जग गयी। तो–

जाग री मोरी सुरत सुहागिन।

जब भगवान उठाने-बैठाने लगे, मन की लगाम पकड़ के सचेत करने लगे, उस दिन से सुरत सुहागिन हो जाती है।

का सोवत है मोहनिसाँ में, उठ के भजनियाँ में लाग री।
मोरी सुरत सुहागिन.....

का मोह-निशा में सो रही है। उठो भजन में लग जाओ। मोह ही निशा है। भजन कैसे करें?

चित दे सबद सुनो स्रवनन लगि, उठत मधुर धुन राग री।

मोरी सुरत सुहागिन.....

स्वाँस आयी तो चिन्तन से कहो ॐ। गयी तो चिन्तन से कहो ॐ। राम जपते हो तो राम। स्वाँस आयी तो राम, गयी तो राम। कुछ दिन जपना पड़ेगा। फिर जपा-जपाया नाम, ढला-ढलाया मिल जायेगा। स्वाँस सिवाय नाम के कुछ कहती ही नहीं। मन को द्रष्टारूप में खड़ा कर दो, देखा भर करे कि स्वाँस आयी तो क्या कहा? लौट के गयी तो क्या कहा? सुना भर करें। सुनने की क्षमता आ गयी तो फिर केवल सुना भर करें।

भगवान से अवश्य माँगो–

चरण सीस दे विनती करिहौं, भक्ति विमल वर माँग री।
मोरी सुरत सुहागिन.....

शीश को चरणों में रखकर विनय करो, भक्ति का निर्मल वर माँगो।

कहत कबीर सुनो भाई सन्तो, जगत पीठ दे भाग री।
मोरी सुरत सुहागिन.....

संत कबीर कहते है– संतों, ध्यान दो। जगत की ओर पीठ कर दो। फिर खड़े मत रहो, धीरे मत चलो। भाग लो, पूरे वेग से चलो। पहुँचना भी तो है। भगवतपर्यन्त दूरी तय करना है इसलिए भागो।

जगत पीठ दे भाग री। मोरी सुरत सुहागिन.....

तो भागना क्या है?

जागत में सुमिरन करे, सोवत में लव लाय।
सुरत डोर लागी रहे, तार टूट ना जाय।।

१३७. नौबस्ता के पाड़ेजी का फोड़ा ठीक होना

आश्रम से पाँच-सात किलोमीटर दूरी पर एक गाँव है नौबस्ता। वहाँ के बलदेव पाड़े पहुँचे दर्शन करने, तो महाराज कहें– पाँड़ें, चल पूड़ी बना। पाड़ें बोले– महाराज! हमार हाथै नहीं उठत है, मैं मरत हूँ। दस-बारह दिन से एकदम मरत हूँ, मोर हाथै नहिं उठत है। मैं न बना पइहौं। महाराज बोले– इधर आ। अइसे-वइसे ठोका, मसल दिया और मारा इधर-उधर। खो विभूति, जो बना। वह चला गया और बनाने लगा पूड़ी। धीरे-धीरे उसका दरद कम होता गया। उसने बनाया, खाया, खिलाया और चला गया। फिर महाराज को उठा दरद जैसे हड्डी फोड़ के बाँह में फोड़ा निकल रहा हो। न रात चैन न दिन चैन। बढ़ता ही चला गया। नवें दिन तो नींद न आवे। गरम पानी करके फोड़े पर डाला करें। महाराज की आँखों में आँसू आ जाय, इतना दरद। महाराज ने भगवान से पूछा– जब हमारी निवृत्ति हो गयी तब इतना भयंकर फोड़ा क्यों? बगैर पाप के दरद क्यों? तब भगवान ने अनुभव में बताया– उस पंडितवा को बारह महीना भोगना था। तू उसका उतार लियो तो बारह दिन तूँ ही भोग

ले। तब महाराज खूब खुश हुए। गिनो रे, कै दिन हुआ? बोले– आज महाराज नौवाँ दिन है। दस, ग्यारह, बारह - बस तीसरे दिन हमार फोड़ा ठीक हो जाई। भोग लो परमहंसजी जब लिये हो तो। तीसरे दिन फोड़ा फूट गया, ठीक हो गया। फिर वो चकावर जितना, सिक्के जितना दाग बना रहे। महाराज किसी की भी बीमारी ले लें, वह ठीक हो जाय और वह रोग महाराज को हो जाय। महाराज हो जायँ बीमार। **'दया बिनु सन्त कसाई। दया करी तो आफत आई।।'** दया महापुरुषों का सहज स्वरूप है।

१३८. कामतानाथ में महन्थ का लड़का

कामतानाथ एक तीर्थ है चित्रकूट में। जिस पहाड़ पर भगवान रामजी ने निवास किया था चित्रकूट में, उस जगह का नाम, उस पहाड़ का नाम है कामतानाथ। पयस्वनी नदी के किनारे कामतानाथ पर्वत पर भगवान रामजी ने सीता सहित निवास किया था। पर्वत में साढ़े तीन किलोमीटर की परिक्रमा है। रात-दिन भीड़ लगी हुई है वहाँ पर। उसी के पास-पास गाँव है तमाम। राजा महाराजा आये सब वहाँ पे। साढ़े तीन सौ करीब मंदिर हैं वहाँ पर। यहाँ भरत मिले थे तो भरत मिलाप। यहाँ सीता महारानियों से मिली थी तो वहाँ पर भी मंदिर। बाजू में लक्ष्मण पहाड़ी। वहाँ पर खड़े होकर लक्ष्मण पहरा देते थे, वो भी मंदिर। इस तरीके से चारो तरफ। मुखारविन्द– यहाँ से कामतानाथ ने भगवान से बात की थी श्रीमुख

से। फिर छोटा मुखारविन्द। इस तरीके से मंदिर ही मंदिर। बड़ी-बड़ी सात गद्दियाँ वहाँ पर वैष्णव सन्तों की। उन गद्दियों पर साथ-साथ सुविधा! किसी में हजार-दो हजार बीघा खेती लगी हुई, राजा-महाराजाओं की तरफ से दान-पुण्य। एक गद्दी पर एक लड़के को पकड़ के बैठा दिया, हो गया महंतजी। गद्दी में माल-पानी तो कोई भी ताक लेगा किन्तु मन और इन्द्रियाँ तो संयम-साधना से वश में होती हैं। इंद्रिय संयम की विधि होती है, वो तो उसे मालूम नहीं। एक महात्मा को ऐसा ही एक लड़का रहा। महंत चोरी-चोरी उसकी देख-रेख किया करे। आठ नाल बन्दूकधारी लेकर लड़का इधर-उधर घूमा करें। किसी को नहीं मालूम कि महन्तजी का लड़का है। महन्त जी चोरी-चोरी सहायता करें। यदि सबको पता चल जाता तो महंतजी गद्दी से उतार दिये जाते।

महंतजी का लड़कवा मनबढ़ रहा। महंत जी की जमींदारी के गाँव थे। वह गाँववालों को चैन से न रहने दे। सबकी बहन-बेटी देखे। लोफर कंपनी पाल रखा था। महंतजी का लड़का था कि नहीं रहा लेकिन अपने को सिद्ध किया करे कि मैं उनका लड़का हूँ। शिष्यों से लड़ा करे और लड़कियों को तंग किया करे।

शीतल पंडित मानी-सम्मानी। काफी अच्छा मंत्र पढ़नेवाले, पुराहिती भी किया करे। नाम भी था। उसकी बिटिया गयी खेत में तो उसका पीछा कर लिया उनलोगों ने। वो भाग के घर में आयी,

अपने भाई से कहा। भइया भी हट्टा-कट्टा जवान था। भाई ने पिता से कहा। शीतल पंडित ने महंत के लड़के से कहा– अरे, आप हमारे राजा हैं। (खटिया बिछा दिया) बैठो। आपका स्वागत है। हम आपकी प्रजा हैं। सब आपका है। लेकिन ये बन्दूकधारी लोफर कंपनी अंदर नहीं आ सकती। हम हँसी-खुशी से अपनी बिटिया आपको ब्याह देंगे। बाकी जो बन्दूकधारी पहरेदार थे, उनको शीतल पंडित ने घुड़क कर भगा दिया। आप हमारे राजा हैं। वो बन्दूक बाजू में धर के बैठ गया खटिया में। शीतल पंडित बन्दूक फेंक दिया उठा के घर में। उधर से लड़का एक लाठी लेकर निकला, मारा एक लाठी। लाड़-प्यार के पले लड़कों में दम कितना? बपवो मारा, शीतल पंडितो। दो-तीन लाठी में वह मनबढ़ लड़का ठण्डा हो गया।

१३९. शीतल पण्डित को महाराज का आशीर्वाद

शीतल पंडित चला आया महाराज के पास। महाराज पहचानते भी नहीं थे। आके उतना दूर बैठ के टुकुर-टुकुर ताके प्रणाम करके। महाराज ने पूछा– के है रे तू? पंडित बोले– महाराज, मैं फलाने गाँव का शीतल पंडित हूँ। महाराज ने कहा– हो गया दर्शन, भाग यहाँ से! पंडित बोले– महाराज, हमसे अनजाने में हत्या हो गयी है। वो महंत का लड़का कहावत रहा, छेड़खानी किया, हमारी प्रतिष्ठा पर आ बनी तो दो लाठी मार दिया, वो मर

गया। महाराज बोले– मर गया तो क्या हो गया! जा हाजिर हो जा। ये कोई इजिलास है। पंडित बोले– जो सजा डामल होगी, फाँसी होगी, हो जाय, गुरु महाराज का दर्शन तो कर लूँ पहले, इसलिए आया हूँ। महाराज बोले– ठीक! बात बंद हो गयी।

महाराज भक्तों से कहने लगे– करे, हमार तवा कुँए में गिर गया, कोई निकाल देता। बड़ा बढ़िया मोटा तवा। उस समय आश्रम में दो ही तवा रहे। एक पतला उसमें रोटी जल जाया करे; और एक मोटा जिसमें रोटी न जले। मोटावाला चला गया कुएँ में। जहाँ सुना शीतल पंडित ने तो रस्सा बाँधा, लटका दिया और झम्म कूदा और एक ही डुबकी में तवा लेकर चला आया। तवा मुँह में पकड़ लिया, दोनों हाथों से चढ़त चला आया। बाहर निकला। तवा महाराज को भेंट किया। पाँव में खूने-खून। महाराज ने देखा तो बोले– करे, तू तो बढ़िया काम कर रहा था, ये खून कैसा? पंडित बोले– महाराज! इस कुएँ में लकड़ी पड़ी है। लकड़ी में दो शाखा रही। एक पर पाँव पड़ गया, एसे कट गया। महाराज बोले– जो बेटा, खून के बदले खून। अब फाँसी तोके न होई, सजा चाहे जवन हो जाय। भाग हाजिर हो जो। वो गया बड़े ताव से हाजिर हो गया। दस साल की सजा हुई बाप-बेटों को। वहाँ जाकर पंडित तो था ही, लगा जेल के मंदिर में मंत्र पढ़के पूजा करने। जेलर साहब ने कहा– पंडितजी! तुम पूजा किया करो। दो-

चार हजार रुपयौ पा गया। पाँच साल में छूट के चला आया तो घर नहीं गया। सीधा छूटते ही महाराज के पास आया, बोले– महाराज, जेल का रही, हमरे लिए स्वर्ग रहा। आप वहीं साक्षात् रहे। एक-डेढ़ साल बाद लड़का भी चला आया। ऐसे बहुत सी घटनायें सामने से गुजरीं। अनायास जो मुँह से निकल जाय, वह हो जाय। महाराज कहें– सिद्धि कुछ नहीं, जो जबान से निकल जाता है, भगवान पूरी कर दिया करते हैं।

१४०. लड़के की आयुरेखा

चित्रकूट तीर्थ है। प्राय: लोग आया-जाया करें। महीने में चार-छ: आदमी साधु बनने जरूर आवें। चित्रकूट में देखें भीड़-भाड़ तो भागे एकान्त। सती अनुसुइया आश्रम में पहुँचे.... मंदाकिनी गंगा का किनारा, बियावान जंगल और गुरु महाराज का आश्रम तो मन लग जाय, वे बोले– महाराज, शरण में रख लें, शिष्य बना लें। घर में चिट्ठी लिख के, समझा-बुझा के, डाँट-फटकार के घर जरूर भेज दें। न रखें। महाराज कहें– साधु बनातें तो एक हजार से कम न होते। लेकिन सबको समझा-बुझा के घर भेज दें, घरवालों को सूचित करके, पकड़वा के भिजवा दें। जिन्हके लिए आदेश मिला, आठ-दस शिष्य बनाये कि इसका संस्कार है, उन्हीं को रखा।

इसी प्रकार भटकता हुआ एक बीस साल का लड़का पहुँच गया। महाराज बोले– कहाँ से आये हो? उसने बताया– महाराज,

मध्यप्रदेश से आया हूँ। प्रभु, हमें शरण में रख लें, मैं जनम भर भजन करूँगा, आपकी सेवा करूँगा। महाराज बोले– करे सधुआई के तुम्हारे अंदर तो एक भी लक्षण नहीं है। क्यूँ भागा रे घर से? वह बोला– प्रभु! बैराग्य जागृत हो गया। महाराज बोले– हूँ, नानी के आगे ननिअउरे का बखान। करे, काहे भागा घर से, बोल? वह बोला– महाराज! हमारी उमर केवल २२ साल है। बीस साल का हो गया हूँ। दो साल में मैं भला क्या कर लूँगा घर में! इसलिए जो शादी का प्रस्ताव आया, वो भी हमने अस्वीकार कर दिया और भाग आया। जब दो ही साल बाकी है तो क्यूँ न मैं भजन करूँ! तो भगवन्! इसीलिए चला आया हूँ। दो ही साल है तो जम के भजन करूँगा और आपकी सेवा करूँगा। महाराज पूछे– क्यूँ रे, तू कैसे जानता है तेरी उमर बाइस साल है, दो ही साल और बचे हैं। वह बोला– महाराज, हमारी जन्मकुण्डली में भी यही लिखा है, २२ साल ही लिखा है। हाथ में आयु रेखा भी नहीं है। लगा हाथ दिखाने। पाँच-छः जने और लोग थे उस समय आश्रम में, वो भी लगे देखने। मृत्यु का भय बड़ा खतरनाक होता है। डबडबाई आँखों से वो भी नीचे देख रहा था। जो आयु-रेखा वो दिखा रहा था, वास्तव में नहीं थी। सब तो नीचे देख रहे थे, महाराज ने चुप्पे से पीछे से छड़ी निकाला, एक छड़ी मारा खींच के हथेली में। तब जहाँ छड़ी लगी तो सट् देना हाथ खींचा और भागा वहाँ से। भाग

के थोड़ी दूर जा के बैठ गया। जाये कहाँ? चारों तरफ घनघोर जंगल। जगह होती तो भाग गया होता। अब भागे कहाँ? अब वो कोने में बैठ कर टुकुर-टुकुर ताके। एक शब्द न बोले। महाराज कहे– मरे के डर के मारे आया है तो देखो न, कहत है बैराग्य जग गया। फिर पच्चीस ठो महाराज ने खरी-खोटी सुनाया लेकिन वो कुछ न बोले। एकदम चुप। शाम हो चली थी। जहाँ-तहाँ लोग अपने-अपने भजन में लग गये।

बड़े सवेरे वह उठा और बोला– महाराज, रेखा तो जाम गयी। महाराज ने कहा– देखो रे, का कहत है ई। देखा तो रेखा थी। हाथ में आयु रेखा थी। वो बढ़ गयी रातभर में। महाराज ने पूछा– बेटा, अब क्या करेगा? वह बोला– गुरु महाराज, हुकुम होता तो घर चला जाता! महाराज बोले– धत् तेरी बैराग्य की, भाग यहाँ से। फिर घर चला गया। बहुत समय तक उसकी चिट्ठी-पत्री आती रही। **'भाविउ मेट सकहिं त्रिपुरारी।'**, **'सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।।'** (मानस, २/२५४/८) महापुरुष चाहें तो रेखा मिटा सकते हैं, बना भी सकते हैं।

१४१. चित्रकूट में उच्चकोटि के महात्मा

गुरु महाराज को जब भगवान ने स्वरूप दिया तो महाराज ने विचार किया कि भगवान ने हमको ला के यहाँ बैठाया है चित्रकूट में। मैं ही भर साधु हूँ चित्रकूट में कि और भी कोई है? तब

अनुभव में दिखाई पड़ा– भगवान के दरबार से बुलावा आया– 'अनुसुइया के परमहंस जी'। सजे हुए हाथी पर चढ़ के हम गये, ऊँचे आसन पे बैठा दिया। फिर पुकार हुई– 'पीलीकोठी के अखंडानंद जी'। वो पैदल आये, बढ़िया आसन पे बैठा दिया। उनका आसन महाराज से थोड़ा नीचे था। तीसरी बार पुकारे गये– 'जानकीकुण्ड के रणछोड़दासजी'। उनसे नीचे हल्का आसन था, उसपे बैठा दिया। फिर आवाज आयी– चित्रकूट में तीन ही महात्मा हैं। महाराज कहें– हो! पहला नम्बर मोर है। चित्रकूट में कई हजार महात्मा। उनमें तीन महात्मा। हो! पहला नम्बर मोर। महाराज को बहुत संतुष्टि हुई।

१४२. दूध-भिक्षा

तीरथ में यात्री आते हैं तो स्वभाववश कोई एक पैसा, कोई दो पैसा चढ़ाते थे। उस समय ताँबें के पैसे का प्रचलन था। महाराज के सामने भी फेंक जायँ। शाम भर में दो-चार आना, पाँच आना, इतना धूने पर हो जाय। भगवान ने कहा– इसको उठा लो। तब महाराज बिगड़े– जब छः-छः हजार रुपया मिलत रहा तब तो नहीं कहे उठा लो। तब तो कहा छूना मत। अब ये ताँबे की टिकुल्ली उठा लें। उस दिन दो-चार पैसा रहे वहाँ। भगवान बोले– एके उठा लो। महाराज ने कहा– हम क्या करेंगे इसका? तब आदेश हुआ– ये दूधभिक्षा है। इसमें उनकी इच्छा नहीं है। दान-

पुण्य का अंतरंग स्वभाव है। स्वभाववश वे फेंक के चले गये। इसे लेने में दोष नहीं है, इसलिए उठा लो। फिर डरते-डरते चिमटे से पकड़ कर महाराज पैसा कोठरी में फेंक दिया करें। वे पड़े रहे। दस-पन्द्रह दिन में कोई आदमी आवे गाँव से, लड़का-पड़का, महाराज बोले– देख रे, कोठरी में पैसा पड़ा है। देख तो। लड़के बड़े प्रेम से गिनें। वे बतावें– महाराज, दस आना है। महाराज बोले– दस आना है! तू ले जा, गाँव से जब आना तो ये-ये सामान ले आना। गाँजा या फलानी चीज अथवा नमक-मिर्ची। इस तरीके से आकाशवृत्ति का सिलसिला शुरू हुआ दूधभिक्षा से!

१४३. तहसीलदार स्वामी

एक थे तहसीलदार स्वामी। बहुत बढ़िया लाल शरीर। तहसीलदार थे। सर्विस बाकी थी, जान-बूझकर उसे छोड़ दिया। लड़के भी अफसर हो गये। सर्विस छोड़ दिया और भजन में लग गये। गुरु महाराज का नाम सुन रखा था। आये, दर्शन किया और बोले– महाराज! माया जीत रही है और ब्रह्म हार रहा है। महाराज बोले– कैसे तहसीलदार स्वामी? वह बोले– जिस महात्मा का नाम सुनो कि बहुत अच्छे महात्मा हैं, दो साल बाद जा के देखो तो गोड़ ऊपर, मुड़ी नीचे टँगे मिलत है। माया जीत रही है महाराज! तब महाराज हँसे और बोले– माया क्या कर लेगी? वे बोले– महाराज, आप जंगल में पड़े हो लेकिन दो-एक साल बाद

आपको हम देखब। महाराज हँसते हुए बोले– स्वामीजी, भूल मत जाना, जरूर देखना। फिर विदा होके चले गये।

तहसीलदार स्वामी दो साल बाद उदास-उदास आये। आके प्रणाम किया, बैठ गये तो महाराज बोले– अरे तहसीलदार स्वामी, आप आ गये। ई बताओ कि माया जीतत है कि हारत है? अउरो उदास हो गये। ई बताओ, तोहार का हाल है। तब आँसू बहने लगे। तब फिर रोवतो जायँ, बतातो जायँ। वे बोले– महाराज, जब हमने गृहत्याग किया तब घरवाले लड़के तरसें कि बाबूजी यहीं रहें, ई बंगला इन्हीं के लिए है। भजन की कुटीर हो गयी। औरत फूल ले के दौड़े और चरणों में चढ़ा दे और जहाँ-जहाँ हम रहें वो लोग आवें– तहसीलदार स्वामी आये, तहसीलदार स्वामी आये। बड़ी इज्जत रहे। एक बार भ्रमण करते हुए पहुँच गये उत्तरकाशी। एक धर्मशाला में महाराज हम सोये थे, पता नहीं कहाँ की एक साध्वी बगल में आके सो गयी। हमें पता ही नहीं। उसने हमें धर्म-भ्रष्ट कर दिया। महाराज बोले– ऊ कर दिया कि तू कर दिया? वे बोले– यही तो नहीं पता चला। महाराज बोले– तब? वे बोले– उस दिन से महाराज आत्मा शत्रु हो गयी। पहले आत्मा बताती रही, भगवान बताते रहें। उस दिन भी बताते रहें– खबरदार! सावधान!! लेकिन हम समझ ही नहीं पाये। हम पतित हो गये महाराज। फिर हम घर की तरफ से निकले तो औरत भी नहीं बोली। उस घटना को किसी ने नहीं देखा था, फिर भी पता नहीं

क्या हो गया, दुनिया जान गयी। गाँववाले, भगत जहाँ-जहाँ थे, कोई मिलने नहीं आता। लड़कवेउ भी मिलै न आवे। **'जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।'** (मानस, ५/१४/४) महाराज, जो ही हमें दिखाई देता है, शत्रु की तरह हमको देखता है। कहके भोकार छोड़ के लगे रोने। महाराज कहें– अब रोइले से का होई! अब जनमवा तो और लेवै के पड़बै करी। **'अहि विष काटे से चढ़े ई ताकत चढ़ि जाय। ज्ञान ध्यान अरु जोग को, जड़ा मूल से खाय।।'** (कबीर) स्त्री माया नहीं है। मनोवृत्ति माया है। पुरुष के लिए स्त्री, स्त्री के लिए पुरुष भजन में बाधा है। ये तो बराबर का सौदा है। जो भी भजन करेगा, उसकी राह में ये विघ्न आता ही है।

१४४. महाराजजी द्वारा नागा महात्माओं को हाथी दान

निरंजनी अखाड़ा सन्न्यासियों का। वे चतुर्मासा कर रहे थे चित्रकूट में धूमधाम से! ५०० करीब महात्माओं की जमात सिरसा बन में रहे। चतुर्मासा पूर्ण हुआ। चित्रकूट क्षेत्र में किसी ने उनका स्वागत नहीं किया। महाराज बोले– यार, माना वैष्णव संतों का क्षेत्र है, फिर भी स्वागत करना चाहिए। संतों के लिए सब बराबर होते हैं। अवश्य करना चाहिए था। किसी ने भोजन भी नहीं कराया, एक दिन मैं कराऊँगा। बुलाओ, एक दिन भोजन करा देते हैं। लोगों ने कहा– महाराज, बड़े खुराफाती होते हैं नागा। वो

दान-दक्षिणा में आपका हाथी भी माँग सकते हैं। महाराज बोले– हाथी दे देंगे, और क्या है? एक नन्हकू सिंह ठाकुर थे, ओ अपना हाथी वही बाँध गये थे। वो जंगल में घूमा करे। बुलाया ठाकुर के, बोले– करे, दान में से दान दे, तीनों लोक जीत ले। तू हमें दिया, हम ओके दे देब त का हो जाई रे! ठाकुर बोले– जैसी आज्ञा महाराज! महाराज बोले– आवत हैं वो लोग। उन्हहूँ के सबके कम्बल देवे का पड़ी। ठाकुर साहब गये इलाहाबाद, जितने महात्मा थे उनके लिए चद्दर, बिछाने को कम्बल.... क्या-क्या उठा लाये। हुआ धूमधाम से भण्डारा। महाराज कहें– करे, ऊ पूछिहें कवन अखाड़ा, कवन द्वारा। हमलोगों के त मालूमे नहीं। हम बोले– याद कर लें क्या महाराज? दहिने-बायें पूछ के याद कर लिया। २५ बातें थी। लेकिन गुरु महाराज से कवन पूछता? कोई पूछा ही नहीं। आये। फिर भोजन किया, हाथी दान दे दिया, कम्बल दे दिया, हाथी के लिए मखमल की चद्दर आयी थी, चद्दर दे दिया। त्रिशूल दे दिया। ठाकुर साहब ने विदाई दे दिया। उनका स्वागत हो गया। बहुत खुश हुए। वो ऐसा अखाड़ा था जिनके पास हाथी था ही नहीं। वो निहाल हो गये और महाराज कहें हमार जीउ छूट गया। बाबा हाथी क्या करेंगे!

१४५. आश्रमीय खर्चे पर चर्चायें

जब छः-सात चेला हो गये, भली प्रकार विधिवत् चलने

लगा आश्रम, चारों तरफ सन्तों में नाम हो गया – परमहंस जी नाम के कोई संत वहाँ निवास करते हैं। चित्रकूट में भी कोई सत्संगी पहुँच जाय, कोई सिद्ध पहुँच जाय तो बोले– इन्हें परमहंसजी के पास भेज दो, वहीं पोल खुलेगी। तब हल्ला हो गया चित्रकूट में कि परमहंसजी का खर्चा कैसे चलता है? न तो भिक्षा करवाते हैं, न किसी साहूकार से बँधा है, न कहीं फारम है? इनकी वृत्ति कैसे चलती है? और बड़ी सुव्यवस्थित वृत्ति चल रही है। लोग बोले कि रसायन विद्या जानते हैं। सोना बनाते हैं। इलाहाबाद में कहीं बिक जाता है या कर्बी में सेठों के यहाँ बिकता है। उसी से खर्चा चलता है। क्या ठाठ से खर्चा चल रहा है! सब महात्मा, पूरा चित्रकूट तो भिक्षा माँग रहा है और ये न माँगते हैं, न माँगने देते हैं। बड़े-बड़े जो महन्त हैं, उनका खर्चा सालभर चलता नहीं, इनका कैसे चलता है? वो तो सालभर खर्चा चलाने में कठिनाई महसूस करते हैं। और ये वैसे ही, कोई दो पैसा चढ़ाता है तो ऊपर से ताड़ना दे दिया करते हैं कि धत् तेरी धनिके की! चाँदी का जूता मारत है! फिर खर्चा कैसे चलता है? फिर हवा बदली, लोग बोले– नहीं, नहीं। ऊपर मशीन फिट है, नोट छापते हैं पहाड़ पर। फिर हवा बदले, बोले– नहीं, नहीं, चोर, चंडाल, डाकू कब किसके भगत होते हैं! परमहंस जी का नाम लो, तो लूटना दूर की बात है, और दो फर्लांग जाके रास्ता बता देते हैं, भइया यही रास्ता है परमहंसजी के आश्रम का, निर्विघ्न

चले जाओ, कोई खतरा नहीं। लूटनेवाले रास्ता बताते हैं। सिद्ध है कि डाका डलवाते हैं। डाकुओं के सरदार हैं।

किसी संत ने चिट्ठी लिख दिया दिल्ली कि परमहंस जी डाकुओं के सरदार हैं, डाका डलवाते हैं। दिल्ली से चिट्ठी आयी भोपाल। भोपाल से सीआईडी इंस्पेक्टर चला जाँच करने। वो सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, हम भी खड़े थे महाराज के पास। सीआईडी इंस्पेक्टर इधर-उधर देखे और चढ़त चला आवे। महाराज बोले– क्या पागलों की तरह इधर-उधर देखते हो। जो कुछ है मोरे भीतर है। इतने में है बेटा, और कहीं कुछ नहीं है। सब जगह पत्थर-पानी है। यहाँ-वहाँ का देख रहो हो? वह सोचे– मैं जाँच करने आया हूँ और महाराज कहते हैं– यहाँ-वहाँ का जाँच करत हो? जो कुछ है भीतर है, इतने में ही है ये आश्रम। और कहीं कुछ नहीं। बिल्कुल सही बात थी। महापुरुष का जो कुछ धन होता है हृदय में होता है। जहाँ बैठे उतने में ही है। फिर भी कड़ाई से बैठा रहा दो-एक घण्टा। साढ़े बारह-एक बजे बोले– महाराज, आपका शत्रु कौन है? महाराज बोले– हमारा शत्रु दो ही थे– यमराज और माया। भगवान ने माया से निवृत्ति दिला दिया। गर्भवास से छुटकारा दिला दिया। यमराज से हमको विजय दिला दिया। अब दुनिया में हमारा शत्रु कोई नहीं है। तब उसने निकाला चिट्ठी, बोला– महाराज! ये चिट्ठी दिल्ली गयी, भोपाल आयी। मैं जाँच करने

आया हूँ महाराज। इसमें वही लिखा था, परमहंसजी डाकू हैं, डाकुओं के सरदार हैं। महाराज बोले– इसके लिए कोई क्या करेगा? **'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।।'** (मानस, १/२४०/४) ये उनकी भावना का दोष है, न कि हमारा शत्रु है। जनकपुर में धनुष-यज्ञ में जब राम पहुँचे तो सब जितने दुर्जय योद्धा थे देश–विदेश के, सबकी भीड़ लगी थी। जहाँ राम पर दृष्टि पड़ी तो असुरों–राक्षसों ने देखा– साक्षात् काल खड़ा है, आज मृत्यु निश्चित है। तुरन्त आड़ में हो गये। दुर्जय योद्धा थे, जिनमें लड़ने का अभिमान था, गर्व था, उन्होंने कहा– इज्जत बचाओ, वीर रस छाया है। और जो भगत थे, उन्होंने देखा कि भगवान खड़े हैं। लगे स्तुति करने। जनकपुरवासियों की निगाह पड़ी तो बोले– जनक की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। सठिया गये राजा साहब। कन्या के जीवन से खिलवाड़ किये पड़े हैं। अरे, जब लड़का पसंद आ ही गया तो धनुष तोड़ो, धनुष उठाओ, इस बकवास की कौन जरुरत? अरे रात को कौनो बड़ई बुला के, आरी लगवा के तोड़वा देवे के चाहत रहा। फिर गोंद से चिपकाय दे। जो लड़का पसंद हो, आगे बढ़ा दो। उठायेगा, टूट जायेगा। तर्क तो तमाम हैं। जब बड़े-बड़े दुर्जय योद्धा तोड़ नहीं पा रहे हैं तो ये क्या खाक तोड़ेगा? नई खिली हुई पुष्पकली के समान कोमल राम का शरीर! आँसू बहानेवाले सारे जनकपुरवालों को कोमल

कली के समान दिखाई पड़े। और **'जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सान्त सुद्ध सम सहज प्रकासा।।'** (मानस, १/२४१/४) योगियों ने परम प्रकाश देखा। शान्त, शुद्ध, सम और सहज परमात्मा को प्रकाशित देखा। और कुछ देखा ही नहीं। बाहर तो **'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।'** (मानस, ३/१४/३) ये तो उसकी भावना का दोष है, न कि हमारा शत्रु है। वह बोला– महाराज, आप महापुरुष हैं। आपके लिए सब समान हैं; लेकिन मैं ढूँढ़ लूँगा। हमारा सौभाग्य रहा कि चिट्ठी चली गयी, हमें दर्शन हो गया। वह वापस चित्रकूट आया और तीसरे दिन पकड़ लिया जिसने चिट्ठी लिखी थी। वह बोला– जाओ, परमहंसजी के चरणों में गिरो, उनका प्रसाद खा के आओ। भविष्य में खुराफात कभी मत करना नहीं तो जनम भर जेल में सड़ा के मार डालेंगे। शिकायत करनेवाला स्फटिक शिला का एक महात्मा ही था। महाराज जी जानते थे किन्तु जब वह आया तो महाराज ने उसे क्षमा कर संतोचित सत्कार किया।

१४६. फटिक शिला से एक सन्त का आगमन

लम्बी-सी जटा रख के आये एक संत। वह वैष्णव थे। आते ही महाराज ने कहा– करे जयंता, स्फटिक शिला से चोंच मारता तो अच्छा रहा। यहाँ आने की हिम्मत कैसे पड़ी? लेकिन चढ़ गया ऊपर। बैठने को कुर्सी दिया महाराज ने। वे बोले– महाराज, कुछ

खाने को दीजिए। महाराज बोले– तोरे लिए हमरे पास कुछ भी नहीं है। वे बोले– अरे महाराज, हम आयेंगे तो भोजन भी नहीं मिलेगा, पानी भी नहीं मिलेगा। एक लड्डू दिया, प्रसाद पाया। महाराज बोले– कहाँ आये हो? वे बोले– चेला एक भटक गया था, ओके ढूँढ़े आया हूँ। महाराज बोले– अच्छा, अच्छा। ढूँढ़ो तुम चेला। महाराज जानते थे कि शिकायत इसी ने किया था किन्तु जब वह आ ही गया तो महाराज ने उसके साथ संतोचित व्यवहार किया। महाराज कहें– हो! महापुरुष का खर्चा भगवान स्वयं चलाते हैं। भगवान हृदय में आ जाते हैं तो लक्ष्मी भी चारो तरफ का काम करने लगती हैं।

१४७. बाँदा के एस.पी. साहब का शिकार हेतु आना

अनुसुइया आश्रम से ही शेरों का रास्ता भी था। रातभर में दो-चार-दस शेर इधर से उधर निकल जाया करें सामने से। आश्रम की तीसरी कोठरी में शेर रहता था स्थायी। जिस दिन से महाराज जी ने कोठरी में झाड़ू लगवा दिया, उस दिन से शेर तो नहीं आया, लेकिन जन्मा वहीं था, उसका घर वहीं था, रहे वहीं पर। कभी छत के ऊपर, कभी इधर, जैसे उसका घर हो, २० फीट की दूरी पर कभी इधर, कभी गंगा के किनारे, कभी पहाड़ पर लोगों को दिखाई पड़ जाय तो वे बोलें– अरे महाराज, शेर-शेर। महाराज बोले– हमार पहरेदार है, चिन्ता मत करो। चले आओ, नुकसान न करी।

बाँदा के एसपी साहब। वो अपने सिपाहियों के साथ बन्दूकें लेके, लड़के-बच्चे लेकर – दो-चार बच्चे, औरत, दरोगा, सिपाही सबको साथ लेकर पहुँचे, बोले– महाराज, सुना है आपके पास शेर आता है। आप जब चाहते हैं, शेर को बुला भी लेते हैं। हम वही देखने आये हैं। आप शेर को बुला दीजिए। हमारा निशाना बहुत अच्छा है। हम शेर का शिकार करेंगे। आप बुला दीजिए, मैं मारूँगा। चित्रकूट का दारोगा, दो-तीन आस-पास के थाने के थे, लेकिन चित्रकूट वाले महाराज के पास आया-जाया करते थे। वे भगत भी थे। महाराज ने उनसे कहा– देख, अपने साहब से कह दे– यह सन्त का आश्रम है। यहाँ हिंसा का नाम न लें। यहाँ शिकार नहीं होता। अपने साहब को मना कर दो। वे मना करें लेकिन बड़ा साहब जो ठहरा, सुने ही न। फिर वही घूमा-फिरा के शिकार की बातें कि आप ला दीजिए महाराज, मेरा निशाना बहुत अच्छा है। तब महाराज बोले– देखो, बाल-बच्चे लेकर ऊपर जाओ। यहाँ जगह नहीं है। हो गया दर्शन। ऊपर जाओ, ऊपर सबको स्थान दे दो। दरोगाजी! पूरी टीम लेकर ऊपर चले जाओ, वहीं रहो। भजन में विघ्न पड़ रहा है। सब ऊपर चले गये।

ऊपर भी पाँच-सात कोठरी, केवाड़ी किसी में नहीं। निछद्म मैदान। ऊपर पहाड़ और पहाड़ का जंगल झुका हुआ। इधर भी पहाड़, जंगल और इधर भी जंगल। बीच में खुली कोठरियाँ। जहाँ

सबका आसन लग गया, इतने में शेर चला आया सामने मंदाकिनी गंगा किनारे रात्रि साढ़े दस बजे के करीब। आ के गरजा। अब लड़का रोवे, मेहरिया काँपे। महाराज आसन छोड़ के कुँए पे खड़े हो गये, शेर और ऊपर साहब के बीच में और बोले– लेओ, तोहार बाप आ गया। छाती में बार हो मार लेओ!

साहब के तो धोती ढीली हो गयी। औरतिया बोली– काहे महाराज को छेड़ दिया, दरोगाजी ने मना किया, माने नहीं। अब मार लो। ग्यारह नाल बन्दूक लेके कुएँ पर सिपाही नीचे लेटे रहे और साहब के पास में परिवार! सिपाही वहाँ कैसे लेटे? वे कुएँ पर थे। वहीं कुएँ पर बन्दूकें छोड़ के सर्र देना भागे हैं सब के सब। महाराज के बगल में तीन कोठरी थी, उसमें घुस गये। केवाड़ी उसमें भी न रहे। साहब बोले– महाराज, क्षमा करें, गलती हो गयी। इतने में और दहाड़ा कसके। माई बोली– अरे महाराज! बच्चे मर जायेंगे। एक छलाँग में ऊपर आयेगा, इसको आने में कितनी देर लगेगी? पहाड़ चढ़ते-उतरते ई खा जायेगा, सब बच्चे मर जायेंगे, मैं मारी जाऊँगी। माई रोवे। बच्चे रोवैं हा-हा करके। साहबो माफी माँगे, ऊपर से बोले– महाराज, क्षमा करें। एके बिदा कर देओ जल्दी। महाराज बोले– बन्दूक में टोटा (गोली) नहीं है का रे? इतने में फिर गरजा तीसरी बार। घूम के, झूम के, खड़ा होके। महाराज बोले– अच्छा नरसिंह भगवान, अब जाओ, होई

गया। वह शेर धीरे-धीरे निकल गया। अब रातभर नींद का करे आवे। वे सब सोचें– घूम-फिर के इधर से न चला आवे। ऊपर कहीं इधर से न चला आवे। चारो तरफ खुला है न। फिर सुबह के समय नींद आ गयी तो सो गये।

महाराज जब सवेरे हाथ-मुँह धो के तरोताजा हो गये तब सिपाहियों से बोले– बाहर निकलो रे, तोरी बन्दूकिया कोई लेके चला न जाय। कुएँ पर पड़ी हैं ऐसे ही। हँसते-हँसते सब आये, आपन-आपन बन्दूक लेके, टोपी सिर पर धर के फिट हो गये। साहब भी आये, बोले– महाराज, हम यही देखने आये थे महाराज कि आपके विषय में जो बताया जाता है सही है कि झूठ है। आप हमारी आशाओं से बहुत आगे हैं। आपकी हम क्या जाँच करेंगे? आप महापुरुष हैं, भगवान हैं। जब तक जिन्दा रहूँगा मैं, तब तक सेवा करता रहूँगा। देखो दरोगाजी, यहाँ खूब सामान भेज दो। सदैव भेजते रहना। और चले गये। दूसरे दिन घोड़ा भरके सामान आया। महाराज को आदेश मिला– ई खून है। लेना मत। ई जितना गल्ला है, इसमें खून बह रहा है। दारोगाजी से कहा महाराज ने– देखो हम नहीं लेंगे एक दाना। ले जाओ आपन। दरोगा बोला– अरे एसपी साहब हमलोगों पर नाराज हो जायेंगे। महाराज बोले– पइसा दिए रहे एसपी साहब। दरोगा बोले– उनका हुकुम ही पैसा है। महाराज बोले– तू हुकुम बजा। आपन नौकरी कर, हम नहीं लेंगे

एके। नहीं लिया। एसपी बिगड़ा दरोगा के ऊपर– तुम्हारा पइसा खराब है। मैं देता हूँ अपने तनख्वाह वाले पैसा से। खुद आये। तनख्वाह के पैसा से सेव, अंगूर, फल-फूल लेके आये। तब महाराज बोले– एसपी साहब, अभी समय नहीं आया आपकी सेवा लेने का। कुछ दिन रुक जाओ, साल–छः महीना। उसके बाद आप कुछ भी लाओगे, हम ले लेंगे। अभी सेवा लेने का समय नहीं आया है, न आपकी सेवा करने का समय आया। अभी हम कुछ नहीं लेंगे। साहब नीचे बैठे-बैठे कहें– महाराज! हम अच्छी जाति के नहीं, इसलिए आप नहीं ले रहे हैं। महाराज बोले– हम महात्मा हैं। हमारे यहाँ जाति-पाँति नहीं लगती। **हरिजन चार बरन से न्यारा।** हमारे यहाँ भेदभाव नहीं रहता, किसी प्रकार का नहीं रहता। लेकिन अभी भगवान का मन नहीं है। तुम्हारी सेवा का समय नहीं आया है। साहब ने वहीं नदी किनारे उड़ेल दिया सारे फल और वैसे ही लौट गये।

शाम को महाराज जब नदी किनारे आये तो ढेर सारे सेव, अंगूर पड़े थे। बहुत से बंदर खा रहे थे, फिर भी खतम नहीं हुआ था। महाराज बतावें– फिर दो-एक सेव हमहूँ खाये। हो! आकाशवृत्ति है। पड़ा है न। इस तरीके से समय-समय पर घटनाएँ घटती रहती थी जंगल में। महाराज कहें– हो, भगवान ही सब पूरा कर देते हैं।

१४८. महाराजजी का पंडित के घर कर्बी जाना

कर्बी के एक पंडितजी आवा-जावा करें। वे बोले– महाराज, एक बार हमारे घर चलो। महाराज बोले– हो! भगवान का आदेश है कि मैं यहीं रहूँ। पंडित बहुत पीछे पड़े तो भगवान से पूछा– एकरे घरवा हो लेई? भगवान ने कहा– कउनो हर्जा नहीं। जब भगवान ने मना नहीं किया, हाँ किया, महाराज बोले– चल फिर! महाराज ने छड़ी उठाया, कमण्डल ले लिया। कमरी लेके पण्डितौ चले।

१४९. फटिक शिला में निर्मलदासजी से भेंट

पहुँच गये स्फटिक सिला। वहाँ रहते थे निर्मलदासजी। उनकी जटायें इतनी लम्बी रहें जब चलें तो पीछे जमीन पे चार-छः इंच ऐसे घिसरा करे.... झाड़ू लगाते हुए। इतनी लम्बी जटा। बड़ा नाम था। कामतानाथ की परिक्रमा रात को तीन बजे किया करें। डण्डा लेके जटा छितरा के 'राम रट...राम रट...राम रट...' ये नारा लगाते हुए परिक्रमा किया करें, नियम यही रहा। बड़ा नाम रहा कि बड़े भजनानन्दी हैं। ये नियम उनका अच्छा चला। वहाँ रहा करे, वे वहाँ बैठे कुछ लिख रहे थे। पंडित ने कम्बल बिछा दिया, महाराज बैठ गये। पंडितजी ने परिचय दिया– यह निर्मलदास जी हैं। महाराज ने प्रणाम किया। पंडित ने कहा– आप अनुसुइया के परमहंस जी हैं। जहाँ महाराज का नाम सुना तो लिखना बन्द कर दिया, चश्मा उतार के रख दिया और बोले– हूँ, तुम्हीं हो

अनुसुइया के परमहंसजी? गाली क्यों देते हो? किस शास्त्र में लिखा है? महाराज बोले– अरे, हम अपने आश्रम पर गाली देते हैं, यहाँ तो देते नहीं। कोई कारण है इसलिए गाली देते हैं। हमें भी मालूम है साधु को गाली देना शोभा नहीं है – गाली देत न पावहु शोभा। लेकिन कोई कारण है इसलिए देते हैं। वे कैसे बतावें कि भगवान का आदेश है। निर्मलदास बोले– यह किस शास्त्र में लिखा है? सिद्ध बनते हो? कौन-सी सिद्धि जानत हो? महाराज ने उन्हें बहुत समझाया, लेकिन वे माने न। एक-आधे घण्टा तक-झक तक-झक कुछ न कुछ कहते रह गये। तब महाराज बोले– बस, बहुत हो गया। तोरे भरे के हम सचहूँ के सिद्ध हैं। बोल, कवन सी सिद्धि देखा चाहत है! देख, महीना भर में तोर सज्जी करम न हो जाये तो हम साधु नहीं। निर्मलदास बोले– जाओ, जाओ। चमारे के सरापे से डाँगर नहीं मरत हैं। महाराज बोले– अब तोहिं जनिहै मरत है कि नाहीं मरत है। चलो रे, बहुत हो गया। पंडित कहे– अरे महाराज, ई बैरागी हैं, का जाने? आप काहे नाराज हो गयो? महाराज बोले– हो, बहुत हो गया। **'कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू।'** (मानस, १/२८०/५)– बहुत सीधापन भी एक दोष है। अच्छे खल से भेंट हो गयी, बेकार पीछे पड़ा है। महाराज चल दिये।

१५०. रामघाट पर चरखारी के पुरोहित

महाराज पहुँचे चित्रकूट रामघाट तो बोले– सगुन मिल रहा है

पंडित, लगता है कोई अच्छे महापुरुष यहाँ पर हैं। निगाह दौड़ाई तो नदी उस पार रेती में एक आदमी पड़ा था। महाराज कहें– वोही है। घूम के गये तो एक महात्मा लेटे हुए थे। चरखारी स्टेट के राजपुरोहित थे पहले, वो छोड़-छाड़ के साधु हो गये तो वही पड़े हुए थे। जहाँ महाराज को देखा तो बुखार में धुत्त थे, उठ के खड़े हुए, लिपट पड़े, गले मिले, बोले– भल आ गयो और बड़े समय से आ गयो। उनकी आँखों में आँसू थे। महाराज बोले– अरे, आपके आँखों में आँसू। ये अवस्था आँसूवाली है? तो वह बोले– मैं रो नहीं रहा हूँ। ये खुशी के आँसू हैं कि आप बड़े समय से पधारे हैं। उस दिन महाराज के पास एक चद्दर थी, उसे ओढ़ा दिया। उन्हें लेटा दिया और कहा– अब श्वाँस में लगो। उन्होंने प्रणाम किया, लेट गये। महाराज जब तक चले नहीं गये, तब तक वो दर्शन करते रहे, देखते रहे।

महाराज पंडित के यहाँ कर्बी गये। वहाँ कुछ भोजन-प्रसाद लिया। जब लौटे तो उन्हीं पुरोहित जी की अर्थी घूम रही थी पूरे चित्रकूट में। सब पंडा, सारी जनता साथ में थी। पुरोहितजी की जय, संतजी की जय सभी कह रहे थे। बड़े अच्छे महापुरुष थे वे।

पुरोहितजी पौरोहित्य-कर्म छोड़ के भाग आये थे चित्रकूट। घाट पे बैठ गये। खाली गमछा लपेटते थे, और कुछ नहीं। घाट पर बैठ के भीख माँगे और जब पइसा हो जाय आठ–दस आना त

लड़कन के बुलावें– आओ रे, जुआ खेली। जुआ खेल के वो पैसा हार जायँ जानबूझ के, तब बोले– हाय रे तकदीर, हमरे करम में कुच्छौ नहीं लिखा है। वो राजपुरोहित रहे, फिर भी भीख माँगे। लड़के परच गये रहें। चिपके रहें कि बाबा के और पैसा रही तो खेलो। इन्हें तो जीते का नहीं, जीते तो हमीं का है। एक बार चरखारी के राजा साहब उधर से तीरथ करने चित्रकूट आये, देखा तो बोले– अरे, गुरु महाराज तो यहाँ बैठे हैं। तुरन्त तखत मँगाया, गद्दे मँगाये, बैठाया। हल्ला हो गया कि ये तो राजपुरोहित हैं। राजा साहब बोले– महाराज, आपने राज्य से कुछ लिया नहीं? पुरोहित बोले– पीछे न पड़, हम बहुत शान्ति से हैं। राजा बोले– एक बार श्रीमुख से भागवत सुना दें! पुरोहित ने उनका मान रखते हुए पन्द्रह-बीस मिनट भागवत सुनाया और कहा– अब हमारा पीछा छोड़ दें। राजा साहब चले गये। किन्तु आदेश देते गये कि चित्रकूट में जितने भी होटल हैं, कहीं भी हैं, पुरोहित जी जहाँ भी प्रसाद पावें, राजखजाने से उनको अदा कर दिया जायेगा। पइसा भी एक जगह जमा कर दिया। उन्होंने राजा साहब का पैसा नहीं लिया, न होटल में खाना खाया। बड़े अच्छे महात्मा थे।

१५१. मोहकमगढ़ के राम-लक्ष्मण

गाजीपुर के ठाकुर के दो लड़के नेवी में सर्विस करते थे। वायसराय को चिट्ठी लिख के भेजा– तुमलोग समुद्र पार चले

जाओ, राज्य नेहरू को दे दो। अब तुमलोगों का यहाँ समय पूरा हो गया है। मैं राम तुमलोगों को आदेश देता हूँ। उन्हें दिल्ली बुलाया गया। पूछा गया– तुम किस आधार पर आदेश दे रहे हो? लक्ष्मण बोले– राम ने कह दिया, वो सही है। आदेश हुआ– जंगल में इन्हें ले जाके गोली मार दो। पिस्तौल चलायी गयी, गोली निकली ही नहीं। अधिकारियों को सूचना मिली कि तीन बार तीन पिस्तौलें चलायी गयी, गोली निकली ही नहीं। आदेश हुआ– ऐसी बात है तो उनको छोड़ दो।

अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। जब नेहरू प्रधानमंत्री हुए तब उनको बुलाया गया। उनसे पूछा गया– आपको गोली नहीं लगी, यह कोई विद्या है क्या? राम ने कहा– हाँ, ऋषियों की विद्या है। अधिकारियों ने कहा– पूरे भारत को सिखा दो। राम ने कहा– सिखा सकते हैं। इसके लिए उपयुक्त जगह ढूँढ़नी पड़ेगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चित्रकूट में स्फटिक सिला के पास मोहकमगढ़ के खण्डहर को उनलोगों ने चुना। शोध और प्रशिक्षण के लिए सरकार की ओर से बहुत सारा धन स्वीकृत हो गया। वे लोग एक-एक मजदूर को सौ-सौ रुपये तनख्वाह दिया करें जबकि उस समय रोज की मजदूरी चार-छः आना ही थी। उनका झोपड़ा तैयार हो गया। दोनों भाई वहीं रहने लगें। एक बार उनकी पत्नी ने, जिनका नाम संयोग से सीता ही था, भागवत सुना। उन दिनों

भागवत सुनाने वाले अधिकतम १०० रुपये लेते थे। राम-लक्ष्मण ने पंडित को सात सौ रुपये, कपड़ा-लत्ता, काफी कुछ दे के विदा कर दिया। विदा करके दोनों भाई जंगल चले गये। लौट के आये तो पंडित वहीं बैठा था। राम बोले– पंडितजी, गये नहीं! पंडित बोला– सीताजी से भी कुछ आशा थी। राम बोले– अरे, सात भागवत का पैसा हमने दे दिया, फिर भी सीताजी से आशा है। लक्ष्मण! असंतुष्टा द्विजा नष्टा। यह ब्राह्मण नहीं है, कालनेमि है। पिटाई करो इसकी। लक्ष्मण बड़े आज्ञाकारी थे। पंडित की पिटाई करके भगा दिया। जो दिया था, वह भी छीन के इधर-उधर बाँट दिया। पंडित रोवत-गावत निर्मलदास के पास पहुँच गया।

१५२. निर्मलदास का अन्त

निर्मलदास खड़ाऊँ पहन के, जटा छिटका के, ललकारते हुए पहुँच गये उनके पास। राम तुरन्त बोले– लक्ष्मण! कुर्सी लाओ। महात्माओं की सेवा करो। स्वल्पाहार लाओ। निर्मलदास बोले– नहीं चाहिए तुम्हारा स्वल्पाहार। तुम राम-लक्ष्मण नहीं हो, नकली हो, कलयुगी हो। एक ब्राह्मण को इस तरीके से मारा? तुम नीच हो। राम ने बहुत समझाया और कहा– वास्तव में मैं राम हूँ। ये लक्ष्मण है मेरा भाई। आप संत हैं, पधारे हैं, आपका स्वागत है। पंडित ने अपराध किया, उसको राह दिखाना हमारा कर्त्तव्य था। राम रास्ता दिखाता है। अपराध देखता है तो रावण भी तो ब्राह्मण

ही था, उसे मार डाला। हमने तो अभी पिटाई की है। निर्मलदास बोले– अरे, तुम तो निशाचर हो। ब्राह्मणों को सताते हो, उनका पैसा छीनते हो। राम बोले– लक्ष्मण! देख तो, फटिक सिला से जयंता आ गया है, इसकी जटा काट डालो। लक्ष्मण आज्ञाकारी थे ही। निर्मलदास को पकड़ के हँसिया से उनकी जटा काट कर फेंक दिया। जटा ही तो सिद्धि थी। अब बहुत हल्ला-गुल्ला किया, रपट किया राम-लक्ष्मण के खिलाफ। महाराज से उलझने के पन्द्रहवें दिन जटा कट गयी।

इतने में निर्मलदासजी का एक शिष्य भ्रमण करके वापस आया। निर्मलदासजी अपने चेले को पहाड़ के बीच से बरसाती नाला आया करता है, वहाँ ले गये। वहाँ एक कन्दरा थी, उसमें हाथ डाल के बोले– इसी में बैठ के हमने भजन किया था। उस समय उसमें एक भालू बैठा था। उसने हाथ पकड़ लिया। निर्मलदास बोले– अरे, छुड़ाओ, छुड़ाओ, भालू बैठा है, भालू ने पकड़ लिया है। चेले ने खन्ती से मारा भालू के आँख में तो हाथ छूट गया। निर्मलदास का भारी शरीर! झटके में गिर गये पीछे की ओर। पाँव चला गया गुफा में। भालू ने पाँव पकड़ लिया। चेले ने भालू को बहुत मारा लेकिन उसने छोड़ा नहीं। डर के मारे चेला भागा जंगल छोड़ के। निर्मलदास को भालू खा गया। पन्द्रहवें दिन जटा कट गयी, एक महीने में भालू खा गया।

राम, लखन पहुँचे आश्रम में। महाराज ने पूछा– क्यों रे, निर्मलदास की जटा क्यों काट दी? उन लोगों ने बताया– महाराज! हम किसी महात्मा की जटा क्यों काटते? आपने कहा था– 'एक महीने में सज्जी कर्म न हो जाई तो हम महात्मा नहीं'! आप ही की प्रेरणा थी जो हमलोगों को ऐसा कुछ करना पड़ा।

१५३. अनुसुइया क्षेत्र में मलेरिया का प्रकोप

घोर जंगल में अनुसुइया आश्रम। मन्दाकिनी गंगा का उद्‌गम। चारो ओर जल-जमाव और झाड़ियाँ। छः-छः टाँग के बड़े-बड़े मच्छर, मार दे डंक तो मलेरिया होना ही होना है। क्षेत्रीय लोग बुखार से त्रस्त रहा करते थे। किसी-किसी को छः-छः महीने से बुखार आ रहा है। लोग खटिया से लग जायँ, हड्डी-पसली एक हो जाय। इलाज कुछ नहीं। जंगली इलाज था कि उपवास करो। मलेरिया बुखार खाना न पाई तो खुदै भाग जाई। बुखार भूखे मरेगा तो छोड़ देइ। लोगों ने देखा कि परमहंस जी महाराज के आशीर्वाद से बुखार नहीं आता तो आश्रम में भीड़ लग जाय। महाराज कहें– खो विभूति। कर प्रणाम। कभी एक छड़ी तो कभी एक चटकना मार दें। कहते थे– पापी कहीं के! पाप तुम लोग करो, भोगे बाबाजी। चल भाग यहाँ से! कब है बुखार की पारी? कोई कहता– महाराज, परसों! कोई कहे कल। तिजारी, चौथिया, अतरा बुखारों के नाम थे। हजारों लोग आये, सब ठीक हो के गये। गाँव का गाँव

ठीक हो जाय लेकिन महाराज को ही बुखार आने लगा।

उस समय वैद्यनाथ और डाबर आयुर्वेद के दो बड़े कारखाने भारत में थे। वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के रामनारायण शास्त्री अनुसुइया आश्रम बराबर आते और वहाँ तमाम दवाईयाँ रख जाते। उनके साथ कई वैद्य लोग भी आया करते थे। वह कहते– महाराज! आपका लीवर खराब हो गया है, आपको मलेरिया है। यह दवा इस तरीके से लें। कुछ दिनों बाद जब वे आवे तो दवाई ज्यों की त्यों रखी रहे, ऊपर गर्दा पड़ा रहे। वे बोले– महाराज, आपकी हालत और बिगड़ गयी, दवाई ज्यों की त्यों है। फिर दवा बदल दें और बोले– महाराज! ये प्राणदा है, प्राण दान करता है, थोड़ी सी दवाई आप जरूर लें, गरम दूध के साथ ले लें।

१५४. महाराजजी का दूध के लिए जाना

जंगल में दूध कहाँ मिले? उन्हीं दिनों एक अहीर आया। गुरु महाराज से ३-४ बीघा की दूरी पर अत्रि महाराज का एक मन्दिर है, उसके बगल में सट के झोपड़ी बना लिया और बाड़ा बना के गाय रखा करे। धीरे-धीरे उसके पास बीस–तीस गायें हो गयीं। महाराज ने सोचा– उसके पास दूध होना चाहिए। भगवान मना करते थे कि दवा मत खाना, इसलिए महाराज नहीं लेते थे। महाराज ने सोचा– वैद्यजी के हम वचन दिये हैं तो एक-दो दिन खा लेई त वैद्य का मान रह जाई। इससे हमको ठीक तो होना नहीं

है, ये भोगदण्ड है। चलो, शायद ओकरे पास दूध हो तो ले लेई। भीख माँगना तो महाराज को आता नहीं था। गये अहीर के पास। उससे पूछा– क्यों रे, गाय रखे है? वह बोला– हाँ महाराज! महाराज पूछे– दूध होता है? वह बोला– हाँ महाराज, होता है ढाई-तीन किलो! महाराज बोले– करे अधपउवा काढ़ि के देइहे मोके दवाई खाये का? वह बोला– सब आप ही का है महाराज, सब ले लो लेकिन हम दूध सब द्रौपदी बाई को दे देते हैं। बदले में वो रोटी बना देती है तो हमारा समय बच जाता है और हम गायें देखा करत हैं जिससे शेर-चीता न खा जाय। रोटी बनाने का हमारा समय बच जाता है। द्रौपदी बाई से आप थोड़ा पूछ ले और दूध ले लें। अब महाराज द्रौपदीबाई से कैसे पूछे? महाराज बोले– ठीक है। महाराज नीचे-नीचे चले आये, वापस लौट गये।

१५५. द्रौपदीबाई की हँसी

द्रौपदीबाई ऊपर से देखत रही कि परमहंसजी इधर जा रहे हैं। ऊँचाई पर एक मकान था। उसके ऊपर से वह फन-फन-फन गयी, यादव से पूछा– परमहंसजी आये रहे? उसने कहा– हाँ। बाई ने पूछा– क्यों आये थे? वह बोला– ऐसे ही दूध के लिए! उन्हें जरूरत है एकाध पउवा दूध की। बाई बोली– तुमने क्या कहा? उसने बता दिया कि ऐसा कहा। वह ऊपर के रास्ते से दौड़ के आयी, महाराज के बराबर में खड़ी होकर बोली– परमहंसजी

दण्डवत्। कहाँ गये रहे? महाराज बोले– ऐसे ही! उसने कहा– कोई बात हो तो बताओ? महाराज बोले– कुच्छो नहीं। महाराज देख रहे थे कि वह पूछ के आयी तबौ पूछ रही है। वह जैसे-जैसे पूछे, महाराज का क्रोध बढ़ता चला जाय। वह फिर बोली– कोई बात तो होगी, बतायें? महाराज कुच्छौ नहीं बोले। वह बोली– तो आइए, अनुसुइया जी का ही दर्शन कर लें। महाराज बोले– हमें नहीं करेका! उसने कहा– देवी-देवताओं के दर्शन नहीं करते तो भजन किसका करते हो? महाराज दिगम्बर तो रहते ही थे। उस दिन संयोग से गमछा जैसा एक बारीक मलमल का कपड़वा लपेटे रहें, कपड़ा खोल के जननेन्द्री की ओर इशारा करके बोले– एकर भजन करत हूँ! चुड़ैल कहीं की! पीछे पड़ गयी। कहत है– केकर भजन करत हैं? हम एकर भजन करत हैं। बिगड़े बड़ी जोर से। वह भागी फन-फन फन-फन हँसत-हँसत। फिर महाराज अपने आसन पर चले आये। *(महाराज बतावें– अरे, महापुरुष किसका भजन करते हैं? इन्द्रिय-संयम नहीं, मनोनिग्रह नहीं तो का ई साधु है? और कवन भजन करत है?)*

एक घण्टा बाद पुजारी आया। गाँव से आया करे उसका पुजारी। गया तो द्रौपदीबाई हँस रही थी। यहाँ से हँसत-हँसत वहाँ जाय, वहाँ से लोटत-लोटत वहाँ जाय, मन्दिरवा में। हँसत-हँसत पेट दर्द करने लगा, पेट में सिलवट पड़ गयी। वह बोला–

बाईजी! आज बहुत खुश हो, क्या बात है? वह बोली– परमहंसजी विलक्षण महापुरुष है। पुजारी बोला– बात क्या? वह बोली– बहुत विलक्षण, विचित्र महापुरुष हैं। पुजरिया का मन न लगे पूजा में। भागा-भागा आया महाराज के पास, बोले– महाराज, ऐसा कौन दिव्य दर्शन करा दिये कि बाईजी का हँसिये नहीं रुकत है? महाराज बोले– कहती रही केकर भजन करत हौ? अरे, कोई अनादिकाल से महापुरुष किसका भजन करता आया है? इन्द्रिय–संयम करता आया है, भगवान में लव लगाता आया है। केकर भजन करत है रे? और भजन किस चिड़िया का नाम है? पुजारी बोला– हँसत-हँसत बाईजी के पेट में सिलवट पड़ गयी महाराज। हँसी बन्द ही नहीं हो रही है। महाराज भी खूब हँसे। उस दिन से अयाचित दूध की व्यवस्था होने लगी। दवाई तो एक-दो दिन पिया। फिर रोग अपने आप ठीक हो गया।

१५६. द्रौपदीबाई का षड्यन्त्र

अनुसुइया क्षेत्र जब निरापद हो गया, तब नौ महात्मा आके रहने लगे मैनहा के जंगल में, एक सवा किलोमीटर दूर कुएँ के पास। लेकिन स्वरूपदास राग-द्वेष करके उकसाया करे उनलोगों को। अच्छे भी थे उनमें। एक बार सिर पर पगड़ी बाँधे, मुँह में कालिख पोतकर किसी बाबा ने द्रौपदीबाई के कमरे का दरवाजा रात में खटखटाया। संयोग से द्रौपदीबाई के साथ उस दिन एक

महिला और थी इसलिए उसने दरवाजा खोल दिया। बाबा ने हमला कर दिया। वो लड़ी कुल्हाड़ी से, दोनों जने। काफी शोरगुल किया। कुछ देर में बाबा चला गया।

सवेरे चार बजे द्रौपदीबाई भागी-भागी आयी– परमहंसजी! परमहंसजी! महाराज बोले– कौन है रे, सबेरे-सबेरे म्याऊँ म्याऊँ करत है? ब्रह्मचारीजी बोले– महाराज, द्रौपदीबाई है। महाराज बोले– करे महारानी, सौ बार मना किया कि रात में मत आया कर। वह बोली– महाराज, हमारी कुटिया में कोई घुस गया था मुँह में कालिख पोत के, पगड़ी बाँध के। महाराज बोले– हमने कहा था न जंगल में हजारों विघ्न हैं। मातालोगों को वहाँ भजन करना चाहिए जहाँ बहुत-सी माताएँ हों या परिवार के संरक्षण में घरे में भजन करना चाहिए। जहाँ बाईबाड़ा है चित्रकूट में वहाँ करना चाहिए। हजार बार मना किया फिर भी यहाँ पड़ी हो। जब विघ्न आ गया तो हम का करी? ढूँढ़ जहाँ मुजरिम हो तोर। भाग यहाँ से। वह चली गयी।

दु:खी आदमी कहीं तो जाता ही है। वह वहीं गयी जहाँ वे नौ बाबा लोग थे। वे लोग बोले– बाईजी, तुम वैष्णव हम वैष्णव। हम ऐसा कैसे कर सकते हैं? हम तुम तो एक ही हैं। परमहंसजी का नाम लगा दो, पुलिस इनको ले जायेगी। हमलोग ठाठ से भजन करेंगे। उसने पुलिस में शिकायत कर दी। पुलिस आयी। थानेदार

आये, वहाँ से पन्द्रह-सोलह किलोमीटर कामतानाथ से, महाराज से बोले– चलिए परमहंसजी! महाराज बोले– क्या बात है दरोगाजी? उसने बताया– आपके नाम वारंट है। द्रौपदीबाईजी ने आपका नाम लिखाया है। महाराज बोले– ओह, **'नारी है कि नाहरी फाड़ करेजा खाय। तुम चाहो सतलोक को, जमपुर दे पहुँचाय।।'** आखिर पहुँचाय दिया! दरोगाजी, ढूँढ़ लो अपना मुरजिम जो हों। वहाँ पड़े हैं तमाम लोफर। हम सचहूँ के बाबा हैं, हमें छेड़िहे, तोरे सब करम हो जाई। इ दरोगाई चूल्हे में चला जाइ तोर। दरोगा बड़ा निडर रहा। जाति का लाला था। वहाँ महात्माओं के बीच में रहके उन्हीं से कुछ लिया करता था। उसकी आदत रही। उसने सोचा– महाराजो वइसे होइहैं। उसने पूछा– महाराज, आपने दाँत में सोना क्यों लगाया है? महाराज बोले– बचपन में शौक रहा, उस समय लग गया। उससे क्या होता है? तू भाग। आपन काम देख। वह बोला– महाराज! आप गाय हैं तो हम बछड़ा हैं। आप ये हैं तो हम वो हैं। महाराज बोले– देख! बकवास मत कर। आपन ढूँढ़ जहाँ हो।

वह चला गया और नौ महात्माओं को ले आया। द्रौपदीबाई को भी ले लिया और महाराज से बोला– अब तो चलिहैं महाराज! आप तो नामजद हैं। महाराज ने भगवान से पूछा– प्रभु, क्या बवाल है? भगवान ने कहा– चला जा, कुछ न होई। दरोगा सबको

लेकर आगे बढ़ा, पीछे से महाराज उनसे थोड़ी दूरी बनाके अकेले चले जा रहे थे।

१५७. महाराजजी का निर्दोष सिद्ध होना

पथरा गाँव के गणेश नम्बरदार ने सुना तो एक हजार चाँदी का रुपया साफी में बाँधकर लेके चला। वह बोला– जिन्दगी बीत गयी, एक ही तो महापुरुष थे और ये खल उनके भी पीछे पड़ गये। केतनो पैसा लगिहै मैं महाराज को छुड़ाऊँगा।

द्रौपदीबाई भी जा रही थी थाने। थाने में पहुँचने से पहले कामतानाथ गाँव में पता नहीं क्या हुआ पागलों जैसी हरकत करने लगी। वह कपड़ा फेंक के नंगी हो नाचने लगी, कहने लगी– अरे बाप रे, हमें का हो गया? परमहंसजी ने कुछ कर दिया। उनका कोई दोष भी नहीं है। इन्ही बाबा लोगों ने कहा था कि उनका नाम लगा दो। इसलिए हमने कह दिया। परमहंसजी निर्दोष हैं। बयान बदल गया। दरोगाजी हक्का-बक्का। गाँव की औरतें दौड़-दौड़ के ओके कपड़ा पहनावे, फाड़ के फेंक दे, चढ़ बैठे, दाँतों से काट ले। तीन-चार साड़ियाँ फाड़कर फेंक दिया। किसी तरह से उसको लपेट के ले गये लोग। वह चली गयी तो दरोगाजी बोले– जाइये महाराज। महाराज बोले– जाइये तो, लेकिन तू लाया क्यूँ? तू लाया, यही बहुत बुरा किया। अब तूँही जनिहै।

१५८. राजापुर के शास्त्रार्थ में महाराज जी की विजय

महाराज आगे बढ़ गये। पहुँच गये राजापुर। मार्ग में ही महाराज को अनुभव में दिखाई पड़ा कि शास्त्रार्थ हो रहा है, जिसमें महाराज की विजय हो गयी। राजापुर पहुँचे तो देखा शास्त्रार्थ छिड़ा हुआ था। कई सौ आदमी बैठे हुए थे। भारी भीड़ है। विचार का विषय मानस की एक चौपाई थी कि जब भगवान चित्रकूट पहुँचे– '**तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेजपुंज लघुवयस सुहावा।। कबि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी।।**' (मानस, २/१०९/७) आया, प्रणाम किया और गायब हो गया। फिर उसका कोई वर्णन नहीं है। न पीछे कोई विवरण है, न आगे कोई विवरण है। वे तपस्वी कौन थे?–यही शास्त्रार्थ चल रहा था। महाराज जब पहुँचे तो बोले– अरे, अनुसुइया के परमहंसजी आ गये। सबने प्रणाम किया। लोगों के आग्रह पर महाराज ने चौपाईयों के बारे में कहा– देखो, किसी के दरवाजे कोई भला आदमी आता है, मेहमान आते हैं, कोई अतिथि आते हैं तो घरवाले दस कदम आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं। इसी तरह से कामतानाथ जी भी तपस्वी का वेश बनाके आगे बढ़े और भगवान का स्वागत किया, अपने यहाँ रहने का निमन्त्रण दिया और चुपचाप लौट आये। कामतानाथ जी ही तपस्वी का वेश बना के गये थे। ताली बज गयी। हाँ महाराज, इहै बात है। तभी तो

भगवान चित्रकूट में रुके। कामतानाथ जी को सजीव माना जाता है। तभी तो उन्होंने अपना स्वरूप बनाया। दर्शन किया, प्रार्थना किया। चुपचाप आये और अदृश्य हो गये। तभी तो राम कुटिया बना के रह गये ठाठ से।

द्रौपदीबाई यदा-कदा महाराज का दर्शन कर लेती थीं। एक बार महाराज ने उससे कहा– बेटा, वहाँ चली जो, बाईबाड़ा है चित्रकूट में। वहाँ माई लोग तीस-चालीस इकट्ठी रहती हैं। तुम्हें वहीं शोभा है। जंगल में बहन-बेटी को रहना शोभा नहीं है। भाग जाओ। इसके बाद द्रौपदीबाई तो चली गयी। कुछ दिनों बाद पुनः आयीं। महाराज कहें– करे महरानी, तू फिर चली आयी? उसने कहा– हमारी बटुलोई यहाँ रखी है। महाराज बोले– ढूँढ़ ले जहाँ रखी है। कोठरी में कोदो का पुआर रखा था। कोदो एक प्रकार का धान होता है। उसे केतनो झाड़ के निकालो, कुछ दाना उसमें रहा आता है। एक बन्दरिया का बच्चा कोठरी में बैठ के वहीं दाना चुन रहा था। द्रौपदीबाई बटलोई ढूँढ़ने अन्दर गयी तो बच्चा बोला– चीं। आवाज सुनकर पचासो बन्दर द्रौपदीबाई पर टूट पड़े। उसे नोंचने लगे। कुछ लोग द्रौपदीबाई को बचाने के लिए दौड़े, महाराज ने कहा– न बचाओ! काटने देव। आई का करे? तब वह काउँ-काउँ करती भाग गयी। फिर नहीं दिखाई पड़ी। महाराज सोचते थे कि भगवान ने जो पापग्रह बताया था, वह यही द्रौपदीबाई

है। इसलिए महाराज उसको बार-बार वहाँ से चले जाने को कह रहे थे। उसके जाने से महाराज निश्चिन्त हो गये।

महाराज के अनुसुइया आगमन के साथ-साथ भारत आजाद हुआ, कुछ ही वर्षों में रियासतों और जमींदारी का उन्मूलन हो गया। देशी राजाओं के यहाँ काम करनेवालो दरोगाजी की नौकरी छूट गयी। सेवाकाल में उन्होंने जो कुछ संग्रह किया था, उससे कारोबार शुरू किया, घट्टी लग गयी। एक ट्रक खरीदा था, वो भी खड्ड में चला गया। फिर नहीं सँभल पाये। तब चले महाराज के पास दर्शन करने। एक खाकी हॉफ पैण्ट और एक शर्ट पहनकर। किया महाराज को साष्टांग दण्डवत। महाराज ने पहचाना, बोले– अरे दरोगाजी! आओ, बैठो। क्या हालचाल है? दरोगाजी बोले– क्या हालचाल है महाराज! जब से आपसे तकरार किया, हमारे तो सब करम हो गये। महाराज बोले– नहीं दरोगाजी, आपका हमारा सम्बन्ध वहीं तक था। जाओ हमारा आशीर्वाद है। फलो-फूलो। जाओ अपना काम करो। सब ठीक होगा। आशीर्वाद लिया, चले गये। फिर खुशहाली से रहने-जीने लगे। महापुरुष दयालु होते हैं। ताड़ना देना भी जानते हैं, वापस लेना भी जानते हैं।

१५९. आश्रम में डॉ. रामकुमार वर्मा

एक बार इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से डॉ. रामकुमार वर्मा, कबीर साहित्य पर जिनकी शोध थी, अधिकारिक विद्वान थे, कई

प्राध्यापकों के साथ हाथियों पर चढ़कर, टट्टू जैसे घोड़ों पे बैठके पहुँच गये अनुसुइया आश्रम। पहुँचते-पहुँचते शाम हो गयी। अब लौटने का समय न रहा। विवशता में रात्रि आश्रम में रुकना पड़ा। जंगल में आश्रम के अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई रुकने का स्थल भी तो नहीं था। चारो ओर घनघोर जंगल। क्षेत्रीय विद्वानों ने महाराज को परिचय दिया– महाराज! आप डॉ. रामकुमार हैं, कबीर साहित्य पर इनका अच्छा अभ्यास है। महाराज कहें– हो, हम जंगल में पड़े हैं, कहाँ पावें सुनने को? हमहूँ के कुछ सुनाओ। उन्होंने सुनाया– **'काहे री नलिनी तूँ कुम्हलानी। तेरे नाल सरोवर पानी।'** कुछ कहें। महाराज कुछ न बोले। जब कुछ बोलने लायक हो तब तो बोले। तब समझ जायँ कि हमारे व्याख्यान में महाराज की कोई रुचि नहीं है। तब उन्होंने निवेदन किया– महाराज, हमलोग सुनाने नहीं आये हैं, सुनने आये हैं। आप कुछ बतायें। तब महाराज कहें– हो का कहीं। **'रहिमन अगम बात कहन सुनन के नाहिं। जिन्ह देखा सो कहा नहीं, कहा सो देखा नाहिं।।'** अगम बात कहने में आती नहीं। जिन्होंने देखा, उन्होंने कहा ही नहीं। कहता है, उस बेचारे ने देखा नहीं। वो लिखने में नहीं आती। वाणी से कहने में नहीं आती। किसी अनुभवी महापुरुष के द्वारा किसी-किसी अधिकारी के हृदय में जागृत हो जाया करती है। ''दो-दो पैसे में वेदान्त बिकत है। सब पढ़तो जात है, लिखतो

जात है। न जाने का पढ़त है, का लिखे हैं।'' लेकिन भजन एक ऐसी वस्तु है जो लिखने में आती ही नहीं, न वाणी से कहने में आती है। अनुरागी अधिकारी के हृदय में जागृत जो जाया करती है। रामकुमार वर्मा ने पुन: आग्रह किया– महाराज! फिर भी हमलोगों के लिए कुछ तो कहें। महाराज ने उन्हें एक भजन सुनाया–

का कहीं केसे कहीं को पतिआई।
फुलवा के छुअत भँवर मरि जाई।

'का कहीं'–वो कहने में नहीं आता, वो वाणी का विषय नहीं है। **'केसे कहीं'**– वो अधिकारी के लिए है। **'यह न कहिअ सठही हठसीलहिं। जो मन लाय न सुन हरिलीलहिं।।'** वो अधिकारी के लिए है। '**को पतिआई**'–वाणी से कहने मात्र से कोई विश्वास भी नहीं कर सकता। उसके लिए प्रमाण चाहिए। वह है क्या? **'फुलवा के छुअत भँवर मरि जाई'**– भगवान एक खुशबू है, एक महक है, उसका स्पर्श करते ही जो मन भँवर है, ये गुन-गुन करते-करते जहाँ उसका स्पर्श किया, तो मन सदा के लिए मिट जाता है और परमात्मा ही शेष बच रहता है। **'मन मिटा माया मिटी, हंसा बेपरवाह। जाका कछु न चाहिए, सोई शाहंशाह।।'** वह फूल है कैसा?

जोतिए बन बोइए, सींचिए न सोई।
बिनु डार बिनु पात फूल एक होई।।

परमात्मा ऐसा पुष्प है कि उसे जोत-बोकर, सींचकर उगाया नहीं जा सकता। **'बिनु डार बिनु पात'**—उसमें डाल और पत्ते भी नहीं हैं। और फूल भी दो-चार नहीं, **'फूल एक होई'**— केवल एक पुष्प खिलता है। यह फूल होता कहाँ है?

गगन मंडल बीच फूल एक फूला।
तर भव डार ऊपर भव मूला।।

'गगन'—आकाश में एक फूल खिला। आकाश शून्य को कहते हैं। भजन-चिन्तन का उत्थान होते-होते इतना सूक्ष्म हो जाय कि संकल्प-विकल्प से रहित होकर शून्य में टिकने की क्षमता पा जाय, चिदाकाश में प्रवेश पा जाय, जहाँ **'फूल एक फूला'**– परमात्मा हृदय में विकसित हो जाता है। इसलिए यह फूल धरती पर नहीं, वासनाओं में कभी नहीं, गगन मण्डल में विकसित होता है और वह भी केवल एक! परमात्मा एक से दो कभी हुआ ही नहीं। **'तर भव डार ऊपर भव मूला'**– वह ऐसे वृक्ष का फूल है जिसके नीचे की डाल यह संसार है और ऊपर का भव अर्थात् संसार, देवलोक, ब्रह्मलोकपर्यन्त मूल है। इस फूल की प्राप्ति का उपाय क्या है?

फूल भल फुलल मालिनि भल गाँछल।
फुलवा विनसि गयो भँवर निरासल।।

भल अर्थात् बहुत अच्छी तरह विलक्षण फूल खिला। उसे

इष्टोन्मुखी मानसिक प्रवृत्ति रूपी मालिन ने अपने में सँजोया, सँवारा और गूँथ लिया। **'फुलवा विनसि गयो'**–साधना अन्तिम सोपान पर पहुँची तो फूल ही विनष्ट हो गया। क्या परमात्मा नष्ट हो गया? नहीं, परमात्मा भी अब भिन्न नहीं रह गया। अब अलग कोई सत्ता नहीं जिसकी हम शोध करें इसलिए **'भँवर निरासल'**– यह मनरूपी भँवरा भजनेवाला पथिक आशा रहित हो जाता है। वह आशा करे भी तो किसकी; जब आगे कोई सत्ता है नहीं। अन्तिम लक्ष्य में स्थिति मिल गयी।

कहत कबीर सुनो सन्तो भाई।
पंडितजन फुलवा के रहले लोभाई।।

सन्तों को अपना भाई सम्बोधित कर कबीर कहते हैं कि **'पंडित जन फूल रहले लोभाई'**– पण्डित, जो इस पथ के ज्ञाता हैं, पथिक हैं, वह इस फूल में लुभाये रहते हैं, रात-दिन खोये रहते हैं। ''बेटा! वह परमात्मा वाणी का विषय नहीं है, अनुभवगम्य है। भजन करो। स्तर उठता जायेगा, समझते जाओगे। एक प्रभु में श्रद्धा स्थिर करके, ॐ, राम या शिव – किसी एक नाम का जप करें। सुबह-शाम पाँच मिनट हमार रूपवा देख लिया करें। जिस दिन दो मिनट भी हमारा स्वरूप देख ले जाओगे तो जिसका नाम भजन है, मैं यहाँ बैठे-बैठे दे दूँगा और तुम घर बैठे-बैठे पा जाओगे।''

१६०. मन्दाकिनी के प्रलयकारी बाढ़ का रुकना

एक बार मन्दाकिनी गंगा में इतनी बाढ़ आयी कि धूने के छः इञ्च पास तक आ गयी। ये चबूतरा है और उससे छः इंच नीचे। उतनी बाढ़ कभी नहीं आयी थी। महाराज खड़े हो गये– करे, भगवान ने हमको यहाँ बैठाया है, आदेश दिया कि यहाँ बैठ। तुम्हें जनम भर यहीं रहना है। यही तोहार जगह है। का तू हमार धूना बुता देई? तो लोगों ने कहा– भगवन्! शास्त्र में लिखा है कि सन्तों का चरण छूने से गंगा पवित्र होती है। ये आपका चरण छूने आयी है। महाराज बोले– चरण छूने आयी है। मैं चरण न धरिहो गंगा में। हमार पुण्य ले लेई। सबका पाप लेत है, हमरे पास पाप हइये नहीं है तो पुण्य ले लेई। इतने में बड़ी जोर से बौछार आयी एक, छपाक देना सिर के बराबर बौछार चली, गिरी महाराज के चरणों में। लोग बोले– महाराज, गंगाजी ने तो चरण छू लिया। महाराज बोले– छू लिया? सबने कहा– हाँ महाराज! सब चरण तो धो लिया। तब महाराज बोले– नारियल ला रे, बीस आना पैसा ला। नारियल ला, बताशा ला। अगरबत्ती जला। गंगा में डाल दिया– बोले, लो गंगा माई, अब जाओ। किसी को विश्वास न हो कि एकदम सन–सन-सन बढ़नेवाली मंदाकिनी गंगा रुक जाई। फिर वहीं रुक गयी। एक घण्टा जहाँ की तहाँ रुकी रहीं, लहरें मारती रहीं, और फिर उतरने लगीं। उतर गयी। तो महापुरुष **'जो**

इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।' (मानस, ७/११३/४) सिद्धि कुछ नहीं। जो मन से, जो हृदय से कामना कर लो, भगवान पूरी कर दिया करते हैं।

१६१. गायिका का भजन– 'चोलिया काहे न धुलाई...'

अनुसुइया आश्रम के न इधर गाँव, न उधर गाँव, करीब-करीब आठ-आठ किलोमीटर। तो इधर के लोग अनुसुइया को कहीं से निकला करें, रास्ता पहले से भी थे लेकिन गुरु महाराज के निवासोपरान्त इधर से जरूर निकला करें। उधर पटेलों की बारात थी, कुर्मियों की। सोलह बैलगाड़ी। जिस बारात में पतुरिया आ जाय तो क्या कहना! वहाँ का रिवाज था, वो बारात सर्वोपरि मानी जाती थी। इस बारात में एक बाँदा से गायिका को पकड़ लाये। नहाने के पश्चात् गंगा में, ऊपर चढ़े दर्शन करने। कोई आ रहा है, कोई जा रहा है। दो-चार लड़के इकट्ठे होकर गये। गुरु महाराज, बाईजी आयी हैं बाँदा से। महाराज जी बोले– भाई, तुमलोग नाच देखो, हम लोगों के कहाँ शोभा है। देखत हो, सफेद बाल है, दाढ़ी है। तुम लोगों के शोभा है। जाओ, बाइजी का गाना सुनो। लोगों ने कहा– बड़ा अच्छा गाती है महाराज। इतने में सीढ़ियाँ चढ़ती हुई वो भी चली आयी। वह बोली– महाराज! हम भी आप ही के बच्चे हैं। एक भजन सुन लिया जाय। और गाना शुरू कर दिया–

चोलिया काहे न धुलाई।
ओ सुन्दर बाके जोगिया चोलिया काहे न धुलाई।
जनम जनम की मैली चोली, विषय दाग परि आई।
बिन धोये पिया रीझत नाहीं, जनम अकारथ जाई।
राम नाम का साबुन ले ले, कृष्ण नाम दरिआई।
अपने गुरु को कर ले बरेठा, जनम दाग धुल जाई।
चोलिया काहे न धुलाई।।
ओ सुन्दर बाके जोगिया चोलिया काहे न धुलाई।।
रा से मैल कटे रग रग की, म से होत सफाई।
धोये जा हर स्वाँस में मल-मल, धुलत धुलत धुल जाई।
चोलिया काहे न धुलाई।।

चोलिया धोने का एक तरीका– गंगा नहाओ, जमुना नहाओ, प्रयाग नहाओ –

गंगा जमुना खूब नहाने, गया न मन का मैल।
आठ पहर जूझत ही बीता, जस कोल्हू का बैल।
चोलिया काहे न धुलाई।।
ओ सुन्दर बाके जोगिया चोलिया काहे न धुलाई।
गुरु को जब लगि गुरु नहिं माना, गुरु-आज्ञा नहीं आई।

गुरु को जब तक हृदय से गुरु नहीं मान लिया, तब तक गुरु की आज्ञा आकाश से अवतरित नहीं होती। गुरु की आज्ञा का

प्रसारण नहीं मिलता। थोड़े-बहुत अनुभव भी मिलते हैं किन्तु वह सम्पूर्ण गुरु-आज्ञा नहीं है। गुरु-आज्ञा तब है जब आत्मा से जागृत होकर और तुम्हारे हृदय से आत्मा में बोलने लगे, भगवान बताने लगें। भगवान बोलते हैं, आत्मा बोलती है, गुरु महाराज बोलते हैं– ये पर्यायवाची शब्द हैं। जब ये जागृति आ जाती है तो आकाश से, शून्य से, हृदय से, पृथ्वी से, झड़ती हुई पत्तियों से, चलते हुए व्यक्तियों से..... सर्वत्र से भगवान बोल सकते हैं। इस जागृति का नाम है गुरु-आज्ञा।

गुरु को जब तक गुरु नहीं माना, गुरु-आज्ञा नहीं आई।
जान लिया जब गुरु स्वरूप को, सहज मुक्ति होई जाई।
चोलिया काहे ना धुलाई।।

गुरु को जान लिया तो जो मुक्ति असाध्य है, वो सरल हो जाती है, सहज हो जाती है, बिल्कुल करीब। **जिसकी चोली निर्मल हो गयी**–चित्तवृत्ति ही चोली है, **जिसकी चोलिया निर्मल हो गयी अमर लोक लिये जाई**– आत्मा ही अमृत तत्त्व है, परम तत्त्व है, एके समेट ले जाती है, उसके आलोक में ले जाती है। आत्मा के आलोक में स्थान दिला देती है।

जिसकी चोली निर्मल हो गयी अमर लोक लिये जाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! सतगुर सरन सहाई।
चोलिया काहे ना धुलाई।।

इतना बढ़िया भजन सुनाया, हम सोचे हमें याद हो जाय। एक ही कड़ी याद हो पायी कि-

चोलिया काहे ना धुलाई सुन्दर बाँके जोगिया।
राम नाम का साबुन ले ले, कृष्ण नाम दरिआई।
अपने गुरु को कर ले बरेठा, जनम दाग धुल जाई।
चोलिया काहे न धुलाई।।

ये रतन कहीं भी मिल सकता है। विवेकानन्द जी एक राजा के यहाँ गये। गायिका आयी तो उठ के दूर चले गये, बाहर निकल गये लेकिन जब उसने भजन सुनाया तो लौट के चले आये। माताओं की परिस्थिति ने उनको नर्तकी बनाया है लेकिन अन्दर हृदय से वे भी सन्त होती हैं। गणिका तर गयी! विवेकानन्द जी ने जिससे घृणा किया था, वो भी एक देवी निकलीं। भगवान बुद्ध के सामने आम्रपाली पड़ी तो सबकुछ त्याग के सन्त हो गयी। क्यों? क्योंकि आत्मा तो वही है। परिस्थिति ने हमें किस गड्ढे में, किस जीविका में पटक रखा है? लेकिन सत्पुरुषों का संग मिलता है तो वृत्ति बदल जाती है और वो भजन-पथ पर अग्रसर हो जाता है। इसके बाद बरात महाराज के यहाँ से विदा होके जब चली गयी तब महाराज कहें– हो! भजनिया बड़ा बढ़िया सुनाया।

१६२. सतयुग के महात्मा

अनुसुइया आश्रम में महाराज विराजमान थे। प्रयाग में कुम्भ

मेला चल रहा था। हल्ला मचा हुआ था कि मेले में सतयुग के महात्मा आये हैं। कुम्भ की प्राय: सारी भीड़ उधर उनके दर्शन के लिए जाने लगी। अनुसुइया आकर लोग बताते रहते थे। महाराज कहते थे– हो! मैं क्या सुन रहा हूँ? यह तो असम्भव है। शरीर तो एक वस्त्र है। स्वरूप की प्राप्ति के पश्चात् वस्त्र का प्रयोजन खतम हो जाता है, शरीर भी छूट जाता है। राम भी शरीर नहीं रखे, कृष्ण भी नहीं रखे। बड़े-बड़े महापुरुष हुए, किसी का भी तो शरीर नहीं रहा। ये सतयुग का संत, मैं क्या सुन रहा हूँ? तब महाराज कहें– हो! हमरो मन हो गया। है तो असम्भव। है तो बिल्कुल गलत। लेकिन मैं सुनत का हूँ! चलो, देख आवें। एक दिन जाने के लिए खड़े हो गये। तब भगवान ने मना किया– मत जाओ। महाराज बोले– अच्छा प्रभु! नहीं जायेंगे। मन रहा कि आखिर ये चर्चा कैसी है! रुक गये।

तीसरे दिन एक महात्मा आये, सेव की तरह लाल शरीर एकदम। चमड़ी के भीतर से दिखाई पड़े हो खून। वास्तव में पहाड़ के जन्मे हुए थे वो। तीस-बत्तीस करीब उमर थी। स्वस्थ शरीर। आकर्षक चेहरा! प्रणाम किया, बैठ गये। महाराज ने पूछा– कहो स्वामीजी! कहाँ से आ रहे हैं? वह बोले– प्रयागराज से महाराज। महाराज ने पूछा– हमने सुना प्रयागराज में सतयुग के कोई संत आये हैं। का झूठ है, का सही है? आपने भी देखा? वे

बोले– हमीं रहे महाराज। महाराज बोले– भल आय गयो, भरम दूर होइ गया। वह महात्मा बताने लगे– महाराज! हम पहाड़ में जन्मे और पहाड़ ही में भजन करते थे। कुम्भ मेले में आये तो सोचा एक महीना हम रहेंगे लेकिन जनता पीछे पड़ गयी। महाराज! पन्द्रह दिन में वहाँ से अन्न-जल उठ गया। भीड़ के मारे भजन नहीं कर पा रहे थे इसलिए छोड़ के चले आये। महाराज बोले– भले चले आये। उनको भोजन की व्यवस्था करवा दिया। शाम हुई तो वे महात्मा बोले– महाराज! कहीं एकान्त जगह होती तो बैठ के रात में मैं भजन करता, स्वाँस का जप करता। भजन जानते थे। अच्छे महात्मा थे। महाराज बोले– ठीक है। खाली हमरै आजू-बाजू भीड़ है, बाकी पूरा जंगल एकान्त है। जहाँ चाहो, वहाँ बैठो। इधर ऊपर चले जाओ, एकान्त ही एकान्त है।

१६३. सिद्ध बाबा के तखत पर सतयुग के महात्मा

वे सीढ़ियाँ पकड़े और चले गये ऊपर। जाकर सिद्ध बाबा के तख्त पर बैठ गये। रात को नौ बजे के करीब एक सफेद दाढ़ी वाले बुजुर्ग महात्मा आकर सामने खड़े हो गये और बोले– उठो यहाँ से! क्यों बैठ गये यहाँ पर? तुम यहाँ बैठने लायक नहीं हो। उठो यहाँ से। महात्मा ने सोचा– यदि उठता हूँ तो यह पीछे से गर्दन पकड़ लेगा। इसलिए ओम् जप के अपने चारो तरफ गोला खींच दिया। बीच में डट के बैठ गये और कहा– मैं नहीं उठ

सकता। मैं ब्रह्मदण्डी हूँ, मुझे कोई नहीं हटा सकता। वह बोला– मैं भी ब्रह्म हूँ। मैं हटा के दम लूँगा। अब तड़का–तड़की होने लगी। महाराज उसी समय शौच करने के लिए लोटा लेकर निकले। थोड़ी दूर गये। तड़का-तड़की सुना। लौट के आये, बोले– करे, हमने तो स्वामीजी को एकान्त में भेजा था तो कौन खटपटिया वहाँ पहुँच गया? केसे शास्त्रार्थ करत हैं, बहुत तड़कत हैं? महाराज किसी को जाँच के लिए भेजने वाले थे, इतने में किसी ने तवा माँगा, किसी ने आग माँगा, किसी ने गोहरी माँगा, कोई कलछुली माँगा, कोई बटलोई माँगा, देने में लग गये। लोग पथरे पर आपन कोई लिट्टी बनाया, टिक्कड़ बनाया, नमक से खा लिया। कोई स्वयंपाकी थे, स्वयं पकावें, खावें।

बड़े सवेरे चार बजे महात्माजी पहुँचे और कहा– अरे महाराज, कहाँ भेज दिया हमको? वहाँ तो एक ब्रह्म बैठा है। नौ बजे आके खड़ा हो गया। वह बोला– उठो यहाँ से, यह हमारी जगह है। हमने सोचा– मैं उठ तो जाऊँ, पीछे से गर्दन न पकड़ ले। हमने ओम् का जाप करके गोला खींच दिया। हमने कहा– मैं ब्रह्मदण्डी हूँ! उसने कहा– मैं भी ब्रह्म हूँ। रातभर महाराज न भजन कर पाये, न एक पल झपकी ले पाये। जहाँ थोड़ा–सा भजन में लगें तो सामने आके खड़ा हो जाय। महाराज, आपने ऐसी जगह में भेज दिया? महाराज बोले– स्वामीजी, मुझे मालूम था, मैं जानता था।

मैं रहा हूँ वहाँ पर। हमारे चित्त से उतर गया। आप चिन्ता न करें। वो अनिष्ट कर ही नहीं सकते। वो एक महात्मा हैं, इस जगह के मालिक। हमसे भी मिले हैं। जैसे स्तर का जो साधु होता है, उसी स्तर से उनसे बात किया करते हैं। तुमसे भेंट हो गयी, और क्या हो गया? चिन्ता न करें। आपका कल्याण ही कल्याण है। क्या कहा? यही तो कहा कि यहाँ मत बैठो, इस पे बैठने लायक नहीं हो। भजन करो, आप बैठने लायक हो जाओगे।

१६४. सिद्धबाबा का उद्धार

सिद्ध बाबा के तखत को लेकर कई घटनायें हो गयीं। बग्गड़ बाबा को सिद्ध बाबा ने तखत से उठा के हटा दिया, दो झापड़ मार के भगा दिया। एक वैष्णव तखत में बैठा तो उनको पटक दिया। गुरु महाराज से कहा– महाराज, आपकी जगह नीचे है, ये हमारी जगह है। गुरु महाराज ने तखत मँगाया, उसपे बैठे तो कुछ नहीं बोले। महाराज समझ गये कि बड़े अच्छे महापुरुष थे। पतित नहीं हुए, थोड़ा चूक गये। घरवालों को मना नहीं कर पाये। बस इतना ही चूक गये। मरना और साधु होना बराबर है। कोई दुनिया में हमारा है भी, घरवालों के नाम पर कोई नहीं। महाराज के मन में आया– इन सिद्ध बाबा का उद्धार होना चाहिए। महाराज ने छः महीने तक सिद्धबाबा के निमित्त भजन किया, ब्रह्मविद्या का चिन्तन किया तो सगुन मिला कि सिद्धबाबा का उद्धार हो चुका। महाराज

ने उनके नाती को बुलाया और कहा– करे महन्तवा, जा गया हो आ। वह बोला– महाराज, गया में हमारी श्रद्धा नहीं है। महाराज बोले– देख, तोरे श्रद्धा से कुछ होनेवाला नहीं है। जो कुछ करना-धरना है, मैंने कर दिया है। मर्यादा है, लोक व्यवहार है इसलिए हो आ। वह बोला– महाराज, अकेले कैसे जाऊँ? बगल में एक नाई बैठा था। वो भी उसी गाँव का था। बइकलवा नाम रहा। महाराज बोले– इस बइकलवा के ले जा। वह तैयार हो गया। गाँव के पण्डितों ने कहा– बगैर मंत्र लिए गया तीर्थ सिद्ध नहीं होता तो नाई भागा-भागा आया, बोला– महाराज! मैं पण्डितों से मंत्र नहीं लूँगा, आप दें। महाराज के स्वभाव में रहे, गाली मुँह पे रहा करे, बोले– धत् तेरी धूर्त की। अरे ॐ, राम, शिव कोई एक नाम जपा कर। ॐ जपा कर। वह चला गया।

जब गया पहुँचा, पण्डा लोगों ने कहा– हाथ जोड़कर गुरुमन्त्र बोलो। नउवा कहे– धत् तेरे धूर्त की! पण्डे ने कहा– यह भगत तो गाली दे रहा है। करे, गाली काहे देत हैं? नाई बोला– मैंने कोई गाली नहीं दिया। मैं तो गुरुमंत्र पढ़ रहा था। पण्डालोग बोले– औरौ कुछ कहा था गुरु महाराज ने? नाई बोला– ॐ कहा था। पण्डे बोले– तो भइया, ॐ-ॐ जप दे। तोर मंत्र हम सुन चुके। नाई बोले– अच्छा। दोनों ने पिण्डदान किया, गया होके आये। उस दिन से तखत और गद्दी पर सिद्ध बाबा का उत्पात सदा के लिए

समाप्त हो गया। सिद्ध बाबा का अधूरापन गुरु महाराज की कृपा से पूरा हो गया।

१६५. मेरा प्रवेश

हम तो भटक के पहुँच गये। हमें नहीं मालूम कहाँ चित्रकूट। हमने नाम भी नहीं सुना था न चित्रकूट, न अनुसुइया का। हमने अयोध्या का नाम नहीं सुना था, मथुरा का नहीं सुना था जहाँ भगवान जन्मे थे। हमारे कान में कभी नहीं पड़ा था। और उमर हो गयी २३ साल। हमने केवल हरिद्वार सुना था, गया सुना था। उधर जन्मे थे जहाँ केवल या तो देवी या फिर फलाने दादाजी। युद्ध में सिर कट गया, उसके बाद में तब तक तलवार चलाया जब तक अन्तिम शत्रु मर नहीं गया। उनकी ये समाधि है, यहाँ प्रणाम कर। उनकी आरती उतारते थे। भगवान का कोई खास माहौल नहीं था। किसी-किसी के यहाँ राम-लक्ष्मण-सीता, नीचे हनुमान बैठे हैं, देखने को मिला। देवी की भरमार रही। लेकिन सब नहीं पूजा करें। ये विशाल मंदिर है, तो आप नहीं पूजा कर सकते। ये इनकी देवी। और ये मंदिर उनकी देवी। और देवी ठाकुरन के लड़ावत रही है। हम बोले– बवाल क्या है? हमारे पहुँचने से पहले गुरु महाराज के यहाँ कानपुर सिकटियापुरवा (जमींदारों का गाँव) के पूज्य भगवानानन्दजी महाराज वहीं थे। उनके संसर्ग से छः नवयुवक आके टिक गये वहाँ पर। तीन महीना रुके रहे जंगल में कि हम

सब साधु होंगे। महाराज ने बहुत समझाया– घर जाओ। जाये ही ना। एक महीने बाद महाराज ने कहा– देखो, तुम्हारे संस्कार में सधुआई नहीं लिखी है। कमाओ, खाओ, सबकी खूब बरक्कत होगी। हाँ, इस लड़के का संस्कार है। सब तो चले गये। एक टिक गया। दो दिन बाद महाराज बोले– नाम तो यही है। वह व्यक्ति तुम नहीं हो, व्यक्ति कोई और है। बेचारा वो भी चला गया। लगा डण्डा लेके पहरेदारी करे अहमदाबाद में।

दो साल बाद भटक के हम पहुँच गये तो हमारे पहुँचने से पहले ही महाराज को अनुभव में दिखाई पड़ा– नदी में भयंकर वेग है। बहुत धारा है पानी में। सर्र-सर्र पानी बह रहा है। काला पानी। भयंकर लहर। एक नवयुवक किनारे बैठ के रो रहा है। ओ पार जाना चाहता है। इच्छा कुछ नहीं है सिवाय पार जाने के। जानता कुछ नहीं है लेकिन पार जाना चाहता है। महाराज कहें– हम गये, उसको पकड़ के उठाये, पूछा– काहे रोवत है? न रो। उतर पानी में। पाँव रख। पाँच-सात हाथ पउड़ चला तो बोले ऐसे ही पउड़त रहो। पउड़ना सिखाया महाराज ने। अब पउड़त रहो। तैं पार हो जइहें, मैं देखत हूँ। तू घबड़ा मत। लहरों से न डर। महाराज कहे– मैं देखत हूँ, पार हो जइहे। वह पउड़ चला। अब महाराज ने जब ये देखा तो बोले– कोई अधिकारी है। कोई इच्छा नहीं उसके अन्दर। केवल पार जाना चाहता है। जानता कुछ भी नहीं है। जब

अयोध्या का नाम नहीं सुना, मथुरा का नहीं सुना, रामजी का नहीं सुना, कृष्ण का नहीं सुना तो का जानत रहे?

बस, दिन को दस-ग्यारह बजे जब पहुँचे हम, देखते ही उन्होंने चेहरा मिलाया, हमीं थे। महाराज जो देख रहे हैं साँवला-साँवला आदमी, ऊ हमीं थे। जहाँ हम पहुँचे तो बोले– अरे.... पण्डा का नौकर रहा.... तो बोले– ई अनुसुइया? टूटी मूर्ति, कपड़ा एक भी नहीं, अष्टभुजा जैसी कई उसके हाथ थे, फटकी टूटी हुई, खिड़की थी, उसमें आर-पार आने-जाने के रास्ते। प्रणाम कर लिया, प्रार्थना कर लिया। हमारी आदत थी कि एक बार चले गये तो ड्यूटी हो गयी तो बार-बार क्या तंग करना! दोबारा कभी नहीं गये। एक बार कह तो दिया। रोज-रोज नाक रगड़ना ये कौन भजन है? प्रार्थना करने गये थे, एक बार कर दिया। रोज-रोज हम गिड़गिड़ाये वो सुने ही ना, तो भगवान है कि कोई बनावटी है। ई आदत पहले से रही है। तो वहाँ भी प्रार्थना कर दिया। और पन्द्रह-पचीस जो देवता होते हैं, सब जगह घुमा दिया वो। हम बोले– और कुछ? वह बोला– यहीं एक परमहंस रहत हैं। हम बोले– परमहंस क्या होता है? तो बोला– महात्मा। तो महात्माओं में श्रद्धा थी, कहा– ले चल। गये तो महाराज मिल गये। जितने महात्मा हमने देखे थे जीवन में, सबसे अच्छे लगे। जाते ही हँसे और बोले– हूँ! मूड़ी पटको, विभूति लो। साधु तो नहीं होना है? हमने सोचा– कहीं

उल्टा-सीधा मार्ग न बता दें। बाबा लोग बहुत जादू-टोना जानते हैं। साधु तो होना है, कह देंगे तो आफत न हो जाय। तो हम कभी झूठ बोले ही नहीं थे। अब भी झूठ नहीं बोलते हम। लपेटवा बोले। सीधा कह दें 'होना है' तो कहीं फोर न लें। और झूठ बोलना नहीं। हम बोले– महाराज! कोई कह तो नहीं सकता हम साधु होंगे। हमारे कहने का मतलब है कोई चुनौती तो दे नहीं सकता, किसी के वश का तो नहीं है। बस गोलमाल उत्तर दिया। हट गये वहाँ से फिर न कुछ पूछें। जब इतनी दूर चले गये तो महाराज बोले– अबहुँ सार कवईं काटत है। हमने याद कर लिया। साल भर बाद जब वहाँ रुक गये तो लोगों से पूछा– 'अबहुँ सार कवईं काटत है' एकर का मतलब हुआ। बोले– अबहुँ सार पैंतरा भाजत है, चकमा देत है, हमलोगों के बेवकूफ बनावत है। हम बोले– ओह, ये मतलब हुआ। महाराज ने ठीक पकड़ा। यही तो हम करत रहें, और क्या! बस रुक गये। फिर बाद में सात दिन कुछ दिन बाद हम सोचे यहाँ से भाग चलो। भजन तो हमें करना है। गुरु महाराज को जो बताना था, बता दिया। हमें क्या मालूम गुरु महाराज अँगुली पकड़ के ले चलते हैं हर तरह के विघ्न से बचाते हुए।

१६६. मेरा समर्पण

उस दिन, जो बहुत संतों की महिमा बताते थे एक पंडित, वो भी हमारे साथ ही साथ, हमने नहीं बताया कि हम भजन करेंगे,

वो बतावें कि हम करेंगे, वो दिखाई पड़े। हम बोले– कहो मुखर्जी! ये हमारे महाराज, गुरु महाराज कैसे हैं? मुखर्जी बोले– अनादिकाल से जैसे होते आये हैं, जैसा एक महापुरुष को होना चाहिए, सब लक्षण आपमें विद्यमान हैं। आपके गुरु महाराज यही हैं जो ऊपर बैठे हैं। उस दिन से श्रद्धा जग गयी। तो मारे मस्ती में, भजन में बैठे ही रह गये। पुराने जमाने के सवा सौ साल की किवाड़ें। लकड़ी सुकड़ गयी, उसके बीच में डेढ़-डेढ़ इञ्च की दरार थी। उसमें से गरम-गरम घाम लगा, सूरज निकला तो उसकी किरण लगी तो हम उठे, बोले– अरे सूरज तो निकल गया। महाराज का आदेश था कि सूरज निकलने से थोड़ा पहले जब रास्ता समझ में आवे तब आसन छोड़ दो। गंगा किनारे घूम के आओ। नित्यक्रिया से निवृत्त होके, सूरज निकलते-निकलते इस पहाड़ पर जब एक लाठा आ जाय, उसके बीच में आकर मुझे प्रणाम कर लो, विभूति खा-लगा लो। ये आदेश था। हम उठे, सूरज निकला था। हम सोचे– पहले प्रणाम कर लें, फिर हाथ-मुँह धोवत रहब, दिनभर पड़ा है।

जहाँ जाके प्रणाम किया तो महाराज उधर ताकत रहें जैसे हमसे मतलबे नहीं है। और जहाँ प्रणाम किया तो जलता हुआ लक्कड़ उठा के एक लक्कड़ मारा पीठ में। चद्दर जल गयी, पीठ जल गयी। आग ही तो है! हम खड़े हो गये। महाराज! कोई भूल

हो गयी क्या? तो सड़सा उठा के फेंक के मारा। लगा सीने में। हम बोले– अरे, यहाँ लगता तो आँख फूट जाती। फिर सरवा कहत है भूल हो गयी का? करे देहिया में घाम लगा है तब उठ के आवा है। एहि पराक्रम के माथे भजन करिहे। करे महतारी का गर्भ छुड़ावे आवा है? और पचास खरी-खोटी सुनाये। हम बोले– महाराज! हम बैठे-बैठे भजन कर रहे थे। बोले– सार, बैठे-बैठे सो गया। माने नाहीं। एक बार डाँट पड़ जाय तो पन्द्रह दिन के लिए टाइम-टेबल फिक्स हो जाय। फिर साधकों से भूल हुआ ही न करे। सब समय से जागें, समय से बैंठे। लापरवाही असम्भव है। इसलिए डाँटा करें। महापुरुष कभी किसी को अपशब्द न कहा करें। वो तो साधुओं की भलाई के लिए डाँट-फटकार। उसकी मानसिक कमजोरी को दूर करने के लिए, साधना का पथ प्रशस्त करने के लिए डाँटा करें।

१६७. गुरु महाराज जी की विद्या

अनुसुइया में मेरे आने के दो दिन पश्चात् ही ब्रह्मचारीजी के साथ चित्रकूट जाने का अवसर प्राप्त हुआ। महाराजजी ने उनसे कहा, ''इसे भी लेता जा, मार्ग में साधनात्मक उतार-चढ़ाव की सूक्ष्मता समझाना।'' उन्होंने बताया कि हर समय भजन में लगे रहना चाहिए। एक भी श्वास चिन्तनविहीन व्यर्थ नहीं जानी चाहिए। हमने निवेदन किया, ''अभी चलते हुए आप मुझसे जो

वार्तालाप कर रहे हैं, क्या इस दशा में भी भजन सम्भव है?'' उन्होंने बताया, ''दस-बीस मिनट का अन्तराल कोई महत्त्व नहीं रखता है।'' यह समाधान मुझे युक्तिसंगत न लगा। मन में एक बात बैठ गयी कि एक भी श्वास व्यर्थ नहीं जानी चाहिए। नियम तो नियम! इसमें शिथिलता कैसी?

आश्रम पहुँचने पर गुरुदेव ने समझाया कि साधक को अपनी टेक का पक्का होना चाहिए, हठी होना चाहिए। हठ ही हनुमान है। कैसी ही परिस्थिति क्यों न आ जाय, उसकी दृष्टि सीधे लक्ष्य पर ही होनी चाहिए। उपलब्धि अन्तरायों (मन के अन्दर के विकारों) से संघर्ष के अन्त का प्रतिफलन है।

साधक को अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। मन में भी विषयों का चिन्तन नहीं आना चाहिए। वह सतत अभ्यास से सुदृढ़ होता है। **'संग तें जती कुमंत्र ते राजा।'** (मानस, ३/२०/१०)– बेटा, संगदोष से बड़े यती भी नष्ट हो जाते हैं। साधक को सदैव जागरुक रहना चाहिए। संगत अपने से अच्छों की करनी चाहिए। सूर्पणखा के नाक-कान काटे बिना कोई यती नहीं हो सकता। साधक के लिए संसार की प्रत्येक स्त्री माता ही है। फिर भी स्त्रियों की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो हमें पुत्र नहीं मानती। उसकी दृष्टि सांसारिक होना स्वाभाविक है। उसके चिन्तन का भी प्रभाव पड़ता है। बहुत आवश्यकता पड़ने पर ही

लक्ष्मण की तरह केवल उनके चरणों में देख, उन्हें माँ समझ मन में प्रणाम कर लें। चिन्तन के अतिरिक्त अन्य कोई संकल्प स्फुरित भी नहीं होना चाहिए।

नाम– महाराजजी ने कहा, 'ओम्', 'राम' या 'शिव' दो-ढाई अक्षर का कोई एक नाम पकड़ लो। अध्ययन करते–करते हमने पाया कि स्वयं महाराजजी ओम् का जप करते हैं। अतएव हमने भी उसी नाम का चयन किया। नाम-जप की विधि पर प्रकाश डालते हुए महाराजजी ने कहा कि एक ही नाम को चार श्रेणियों से जपा जाता है– बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। नाम-जप की प्रारम्भिक अवस्था बैखरी है। बैखरी वह है जो व्यक्त हो जाय। इसमें नाम का स्पष्ट उच्चारण करना होता है जिसे समीप बैठने वाला भी साफ सुन सकता है। मध्यमा में यही नाम मध्यम स्वर में जपा जाता है। जिह्वा मुँह के भीतर स्पन्दित होती रहे, होंठ हिलते रहे। यह जप कण्ठ से होता है; किन्तु अत्यन्त समीप बैठने वाले को भी सुनाई न पड़े। बिना बैखरी का निरन्तर जप किये मध्यमा जागृत नहीं होती और बिना मध्यमा वाणी का निरन्तर जप किए श्वास का जप पकड़ की क्षमता नहीं आती। इसलिए बैखरी और मध्यमा का दीर्घकाल तक अभ्यास करते-करते जब मन शान्त हो जाय, टिकने की क्षमता आ जाय तो पश्यन्ती की प्रवेशिका आती है। यह जप श्वास से होता है। इसके लिए शान्त

बैठ जाओ। मन को द्रष्टा की तरह खड़ा कर दो। श्वास कब भीतर गयी, उसे देखो। कितनी देर अन्दर रुकी, उसे जानो। कब बाहर निकली, उसे जानो। बाहर कितनी देर रुकी (लगभग आधा सेकेण्ड) उसे पहचानो। पुन: कब अन्दर गई, उसे जानो। जब मन जानने लगे तो धीरे-धीरे चिन्तन द्वारा उसमें नाम ढाल दो। श्वास भीतर गयी तो 'ओम्', बाहर आयी तो 'ओम्', अथवा श्वास में 'रा' और 'म' देखते रहो।

आरम्भ में यह अभ्यास पकड़ में नहीं आता। ऐसी परिस्थिति में जैसे शरीर पर कहीं तिल जैसा निशान होता है वैसा ही छोटा कोई बिन्दु जमीन पर चुन लो। दृष्टि वहाँ स्थिर कर दो। आँखें पूरी अथवा आधी खुली रखो। आँखें नहीं देखतीं, इनके पीछे विचार देखता है। उस विचार को हृदय में श्वास के पास ले जाओ। देखो श्वास कब अन्दर गयी, कब बाहर आयी। इस प्रकार आँख खुली की खुली रहे किन्तु जो बिन्दु देख रहे हो उसे देखना बन्द कर चिन्तन के द्वारा श्वास में नाम जपाओ। श्वास को न बढ़ाओ न घटाओ बल्कि स्वाभाविक रूप से (अवस्था-भेद से बच्चों में बच्चों-जैसी, वृद्धों में वृद्धों-जैसी) चल रही है, उसी में नाम ढाल दो। अपनी ओर से दबाव मत डालो। केवल श्वास-प्रश्वास में नाम को देखते रहो। जिसकी पलक जितनी देर तक खुली रहती है, उसका मन उतना ही अधिक रुकता है।

मन एक मतवाले हाथी के सदृश है। इसे वश में करने के लिए एक मजबूत स्तम्भ और उतना ही मजबूत सीकड़ चाहिए। श्वास एक स्तम्भ है। सुरत की सीकड़ से मनरूपी मतवाले हाथी को श्वास से बाँध दो। पहले यह झूमता ही रहेगा, शनैः-शनैः परावाणी के प्रवेशकाल में यह शान्त हो जायेगा। अचल स्थिर ठहर जायेगा।

जब नाम में सुरत स्वाभाविक लग जाय, तैलधारावत् श्वास बाँस की तरह खड़ी हो जाय, क्रम न टूटे, तहाँ अजपा अर्थात् परावाणी में प्रवेश मिल जाता है। परावाणी के प्रवेश के साथ ही नाम अपने अन्तराल में मन को टिकने का स्थान दे देता है। 'मन अन्तर स मन्त्र।' जब नाम मन को अपने अन्तराल में रोकने में सफल हो जाय, दूसरा कोई संकल्प, कोई चिन्तन बीच में न आये तो यही साधारण नाम मन्त्र की श्रेणी प्राप्त कर लेता है। पहले श्वास में नाम को ढालना पड़ता था, अब वही नाम श्वास में स्वाभाविक रूप से रवाँ हो जाता है। नाम की, राम अथवा ओम् की धुन स्वतः उठने लगती है। सुरत स्वतः श्वास के साथ जुड़ने लगती है। उस समय यह जप अजपा की श्रेणी प्राप्त कर लेता है। उस समय नाम के अतिरिक्त मन में न कोई संकल्प उठता है और न बाह्य वायुमण्डल के संकल्प भीतर प्रवेश ही कर पाते हैं। केवल शब्द मात्र रह जाता है। **'सुरत समानी सबद में, ताहि काल ना**

खाय।' मन की दृष्टि का नाम सुरत है। जब मन की दृष्टि शब्द में समाहित हो जाय, सुरत समाप्त हो जाय, शब्द मात्र रह जाय; जहाँ ऐसी अवस्था आयी, इसके साथ ही साधक उस परम चेतन का दर्शन, स्पर्श और प्रवेश पा लेता है जो काल से अतीत है।

ध्यान– नाम के साथ ही ध्यान के लिए रूप देखने का विधान है। वह भगवान तो **तन बिनु परस नयन बिनु देखा।** (मानस, १/११७/७) सर्वत्र व्याप्त है किन्तु अमूर्त है, अरूप है। उसे पाने की कुञ्जी सद्गुरु के चरण ही हैं। अत: हृदय में सद्गुरु का स्वरूप देखना चाहिए। तू अपने हृदय में मेरा रूप देखा कर। **सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।** (मानस, १/३५/३)– गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि हृदय एक अगाध स्थल है, एक कक्ष है। इसमें अच्छा-सा मानसिक आसन बिछा दें। उस पर अपने गुरु महाराजजी को बैठायें। उनका सम्पूर्ण रूप नख से शिखापर्यन्त देखें। उनके चरण दिखाई पड़े तो मन की दृष्टि को उनके चरणों और फिर नाखून में स्थिर कर दें। जिस दिन दो-एक मिनट उन चरणों को श्रद्धा से देख ले जाओगे, जहाँ उन चरणों पर ध्यान केन्द्रित हुआ तो जिसका नाम भजन है, वह तुम्हारे हृदय में जागृत हो जायेगा। जैसे शीशे में अपना चेहरा स्पष्ट दिखाई देता है, उतना ही स्पष्ट जब गुरु महाराजजी का रूप झलकने लगे तब ध्यान ठीक है। आरम्भ में तुम रूप पकड़ोगे किन्तु वह अस्पष्ट

रहेगा। बार-बार भागता रहेगा। इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता है। '**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।**' (गीता, ६/३५)

महाराजजी द्वारा उनके रूप के ध्यान का निर्देश पाकर हमें चिन्ता हुई कि महाराजजी तो महात्मा ही हैं, शरीरधारी हैं, मुझे तो भगवान चाहिए। इनका रूप देखने से भगवान क्यों मिलेगा? किन्तु आदेश था इसलिए चिन्तन के आधे समय तक महाराजजी के रूप को देखने का प्रयास करते और उतना ही भगवान श्रीकृष्ण के विराट् स्वरूप का ध्यान उस चित्र के अनुसार करते, जिसे हम अपने साथ ले गये थे। यह क्रम लगभग ढाई वर्ष तक चलता रहा। महाराजजी के अनुभवी प्रवेश के पश्चात् ही उस विराट् स्वरूप के प्रति मोह समाप्त हुआ। क्रमश: महाराजजी का रूप स्थायित्व लेने लगा, भीतर से महाराजजी बोलने-बताने लगे। वैसा बाहर देखने को मिलने लगा, तभी मन आश्वस्त हुआ।

आहार– नाम और रूप के साथ ही महाराजजी साधकोपयोगी चर्या के अनुपालन के लिए मुझे उत्साहित करते रहते थे। युक्ताहार-विहार पर महाराजजी बहुत बल देते थे। वे कहते थे कि साधक को एकाहार अर्थात् दिन में एक बार ही भोजन करना चाहिए। दिन में एक बार भोजन कर लेने पर रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन की पूर्ण मात्रा से एक रोटी कम ही खाना चाहिए। पेट खाली रहने से भजन में मन अधिक लगता है। पेट भरा होने से आलस्य,

निद्रा और प्रमाद घेर लेता है जिससे साधक भटकशून्य खपतुलेहवास हो जाता है किन्तु भजन नहीं हो पाता है।

महाराजजी जैसा कहते थे, वे स्वयं करते भी थे। उनका आचरण ही उपदेश था। प्रात: नित्यक्रिया से निवृत्त होकर महाराजजी भजन में बैठ जाते थे। उनके साथ ही साधक भी यत्र-तत्र भजन में बैठ जाते थे। लगभग दस बजे महाराजजी भजन से उठते थे। उन्हें स्मरण आता तो बालभोग के रूप में सबको गुड़ की एक भेली दिलाते। बस चाय और स्वल्पाहार के नाम पर इतना ही मिलता था। कदाचित् उन्हें स्मरण न आये तो वह गुड़ भी नहीं मिलता था।

अनुभव– इन्हीं निर्देशों के आलोक में ज्योंही दो-ढाई महीने व्यतीत हुए, अनुभव दिखाई देने लगे। वस्तुत: पूर्ण निवृत्ति दिला देनेवाले भजन की शुरुआत अनुभव जागृत होने के पश्चात् ही है। इसके पूर्व का भजन प्रवेशिका के लिए प्रयास है। अनुभव का अर्थ होता है– अनु अर्थात् अतीत और भव है संसार, अर्थात् भव से अतीत करनेवाली विशेष जागृति। जिस परमात्मा की हमें चाह है, वह हमारे आत्मा से अभिन्न होकर जागृत हो जाय और हमारा मार्गदर्शन करने लगे। यह जागृति तत्त्वदर्शी सद्गुरु द्वारा ही सम्भव है। अन्य कोई तरीका नहीं है। ध्यान में आनेवाला गुरु महाराजजी का रूप ही साधक को प्रत्येक श्वास पर सुझाव देते, सम्भालते हुए चलाता है। '**जद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता।**

अनुभवगम्य भजहिं जेहि सन्ता।।' (मानस, ३/१२/१२) ब्रह्म तो अखण्ड है, अनन्त है। कण-कण में व्याप्त है। इसे पकड़े कहाँ से? गोस्वामीजी कहते हैं– अनुभव के द्वारा वह गम्य है, वहाँ पहुँचा जा सकता है। जो अनुभव के आलोक में भजन करते हैं, वे सन्त हैं। महाराजजी ने कहा– भगवान जब जागृत होते हैं तो इस पेड़ से बोल सकते हैं।

महाराजजी ने अंग-स्पन्दन के अनुभवों पर प्रकाश डाला। दाहिना कान फड़कने से भगवान कहते हैं इसे सुनो, यह वार्ता तुम्हें सुनने योग्य है। बायाँ कान स्पन्दित हो तो भगवान का निर्देश है मत सुनो, इसके सुनने का दुष्परिणाम तुम्हें साधना से भटकना पड़ेगा। इसी प्रकार दायीं आँख फड़के तो शुभदर्शन, बायीं आँख का स्पन्दन अशुभ दर्शन इंगित करता है। दाहिना होंठ फड़के तो बोलो, बायाँ फड़के तो मत बोलो। इसी प्रकार ठोढ़ी क्यों फड़कती है? पाँव क्यों फड़कता है? तलवा क्यों फड़कता है?–इत्यादि पचासों संकेतों का निरूपण करते हुए आपने बताया कि इससे आगे अब तुझे भगवान पढ़ायेंगे। मेरा रूप तुम्हारे भीतर से तुम्हें पढ़ाता रहेगा। अनुभव दृश्य के रूप में भी आने लगे। जैसे– लहलहाती खेती देखना पुण्य की वृद्धि तथा गन्ना इत्यादि खड़ी फसल का कटना पुण्य क्षीण होना है। बालों का कटना पुण्य क्षीणता का द्योतक है। इन्हीं अनुभवों से ज्ञात हुआ कि वृत्ति ही

बहन है, भक्ति ही माता है, ज्ञान ही पिता है। ये प्रतीकात्मक रूप अनुभव में आते रहते हैं।

अनुभव के संचार की अनन्त धारायें हैं; किन्तु स्थूल रूप में उसके चार भाग हैं– १. स्थूलसुरा सम्बन्धित अनुभव, २. स्वप्नसुरा सम्बन्धित अनुभव, ३. सुषुप्तिसुरा सम्बन्धी अनुभव, ४. समसुरा सम्बन्धी अनुभव। भगवान जब अपनाते हैं तो सदैव साधक की रक्षा में खड़े रहते हैं। तुम सोते रहो, भजन में बैठो अथवा किसी भी परिस्थिति में हो, भगवान वहाँ सदैव साथ हैं।

दाहिने अंग-स्पन्दन को शकुन और बायें अंग-स्पन्दन को अपशकुन मानते हैं। एक सकारात्मक है तो दूसरा निषेधात्मक; किन्तु इन दोनों संकेतों को देनेवाला भगवान ही है। पूज्य महाराजजी ने बताया कि योगी कभी स्वप्न नहीं देखता। जन्म-जन्मान्तरों के दृश्य अतीत के संस्मरण, वर्तमान में मन की अवस्था, भविष्य का संकेत स्वप्नों में आया करता है। इन संकेतों को समझने में कभी-कभी बुद्धि भी कार्य नहीं करती। ऐसी परिस्थिति में भगवान से सविनय प्रश्न करना चाहिए अथवा गुरु महाराजजी से समाधान करवा लेना चाहिए। ये दोनों अनुभव साधना की आरम्भिक अवस्था में महापुरुषों की टूटी-फूटी सेवा और उनमें श्रद्धा मात्र से जागृत हो जाते हैं। शेष दो अनुभव साधना की उन्नत अवस्था में होते हैं।

तीसरा अनुभव सुषुप्ति सुरा का है। साधना में सुषुप्ति काल वह है जब शरीर जागृत रहे किन्तु मन सुप्त हो जाय। मन शान्त, सम, स्थिर श्वास में प्रवाहित हो जाय अथवा ध्यानस्थ हो जाय उस भजनकाल में भगवान एकाध मिनट के लिए आपको चेतनाशून्य करके कुछ बता देते हैं। जिस प्रकार शल्य चिकित्सक क्लोरोफार्म सुंघाकर चेतनाशून्य कर, आवश्यक चीर-फाड़कर पुन: होश में ले आता है, उसी प्रकार जब भगवान को कुछ बताना होता है तो भजनकाल में ही एक मिनट के लिए बेहोश करके कुछ दिखा-सुनाकर पुन: सचेत कर देते हैं। सुषुप्तिसुरा का यह अनुभव ध्रुव अकाट्य होता है।

चौथा अनुभव समसुरा सम्बन्धी है। यह परमात्म-स्थित महापुरुष के लिए है। महाराजजी कहते थे, ''हो, जैसे टेलीफोन एक्सचेंज में सब कनेक्शन धड़ाधड़ काम करते हैं वैसे ही तरह-तरह की परिस्थितियाँ, साधकों की गतिविधियाँ मैं बैठे-बैठे देखता, मारता-पीटता उन्हें व्यवस्थित करता जाता हूँ। ऐसे महापुरुष को भगवान खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, लोगों से बातें करते किसी भी समय, सोते-जागते हर परिस्थिति में, अपना निर्णय देते रहते हैं। इन अनुभवों में आकाशवाणियों का भी समावेश है।

'तुलसिदास (मन) बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।' (विनय०, पद ८९) मन तभी वश में होता है जब प्रेरक के रूप में

स्वयं सद्गुरु सार-सँभार करने लगे। इसके बिना साधक नहीं समझ पाता कि मैं कब सही कर रहा हूँ और कब गलत कर रहा हूँ। **'छूटइ मल कि मलहि के धोंएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ।।'** (मानस, ७/४८/५) प्राय: लोग कहते हैं कि हमने बहुत विचार करके विकारों को हटाया। विश्लेषण करते-करते विकारों के तह तक पहुँच गये। विशेष दृष्टि से देखा। जैसे काम विकार आया तो हमने चिन्तन किया कि रूप क्षणभंगुर है, विषयासक्ति क्षणिक पागलपन है। हमने देखा और उसे अपने से अलग कर दिया। शान्त होकर बैठ गये किन्तु यह कोई तरीका नहीं है; क्योंकि सारी योजनाएँ तो मन बना रहा है। **'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।'** (मानस, ३/१४/३)– अपने मन से लिया गया प्रत्येक निर्णय माया के अन्तर्गत है।

ब्रह्मविद्या– इसी तारतम्य में ब्रह्मविद्या, मन को साधना की परिधि में बाँधकर रखने की कुञ्जी है। साधनाकाल में जितने भी अनुभव आते हैं, उन सबको समझने में यह सहायक है।

योग-साधना में नाम, रूप और ब्रह्मविद्या का सर्वोपरि स्थान है किन्तु ब्रह्मविद्या अधिकारी के लिए है। इसी परिप्रेक्ष्य में भजन की जागृति के पश्चात् महाराजजी ने मुझे ब्रह्मविद्या का उपदेश किया, जिसमें रामायण की कथावस्तु का आध्यात्मिक रूपक प्रस्तुत किया

गया था। यह विद्या अन्त:करण की आसुरी तथा दैवी वृत्तियों का चित्रण है। जो साधक एक ही बार में इसे याद कर ले, वह सर्वोपरि है। फिर भी आरम्भ के दस महीने तक हम इसे हृदयंगम न कर सके; किन्तु महाराजजी के निरन्तर निर्देशन पर हमने इसे याद करके एक वरिष्ठ सन्त को सुना दिया। उन्होंने कहा– रटने से क्या होगा? यह तब सार्थक है जब यह अन्त:करण की वृत्तियों में ढल जाय। वैसा दृश्य भीतर दिखाई पड़ने लगे। एक नयी उलझन हमारे सामने खड़ी हो गयी।

महाराजजी ने कहा, ''देखो, '**जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं, रामचरित बर ताग। पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग।।**' (मानस, १/११) राम के चरित्रों को युक्तिपूर्वक वेधकर अर्थात् इसका आशय यह है, इसका अर्थ यह है–इस प्रकार वेधकर, स्मृति के धागे में पिरोकर पहन लो। अभ्यास करो, मनन करो। हमने तो अभी सामान्य रूपरेखा दी है। विस्तार से तुम्हारे हृदय में मैं पढ़ाऊँगा। '**गुरोर्मौन व्याख्यानं छिन्नते सर्वसंशयम्।**'– गुरु मौन व्याख्यान हृदय से देते हैं जिससे सारे संदेह मिट जाते हैं। अब इसे चिन्तन द्वारा सूक्ष्म करना, विस्तृत करना तुम्हारा कार्य है। प्रतिदिन इसकी एक माला, एक आवृत्ति अवश्य किया करो।'' हम इसके चिन्तन में लग गये। आरम्भ में इसमें आधा घण्टा लगता था। जब यह सूक्ष्म होने लगी, क्रमश: समय बढ़ने लगा

और यह अभ्यास तीन घंटे तक पहुँच गया। यह समय ऐसे बीत जाय कि समय का भान ही न हो। एक ओर से आरम्भ कर इसका यह आशय, उसका वह अर्थ करते हम दूसरे छोर पर पहुँच जाते थे। बीच में तीन-चार बार इतर संकल्प आकर मन में विक्षोभ उत्पन्न करने का प्रयास करते, किन्तु आने से पूर्व ही जानकारी हो जाया करती थी। उसे काटकर हम तत्क्षण ब्रह्मविद्या में पूर्ववत् लगे रहते थे। नित्य एक माला की आवृत्ति से साधन सूक्ष्म होता जाता है और विस्तार में भटकनेवाले मन को घसीटकर एक ब्रह्म की धारा में प्रवाहित कर देता है। मस्तिष्क में ब्रह्मविद्या का एक-एक प्रसंग अलग-अलग तालिका-जैसा स्पष्ट हो गया। तब अनुभव में आया कि अब तुम्हें ब्रह्मविद्या आ गयी। इसके उपरान्त भी ब्रह्मविद्या चलती रही।

मन तो इतना बड़ा है जितना बड़ा संसार! किन्तु ब्रह्मविद्या के मनन से यह सिमट जाता है। उसी क्षण इस सिमटे हुए मन को श्वास में लगा दो। श्वास में दो-तीन घण्टे जब मन और सिमट जाय तो उसी मन को स्वरूप के ध्यान में लगा दो। बस मन लगने लगेगा। मन नहीं लगता, यह शिकायत समाप्त हो जायेगी। भगवान शिव, कागभुशुण्डि और लोमश से लेकर अद्यावधि यह ब्रह्मविद्या गुरु-शिष्य परम्परा में सुरक्षित है। किन्तु यह गोपनीय है, अधिकारी के लिए है।

महाराजजी कहा करते थे, ''भजन जागृत होने के पश्चात् हर समय मन के पीछे विचारों का पहरा लगाये रखो। मन को नाम, रूप या ब्रह्मविद्या में ही सदैव लगाकर रखो। यह अन्यत्र कहीं भटकने न पाये। यदि मन को भजन से छुट्टी दोगे, यह माया में जायेगा। विरह हो, वैराग्य हो, इष्ट के प्रति श्रद्धा हो, हारिल पक्षी की तरह टेक *(हारिल एक पक्षी है। वह एक लकड़ी तोड़कर, पंजे में लेकर जमीन पर उतरता है, दाना चुगता है, वृक्ष पर जाते समय लकड़ी छोड़ वृक्ष की शाखा पकड़ लेता है, उतरते समय पुन: पंजे में लकड़ी ले लेता है; लकड़ी का साथ कभी नहीं छोड़ता। इसी तरह साधक को भी टेक का पक्का होना चाहिए।)* अर्थात् प्रतिज्ञाबद्धता हो तभी सफलता मिलती है। जिस साधक में विरह नहीं, वैराग्य नहीं, भगवान को पाने की तड़फन नहीं है; उसके लिए भगवान नहीं हैं।''

१६८. अनुभव में शस्त्रागार

हम जब गुरु महाराज की शरण में चले गये तो थोड़े ही समय बाद – अब साधु हो गये हैं – तीन-चार महीना बाद जो पुराने मित्र थे, जिगरी मित्र थे, वे दिखाई पड़े, बोले– यार, चलो घूम लें जंगल। चल दिया। अन्तरंग मित्र थे, उनके साथ जाने में कोई संकोच नहीं। चले गये जंगल में। वहाँ एक शस्त्रागार और एक २०-२५ फीट चौड़ा गेट, उतना ही ऊँचा। जाते ही स्वत: खुल गया। चारों तरफ शस्त्र रखे हैं। शस्त्रों की चमक से जैसे

पचीसों ट्यूबलाइट जलती हो, उतना प्रकाश। उसके बीच में चले गये। बहुत बड़ा शस्त्रागार है। उसमें जब हम बीच में पहुँचे तो चारो मित्र हमारे पास से फैल गये चारो तरफ और एक-एक शस्त्र निकाल लिया। बोले– देखते क्या हो? मार डालो इसको। तब हमारी समझ में आया। हम बोले– एक बार इनसे बच जाते, तो इतना भजन करते कि इनकी पकड़ के हम बाहर हो जाते। मन में सोचे। हम बोले– एक बार छोड़ दो। अब मित्रता गयी लेकिन वो नहीं छोड़ रहे थे। आहिस्ते-आहिस्ते वो शस्त्रागार फट गया और फट के दूर चला गया। और मित्र चारों तरफ से घेरते चले आ रहे हैं, हम बीच में है। हम बोले– केवल एक अवसर। इतना भजन करेंगे कि इनका वश ही नहीं चलेगा। मन में ये है। किन्तु वे एक भी मौका दे नहीं रहे हैं। इतने में बिल्कुल करीब आ गये, अनायास पीछे हटने लगे वो। तब हमें स्मरण आया, कल गुरु महाराज की छड़ी हमको लगी है, तुमलोग हमको नहीं मार सकते। तुम हमें मार ही नहीं सकते। आहिस्ते-आहिस्ते पीछे हटे और काफी दूर खड़े हो गये। अनुभव खत्म हुआ तो सवेरे हमने महाराज जी से पूछा।

हम बोले– महाराज! आप छड़ी क्यों मारते हैं? गुरु महाराज जी हँसे और बोले– बेटा, भगवान जब स्वरूप देते हैं, स्थिति देते हैं तो हथियार भी दे दिया करते हैं कुछ। हमें जब स्वरूप मिला,

स्थिति मिली, दर्शन, स्पर्श और प्रवेश मिला तो यही स्वरूप है, इसी में रहना है तो हथियार भी मिला– तुम्हारे दाहिने हाथ में ये गुण है कि आज तुम्हारी छड़ी खा लेगा तो फाँसी होनेवाली है कल तो फाँसी नहीं होगी, सजा चाहे जो हो जाय। बायें हाथ में ये गुण है जिसके सिर पर हाथ रख दोगे, उसके सब करम हो जायेंगे। विभूति में ये गुण है कि कैसा भी दु:खी है, उसका दु:ख दूर हो जायेगा। जबान में ये गुण है कि तू खरी-खोटी, जद्द-बद्द सुना दोगे, धत् नालायक कहीं का, हरामी कहीं का, तो उसका कल्याण हो जायेगा इसीलिए मैं उटाँग-पटाँग बोला करत हूँ अन्यथा हम संतन के गाली देना कहाँ शोभा है? **'गारी देत न पावहु सोभा।'** (मानस, १/२७३/८) लेकिन हमें आदेश है, इसलिए मैं दे रहा हूँ। यही हमें हथियार मिला है। गले के ऊपर बड़-बड़ करत हूँ, भीतर एकदम साफ। न कोई गाली है, न कुछ है। भीतर सनेह रहता है। हम बोले– ओह, इसीलिए डण्डा आप मारे थे। *(हम नहीं मारते। हमें तो भगवान ने कहा भी नहीं कि तू डण्डा मार तो फाँसी कट जायेगी।)* गुरु महाराज को मिले थे ये हथियार।

वही गीता वाला निर्णय। अर्जुन! जनकादि ऋषि इसी कर्म को करके परम नैष्कर्म्य स्थिति को प्राप्त हुए। अध्याय ३। अर्जुन इस कर्म को किये बिना सृष्टि में पूर्व में न कोई प्राप्त कर पाया है, न भविष्य में कोई कर पायेगा किन्तु साधना के परिणाम में आत्मा

विदित है, आत्मतृप्त है, आत्मस्थित है तो उस पुरुष के लिए किञ्चित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है। अब कर्म करने से न लाभ है, न छोड़ने से कोई क्षति है। फिर भी ये महापुरुष लोकहित के लिए कर्म करते हैं। लोक-कल्याण के लिए करते हैं। यदि सावधान होकर ये महापुरुष कर्म में न बरतें तो समाज उनकी नकल करने लग जायेगा, समाज भ्रष्ट हो जायेगा, वर्णसंकर हो जायेगा। और वही महाराज.... प्राप्ति के पश्चात् महापुरुष की वाणी ही उल्टा कहें, सीधा कहें, कल्याण ही होता है।

१६९. आश्रम का प्रथम निर्माण

आरम्भ में गुरु महाराज ने एक भी ईंटा नहीं रखवाया था। महाराज कहें– हो! शेर, साधु और सर्प घर बना के नहीं रहते। बने-बनाये घर में प्रवेश कर लेते हैं और फिर अपना आयु के दिन पूरा कर लेते हैं और फिर कोई और रह लेता है उस जगह में। शेर सियारों की तरह, कुत्तों की तरह माँद खोदकर नहीं रहता। बने-बनाये कन्दरा में जाकर के निवास करता है, ठाट से रहता है और आयु पूरी करके आगे बढ़ जाता है। सर्प भी बिल नहीं खोदता। छिद्र है पृथ्वी में, सब उसी के घर हैं। ठाट से अन्दर जाता है। यदि कोई जीव है तो भोजन कर लेता है और ठाट से रहता है। साधु भी बने-बनाये घर में प्रवेश करते हैं और फिर आगे बढ़ जाते हैं। उनका अपना कुछ नहीं होता। देखो न, भगवान ने हमको ऐसी

जगह में लाके बैठा दिया, पहले से ये कोठरियाँ बनी हुई हैं। हमने कुछ नहीं बनवाया है, पहले से बनी हुई हैं। तो उसी में दो लकड़ियाँ गाड़ के, दो-एक भगत आये सामने के गाँव से, उन्होंने दो दीवार में लकड़ियाँ खोस के पहले घास-फूस छा दिया, फिर वहाँ गिरे पड़े टिन फेंके हुए थे सिद्ध बाबा के समय के तो टिन लाके डाल दिया। उसमें तमाम छेद थे। उसमें टीना के टुकड़े काट-काट के डाल दें तो पानी इधर-उधर फिसल जाया करे। उसी में बैठ के ठाठ से भजन करें, जहाँ भगवान ने बैठने को कहा था उसी जगह पर। इधर की हवा आवे तो इधर बौछार लगे, उधर से हवा आये तो उधर लगे। बस ठाठ से गरजा करें, बोले– अखण्ड गद्दी है यह, अकाल तख्त है। बस यही कहा करें।

अनायास ही ज्वाइंट मजिस्ट्रेट कर्बी में आये। वह साधुसेवी थे। वे भटकते हुए दर्शनार्थ सती अनुसुइया पहुँच गये, वह बोले– महाराज! मेरा मन है सेवा करने का, मैं कुछ सेवा करूँ। महाराज ने कहा– हमें कुछ जरूरत नहीं है। हमारे पास कउनो कमी नहीं है। मैं विश्व की सेवा करूँ, तैं हमार कवन सेवा करिहे रे। बोले– अरे महाराज, वह तो हमें मालूम है। लेकिन कुछ टूटी-फटी सेवा.... और सोच-विचार कर बोले– महाराज, टीना टूटे-फूटे हैं, मैं ये....। बोले– हाँ! मोर धूनिया बुताय देत है बौछार यार। टिनवा दो-चार और लग जात और क्या! वो गया और टीना की

जगह लिण्टर ढालने का अपने मन से निर्णय करके ईंट लाके ट्रैक्टरों से, कलेक्टर का तो आर्डर काफी होता है, जिनके पास ट्रैक्टर था, ला-लाकर नदी उस पार गिराने लगे। इधर रास्ता ही नहीं था। तो यादव लोग दुनिया में कहीं हैं, भगत ही होते हैं समझो। वो इस पार लाने लगे। पहाड़ी नदी में भीतर पत्थर बहुत होते हैं। पत्थर पर पाँव रखें, फिसल के नीचे हो जायँ तो गिर पड़ें। काफी ईंट पानी में गिर गयी। उसी को वे लोग डूब-डूब के निकाला करें घड़ी-दो घड़ी! फिर ठण्डी लगे तो बाहर निकल आवें। बोले– महाराज, मैं काँपत हूँ, मोर गत नहीं है। मैं का सेवा करूँ?

१७०. मेरी सेवा तथा सुमिरन

हमें बिल्कुल सेवा का ज्ञान नहीं था। हमने सोचा– ई कैसी सधुआई है? कचरा पड़ा है तो क्या हुआ? क्यों झाड़ू लगाया जा रहा है? हम कचरे के ऊपर सो लेंगे, बैठ लेंगे। साधु का मतलब है पड़ा है तो पड़ा है, खड़ा है तो खड़ा है। बहता पानी पी लिया, किसी ने दे दिया तो खा लिया, नहीं तो वैसे ही रहा वो। हमारा सिद्धान्त साधु होने से पहले का निश्चित था। ऐसे ही फक्कड़ों को हमने देखा था इसलिए। अब वहाँ बोले– झाड़ू लगाओ। बोले– अरे, ई कवन सधुआई? अब यहाँ खम्भा जोड़ने लगे– इस खम्भा को ईंट दो। हमने विचार किया– दो आदमी इधर खड़े हैं, दो

इधर। यहाँ तो संगदोष है। जब नदी में डूबे ईंटों पर दृष्टि गयी तब हमने सोचा– यह काम ठीक है पानी में डूब-डूब कर ईंट निकालो। इसमें किसी का संगदोष नहीं है। बस डूबा करें, निकाला करें, बाहर रखा करें। तैरते हुए जायँ, भजन करते-करते जायँ, फिर डुबकी लगावें, पाँच-छः ईंट हाथ में आ जाय तब ध्यान धरें, स्वरूप हृदय में आ जाय तो बाहर आयें। फिर भजन करते-करते नदी के ऊपर आयें, बाहर किनारे पर ईंट रख दें। नाम जपते-जपते जायँ और वहाँ जहाँ ईंट है नदिया के बीच में, फिर डुबकी लगावें, पाँच-छः ईंट समेट लें, फिर ध्यान आ जाय भली प्रकार स्वरूप हृदय में तब बाहर निकलें।

जल के ऊपर तैरते हुए जब स्वरूप पकड़ें तो पकड़ में न आवे जल्दी; और पानी में डूब के पकड़े तो फट देना पकड़ में आ जाय क्योंकि डूबने के डर के मारे जल्दी पकड़ ले। गजब की अनुभूति देखने को मिली। इसलिए महात्मा लोग कठोर, कड़ी और भयभीत जगह पर भजन करते हैं–श्मशान में, एकान्त में, शेरों की जगह में। बोले यही कारण है क्या? दिन भर ईंटा निकाला करें। लोग कहा करें– महाराज! ई लण्ठ चेला अच्छा मिल गया आपको। अरे, नवाड़ी हम थे ना। तो फिर वही गँवरगट्ठ चेला अच्छा मिल गया। महाराज भी मुस्कुरा दिये।

१७१. मेरा नामकरण

पहले का अभ्यास था स्विमिंग पूल में सीधा सिर के बल जल में कूदने का। ईंट निकालने के लिए हम सिर के बल नदी में कूद गये, भीतर रहा पत्थर और सिर फूट गया। मार खूने-खून। एक चिल्लाया महाराज से, बोला– अरे महाराज, आपके नवाड़ी चेले ने अपना सिर फोड़ लिया। तो महाराज लेटे थे, उठ के बैठ गये। देखा खून बह रहा है। महाराज जी बोले– ऐं, करे सिर में कैसे लग गयी? भगत बोला– मूड़े के बल नदिया में गया रहा। तो बोले– हे भगवान! दुनिया गोड़े-गोड़े चलके पानी में जात है, ई मूड़े से गया। मारो, साला अड़गड़ है। तो लोग हँसे, बोले– महाराज, ई नाम ठीक है। उस दिन से नाम पड़ गया 'अड़गड़'। दो-एक सेकण्ड तो हमको बुरा लगा कि ई कवन नाम? फिर हम सोचे– शरीर को कोई किसी नाम से पुकारे, हमारा क्या जाता है? अड़गड़ कहे, बड़गड़ कहे, गड़गड़ कहे, हमार जात का है। और यही नाम पड़ गया। उस समय बात आयी-गयी, हो गयी।

१७२. भजन– 'अड़गड़ मत है पूरों का....'

दो-एक महीने बाद एक दिन महाराज जी एक भजन गुनगुनाने लगे–

अड़गड़ मत है पूरों का।
यहाँ नहीं काम अधूरों का।

सच्चा साफ अमीरी रस्ता, सच्चे साहब शूरों का।
कच्चा अरु मटमैला रस्ता, कच्चे कायर कूरों का।
जप तप करके स्वर्ग कमाना, यह तो काम मजूरों का।
देना सब कुछ लेना कुछ नहीं, बाना झाकर झूरों का।।
बड़ा दैव गद्दी पर बैठा, फिर क्या ढोना घूरों का।
मस्त हुआ जब अनहद सुनकर, तब क्या सुनना तूरों का।।
मुश्किल अगम पंथ का चलना, धारा खाँड़ें छूरों का।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! अगम पंथ कोई शूरे का।।

अड़गड़ माने कठिन, जटिल, दुरुह। ये मत शूरवीरों का है। कच्चा मटमैला रास्ता कायर और बुजदिलों का है। हम सोचे– अरे, ई उटांग-पटांग शब्दों का अर्थ भी होता है क्या? फिर पूरा भजन सुना ले गये। तो हम सोचे– अच्छा, इसका भी अर्थ है। पूरा भजन सुनाया। अन्तिम पंक्ति थी–

मुश्किल अगम पंथ का चलना, धारा खाँड़ें छूरों का।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! अगम पंथ कोई शूरे का।।

अचिन्त्य है, अगोचर है, चित्त से परे है, इन्द्रियों की दृष्टिपथ से परे जो अनुभवगम्य है तो वो मत कोई शूरवीरों का है। ऊ शूरवीरों का पथ है। बस हम खुश हो गये। यार नाम तो कुच्छौ नहीं रहा लेकिन अर्थ तो लाजवाब लग रहा है। इसका अर्थ अमृतवाणी कैसेट में है। ऐसे ही गुरु महाराज ने एक महात्मा का

नाम रख दिया बग्गड़। एक का नाम रख दिया झंझटानन्द, भगवानानन्दजी का। धारकुण्डीजी महाराज का नाम सच्चिदानन्द। और जब नाराज हो तो बोले बदामे का बोकला। दो नाम सबका रहे। बढ़िया-बढ़िया नाम उन सभी को मिल गये। हम जब पहुँचे तो महाराज के पास नाम इहे बचा रहा।

१७३. मेरी रक्षा

गुरु महाराज का कहना था– रोग भी एक संस्कार है। गुरु महाराज की शरण में आ गये, उसके पश्चात् हमें चढ़ा एक बार बुखार। अभी एक-दुई दिन हुआ था। भयंकर बुखार १०५-१०६ डिग्री. तक पहुँच जाय। सिर के नीचे चावल ऐसी ढेरी बन जायँ। हम सोये नहीं जाग रहे हैं। उस ढेरी के दबाव से सिर ऊँचा हो जाय जैसे तकिया लगे। करीब पचास आदमी ऊपर खड़े हैं सिर के चारों तरफ। हम पहचान रहे हैं। वो हमारे घरवाले हैं। और कुछ को हम नहीं पहचान रहे हैं लेकिन उनकी हमारे अन्दर पूरी ममता है, पूरा अधिकार है उनका। तो एक साथ पचासों आदमियों के हाथ पड़े यूँ, एक-एक दाना सिर समेत काट-कूट के बाँट लें। एक-एक दाना उठा लें जमीन से और हम मर जायँ। स्वाँस बन्द, सिर गायब। लेकिन जानकारी बनी रहे। तब आहिस्ते से हाथ उठ के जाय सिर पर कि सिर है कि नहीं? तो सिर के ऊपर भाग के रोआँ में जहाँ छू जाय, सन्न चेत हो जाय। हम बोले– यार अभी तो

बचे हैं। हमने सोचा– सिर तो कट गया। फिर सचेत होके एकदम लेटे रहें। उठ के बैठने की अभी ताकत नहीं है, न हिम्मत। फिर दुबारे ऐसी ही ढेरी बनने लगी। हम भली प्रकार सचेत हैं। और सिर उठता चला गया। सिर उठ गया करीब एक फीट ऊँचा। यूँ ऊपर उठ जाय तिरछा और हम देख रहे हैं, सबको पहचान रहे हैं। वो पचासों हाथ एक साथ गिरे सिर के ऊपर। ये जबड़ा, कान, पूरा मुँह, सिर, रोआँ-रोआँ, हड्डी-हड्डी बाँट लिये। सिर समेत चावल का एक-एक दाना बाँट लिये और यहाँ से कन्धे के पास से सिर, गर्दन सब साफ। फिर मर गये। स्वाँस बन्द। ये करीब एक मिनट रहा तो हमने हाथ उठा के देखा कि सिर है कि नहीं। फिर सिर के ऊपरी भाग में बालों को छुआ, चेत हो आया। हम बोले– यार, दो बार तो बच गये। तीसरी बार धरे के धरे न रह जायँ। तो किसी तरह उठ के गये गुरु महाराज के पास। यहाँ हम लेटे हैं वहाँ आप बैठे हैं, उतनी दूर गुरु महाराज रहें, इस दरवाजे के बाहर से जाकर यहाँ धूनी पर। हम बोले– गुरु महाराज, ऐसा-ऐसा दिखाई पड़ा। दो बार तो हो चुका और जो आते हैं सिर काटनेवाले, वे सब घरवाले हैं। हम भली प्रकार पहचान रहे हैं। कोई चाचा है... कोई है... ऐसे हैं जिनको हम नहीं पहचान रहे हैं, उनका पूरा हक है इस सिर में.... हममें। और वो खट बाँट लेते हैं और हम मर जाते हैं। दो बार तो हम मर के बच गये। अबकी कहीं हाथ पड़े, मरे के मरे न रह जायँ। तो महाराज बोले– बेटा! ये बदले हैं। उस घर में

जन्म इसीलिए हुआ कि बदला था। अभी कुछ बदला बाकी है। तू छोड़ के चला आया तो बुखार के द्वारा वो बदला वसूल कर रहे हैं तुम्हारा। अरे!...., हम बोले– तीसरी बार सिर कटा के कटा, स्वाँस बन्द की बन्द न रह जाय। तब महाराज जी ने कहा– खो विभूति। मारा दुई झापड़ सिर में तड़-तड़ दोनों तरफ से। बोले– अब जो, अब कुछ न होई। बस बुखार भी उतर गया और फिर घरवाले नहीं आये सिर काटने। तो कहीं भी जन्म होता है वो भी एक बदला है, एक संस्कार है।

शुरू-शुरू में हम सोचा करें कि भजन छोड़ के दूसरा संकल्प.... नाम छोड़ के न आवे। स्वरूप देखे तो दूसरा दृश्य न आवे। बस भजन करें। ये सेवा करो, ये करो – ये क्या? उधर ध्यान न दें। एक दिन अनुभव में हमको आया, तुम्हारी अपेक्षा ई जो सेवा कर रहे हैं, इनकी साधना और उन्नत है। तो हम बोले– अरे, ये खाली सेवा कर रहे हैं, मैं रात-दिन भजन कर रहा हूँ, हमारी अपेक्षा इनकी साधना उन्नत है? तब फिर दिन को बारह बजे झाड़ू लेके हम लगावा करें सड़क पर। गुरु महाराज कहते– अरे, उसे देखो तो! करे झाड़ू सवेरे लगत है कि दिन को बारह बजे। हम कहें– महाराज, कचरा तो साफ हो जाता है। हमें झाड़ू से का मतलब! हमें तो सेवा से मतलब है। उस दिन से फिर सेवा में मन लगने लगा।

आहिस्ते-आहिस्ते दो-एक साल बीत गया। महाराज जी ने देखा – अब इसका मन भजन में लगने लगा है, सुरत अन्तर्मुख हो चली है। वह बोले– देख, सेवा दो प्रकार की होती है। बाहरवाली सेवा भी भली प्रकार सेवा है। इससे भी सूक्ष्म और प्रत्यक्ष फलवाली सेवा है कि हृदय में गुरु महाराज का स्वरूप पकड़कर धूप-दीप करो, भोग-राग लगाओ और स्वाँस में लग जाओ। ब्रह्मविद्या का चिन्तन करो। नाम–रूप–लीला–धाम कहीं न कहीं सुरत को लगाये रखो। चिन्तन छोड़कर मन दाहिने-बायें बहकने न पावे। निरन्तर सेवा करने का नाम सेवा है। सेवा करने की विधि भगवान संकेत और संदेश देकर बताते रहते हैं। यह संकेत भगवान की आज्ञा है और आज्ञा-पालन ही सेवा है।

१७४. गुरु महाराज की ताड़ना

गुरु महाराज गरम पानी पिया करें। साफ सुथरी थाली किसी ने दाल की बटलुई पर रख दिया था एक मिनट-दो मिनट के लिए, काली नीचे लकीर पड़ गयी थी। अरे, गरम पानी रखो तो एक लकीर नहीं पड़ जाती है। तो हम सोचे– खाना तो किसी ने खाया नहीं है। काली लकीर यदि मैं नीचे करता हूँ तो ई लकीर में कोई मैल जरूर होगा, वो घुलकर गुरु महाराज के पानी में जायेगा। हमने उल्टी रख दिया, साफ, ऐसे। जहाँ महाराज की निगाह पड़ी तो हम नीचे खड़े थे, ऊपर से अद्धा उठा के खींच के मारा पाँव

में। वो घाव आज भी है। तब हमने देखा महाराज को– महाराज, कोई गलती हो गयी क्या? फिर सरवा कहत है गलती हो गयी क्या? जूठी थाली से मोर पानी ढाँप दिया। हम बोले– महाराज, जूठी नहीं है। हमने भली प्रकार देखा है उसको, उसमें किसी ने खाना नहीं खाया है। हम जूठी उसे समझते थे जिसमें किसी ने खाना खाया हो। महाराज ने थाली को दिखाकर कहा– इसमें यह काला दाग दिख रहा है? हम बोले– ये तो दाल को ढापने से लग गया। बोले– सधुअन का बर्तन नहीं देखे है तू? कहीं भी हल्का-सा दाग है, उसका नाम है जूठा। हम बोले– ओह, आज पता चला। हम झूठे मार खा गये। फिर महीने भर में घाव ठीक हुआ। और तब समझ पाये कि दाग का नाम है जूठा। पहले हम समझते थे कोई खाना खा लिया वो जूठा।

१७५. आश्रम में एकादशी

एक दिन एक पंडित आये गणेश नम्बरदार। प्राय: आया करें। आश्रम के वही तो पंडित थे। आये, बोले– महाराज, चार दिन बाद एकादशी है। बड़की एकादशी है महाराज। इसका नाम है देवप्रबोधिनी एकादशी। महाराज तो जानते ही नहीं थे कि एकादशी क्या होता है? बैरागी भूखे रहते हर एकादशी – २४ एकादशी। बोले– कहो पंडित, ई क्या होती है एकादशी? बोले– महाराज, एक दिन शनि एकादशी होती है और एक ये बड़की

एकादशी होती है। बताया– इसमें महाराज फलाहार रहा जाता है। इस एकादशी का यही नियम है। और कह के वो तो चले गये। इतने में वो दिन बीत गया। एकादशी आ गयी। तो साधक दो-चार थे। अच्छा तो आज एकादशी है। महाराज को याद आ गया। का कहते है रे, आज एकादशी। जब वैष्णव लोग बारहो महीनों चौबीस एकादशी भूखे रहते हैं, तू एक दिन नहीं रह सकते हो। चलो एकादशी। भोजन बना ही नहीं। जब दो बज गया तब बोले– देखत हौ, एक दिन भोजन नहीं मिला तो नानी याद आ गयी। कइसन मुँह लटका के फलनवा बैठा है? ओके देखो तो, जैसे माई मर गयी? कैसन बैठा है मुँह लटका के। एक दिन भोजन नहीं मिला तो सज्जी करम हो गया। आहिस्ते-आहिस्ते चार बज गया, तब बोले– फलाहार बना रे, ए नटवा। भण्डारीजी नाटे थे। खुश हो तो शिवानन्द जब बहुत खुश हो तो नटवा। तब फिर फलाहार बनने लगा। हमें नहीं मालूम था कि एकादशी क्या होता है? ये भी नहीं मालूम था कि फलाहार बनता है। रात को सात बजे पाँच प्रकार का फलाहार मिला, बहुत अच्छा लगा। उसमें सिंघाड़ा का हलुवा भी था, पता नहीं क्या-क्या था? तब हम बोले– महाराज, हर एकादशी रहा जाय तब कैसा रहे? बोले– हूँ, तोके मालूम है, भोजन तो पचीस रुपये में आश्रम भर का होइ जात है, आज सौ रुपया खर्च हुआ है। ऊ सस्ती का जमाना था। ससुरन के मुँह लग गया हलुआ, कचौड़ी। सिंघाड़े की कचौड़ी बनती है। बस, फिर

साल बीत गया। उस एकादशी में कोई आठ-दस लोग थे। फिर एकादशी आयी तो पन्द्रह-बीस दिन पहले से बाबा लोग रटा करें – अभी इतने दिन बाकी, अब इतना दिन बाकी। महाराज कहें– का रे, क्या खुसुर-फुसुर कर रहे हो? बोले– महाराज! आज से पन्द्रह दिन एकादशी। तो बोले– तोसे का मतलब! होने दो। चुप हो गया। फिर दस दिन बाकी रहा फिर एकादशी। फिर चार दिन बाकी रहा फिर एकादशी। महाराज बोले– तो का हर्जा! बोले– अच्छा, अच्छा तुमलोगों को मन हो तो हो जाये दो। फिर पच्चीस आदमी हो गये उस समय। तब महाराज ने अर्थ बताया, बोले– जीव की अनन्त दशा है। **कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं।। देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं।।** (मानस, ७/९५/९) इस बार कौन सुख मिल गया? **राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी।।** (मानस, ७/९५/४) इस तन से राम की दुर्लभ भक्ति प्राप्त हुई है इसलिए परम प्रिय है। विभक्ति माने अलगौजी होता है, भक्ति माने भगवान से जुड़ना होता है। आज भगवान का दर्शन, स्पर्श और विलय प्राप्त हुआ, तब ये ऐसी दशा है कि दशा सदा एकरस रहनेवाली है, फिर इसमें परिवर्तन कभी नहीं होगा। न जनम होगा न मृत्यु। एक दशा मिल जाय। फिर उस दशा में कभी परिवर्तन न आवे। शुद्ध एकादशी यही है।

१७६. वृद्ध दम्पत्ति को पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद

यहाँ जगतानन्द आश्रम के बड़े रईस आदमी गुरु महाराज का दर्शन करने अनुसुइया आश्रम चले गये। रामचन्द्र सिंह और कौन-कौन..... जा के बैठे ही थे तो एक पैंसठ साल का बुड्ढा और ५८ साल की बुढ़िया। बड़ा लम्बा चौड़ा शरीर। जा के प्रणाम किया, बोले– महाराज, वंश चलाने के लिए एक लड़का मिल जाता। महाराज बोले– धत् गँवार कहीं का। जिन्दगी बीत गयी लड़के का प्रयास करते-करते। (महाराज डपट के बोले) अभी भइबे नहीं किया। अब हम बुढ़ापा से लड़का लेवे आयी है। चुड़ैल कहीं की। खो विभूति। और एक डण्डा मार दिया। भाग यहाँ से। वो बेचारी प्रणाम किया। बुढ़वा और बुढ़िया ने विभूति खाया और चले गये। साल भर बाद ये लोग जब पहुँचे दर्शन करने, यहीं बरैनीवाले, एकादशी की तिथि पर्व या वो कोई पर्व था, वो बुढ़वा-बुढ़िया पहुँच गये लड़का लेके, बोले– आपके आशीर्वाद से लड़का मिल गया। महाराज कहे– हो! मोरे रूपवा से लोग न जाने का-का पाई जात हैं, मैहूँ नहीं जानत हैं। प्राय: ऐसी घटनायें घटा करें। महाराज को भी भान न रहे। ये कोई सिद्धियाँ नहीं हैं। महाराज कहें– हो! हृदय से कुछ निकल जाय भगवान कर दिया करत हैं, मैं कुछ नहीं करत हूँ। साधु के कुछ करना नहीं होता। ई भगवान स्वयं किया करत हैं। **'रिद्धि सिद्धि जहाँ टहल करत हैं, अघ**

न रहत लवलेस।' ये उसका काम है। **'राम झरोखे बैठ के, सबका मुजरा लेत। जैसी जाकी चाकरी, तैसी ताको देत।।'** झरोखे में बैठके सबकी प्रार्थना ले लेता है, जैसी-जैसी जिसकी प्रार्थना है उसको भगवान वो देते हैं।

१७७. केदार बाबा का आगमन

एक थे केदार बाबा। वो अनुसुइया में आये महाराज के पास। वो वैष्णव साधु थे। नवयुवक। महाराज ने भगा दिया– भाग, भाग। तुम्हारे पास सधुआई का कोई लक्षण नहीं है। वे फिर घूम-फिर के चले आवें। महाराज जी ने उनको दो बार भगाया।

भगवानानन्दजी महाराज कहीं से इंजन ले आये बिजली बनाने के लिए। एक महीना इंजन आश्रम से पाँच किलोमीटर दूर जंगल में पड़ा रहा। अब गुरु महाराज का इंजन, कोई छुए न। चोर न बदमाश। महाराज बिगड़े– भाग भड्डरी कहीं का, हम मशीन क्या करेंगे रे? भगवानानंद बोले– महाराज उजेला होई। महाराज ने कहा– तोके अंधेरा दिखाई देत है। दुनिया अँधेरा में डूबी है। मोरै पास खाली उजेला है। **'आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।'** (मानस, ७/११७/२) बाहरवाला उजेला कौन उजेला है रे? डाँट के भगा दिया। तब फिर कुछ सिफारिशवालों को ले के आये। वे बोले– महाराज, इसका तेल-पानी हम देंगे, हमलोग चलायेंगे। महाराज बोले– करे, एके चलाये

का ड्राइवर राखे के पड़ी, वोके ससुरा के ड्राइवर साहब कहे का पड़ी। ई हमसे न होई। भगवानानंदजी बोले– महाराज, हम चलायेंगे। महाराज बिगड़े– धत् तेरी भड्डुरी की, फिर चलावा कर। इंजन गड़ गया। वायरिंग हो गयी, महाराज के ऊपर लट्टू (बल्ब) जलने लगा, एक पंखा लगा दिया। तीन-चार दिन हैण्डल मारा। अब ई ठहरे विरक्त बाबा! अब कहाँ तक हैण्डल मारे! दहिने-बायें ढूँढ़ने लगे। इतने में भटक के केदार बाबा फिर आ गया। भगवानानंदजी बोले– क्यों रे, मशीन चलाना जानता है। उन्होंने कहा– हमारे घर में थी महाराज। भगवानानंदजी उसको हैण्डल पकड़ा के भाग गये। वह फर्स्ट क्लास चलाया करे। महाराज कहें– देखो भड्डुरी की, हमारे सिर पर पटक के चला गया। ये जो इंजन चला रहा है, इसमें भजन का संस्कार नहीं है। फिर महाराज ने विचार किया तो बोले– भजन का तो संस्कार नहीं है लेकिन यहाँ इसका कोई संस्कार है। फिर बढ़िया सेवा करे दौड़-दौड़ के। महाराज को तो दुनिया पूजती थी, कुछ अधिकारी आवें तो दौड़-दौड़ के उनके आगे-पीछे घूमने लगा, फिर उधर ही बहक गया। पागल कुत्ते ने काटा और मर गये। ऐसे थे केदार बाबा। महाराज कहते थे– उसका केवल संस्कार है, साधु होवे का लक्षण तो नहीं है। अन्तिम समय में महाराज ने उसको बुलाया। आओ, मैं माफ कर देऊँ, भजनो दे देऊँ। लेकिन वो बेचारे डर के मारे आये ही नहीं।

१७८. स्वामी राम का आगमन

चित्रकूट एक तीर्थ है। विविध प्रकार के महात्मा और भले-बुरे लोग आया-जाया ही करें। जब कोई अनहोनी घटना घटे तो बोले– परमहंसजी के पास ले चलो, वहीं इसकी पोल खुलेगी। तो एक स्वामी राम आये और दो महीना लगातार चित्रकूट में चतुर्मासा करते रहे। वो बड़े सिद्धपुरुष रहे। दाहिने पाँव का खून बायें पाव में डाल दें तो ये दाहिना सूख जाय, पीला पड़ जाय। और बाये का दाहिने में डाल दें तो बायाँ पीला पड़ जाय, ये लाल बम हो जाय। ऐसी कुछ सिद्धियाँ समय-समय पर दिखाया करें और इंग्लिश में ज्यादा बात करें। लोग बोले– परमहंसजी के पास ले चलो। वहाँ के पण्डा, सब लोग, भगत लोगों ने कहा– वहीं पोल खुली इनकी।

लोग लेके चले महाराज के पास। काफी आदमी.... साथ में चित्रकूट के सब भगत। जहाँ आश्रम से थोड़ी दूर रहें, एक बीघा भर कि बीच रोड में बिच्छी मार दिया। अब पाँव झन्न-झन्न करे। अब चैन न पड़े। बतावें न कोई से। महाराज, पता नहीं पाँव में क्या हो गया? महाराज बोले– अभिमान रहा होई, और का होईगा। फिर बैठ गये। एक उनके पास नारियली डुकुलिया (नारियल का खप्पर) रही। ये सिद्धि थी कि कितनो भरो उसमें, वो कभी भरती ही नहीं थी। नारीयली एक पाव सामान रखने लायक थी लेकिन उसमें किलोभर भर दो तबहू खाली। ऐसी अफवाह रही।

आश्रम में हलुआ बनाया गया, फिर उसमें भरा, ठूँस-ठूँस के भरा, ज्यादा न जाय उसमें। कितनो दबा के भरे, न जाय उसमें। तब स्वामी राम की निगाह पड़ी, वह बोले– महाराज! सब अफवाह है। लोगों ने अकारण भ्रम फैला रखा है। वह भी गलत हो गया। फिर बैठे। महाराज की जब बानी सुना, महाराज का स्वरूप देखा तब सादर प्रणाम किया, बोले– महाराज, आशीर्वाद बना रहे। मैं नाम सुनता रहा। आज दर्शन हो गया। हमारा सौभाग्य रहा। उनके साथ बड़े-बड़े लोग थे पीछे। एक जयपुरिया बहुत बड़ा सेठ, वो चाँदी की जनेऊ पहने। महाराज बोले– देखो, सब तो पार लग गया है, जरा-सा बाकी रह गया है। एक बार बिलरिया झपटी तोरे ऊपर। सावधान रहना। स्वामी राम हाथ मसलते हुए बोले–नहीं महाराज, बिल्ली को तो मैं मार चुका हूँ। महाराज बोले– हाँ सब ठीक है, लेकिन मैंहूँ कुछ कहत हूँ, याद रखना। वे चले गये। वहाँ से जाने के एक ही महीने बाद एक लड़की रही, वो फुसला ले गयी। उससे एक लड़की पैदा हुई। स्वामी राम के साथ में जो भगत थे, भागे-भागे आये, बोले– महाराज! गुरु महाराज ही हैं लेकिन घृणा हो गयी। अब तो उनसे एक लड़की भी पैदा हो गयी। आप बहुत समझाये लेकिन माने नहीं। महाराज, आप महापुरुष हैं।

दो साल बाद स्वामी राम अकेले आये। पहले शरीर रहा एकदम लाल सेव की तरह और जब दुबारे आये तो एकदम पीला

पड़ गया था जैसे शरीर में खून नहीं है। आये तो सीढ़ियाँ चढ़ने लगे, एक-एक सीढ़ियाँ सकुचाते-सकुचाते। हमने कहा– गुरु महाराज, स्वामी राम आ रहे हैं लगता है। महाराज उठ के बैठ गये, लेटे थे, देखा, बोले– अरे, न सकुचाओ, चले आओ। जो घूम के लड़त है वो कायर नहीं कहावत है। चले आओ। भल आये, यही शोभा है तुम्हें। तब आये और बैठ गये, बोले– महाराज, मैं क्या करूँ? १०३ साल की हमारी माताजी हो गयीं। वो कहने लगी, तू ब्याह न करिहो तो मैं मरूँगी नहीं। उनके संतोष के लिए महाराज हमें ऐसा करना पड़ा। अब मैं फिर निकल गया हूँ। महाराज बोले– बहुत बढ़िया! अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। जो घूम के लड़त है कायर नहीं कहावत है। अब सावधान रहना। महाराज को प्रणाम कर स्वामी राम निकल गये।

१७९. कामरूप कामाख्या का पण्डा

कामरूप कामाख्या के एक पंडाजी! बढ़िया सधुआई भेष बनाके यहाँ चित्रकूट में आके बैठ गये। तमाम टोना-टोटका, जादू-टोना दिखावे। सब महात्मा लोग जितने चित्रकूट के थे, सब साष्टांग दण्डवत करें। कजरी लगावे नाखून में तो बता दे कि कौन सामान कहाँ रखा है? तोरे पृथ्वी में धन रखा है। कई हथकण्डे। पंडा लोग बोले– यार, एके परमहंसजी के पास ले चलो, वहीं इसकी पोल खुलेगी। वेश भर बनाये है, साधु है नहीं। है भी कि

नहीं?–ये तो परमहंसजी बतायेंगे। उससे बोले– चलिये परमहंसजी का दर्शन करने। उसने भी कहा– चलिए, हम जरूर चलेंगे। महाराज के पास आया तो सिद्ध जैसे प्रणाम करते हैं, हल्का-सा सिर झुका के प्रणाम किया। महाराज बोले– अच्छा, अच्छा! इहै सिद्धबाबा हैं? वह बोले– हाँ। हम कामरूप कामक्षा के सिद्ध हैं। महाराज बोले– जरा हमहू के दिखाओ आपन सिद्धि। वह बोला– लीजिए महाराज! जब दिखाने लगा तो आवे ही न। फिर दूसरावाला दिखाया, वह भी नहीं आया। फिर कजरी लगाया, वह भी नहीं आया। तब झेंप मिटाने के लिए महाराजजी से पूछा–यहाँ कोई एकान्त जगह है? महाराज कहें– एकान्तै-एकान्त है आगे। उसने कहा– जरा थोड़ा एक जगह और जाना है अमरावती।

वह चल पड़ा। १५-२५ लोग पीछे लग गये। उनसे जीव छुड़ाया कि पहले मैं अकेला जाऊँगा। फिर चला गया। दो-एक किलोमीटर तक लोगों ने पीछा किया, फिर वह बोला– नहीं, नहीं, मैं अकेला जाऊँगा। फिर चला ही गया। लोग छोड़ दिये, आकर महाराज से बोले– महाराज, तीन महीने से ठगत रहा, आप अच्छा भगायो। उसने असम जाकर महाराज को चिट्ठी लिखा– ''महाराज! मैं कोई साधु नहीं था। मैं कामरूप कमच्छा का पंडा हूँ। नागा महात्माओं की संगत से ये कुछ हथकंडे सीख लिया था। लेकिन महाराज जिस दिन से आपको दिखाया, उस दिन से जो दिखाया

वो भी गायब। और जो जानत रहा कई टोना-टोटका, वोहू खतम। महाराज, इसी से तो मैं जियत खात रहा, वो रोजगार खतम हो गया। पण्डागिरी थी उसे भाईलोगों ने बाँट लिया। हमारा हिस्सा भी ले लिये। अब मैं मर रहा हूँ महाराज। कृपा कर देते, फिर हमें आ जाता।'' महाराज ने पण्डों को बुलाया, बोले– आओ रे देख लो, तोरे सिद्धबाबा की चिट्ठी आयी है। सब खूब हँसे।

चार महीना पश्चात् वह पण्डा सादे कपड़े में अनुसुइया आया, महाराज को दण्डवत किया, बैठ गया और बोला– महाराज, पहचाना हमें? महाराज बोले– हो! तूँ सिद्धबाबा तो नहीं है! वह बोला– अरे महाराज, इस वेश में भी पहचान लिया। हम कउने बात का सिद्धबाबा हैं महाराज। मैं कामरूप कमच्छा का पंडा हूँ। महाराज बोले– क्यों रे, जब पंडा है तो तू महात्माओं से काहे गोड़ छुआवत रहा रे। वह बोला– का करूँ महाराज, यदि वो गिरते रहें तो मैं भी भीतर-भीतर प्रणाम करता रहा हूँ। बाहर से इसलिए नहीं बोलत रहा कि इनकार करूँगा तो हमार चटकी हुई सधुआई चौपट हो जाई, कमाई कम हो जाई, इसलिए नहीं बोल रहा था। महाराज बोले– अब त न गिरवइहै? वह बोले– केहू से नाहीं महाराज। महाराज, हमार विद्या हमें मिल जाय। महाराज बोले– देख, यहाँ तोर ढोंग-धतूर मोरे आगे न चली। हाँ, यहाँ से चला जा, दो-एक किलोमीटर दूर, वहाँ देख, तुम्हें आ जायेगी। वहाँ से

गया दो-एक किलोमीटर दूर एक जगह है, वहाँ जाके लगाया तो आ गयी। फिर चिट्ठी लिखा– महाराज, इतनी दूर जाने पर विद्या आ गयी। भगवन्! कृपा बनी रहे। अब आपका दर्शन कबहो न करिहो। इस बार तो सिद्धियाँ लौट आयीं, आप दोबारा रगड़ न दो।

१८०. स्थितप्रज्ञ महापुरुष के कर्म

महाराज जी रात्रि में दो बजे से ही उठ के बैठ जाया करें, शिष्यों को सचेत करें– उठो रे माटी के धौंदो। भजन में बैठो। महतारी का गरभ छुड़ाने आये हो। एहि पराक्रम के माथे भजन होई। सबको उठा के बैठा दें। जब सब बैठ जायँ तब अपने लेट जायँ। जहाँ कोई बैठने में ढीला पड़े तो फिर उठ के बैठ जायँ, कसके डाँटे– तुमलोग सोचते हो कि हम सोये हैं! अरे बुढ़ापा शरीर है रे। बैठने में थोड़ा कष्ट होत है इसीलिए मैं थोड़ा कमर सीधी करत हूँ। का मैं सोवत हूँ? मैं स्वाँस में लगा हुआ हूँ। मोर स्वाँस बाँस की तरह खड़ी है बेटा। न भले संकल्प उठते हैं न बुरे। एक दिन वह बोले– मैं तुमलोगों के लिए बैठत हूँ, हमें जरूरत नहीं है।

यही भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं– अर्जुन! नियत कर्म योगविधि ही यज्ञ है, इसी को कार्यरूप देना ही कर्म है। इसके द्वारा तुम देवताओं की वृद्धि करो। देवता तुम्हारी वृद्धि करें। परस्पर वृद्धि करते हुए परम श्रेय को प्राप्त हो जाओ। परम देव परमात्मा

का शनैः-शनैः देवत्व हृदय में अर्जित होता है। यही देवताओं की वृद्धि है। **तैर्दत्तान्–** वही एक देनेवाले हैं। ज्यों-ज्यो दैवी सम्पद् बलवती है, वही तुम्हारा बल है, वही तुम्हारी वृद्धि है। दैवी सम्पद् की वृद्धि होने लगती है, आसुरी सम्पद् का नाश होता जाता है वही तुम्हारी वृद्धि है। परस्पर वृद्धि करते हुए परमदेव परमात्मा का दर्शन, स्पर्श हुआ, दैवी सम्पद् परमात्मा में ही विलीन हो गयी – यही देवता पूजा है। वृद्धि करते-करते परमदेव परमात्मा का दर्शन, स्पर्श और प्रवेश मिल गया, उस पुरुष के लिए किंचित् भी कर्तव्य शेष नहीं। अब कर्म करने से न लाभ है, न छोड़ने से क्षति है। न ही प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है। वह आत्मतृप्त है, आत्मस्थित है। ये महापुरुष कभी कर्म न करें, कोई नुकसान नहीं। करेंगे तब भी कोई लाभ नहीं। जवाब कौन देगा जब आगे कोई सत्ता है ही नहीं। फिर भी ये महापुरुष पीछेवालों की हित की इच्छा से भली प्रकार कर्म में बरतते हैं, लोकहित के लिए। आज शुभाशुभ कर्म जल गये, स्वरूप मिला, स्वरूप में स्थिति मिल गयी। इसके बाद महापुरुष जो भजन करते हैं, साधकों को उठना-बैठना सिखाने के लिए, उनको लाइन पकड़ाने के लिए होता है।

१८१. मृतप्राय व्यक्ति को जीवन-दान

भगवान जब अपनाते हैं तो कुछ हथियार भी दे दिया करते हैं। इन्हीं से वे महापुरुष लड़त-भिड़त निश्चिन्त चले जाते हैं।

महाराज को कहा गया– तुम्हारे दाहिने हाथ में ये गुण है, जिस पर रख दोगे उसका कल्याण हो जाई। बायाँ हाथ जिस पर रख दोगे उसके सब करम हो जायेंगे। तुम्हारे विभूति में ये गुण हैं। उससे कल्याण होगा। और कल फाँसी होनी है, आज छड़ी तुम्हारी पा जायेगा तो फाँसी नहीं होगी, सजा चाहे जो हो जाय। तुम गाली दे दोगे, जद्द-बद्द कह दोगे तो जिस काम के लिए आया है, उसका काम हो जाई। आश्रम में हजारों मरीज महाराज की डाँट-फटकार सुनके ठीक हो जायँ। एक बार हम हाथ धुला रहे थे गुरु महाराज का, बड़े सवेरे छः-सात बजे, सूरज की किरण निकलना चाहती थी कि कुएँ पर दो आदमियों ने आके प्रणाम किया। महाराज बोले– करे, इतना सवेरे कहाँ से आ गये तुमलोग? वे बोले– महाराज, रात को दो बजे हम घर से चले हैं। हमारा भाई मर गया, छोटा वाला। हमलोग जब चले थे तो उसके नाभि में एक रुपये के बराबर जगह में गर्मी थी। हमलोग सोचे– दिन में घाम बहुत होता है, जेठ का महीना है। तपन में आखिर लेके जाना ही पड़ेगा फूँकने के लिए, रात-रात ले चलो। लेकिन महाराज एक रुपये के बराबर जो गर्मी थी, उतनी ही गर्मी बनी हुई है नाभि में। न स्वाँस तब थी, न अब है। शरीर तब भी ठण्डा था, अब भी ठण्डा है। तो फूँक देईं कि गर्मी ठण्डी हो जाय तब तक प्रतीक्षा करी। यही पूछे आये हैं महाराज! महाराज बोले– करे, जियत मत फूँक देना,

कहीं गर्मी न हो गयी हो। मूड़ी पटक धूने पर और विभूति ले ले। बाँस की लकड़ी से दाँत खोल के मुँह में विभूति डाल दे, शरीर में लगा दे। देख क्या होता है? वे जब विभूति लेके सीढ़ियाँ उतरने लगे, महाराज बोले– देख रे, यह नीबूँ का पेड़ है। इसकी सात या नौ गो पत्ती ले लो। पथरे में पीस के, थोड़ा पानी डाल के, थोड़ा पतला करके बाँसे की पत्ती में काँछ के उड़ेल ले, दाँत खोल के बाँसे के लकड़ी से मुँह में डाल दे, पियाइ दे। कहीं गर्मी ना हो गयी हो। वे लोग गये। विभूति लगाया तो गर्मी फैलने लगी और बाँस की पत्ती में डाल के नीबूँ की पत्ती का रस जहाँ पिलाया, श्वास लेने लगा। लेके घर चले गये। धन्यवाद देने भी नहीं आये। दोपहर में महाराज ने पूछा– उसका क्या हुआ? हमने बताया– आये तो नहीं महाराज!

सात दिन बाद एक आदमी कुल्हाड़ी कन्धे पर रखके आया। सीढ़ियाँ तो बड़ी प्रसन्नता से चढ़ रहा था। महाराज लेटे हुए थे। हम बोले– महाराज! एक आदमी बड़ी प्रसन्नता से सीढ़ियाँ चढ़ रहा है। पहले हमने इसको कभी देखा नहीं। महाराज बोले– ऐं, नवाड़ी है? हम बोले– पहले कभी देखने में तो नहीं आया भगवन्। महाराज उठ के बैठ गये– करे, कवन है रे, कहाँ से आया है? वह महाराज को दण्डवत करते बोला– महाराज! मैं ही मर गया रहा हूँ। हरिस लेने आया हूँ। (हर के आगे जो लम्बी लकड़ी

होती है, उसका नाम हरिस है।) मैं सोचेउ– हरिस बाद में काटूँगा, जिन महाराज ने हमको प्राणदान दिया, जियाये हैं, पहले मैं उनका गोड़ लेई पड़िहों तब हरिस कटिहों। महाराज, तोहार गोड़ लेइ पड़े आया हूँ। महाराज कहें– करे, ये जी गया रे। जियत फूँक देत रहें। ऐसी बहुत सी घटनाएँ घटती रहे लेकिन महाराज को न भान रहे कि कौन जी गया, कौन क्या हो गया? रिद्धि-सिद्धि का महाराज को भान न रहे।

१८२. गुरु पूर्णिमा की घटना

गुरु पूर्णिमा के समय पर कानपुर के पास सिकटियापुरवा, वहीं के भगवानानंद जी महाराज थे जनमे हुए, इसी लगाव से काफी लोग आने-जाने लगे। एक मरीज को लेके चल दिये। डॉक्टर जवाब दे दिये रहें! पहुँचे और मरियल आदमी को महाराज का दर्शन करा के वहीं कहीं लिटा दिया। गुरु पर्णिमा है, चहल-पहल है। रात को बारह बजे वे लोग बोले– महाराज, वो तो मर गया। महाराज छड़ी लेके उठे– तोरी हरामी की! मरे का रहे त वहीं कहीं रस्ते में मर जाये के रहा। ये मरे की जगह है क्या? एक छड़ी उस रोगी को मारा, चले आये। कहा– विभूति खिया रे। यहाँ से तो जियत चला जाय, फिर चाहे मर जइहे। स्वाँस रुक गयी रही। सुबह उठ के पूड़ी माँग के खाया चार-छः। टकर-टकर पैदल चला गया चित्रकूट। महाराज के भान न रहे। जब सुना तो बोले–

देख रे, जी गया का रे। गुरुपूर्णिमा में बदनाम करे आया रहा। ऐसे ही मरती-जीती घटनाएँ हुआ करे। तमाम पगले ठीक हो जायँ। जिसको चाहे मोक्ष दे दें। ये भी गुरु महाराज कहें– हो! सब ५० रुपया चढ़ावत हैं तो बदले में हाथी माँगत हैं। मैं मोक्ष देत हूँ, कुच्छौ नहीं चाहत हूँ। जिसको चाहे दण्ड भी दे दें।

१८३. आश्रम में रेडियो

महाराज बैठे-बैठे अनुभव में देखा करें कि देश में कहाँ क्या होता है। जब चीन की लड़ाई छिड़ी तो महाराज कहें– हो! देखो रे, हिमालय डाँक के हमरे ऊपर हमला कर दिया। अपने को भारत समझें। गजब कर दिया यार। अब का होत है, मोहूँ के केउ समाचार बतावत। कोई-कोई आवे तो बता जाय, दिन में एकाध बार कभी दो चार दिन में। ये हुआ, वो चौकी कब्जा हो गयी, वो चौकी से चीन पीछे हटा तो दो चौकी से भारत पीछे हटा – यही सब लोग बतावें। इतने में एक कर्बी का भगत सेठ आया, एक रेडियो रख गया, बोले– महाराज! आपके ई बताई। बटन दबाये तो रेडियो बोलने लगे। घुमा दे तो बीबीसी लंदन लग जाय, सिलोन लग जाय। कभी गोरखपुर लग जाय। वहाँ के लोकगीत गायक थे विदेसिया और बटोहिया, उनका दो गाना महाराज जरूर सुने दोपहर के दो बजे। जहाँ समाचार सुनें तो बोलें– ई कैसे बताई रे? आदमी बतावत है ये लोहवा कैसे बताई? सब बोले– नहीं

महाराज, बताई। बोलने लगा। महाराज कहें– यार, गजब की चीज बनाये हैं, ई तो लोहवा बोले लगा। महाराज ने कभी रेडियो तो देखा नहीं था। सही पूछो तो हमहू नहीं देखे रहे। जंगल में सड़क बन रही थी। एक ओवरसियर भागा-भागा आया जंगल से– सुना है महाराज आपके यहाँ रेडियो आया! वो भी नहीं देखा था जबकि साहब था।

फिर गाँववाले सुने तो भागे-भागे आये। महाराज के पास उस समय बाजत रहे रमई काका की ग्रामीण पंचायत। यादव लोग आ के बैठ जायँ, फिर ऊपर चले जायँ, फिर आकर बैठ जायँ, फिर दहिने-बायें चले जायँ, फिर आके बैठ जायँ। महाराज बोले– करे, का उठक-बैठक लगाये हो? यादव बोले– सरकार, दरबार कौन ठे लाग है? अर्थात् दरबार कहाँ लगा है? आवाज बड़ी मधुर आवत है, कई आदमी बैठ के बतियावत हैं। यहाँ आपके पास तो कोई है नहीं। हम सोचे ऊपर छत पर होइहैं। वहाँ जाते हैं तो आवाजै बन्द हो जात है। महाराज बोले– एके भीतर बोलत है। तब आके सब रेडियो को घेर लिया, बोले– महाराज, इतने आदमी एमे घुसत कइसत हैं? गजब तमाशा रेडियो! एमे घुसा कहाँ से आदमी? एकदम नयी चीज। उनको भी नहीं मालूम रेडियो है क्या?

१८४. चीन-भारत युद्ध में भविष्यवाणी

एक दिन महाराज बोले– आज मैं हिमालय में गया हूँ, बरफ

की चोटी पर बैठा हूँ। हमने कह दिया, बस मत लड़ो। मैं पाँव हिला रहा हूँ, कह रहा हूँ – इधर भारत है, इधर चीन है। झगड़ा बन्द कर दो। दूसरे दिन रेडियो खोला तो समाचार आया– सुलह हो गया। महाराज ने एक दिन पहले बता दिया कि अब सुलह हो जायेगा। **'ऊ जब-जब चाहिस हृदय के बीच या दुनिया का नक्शा देखिस।'** हृदय के अन्दर दुनिया का नक्शा देख लेते हैं महापुरुष कि कहाँ क्या हो रहा है? बात हिमालय की, हमारे गुरु महाराज अनुसुइया में बैठे-बैठे देख लिया करें।

१८५. टी.बी. के रोगी पर कृपा

धारकुण्डी महाराज पहले अनुसुइया में तो रहते ही थे। फिर महाराज ने आदेश दिया– जाओ, धारकुण्डी में रहो तो रहने लगे। शुरुआत में तो फीका-फाका चला, फिर गुरु महाराज की वाणी तो उनके पास थी ही, तपस्या रात-दिन करने का अभ्यास भी भली प्रकार था, कुछ ही समय में स्वामीजी का घनघोर जंगल का निवास, जहाँ रहते थे वहाँ शेर की गुफा थी, वहाँ का निवास लोगों को भा गया। लोग आने-जाने लगे। पास ही में एक गोपीपुर गाँव, जंगल के किनारे। वहाँ का प्रधान गया, बोला– महाराज, मैं मरत हूँ, हमें टीबी हो गया। धारकुण्डी स्वामीजी ने कहा– हमसे तो कुछ न होई। तू अनुसुइया चला जा, हमारे गुरु महाराज के पास। दोनों चरण पकड़ के सिर चरणों में रख देना, तुम्हारी टीबी ठीक

हो जायेगी। जब तक छड़ी न मारें, चरण छोड़ना नहीं। क्योंकि धारकुण्डी स्वामीजी महाराज की सेवा में रहते रहें। उन्होंने हजारों लोगों को ठीक होते देखा था। उन्हें मालूम था।

वो प्रधान परातभर बताशा लेके आया। बड़े ही सुबह। सब भजन में बैठे थे। गुरु महाराज भी बैठे थे। सीढ़िया के पास बाहर एक महात्मा पहरे पर बैठे थे कि कोई महाराज को बाधा न पहुँचावे। भूला-भटका शायद कोई आ जाय अन्यथा साढ़े नौ-दस बजे से पहले कोई आता ही नहीं था जंगल में। महाराज के निवासोपरान्त दु:खी-सुखी आदमी रात ही में चल दिया करें तो रोक दिया जाय। ये जोखिम भरा काम हम न लें। गुरु महाराज को कोई छुए न, ये पहरेवाला काम हम न लें। बोले– शायद कोई धोखे से पहुँच जाय। सब पहरे पर लग गये, हम आड़ में चले गये, कोठरी में बैठ के भजन करने लगे। जब महाराज भजन में बैठ गये तो जो पहरेदार महात्मा थे, वो भी दृढ़ होकर भजन में बैठ गये। उनका भी ध्यान लग गया।

इतने में प्रधानजी दबे पाँव गये, परात रखा और महाराज के दोनों चरण पकड़ लिये और सिर चरणों में धर दिया। महाराज ने पाँव से झटक दिया। गिर पड़ा परधनवा। फिर दौड़ के पकड़ लिया। फिर झटक दिया। फिर पकड़ा तो आसा (भजन करते समय सीधे बैठने में सहायक लकड़ी) से किया ठोकाई। भागा प्रधान दो-

दो चार-चार सीढ़ियाँ डाँकत। वो भागा। तब बिगड़े महाराज– कहाँ गया रे तोरी नटवा की! शिवानन्द नाटे से थे। उस दिन पहरे पर थे, बुलाना उनको। वह महाराज के पास न जाकर डर के मारे दूसरी ओर भागे कि के मार खाय। तब हम गये। उस समय धूना बन रहा था। बाँस रखे थे छः-सात फीट लम्बे-लम्बे। एक बाँस निकाल के एक मारा सिर के पीछे, गर्दन के ऊपर नस होती है वो नस में लग गया। इस नस में लग जाय तो कैसा भी आदमी हो, शरीर शून्य हो जाता है। शरीर सन्न देना शून्य हो गया। हम सोचे– हो क्या गया हमें? कभी ऐसा असर नहीं हुआ था। महाराज को दाँव मालूम रहे, वहीं मार दिया। वह सोचें कि यह जड़ है, ऐसे न लागी। हम सुन्न होके बैठ गये। महाराज बोले– उठिहे ना, नाहीं त मार के फेंक देब नदिया में। हम सोचे– बैठे में ही भलाई है। एक मिनट के लिए शान्ति रही। फिर सबकी पिटाई किया। मंगल दादा को पत्थर फेंक के मारा। एक भगत आया रहा तो नदी कूद के उस पार चला गया। मेला आने का समय था। भगत चिल्लाया– बाबा बइकल हो गया। अइहो ना रे, मार डारी जान। इधर का मेला इधर भाग गया, उधर का उधर।

महाराज आके गद्दी में बैठ गये। सबको बुलाया। मंगल दादा कहे– सरकार, का होई गया? महाराज बोले– कुच्छौ नहीं होइ गया यार! ऊ के रहा यार जो हमार गोड़ छू दिया। उसको बुलाया।

महाराज ने पूछा– क्यूँ छुआ रे? प्रधान बोला– महाराज, क्षमा करें। वो धारकुण्डी के बाबा कहे रहें, दोनों गोड़ पकड़ के मुड़ी रख देना, एहि से मैं रखे रहा हूँ। महाराज बोले– और? प्रधान बोला– हमें टीबी हो गया है महाराज। महाराज बोले– जो बेटा, तोरे तो टीबी ठीक हो गया, अब हमें जवन बीती, तवन बीती। उसकी बीमारी ठीक हो गयी। महाराज जिसको दाहिने हाथ से मार दे, उसका ठीक। हमें दोनों हाथ से बाँस मारे रहे न, एक महीना दरद किया। फिर दवाई जंगल में कहाँ? हल्दी छोपी जाय। हल्दी-प्याज गरम करके। हम बोले– दहिने हाथ में आशीर्वाद दिया, बायें हाथ में श्राप दिया। हमें चोटे भर हिस्से पड़ी। महाराज बोले– नहीं रे, आशीर्वाद है। प्रधान को छूने का परिणाम महाराज को बुखार से उतारना पड़ा।

१८६. डाकिया से छिनैती

नौसिखिया डाकू। दो लड़के आये २८ साल के करीब उमर के। दर्शन किया महाराज का। बैठ के इधर-उधर देखें कि इनमें कौन मालदार है। महाराज के पास वही चलकर गये झूरी नदी से थोड़ा ऊपर, आश्रम से तीन किलोमीटर की दूरी पर एक डाकिया डाक ले जा रहा था, उसके ६० रुपया ले लिये। लूट तो लिया, तीसरे दिन पकड़ गये। सतना की जेल में चले गये। तब फिर उनका सरदार आया, महाराज का दर्शन करने, बोला– महाराज,

मैं बता नहीं पाय रहा आपकी महिमा इन सब लड़कन से, हमसे गलती हो गयी। आशीर्वाद मिले महाराज, बच्चे जेल से छूट जायँ। तब महाराज बिगड़े– करे, तूँ ई सच्चिदानन्द की सेवा करत है और मोके लूटवावत है? महाराज के परिसर में कहीं कोई डाका, चोरी हुआ ही नहीं। किसी को करने का साहस ही नहीं था। कदाचित् किसी से थोड़ा धोखे से भी हुआ तो दूसरे दिन पकड़ा गया या मारा गया।

१८७. आश्रम में भैरव कुत्ता

गुरु महाराज जी को कुत्ता पालने का भी बड़ा शौक रहे। एक कुत्ता रहा दस इंच ऊँचा, तीन फीट लम्बा। बड़ा बढ़िया कुत्ता रहे, बड़ा जोरदार। झबरा झबरा एकदम लटर-पटर। देसी कुत्ता देखे तो डर के भाग जाय, पता नहीं क्या जानवर है? बड़ा लड़ाका, लड़ जाये सबसे। बड़ी गति रहे दौड़ने में। और चम्मच ऐसन पाँव छोटे–छोटे। वो शेर की गुफा में जाके हड्डी-फड्डी उठा लावे तो महाराज कहें– कहाँ तक शेर माफ करेगा। किसी दिन जरूर खा लेगा। तब धारकुण्डी स्वामीजी धारकुण्डी से चले आये, हम बोले– महाराज, आदत पड़ी है। डाँट दें तो दो-चार हफ्ता न जाय, फिर चकमा देके कभी जरूर ले आवे। रात को १२ बजे जाय। सींकचा के बीच से निकल जाय। पतला-सा रहे, निकल जाया करे। हम बोले– इनको दे दिया जाय। वहाँ तो शेर की गुफा

देखे नहीं है। गुरु महाराज कुछ नहीं बोले। हमने उसे उठा के धारकुण्डी स्वामीजी की गाड़ी में रख दिया। गाड़ी जब २५ कदम चल दी तब महाराज बोले– करे काहे दे दिया ओके। हम बोले– महाराज, आप कुछ बोले नहीं, हम सोचे आपका मन है। यहाँ शेर की गुफा में जाता है, शेर तो तोड़ देई। महाराज बोले– हमरे जियतै शेर तोड़ देई। शेर कैसे तोड़ देत रे ओके। सच्चिदानन्द की हैसियत है कि उसे शेर से बचा ले। अब बिगड़े बहुत। नाराज हुए हमारे ऊपर।

साल भर बाद धारकुण्डी में भण्डारा था। हम लोग गये। वहाँ वो जहाँ बाहर निकले तो पचासों कुत्ते भागे उसको देख के। कुत्ते सोचे– कोई जंगली जानवर है। उसका आकार ही ऐसा था। जब कुत्ते भागे तो सिकड़ी सहित पीछे दौड़ा। सिकड़ी जंगल में कहीं उलझ गयी, एक शेर था, उसे लेकर भाग गया करीब दस हजार आदमी की भीड़ में से। महाराज धारकुण्डी से लौटने लगे तो शेर महाराज की गाड़ी के ऊपर से कूद गया। महाराज कहें– यार शेर खा गया। ई हमें बतावे आया रहा कि मैं खा गया हूँ। किसी को विश्वास न हो। दस हजार की भीड़ के बीच से शेर कैसे खा लेगा? अब धारकुण्डी महाराज गाँव-गाँव ढूँढ़वाये। तीसरे दिन फिर उसकी सिकड़ी, उसकी टँगड़ी थोड़ी-थोड़ी शेर की गुफा के सामने मिली, तब संदेशा भेजा कि शेर खा गया। तब हमें याद आया कि

महाराज ने कहा था– ऊ सच्चिदानन्द की हैसियत है शेर से बचा लेने की। हमारे जियत शेर कइसे खा लेई रे।

महाराज सोचने लगे कि भैरव ने हमारे हाथ से खाया-पिया, हमारी गद्दी में बैठता था, अपने हाथ से दूध पिलाते थे, आखिर साधु के स्पर्श से इन जानवरों को भी कोई लाभ होता है कि नहीं? आखिर वो किस योनि को प्राप्त हुआ। जहाँ ये विचार आया मन में तब अनुभव में आया कि वो साहब हो गया। महाराज पूछे– कइसन साहब? तो कुछ लोग अनुभव में महाराज को ले गये। एक बड़ा भारी ऑफिस। कुर्सियाँ पड़ी हैं। उसमें सट्-सट्-सट् आके लोग बैठ गये। एक बढ़िया कुर्सी खाली पड़ी है। जो ले गये थे, उन्होंने कहा– महाराज, आपका भैरव अलग बड़ी कुर्सी है, उसी पर आ के बैठेगा, अभी आ रहा है। इतने में करिया भुजंग एक बड़ा साहब आया, तो सब उठ के खड़े हो गये, नमन किया और वो आके उस कुर्सी में बैठ गया, तब सब बैठ गये। लोगों ने बताया– ये है आपका कुत्ता भैरव। महाराज कहें– हो! मोर भैरव साहब हो गया। साधु के छूने से भी जीवों को लाभ होता है। रामजी जब वनवास काल में थे तो **'जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे।। ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू।।'** (मानस, २/२१६/१–२) जिन्होंने प्रभु को देख लिया, वो परम पद के अधिकारी हो गये। जिन्होंने

प्रभु को नहीं देखा, प्रभु ने ही जीव-जन्तु को देख लिया, वे भी परम पद के अधिकारी हो गये। यह ध्रुवसत्य है।

१८८. स्वरूपदासजी एवं रामानन्दजी का आगमन

एक स्वरूपदास जी थे। महाराज के आसन से एक-डेढ़ फर्लांग दूर झोपड़ी बनाकर रहते थे। काफी समय तक तरह–तरह के उपद्रव खड़ा करते रहे। द्रौपदीबाई को उकसाना, हनुमान गढ़ी के नागाजी को लाना, फिर सब करके आया एक दिन, गोड़े गिरे, बोले– महाराज, हमें शिष्य बना लो। महाराज बोले– भाग यहाँ से। महात्मा बनके तूने बारह साल हमसे बैर किया है। बाहर से काम नहीं बना तो चेला बनके हमसे घात करा चाहत है। भाग यहाँ से। ब्रह्मचारी जी बोले– महाराज, ई तिलक-पताका लगाके चार ठो लोफर-लफंगन के ढूँढ़ के ले आवत है, वेश बदल जाइ त कोई लोफर त भला न मिली एके। महाराज बोले– हमें लोफरों का डर नहीं है, लाने दो लोफर। भाग यहाँ से। उन्होंने बहुत कहा– महाराज, एके रख लें। महाराज बोले– बेटा, मैं क्षमा भी कर दूँगा तो भगवान क्षमा नहीं करेंगे। इसने १२ बरस तक हमसे बैर-विरोध किया है। तुमलोग कहते हो तो रख लेता हूँ, साधु त न होई। फिर उनको रख लिया। पतले-पतले रहें। जब महाराज की शरण में आ गये तो फूल के मोटे-मोटे हो गये। फिर क्या कहना मस्ती का! फिर विचरण में निकल गये। वहीं कोई पाप प्रकट

हुआ, वह जेल में जाके मर गये। भगवान ने माफ नहीं किया। उनके शिष्य थे रामदास। जब गुरु ही शरण में आ गये तो वो कहाँ जायँ? वो भी चले आये। महाराज के भोजन-भण्डार में दो महीना रोटी बनाया, बढ़िया सेवा किया। वो हुए स्वामी रामानन्द। वह लोधना में निवास करते थे। महाराज ने जाकर उनके यहाँ त्रिशूल स्थापन किया था। वो अच्छे महात्मा निकले। उनका कल्याण होना था इसीलिए वो शरण में आये थे।

१८९. आश्रम में गाछी-बाछी-दासी

मंगल अहीर ने नन्हकू सिंह जमींदार से कह के दो-तीन गाय आश्रम में मँगवा लिया। उसने कहा– महाराज के मैं दूध पियइहौं। जंगल में रखे और दूध पिलाया करे। गाँव की गाय चरे आवे तो मंगल दादा भगा दिया करें तो गाँव के पटेलों ने धारकुण्डी महाराज से महाराज की शिकायत किया, बोले– हमारी गायें चरने नहीं देता है मंगल भाई। स्वामीजी चले आये अनुसुइया, बोले– महाराज, ये लोग शिकायत करते हैं। दासी बाछी गाछी.... आप ही तो कहा करते हैं– **दासी बाछी गाछी। तीनों साधु के फाँसी।।** तो आप गाय क्यों रखे हैं महाराज? महाराज बोले– बेटा, हम नहीं रखे हैं, वो मंगल दादा रखे हैं। ऊ अहिरे के मार के भगाई दो, हमें नहीं चाहिए। हमारे पास कुच्छौ नहीं। धारकुण्डी महाराज बोले– नहीं महाराज, आपके नहीं रखे का चाही। आपके कथनी में कुछ और

है, करनी में कुछ और है। महाराज बोले– का कहा? तहूँ कहत हैं। जा तहूँ के रखेका पड़ी। महाराज के यहाँ त नाममात्र रहा, वहाँ हजार खाँड़ गायें हैं, उतनी भैंसें हैं। और पता नहीं कितना.... दो-एक हजार बीघा खेत हैं। महाराज बोले– तहूँ कहत हैं, जा तहूँ के करे के पड़ी। बस भागे स्वामी जी फिर वहाँ से। बोलती बन्द हो गयी। चले गये। बाद में एक बार हम गये धारकुण्डी। हम बोले– यह सब क्या है स्वामीजी? धारकुण्डी महाराज बोले– यार, महाराज आशीर्वाद दिये, उहै है। और का है!

१९०. ब्राह्मणों द्वारा आश्रम में भागवत एवं ब्राह्मण-भोज

महाराज का दरबार लगने लगा। श्रद्धा की लहर चारो तरफ दौड़ गयी तो ब्राह्मण पहुँचा करें। एक दिन चार-छः-दस गाँव के पण्डित पहुँच गये। वे बोले– महाराज, आप ब्राह्मण-भोजन काहे नहीं कराते? महाराज बोले– भाई, मैं तैयार हूँ। तुमलोगों से खाते बने तो करो ब्रह्म-भोजन। हमें कुच्छौ कमी नहीं है। जो मन आवे, बनाओ। जो मन आवे खाओ। लेकिन एक बात ध्यान रखना, झगड़ा भर मत करना। बस इतनी जिम्मेवारी रखना। वे बोले– महाराज, झगड़ा न होई। अब बढ़िया मण्डप बनाया, भागवत बैठा दिया और ब्रह्मभोज में जो उन्हें आता रहा, वो सब बनने लगा। महाराज के जीवनकाल में डालडा कभी नहीं आया था। विधिवत् भोजन बनने लगा रात-दिन। महाराज बोले– जै दिन मन करे,

बनाओ खाओ। अब चिलम चल रही है महाराज की और नीचे वहाँ बन रहा है उनका विधिवत्।

इतने में जब सुना गाँववालों ने महाराज के यहाँ ब्रह्मभोज चल रहा है तो कीर्तन-मण्डली चली आयी एक गाँव से। उसमें एक हारमोनियम बजानेवाला था हरिजन। वह अच्छा गायक भी था और बजानेवाला भी रहा। भागवत का जो मण्डप बना था, वह उसकी परिक्रमा कर ले गया दो-चार कीर्तन करते हुए। अब भागवत पढ़ने वाले पंडित ने भागवत बन्द कर दिया। बोले– अनर्थ हो गया। ये भागवत की कथा तो भरभंड हो गयी। अब सीधे महाराज के पास पहुँचे, बोले– महाराज, यज्ञ विध्वंस हो गया। महाराज बोले– कैसे? वे बोले– वह हरिजन भागवत की कथा की परिक्रमा कर दिया। महाराज बोले– हमने कहा था कि अपना पहरा देओ, अपने ठीक से करो, क्यों हरिजन को जाने दिया तुमलोगों ने? तब महाराज ने उन मण्डलीवालों से पूछा तो हरिजन और मण्डली वाले बोले– महाराज, हम जानते थे, हमरे छुअतमान ई सब नष्ट हो जइहैं इसलिए मैं दूर-दूर घूम रहा था। हमने मण्डप को नहीं छुआ हमें इस बात का ज्ञान था। ये मण्डप का डण्डा गड़ा है, उससे ५ फीट की दूरी पर मैं हारमोनियम बजा के घूम रहा था। हमलोगों ने छुआ ही नहीं। पंडित बोले– आहाँ, भरभण्ड हो गया। कोई बोले– सर्वनाश होई गया। अब भागवत बन्द।

महाराज लाख समझावें, बोले– अरे, भगवान तो शबरी का बेर खात रहे, तोहार भरभण्ड हो गया एकरे परिक्रमा करने से।

एक गर्गजी थे। वो मिलिट्री में रह चुके थे। उनके पास बन्दूक थी। वे जंगल में घूमा करे। रात-दिन शिकार किया करे, वहीं मृगा मार के खाया करें, शराबो पियें। वे आये तो बन्दूक टाँग के बोले– अरे महाराज, हम बभनन के बुलाय के आपने नष्ट कर दिया। **'धर्म हेतु अवतरेउ गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।।'** (मानस, ४/८/५) महाराज बोले– करे, तहूँ कहत है का? दे रे पउवा भर एके। (गाँव में एक कुम्हार रहे, वह शराब बनावा करे। वह एकाध बोतल आश्रम में भी रख दे कि किसी का हाथ-पाँव, टूट-फूट जाय तो दवा का काम करेगी। उस समय आश्रम में थी।) गर्ग ने पी लिया तो बोले– कवन कहता है धरम नष्ट, यज्ञ विध्वंस हो गया? ये कथा जो पंडित कह रहा है, ये वहाँ चित्रकूट में होटल में बैठ के पकौड़ी खात है जहाँ चमारो खात है, भङ्गी-डुमारौ खात हैं। कवन कहता है धर्म भ्रष्ट हो गया। और ई तो भगवान का नाम लेते हुए घूम रहा था। पंडित बोले– अरे गर्गजी, रहे देओ। बभनन की प्रतिष्ठा न खोय देव! महाराज से बोले– गुरु महाराज, अब सब ठीक होई गया। फिर भागवत शुरू।

बड़े सवेरे फिर हंगामा मच गया। दस गाँवों से पंडित बुलाये गये थे। उनमें से एक बिगड़ गया, बोले– महाराज, मैं भोजन न

करिहों। ब्राह्मण का भोजन न करना बहुत बड़ी धमकी है। महाराज बोले– करे, क्यों न करिहे? का होइगा? वह बोला– हमारा जो पटिदार है गुर्दवान पंडित, ओ कढ़ाही में बैठ के पूड़ी निकाल रहा है। छः महीने पहले उसका और हमारा खान-पान टूट गया था। ओके बनाई पूड़ी हम नहीं खा सकते। महाराज बोले– देख, ये राग-द्वेष अपना घर में रखो। गाँव में हुआ ही करता है। यहाँ यह जगन्नाथजी का भात है। यह तीरथ है। यह संतों का दरबार है। यहाँ राग-द्वेष छोड़ के आया करो। राग-द्वेष नदी के उस पार ही छोड़ दिया करो। वह बोला– आहाँ, जिअत माखी न निगली होई महाराज! महाराज समझाये दो-तीन बार, फिरो न माने। तब महाराज बोले– करे, जब जानत रहा कि तोसे राग-द्वेष है तो तुम्हरी तरफ से खड़े होके हम लाठी चलाई! करे, जानत रहा कि महाराज के लिए सब बराबर हैं, जैसे तू, तैसन वो! वह बोला– ई तो जानत रहा हूँ। महाराज बिगड़े– तब तूँ आया का करे? वहीं से कहे के चाहत रहा– परमहंस बाबा की ऐसी की तैसी। मैं न जइहौं। करे तोरी बभना की, काहे आया रे। महाराज बुरी तरह बिगड़ गये– भाग यहाँ से। हम कोल-भीलों को खिला देंगे। हम तो पहले ही जानत रहे तू झगड़ा करिहो। तुमलोंगो से खात ही नहीं बनत तो हम का करें। हम बुला लेंगे इधर जंगलों से। तमाम हैं, कोल-भील खाय लेइहें, चलो हटाओ। पंडित बोले– अरे, महाराज

तो नाराज होइ गये। वे जाकर अनुसुइया मंदिर में बैठे, आधा घण्टा पंचायत किये, कहने लगे– महाराज तो नाराज होइ गये। हम तो सोचे, मनइहैं। फिर आये, बोले– महाराज, बूँदिया प्रसाद मिल जाय। महाराज बोले– तोहरे लिए हमरे पास कुच्छौ नहीं है। फिर सब साथ बैठ के भोजन किये। रागद्वेष सदा के लिए खतम हो गया। कई बार ब्रह्मभोज हुआ, एक बार भी किसी प्रकार की झंझट नहीं हुई।

१९१. आदिवासी महिलाओं द्वारा भोजन से इनकार

होली के समय पर महात्मा लोग भ्रमण करते हुए आये.... पंचकोशी परिक्रमा....। एक दिन अनुसुइया में जरूर भण्डारा हो। साढ़े तीन सौ से सात-आठ सौ तक महात्मा आया करें। तो महाराज के यहाँ भण्डारा हो तो कोल-भील भी चले आवें। और तो सब प्रसाद पावें लेकिन कोल-भीलों की औरतें प्रसाद न पावें। हमें पता देर में चला। एक बार हमारी निगाह पड़ गयी तो हमने कहा– पाँड़े, ये माई लोग बैठी हैं पेड़ के नीचे, इनको खिलाओ। पाँड़े बोले– ये नहीं खायेंगी महाराज! हमने पूछा– क्यों? पाँड़े बोले– ये ब्राह्मण का छुआ नहीं खातीं। अब हमें नयी बात मिल गयी। हम बोले– अरे, पहली बार सुन रहे हैं पाँड़े! हमको इनके पास ले चल। माई लोगो से बात करना हमको आता नहीं था। हम बोले– माई, आप खाती क्यों नहीं हैं? वे बोली– अरे स्वामीजी! ये

ब्राह्मण, पाँड़े, मिश्रा छुए होइहैं, इनका छुआ हमलोग नहीं खाते। हमने पूछा– क्यों? वे बोलीं– हम शबरी के खानदान के हैं। ये अशुद्ध थे, ये सब शबरी माई के चरण धो-धो के पीये हैं तब ये शुद्ध हुए हैं। हम उस शबरी के खानदान की हैं। हम श्रेष्ठ हैं। ये हमलोगों से नीचे हैं इसलिए हम इनका छुआ नहीं खाते। हम बोले– बात तो सही है। पाड़े से हमने कहा– किसी तरीके से इन्हें खिला, ये भूखी हैं।

हमने पाड़े के कान में कहा, योजना बता दिया। हम बोले– देख, इधर भण्डारा बाभनन का चल रहा है ना? पाँड़े बोले– हाँ महाराज। हम बोले– उधर देख तो अहीरन के कढ़ाई चढ़ी है। देख, कोई बाभन तो नहीं छुआ। पाँड़े बोले– नहीं महाराज, उधर अहीरै-अहीर हैं। हम बोले– जल्दी कर। कोई बाभन छूने न पावे, अहिरे से परोसवा। अहीर झाबा भर-भर के भोजन लाये, लगे परोसने। एक-एक भीलनी १५-१६ पूड़ी खाये। और वे बढ़िया विधिवत् परोसे। चीनी ऊपर से परोसी जाती है, वहाँ का नियम है। आधा किलो चीनी तो सभी खा ले गयीं। उसमें पानी का छींटा देके, उसमें पूड़ी मीस के। हम खूब खवाये। हम कहते जायँ– पता नहीं ब्राह्मण ऊँचे कैसे हो गये? अब पंडित लोग खड़े-खड़े मुस्कुरायें। तब अहीरन से कहा– देखो रे, कोई छुवे न पाये पंडित। वे बोले– बेफिक्र रहो महाराज, न आये पइहै।

जब वहाँ भोजन हो गया तब उन्हें शक हो गया कि कहीं पंडितवाली पूड़ी तो नहीं खिला दिया। तब हम बोले– माई, माता शबरी के चरण धो के पिया, ब्राह्मण उसी समय से शुद्ध हो गया तो बाद में अशुद्ध कब हुए? वो शुद्धे-शुद्ध चले आ रहे हैं। दोबारा कभी अशुद्ध हुए? सुनने में आया? वे बोलीं– कभी नहीं। हम बोले– शुद्धे चले आवत हैं। कब अशुद्ध हो गये? ब्राह्मन त तब से शुद्धे चले आवत हैं। अब उनके छूने में कोई हर्जा नहीं है। हाँ, फिर कभी घटना घटी हो, अशुद्ध हो गए हों तब ये गलत हो सकते हैं। माता शबरी का चरणामृत कब कमजोर पड़ गया जो ये अशुद्ध हो गये! उनके चरणामृत का भगवान की कृपा से इतना प्रभाव है कि युगों, कल्प-कल्पान्तरों तक शुद्ध रहेगा माई। शबरी भगवान के धाम चलीं गयी, भगवद्-स्वरूप को प्राप्त हो गयीं। उस स्वरूप के लिए तो हमहूँ तरस रहे हैं माई। तुमलोग भजन करो ना! वे बोलीं– महाराज, ठीक कहत हौ। ई ज्ञान हम लोगन के कोई बतइबे नहीं किया महाराज। हम बोले– कोई न बताई तुमलोग तबौ शुद्ध रहिहो। बहुत खुश हुईं। कई भण्डारा हुआ, तब से सब बराबर बैठ के खाया करती हैं। भ्रान्तियाँ महापुरुषों की शरण-सान्निध्य के अभाव में पनपती हैं।

१९२. गीताप्रेस की गीता पुस्तक का मिलना

आहिस्ते-आहिस्ते..... संस्कृत हमें मालूम नहीं थी। गीता

लिखने का हमें आदेश हुआ कि तुम्हारे सब संस्कार खतम हो गये, केवल एक संस्कार बाकी है। सारी वृत्तियाँ समाप्त हो गयी, केवल एक वृत्ति बाकी है– गीता लिखना। और वृत्तियाँ हमारे पास से हमें छोड़ के वो चली जा रही हैं, हम देख रहे हैं। और एक हमारी परिक्रमा कर रही है छोटी सी। उर की वृत्तियाँ ऊँट के रूप में हैं, सारे ऊँट वो चले जा रहे हैं, एक छोटा–सा ऊँट हमारी परिक्रमा कर रहा है। हमने पूछा– वह क्या? भगवान ने कहा– गीता लिखना। और संस्कृत बिल्कुल नहीं मालूम। जब संस्कृत की गीता को देखा तो आधा 'त', आधा 'म', आधा 'च', आधा 'छ'। हम सोचे ई लिखना भूल गया लगता है। फिर सोचे– अच्छा तो ई बंगाला जादू होगा। ये किचिर-किचिर लिखा है काट-काट के। अरथ लिखा रहे, महात्म्य रहे– पहला अध्याय पढ़ो, बैकुण्ठ जाओ। दूसरा अध्याय पढ़ो, स्वर्ग जाओ। तीसरा पढ़ो, राजा हो जाओ। ये गपोड़ा बड़ा अच्छा लगे। अब हम सोचे– बैकुण्ठ शायद कोई नगरी होगी जैसे– इंग्लैण्ड है, आस्ट्रेलिया है, ऐसे ही कोई जगह होगी और फिर हम सोचे– राजा हो जायँ, क्या बनें? समझ में न आवे! बाद में महात्माओं से परामर्श किया तो पता चला– इ अधकटा-अधकटा लिखा है, यही है गीता। हम बोले– बेड़ा पार हो गया। ये तो इस जनम में कभी समझ में नहीं आयेगा। तब इसका अर्थ क्या? तो एक अन्वयार्थ गीता देखने को मिल गयी।

हम बोले– हमारे पास होती तो हम समझ पाते, एक-एक वाक्य का अर्थ क्या है? तो मन में अन्वयार्थ गीता लेने की चिन्ता हो गयी।

उस समय बारह आने की मिलती थी गीताप्रेसवाली। हमें यह भी नहीं मालूम कि चित्रकूट में भी दुकान हो सकती है। हमें इतना अंदाज था कि इलाहाबाद में दुकान है। तो बारह आने की गीता और थोड़ा पैसा आने-जाने का लगेगा, ढाई रुपया लगना चाहिए। ढाई रुपया मिल जाता तो हम गीता ले लेते। ढाई रुपया रोज रटा करें। ढाई साल बीत गया, किसी ने ढाई रुपया हमें दिया ही नहीं। महाराज को जो कुछ रुपया, बीस आना चढ़ जाय, वो हमीं रखा करें। बोले– ई महाराज का है, हम कैसे ले लें? वो छू नहीं सकते। गद्दा उठा के उसके नीचे फेंक दिया करें। फिर हमने इरादा त्याग दिया– हम भजन छोड़ के कहाँ गीता के चक्कर में पड़ गये। पोथा पढ़ने से क्या होता है? शाम को इरादा त्यागा– अब हमें गीता नहीं चाहिए। बड़े सवेरे जंगल घूम के आये, यहाँ महाराज विराजमान हैं। पासवाली कोठरी के चौखट पर गीता रखी हुई थी। तो हम सीधे, निगाह पड़ी तो उधर बढ़े, गीता उठाया। हमें पहले प्रणाम करना चाहिए था लेकिन गीता बाहर से हमने त्याग दिया, मन में भरी हुई थी तब तो पाँव उधर घूम गये। गीता उठाया। हमने कहा– महाराजजी! ये किसकी है? बोले– तू ही तो पढ़वइया है! और किसकी है? देखो इसको, मूर्ख की तरह पूछत है किसकी है?

देखो, एकर बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। पूछत है किसकी है? तोहरे तो हैं। तोही तो पढ़वइया है। और के है! हम बोले– जय भगवान की! ढाई साल हो गया ढूँढ़त-ढूँढ़त, तब नहीं मिली। आज हमने इरादा त्याग दिया गीता नहीं चाहिए, तब पड़ी मिल गयी यहीं पर। रात में कोई आया भी नहीं। पता नहीं कौन रख गया? व्यक्ति आया ही नहीं वहाँ पर। ऐसी बहुत सी अनहोनी घटनाएँ घट गयी। बैठे-बैठे जंगल में गीता की आपूर्ति हो गयी।

१९३. गीता लिखने का आदेश

अब महाराज कहें– तोके गीता लिखना है, मोके पढ़ के सुना तो ई गीता प्रेसवाली। हम सुनाते गये। महाराज कहें– धत् तेरी जयदयाल गोयन्दका की!...आशीर्वाद जरूर दें...भर्रो मचाये पड़ा है। ऐसन नहीं रे, ऐसन अर्थ है। पढ़े-लिखे तो थे नहीं महाराज। तीन दिन तो स्कूल गये थे। अर्थ सटीक बतावें। क्यूँ? महाराज एक बार पूरी पढ़ ले गये, बस उतनी ही शिक्षा थी। महाराज कहे– हो! शरीरिया पढ़ी-लिखी नहीं है। आत्मा अंग्रेजियो जानत है। कोई इंग्लिश में बात करे, मैं बता दूँगा कि इसके मनोगत भाव क्या हैं? मोके भगवान पढ़ावा करत हैं। जब गुरु महाराज अनुसुइया में अकेले, कोई नहीं। इधर छः-छः हाथ लम्बे सर्प। इधर अजगर पड़े हैं। भालू कोठरियों में ऊपर-नीचे। शेर घूम रहे हैं। और महाराज को भगवान का आदेश था– तुम्हें यहाँ रहना है। जनम भर यहीं रहना

है। भगवान चाहे तो शेर की गुफा पर बैठा सकते हैं।

सत्संगी महाराज का एक उपदेश था ठोस। दुनिया में सबसे गरीब कौन है? तो लोग कहें– कन्या। चाहे गरीबे के घरे हाथ पकड़ा दो, विवाह कर दो, बेचारी चली जायेगी, चूँ नहीं करेगी। चाहे बुड्ढे को व्याह कर दो तब भी चली जायेगी। क्या थी झाँसी की रानी! वो ५५-५६ साल का बुड्ढा राजा और ये १४ साल की लड़किया। ब्याह हो गया न। वो गयी लेकिन झाँसी को सँभाल दिया। कन्या हो गयी तो क्या? उहूँ, उससे भी गरीब! तो बोले– गाय। चाहे कसाई को पकड़ा दो, बेचारी चली जायेगी। बोले– उहूँ। उससे भी गरीब! बोले– उससे गरीब कौन है? बोले– साधु, जिसके हृदय में भजन जागृत है, इष्टदेव रथी हैं, भगवान उठा के शेर की गुफा में बैठा दें तो उसको बैठना पड़ेगा। कदाचित् आज्ञा का रंचमात्र भी उल्लंघन कर दिया तो फिर खैरियत नहीं है, एकाध जन्म का झटका लग जायेगा। भगवान की सीमारेखा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। सबसे गरीब वो साधु है जिसके हृदय से आत्मा जागृत है, भगवान रथी होकर मार्गदर्शक के रूप में खड़े हैं। वो कह दें, यहाँ पाँव रखो और एक इंच भी उसके इधर-उधर रखा तो फिर वो आज्ञा-उल्लंघन कहलाता है। भगवान जहाँ रखते हैं, रक्षा भी करते हैं। उल्लंघन कर दिया तो असुरक्षित है। भगवान के आदेश का पालन ही सुरक्षा है। तो **'रेख लाँघ सीय बाहर**

जाहीं। बिधि बस काल करम कठिनाई।।' ये हर साधक के लिए लागू होता है।

१९४. बारहमासी का अवतरण

गुरु महाराज की एक ही कविता है बारहमासी। वह भी गुरु महाराज ने लिखी नहीं, आकाश से उतरी। एक दिन बोले– हो! आकाश बोलत है रे। मैं कैसे बताऊँ, तीन दिन से बोलत है। और मैं सुनत जात हूँ, मोके याद होत जात है, आकाश बोलत है। तुमलोग याद कर लो, हमें भूल जाई। तो फिर महाराज गुनगुनाने लगे, सबलोग जो थे, याद कर लिया।

लावनी सुन बारहमासी।
कटे जासे जनम मरण फाँसी।

चैत में चिन्ता यह कीजै।
यह तन घड़ी घड़ी छीजै।

इससे करिये तनिक विचार।
सार वस्तु है क्या संसार?

सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।
नित्यानित्य विवेकिया, लीजै बात बिचार।।

बारहों महीनों की बारह पंक्ति। यह पुस्तिका के रूप में भी प्रकाशित है। हम तो थे नहीं जब ये घटना घटी। हम आये तो ये

चर्चा का विषय था। महाराज जब महाप्रयाण को प्राप्त हो गये, दो साल बाद हमने देखा कि महाराज की विद्या तो सब भूल गये, महाराज का नाम तक लिया नहीं जा रहा है। महाराज की ब्रह्मविद्या किसी की जबान पर नहीं है। महाराज की साधना भी किसी के जबान पर नहीं है। सब ईंटा-पथरा में उलझ गये। **साधु फँसे ईंटन में। गृहस्थ फँसे छींटन में।।** ये तो आफत कर दिया। तब हमारे मन में ये भाव आया– कम से कम गुरु महाराज की जीवनी तो हमें याद है। हमने बोल दिया, भक्तों ने लिपिबद्ध कर दिया।

१९५. शरीर छोड़ने से पूर्व महाराजजी की चेतावनी

गुरु महाराज का शरीर सोने की तरह चमकता हुआ देदीप्यमान, गोर अंगार। शेर की तरह बैठे रहें एकदम। इतना सुडौल महात्मा मंडली में शरीर देखने में कम ही मिला करता था। देखने में कोई बीमारी नहीं। डायबिटीज आहिस्ते-आहिस्ते थी अन्तिम समय में। जब शरीर छूटने का समय आया महाराज का, महाराज बोले.... एक महीनाभर पहले से। तूफान आया, कुछ पेड़ उखड़ गये। बोले– तूफान नहीं है, ये भविष्य है। ये पेड़ नहीं उखड़ा है, ये भगवान भविष्य दिखा रहे हैं। फिर कहने लगे कि देखो, मैं देख रहा हूँ कि आश्रम में कुछ भी नहीं है। मैं भी नहीं हूँ। बस नदी है, जंगल है, पहाड़ है। आश्रम भी नहीं है। मैं बैठा भर हूँ, देख रहे हो लेकिन मैं भी नहीं हूँ। अब सब उजाड़खण्ड है बेटा।

इतने में वो गणेश पंडित आ गये। अरे पंडित, भल आ गयो। तोहार बुढ़ौती, हमरो बुढ़ौती। अब आखिरी समय है। तीरथ, ब्रत जो कुछ करना हो कर लो। तो पंडित बोले– महाराज, संत कहाँ मरते हैं? मरते तो हमलोग हैं। संत तो उस दिन मर जाते हैं जिस दिन स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं। शरीरों का सम्बन्ध छूट जाता है, स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं, फिर शरीर धारण ही नहीं करना पड़ता है। शरीर धारण करना शरीर त्यागने के सिलसिले से मुक्ति मिल जाती है। वे स्वरूपस्थ होते हैं। फिर शरीर जब तक है, तो केवल लोकहित के लिए होता है, उनके लिए तो कुछ भी नहीं। पंडित सत्संगी रहें। गणेश नम्बरदार। पथरा गाँव के। और फिर सत्संग चला।

वो तो चले गये, अब रोज यही शरीर-अन्त की बात चलने लगी। हमें बैठा भर देख रहे हो, मैं हूँ नहीं। हमलोगों ने कहा– महाराज शरीर रखा जाय तो? बोले– हो! राम भी नहीं रखे, कृष्ण भी नहीं रखे। बड़े-बड़े महापुरुष हुए, किसी का तो शरीर नहीं दिखाई देता। किसी न किसी बहाने से शरीर तो त्यागना ही पड़ेगा। शरीर तो त्याग देंगे लेकिन मैं सहज, सूक्ष्म स्वरूप से मैं सदैव विद्यमान रहूँगा इस आश्रम पर, इस जगह पर। कल्याण करता रहूँगा। जो भी श्रद्धा से याद करेगा, मैं उसकी भली प्रकार देख-रेख करूँगा। अत्रि महाराज भी विद्यमान हैं। वैसे तो मैं न मरिहो। कोई

गोली मार देइ त मर जइहो। तो हम बोले– महाराज, गोली से मरने में, बुखार से मरने में फरक क्या है? बोले– यार, कोई निमित्त होता है न शरीर त्यागने का। इसी बहाने शरीर त्याग दूँगा।

१९६. बन्दूक एवं ट्रैक्टर के सम्बन्ध में

एक जौनपुर के वृद्ध सेठ साधु हो गये थे। उनके नाम बंदूक थी। वो भी लिये-दिये चले गये। क्यूँ? कहाँ छोड़े? वो आश्रम में फेंकी पड़ी थी। महाराज जी ने कहा– ये तू अपने नाम करा ले, हमसे कहें। और एक ठाकुर थे, उन्होंने लाके ट्रैक्टर खड़ा कर दिया, वो भी पड़ा हुआ था। ये भी अपने नाम करा ले। हम बोले– गुरु महाराज! हम क्या करेंगे ट्रैक्टर और बन्दूक? अंदरवाली चीज में कमी न रहे और बाहरवाली हमें कुछ भी नहीं चाहिए। हमें महाराज स्वर्ग नहीं चाहिए। सृष्टि में कुछ है ही नहीं जिसकी हम कामना करें। भगवान के पथ में जो वस्तु है, उसमें रंचमात्र भी कमी का आभास न हो। बाहरवाली वस्तु हम क्या करेंगे? गुरु महाराज बोले– हमें मालूम है तुम्हे नहीं चाहिए। तोरे नाम होई त यहाँ पड़ा रही, नहीं तो जहुआ जात (तितर-बितर) हो जाई। हम बोले– महाराज, हइये का है जो जहुआ जात हो जाई। ना रही तो का फरक पड़त है। फिर बार-बार शरीर-त्याग जब सुना तो हमने कहा– महाराज, ऐसा होवे ना। कदाचित् शरीर त्यागना ही है तो शरीर त्यागने के दस दिन पहले यह आश्रम नीलाम कर दिया

जाय। महाराज जी ने कहा– फिर? हम बोले– फिर भण्डारा कर दिया जाय। दुनिया भोजन करे। और जब कुछ भी न रह जाय तब शरीर त्याग दें। जो महापुरुषों का भण्डारा बाद में होता है न, शरीर त्यागने के बाद, वो आप पहले ही कर डालें। महाराज जी बोले– तुमलोग का करिहो? हम बोले– आप यहाँ कुछ ले के आये थे क्या? एक कमण्डल था, एक छड़ी थी। जब भीतरी वाली वस्तु भरपूर रहेगी तो जहाँ बैठेंगे, आशीर्वाद रहेगा तो वहीं पड़े रहेंगे। खाली दो रोटी खाना है, भजन तो करना है। महाराज ने कहा– आश्रम रहे तो हर्जा क्या है? हम बोले– महाराज, साधक लोग कहीं बर्हिमुखी न हो जायँ कि गुरु महाराज ने यहाँ दस पेड़ लगाये थे आम के, तो ये विस्तार करके १०० हो जायँ। गुरु महाराज कहा करते थे– इस पहाड़ के ऊपर अत्रि महाराज निवास करते थे, वहाँ भी कुछ आश्रम जैसा बन जाय। कहीं ईंटा पत्थर में उलझ न जायँ और आपकी अन्तरंग विद्या भूल न जायँ इसलिए विघ्न हो सकता है भगवन्। महाराज ने यहाँ ये बात कही थी तो यहाँ ऐसा बन जाय, यहाँ ऐसा हो जाय। तब फिर दस मिनट तक चुप रहे, फिर बोले– करे कवन चीज नीलाम कर दूँ। ये जहाँ मैं बैठा हूँ, ये मकनवा पीछे है न, इ पहले से है सिद्धबाबा के समय से। आगे वो अहीर बगीचा लगाये है वो सरकारी जमीन में है। उसमें श्रद्धावश बगीचा लगाये पड़ा है। हमारा वो भी नहीं

है। हमारे पास बेटा एक गद्दा और दो तकिया है। बोल, कवन सी चीज नीलाम कर दूँ। है का मोरे पास जो मैं नीलाम कर दूँ।

वास्तव में शरीर जब छूटा तो गद्दे के नीचे कोई पैसा फेंक जाय, जैसे– आप लोग कोई दस रुपया, कोई दो रुपया, कोई दस आना, कोई एक आना, कोई एक पैसा (उस समय यही प्रचलन में थे।) तो गद्दा का कोना उठा के नीचे फेंक दिया जाय। और जरूरत हो कोई सामान मँगाने के लिए तो उसी में से कोई निकाल के ले जाय और सामान ले आया करे। बाजार वहाँ से १५-२० किलोमीटर रहे, चित्रकूट वहाँ से। जब गद्दा उलटा गया तो साढ़े तीन सौ रुपया निकला। महाराज कहा करें– हमारे पास विश्वबैंक है। मैं पूरे विश्व को भोजन करा सकता हूँ। उस विश्वबैंक में तो साढ़े तीन सौ रुपया निकला। जब आवश्यकता पड़ती, तुरन्त हाजिर हो जाया करे महाराज के पास। **जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।** (मानस, ७/११३/४) अन्तिम समय में महाराज ने सबको आशीर्वाद दिया तो भगवानानन्दजी से कहा, एक और थे उनसे कहा, पता नहीं किस-किस से – जाओ, अब तुम्हारी सब पूर्ति हो जायेगी, तुम्हें मोक्ष सहज मिल जायेगा। और हमहूँ से कहा– जाओ, हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम्हें मोक्षप्राप्ति समझ लो हो गयी अब हमसे। हमारी कृपा से हो गयी। मैं देत हूँ, तुम्हें प्राप्त हो गयी। तो झटके में हमारे मुँह से निकला–

महाराज, अपने बेटों को सबै कहत हैं तू राजा है, तू बादशाह है लेकिन लड़का लड़का ही रहता है क्योंकि दुलार की भाषा हुई। उसके अनुरूप स्वरूप दिखाई पड़े, पापों का अन्त दिखाई पड़े। तो महाराज कहें– हमरे लग्गे, यहाँ हमरे पास से हटिहें तब ना। हम बोले– भजन करके हम प्राप्त करें तब ठीक। गुरु महाराज बोले– भजन अब तोसे न होई। हम बोले– होई काहे न! हमने कहा– आयु भी ठीक है, लगन भी ठीक है, तब क्यों नहीं होगा? फिर गुरु महाराज ने डाँटते हुए कहा कि मैं कहत हूँ तोसे न होई। अन्तर्मन में हमारे यह भाव रहे कि भजन में सूत बराबर कमी न रहे। वास्तव में हमें गुरु महाराज से आशीर्वाद ले लेना चाहिए था कि आपकी कृपा होगी तो भजन होगा। साधक तो निमित्त मात्र होता है। भजन तब पार लगता है जब सद्गुरु मार्गदर्शक के रूप में खड़े हो जायँ। भजन तो तभी पार लग गया था किन्तु हमारे उत्तर-प्रत्युत्तर के कारण गुरु महाराज आज भी एक-एक संकल्प के साथ मार्गदर्शन कर रहे हैं। एक बार भजन जागृत हो जाने के पश्चात् गुरु कभी साथ नहीं छोड़ते।

१९७. महाराजजी द्वारा रेडियो से समाचार सुनना

एक इतना से रेडियो रहे, उससे केवल समाचार सुना करें। समाचार जब आवे कि फलाने जगह योजना बनी है, पुलिया पास हो गया है, वहाँ नदी में पुल भी पास हुआ है। वहाँ ये हुआ, वहाँ

वो हुआ, वहाँ मीटिंग किया, नेता ने ये कहा, ये आश्वासन दिया, महाराज कहें– मारो सार, कुच्छौ नहीं हौ समाचार में। चाय पीके भीतर बैठके बतियावत हैं। वहाँ पर पहाड़ गिर पड़ा, इतने मर गये। वहाँ पर युद्ध में इतने काम आ गये। और वहाँ पे ये मकान गिरा, इतने मर गये। वहाँ आग जला के एक लड़की मर गयी। बोले– हूँ, आज समाचार ठीक है। मूँछ में ताव देके। जब कोई मर-बिलाय जाय तो समाचार ठीक है। ये योजना बनी, वहाँ सड़क पास हुई तो मारो सार चाय पीके भीतर बइठके बतियावत हैं। कुच्छौ नहीं हो, समाचार में कुछ हइये नहीं है। और दोपहर में दो गाने आवें वहाँ गोरखपुर से, कहीं से रेडियो में रमई काका का 'बिदेसिया और बिरहिया'। वो जरूर सुने। दो सुन लेवे दे, बड़ा बढ़िया गावत है। हम अइली, तू रुठली, तू गइली – हमलोगों के समझ में त आवे न! वो दो जरूर सुने। फिर वो खोखा पड़ा रहे चौबीसो घण्टा। महाराज के पास ऐसे ही फेंका रहे।

१९८. शरीर छोड़ने से पूर्व महाराजजी का उपदेश

एक बार केदार बाबा के विषय में हमने कुछ कह दिया, कुछ मुँह से निकल गया तो महाराज बोले– तू बात क्या कहता है, गोली मारता है। फिर बात बदल के बोले– तुमलोग गोली मारते हो। हमने सोचा– अरे भगवान, कहते हैं गोली से मरेंगे। हमीं गोली होई गये का! तुम बात क्या कहता है, गोली मारते हो। तो

तुमलोग गोली मारते हो। कैसे कहूँ छेदत चली जात है। फिर हम सहम गये, कुछ बोलबै नहीं किये, चुपचाप सेवा में लग गये। बड़े सवेरे गुरु महाराज जी ने सत्संग शुरू किया–

राम राम राम जीह जौ लौं तू ना जपिहैं।
तौं लौं तू कहुँ जाय, तिहू ताप तपिहै।। (विनय० ६८)

स्वर्ग में चले जाओगे, तब भी तीनों ताप पिण्ड नहीं छोड़ेंगे। इन्द्र ऊपर बैठा है, मैं नीचे बैठा हूँ, ताप नहीं पिण्ड छोड़ेंगे।

सुरसरि तीर बिन नीर दुख पाइहैं
सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहैं।
जागत बागत सपने न सुख सोइहै
जनम जनम जुग जुग जग रोइहै।

छूटिबे के जतन विशेषि बाँधि जाओगे
होइहै विष भोजन जो सुधा सानि खायगो।

तुलसी तिलोक तिहूँ काल तोसे दीन को
राम नाम ही की गति जैसे जल मीन को।

राम राम राम जीह जब लौं तू ना जपिहैं।
तौं लौं तू कहिं जाय, तिहू ताप तपिहै।

राम-राम, केवल राम... हे जिह्वा! जब तक तू नहीं जपेगी, हे जीव! जब तक नहीं जपोगे, **'तौं लो तू कहुँ जाओ'**–स्वर्ग में

भी चले जाओगे तो तीनों ताप पिण्ड नहीं छोड़ेंगे। तीन ताप– **दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।** (मानस, ७/२०/१) एक तो रामराज्य में किसी को नहीं व्यापता, दूसरा नाम जपोगे तो तुम्हें भी नहीं ब्यापेगा। देह में पीड़ा होना दैहिक ताप। भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अप्रत्याशित प्रकोप हो गया तो दैविक प्रकोप, दैविक ताप। भौतिक ताप– प्राणियों को प्राणियों के द्वारा जो कष्ट होता है वो भौतिक ताप है। इनमें से कोई न कोई ताप तुम्हारा पीछा करता रहेगा। यदि राम जपोगे तो तीनों ताप समाप्त हो जायेंगे। तुम गंगा किनारे चले जाओगे, एक-एक घूँट पानी के बिना तड़प के मर जाओगे। कहीं किसी बैल को पानी से चार-छः इंच दूर बाँध दो, मुँह न पहुँचे तो गंगाजल किस काम का? वह देखता अवश्य है। जब तक मुँह न पहुँचे, पेटे में तो जायेगा नहीं। कल्पवृक्ष के नीचे पहुँच जाओगे तब भी दरिद्रता नहीं पिण्ड छोड़ेगी। कल्पवृक्ष हैं भगवान स्वयं। **सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू।।** (मानस, १/१४५/१) तुम सुरतरु हो, कल्पवृक्ष हो, तुम कामधेनु हो, ब्रह्मा-विष्णु-महेश चरणों की वन्दना करते हैं। भगवान ही कल्पवृक्ष हैं। भगवान ही कामधेनु हैं। वहाँ पहुँच जाओगे तब भी तड़प के मर जाओगे, दरिद्रता पिण्ड नहीं छोड़ेगी। केवल राम का भजन और राम नाम का जाप नहीं करोगे, अन्य छूटने के उपाय बहुत से करोगे, '**छूटबे**

के जतन विशेषि बाँध जायगो, होइहैं विष भोजन जो सुधा सानि खायगो।' अन्य तरीकों से छूटने के जतन करोगे, और भी विशेष बँध जाओगे क्योंकि भगवान एक। पाने की विधि एक। रास्ते में मिलनेवाली सुविधा, संरक्षण एक। तो फिर दूसरा रास्ता पकड़ लिया तो वो तो मिलेंगे नहीं। जाना है हमें काशी तो इस रास्ते में जो लक्षण मिलेंगे, वहीं तो मिलना चाहिए। और जाना है काशी, पकड़ लिया राजगढ़ का रास्ता तो मैं भगवान की संरक्षण में सुविधा वो भी नहीं मिलेगी, आधा भी नहीं मिलेगा और काशी भी नहीं मिलेगी। '**छूटबे के जतन विशेषि बाँध जायगो, होइहैं विष भोजन जो सुधा सानि खायगो।**' विष हो जायेगा भोजन, अमृत में सान के खाओगे। अमृत तो भगवान खुद है। आत्मा अमृत तत्त्व है, शाश्वत सत्य है, सनातन पुरुष है। इसे न शस्त्र काट सकती है, न अग्नि जला सकती है, न वायु सुखा सकती है, न आकाश विलय कर सकता है। मृत्यु से परे शाश्वत है, सनातन है, अमृत तत्त्व है। और विधाता नश्वर! इससे उत्पन्न दिति-अदिति की संतानें नश्वर! '**आब्रह्म भुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन**' (गीता, ८/१६)– सृष्टि रचयिता विधाता और उससे उत्पन्न सारी सृष्टि पुनरावर्ती स्वभाव वाले, पुनः मृत्यु और पुनः जन्मने वाले हैं। मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। अर्जुन! इसलिए तू मेरी शरण आ। नाम हमने अमृत दे रखा है, है नहीं। '**होइहैं विष भोजन जो सुधा सानि**

खायगो।' क्योंकि सुधा तो स्वयं भगवान हैं। उसको हम छोड़ के बैठे हैं। और सुधा नाम धरने से सुधा हो तो नहीं जायेगा।

तुलसी तिलोक तिहूँ काल तोसे दीन को
राम नाम ही की गति जैसे जल मीन को।

तुलसीदास कहते हैं– रे तुलसी, तीनों लोक, तीनों काल में तेरे ऐसे दीन के लिए राम नाम एक गति है। ये भजन बड़े सवेरे शुरू किया गुरु महाराज ने, छः बजे। दिनभर इसी आशय का चलता रहा उपदेश। दो बजे, तीन बजे, चार बजे, पाँच बजे, छः बजे.... दिन भर चला। उतना उपदेश वर्षभर में गुरु महाराज ने कभी नहीं दिया। अन्त में बोले– ऐ, सब फाटक बन्द करो, ताला लगा दो। सामान सब अन्दर रख दो।

१९९. अवध में शरीर छूटने से क्या मुक्ति मिल जाती है?

बनारस के एक त्रिवेदी जी हैं मास्टर, वो पहुँचे हुए थे उस दिन। शरीर त्यागते समय क्या होता है? अवध का प्रभाव क्या होता है?–हम यही बता रहे थे, ब्रह्मविद्या के आलोक में। जब तक हम बता रहे थे, महाराज बैठे सुन रहे थे, गाँजा पी रहे थे, चिलम पकड़ा दिया। एक रघुवीरदास जी थे। रामकुमार नाम का यादव। उस समय यादव शब्द प्रचलन में नहीं था। अहीर, सेवक और दो-तीन और। बोले– लेव, ई आखिरी चिलम है। अब मैं न पिइहूँ। ई चिलम हमारा संस्कार था, आज संस्कार पूरा हो गया। मैं

चिलम के हाथ न लगइहौं। लेव। तो सब उदास हो गये। महाराज के बल पर तो सब दम लगाते रहें, महाराज न पीयें त हम कहाँ पायेंगे? महाराज कहें– तुम चिन्ता मत करो, तुमलोगों को हमारा आशीर्वाद है, तुमलोगों को खूब पीने को मिलेगा गाँजा। आशीर्वाद दिया, चिलम दे दिया, रखवा दिया, बैठ गये। और वो जो आये थे मास्टर साहब, उनका प्रश्न जो था कि अवध में तन त्यागने से पुनर्जन्म नहीं होता। **'चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा।।'** (मानस, १/३४/४) इसका मतलब क्या? और हम ये समझा रहे थे। ये बढ़िया सत्संग का पहलू है।

अन्त में शरीर त्यागते समय ये अवध क्या है और अवध में तन त्यागने से पुनर्जन्म क्यों नहीं होता? **'अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनु पानी।।'** (मानस, ७/९६/७) यही प्रसंग चल रहा था। तब तक तो बैठे-बैठे सुन रहे थे, देख रहे थे हमलोगों की ओर।

२००. महाराजजी का महाप्रयाण एवं समाधि

जहाँ सत्संग समाप्त हुआ, तो हम आये और ओ पंखा हमने ले लिया। पंखा हमने हाथ में लिया, बैठे थे, हम चलाने लगे। हमको लोग चलाने नहीं देते रहे लेकिन हमारा भाव रहे कि हम चलावें। हमने ले लिया, जब तीन-चार बार ऐसे हाँका तो रामकुमार दौड़ के आया, हमरे हाथ से ले लिया तो हम इधर कुँए के पास

खड़े हो गये। हमारे हाथ से वो छीन के ले रहा था, हमने छोड़ दिया। बोले– कौन झगड़ा करे? दे दिया। उसी समय लेटने जा रहे थे। झटके से लेटे। हमने सोचा– महाराज झटके से क्यों लेटे? हम आकर थोड़ी दूर कुएँ के पास खड़े हो गये, इतने में रामकुमार दौड़ के आया हमारे पास – स्वामीजी, स्वामीजी, महाराज के मुँह से एक बात निकली। हम भी आके देखा तो शरीर ठण्डा था। स्वास भी नहीं दिखाई दे रही थी। हम बोले– बवाल क्या है? जहाँ हमने हाथ पकड़ा, बढ़िया शगुन मिलने लगा। पूरा दहिना अंग फड़कने लगा, ब्रह्माण्ड फड़कने लगा तब हम सोचे– उठ के बैठ जायेंगे। लेकिन शरीर ठण्डा है इसलिए तुरन्त दौड़ाया लोगों को। रात को दो बजे डॉक्टर आया कर्बी से, उसने बताया– महाराज तो शरीर में नहीं हैं। फिर भी बढ़िया शगुन होता रहा। हमने सुन रखा था– दशरथ का शरीर तेल में डूबा के रखा गया था। ऊ सुनी-सुनाई बात पर चार-छ: टिना तेल मँगवाया और लोहे की नाव बनवा डाले, और उसी में लेटा के तेल भर दिया, तेल कुछ हमें कम प्रतीत हुआ तो सरसो डाल दिया उसमें। तो सरसों नीचे चली जाई तो तेल ऊपर आ जाई। फिर भर गया पूरा। पूज्य परमहंस महाराजजी का महाप्रयाण ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी, विक्रम संवत् २०१७ तदनुसार २३ मई सन् १९६९ ई० को हुआ था। इन चार दिनों में जो भगत, संत, शिष्य, जो दूरदराज में थे, वो सब

इकट्ठे हो गये। और हमें बराबर सगुन मिल रहा था– बिल्कुल ठीक! हम सोचे– उठ के बैठ जइहैं। और फिर बाद में समाधि दी गयी, तब भी सगुन मिल रहा था। समाधि हो भी गयी। जो महाराज का सामान था, समाधि में सब डाल दिया गया। गाँजा भी, चिलम भी, कमण्डल भी, जो कुछ सामान था, सब। फिर भी शगुन मिलता रहा। इसका मतलब था, देह-त्याग का यही उचित समय था इसलिए सगुन मिल रहा था। और जहाँ महाराज का भण्डारा बीता, जितने महाराज के शिष्य थे, सब चले गये। हम बचे अकेले।

मंगल अहीर पक्का सेवक। गाय रखी थी उसने। वह आश्रम की सेवा किया करे। उसका भतीजा बबुआ नाम का एक लड़का आया-जाया करे मंगल के पास। हमने कहा– मंगल दादा, एके यहाँ रहे दे। यहाँ भले आदमी कभी-कभी आ जाते हैं तो पानी पिलाया करी। महाराज का नियम था, किसी साधु के द्वारा किसी को पानी न पिलायें। साधु की एक मर्यादा होती है। गृहस्थों को पानी गृहस्थ के द्वारा, लड़कों के द्वारा ही पिलवाया करें। साधु न पिलावें। वह लड़का रहने लगा। आश्रम में और कोई नहीं रह गया। जितनी गायें थीं, हमने उन सबको पंडितों को दान दे दिया। पंडित बोले– महाराज, गोदान होत है। हम बोले– जवन महाराज की है, सब ले लो तुमलोग। सब दे दिया। बचाया कुछ भी नहीं। गाय नहीं, कुछ भी नहीं। बस खण्डहर भर बचा। अब हम अकेले बचे

और वो लड़कवा। हम बोले– बेटा, रोटी बना। जो आवे, ओके खिला। वह बोला– हौ स्वामीजी। वह बड़ा मधुर बोला करे।

समाधि में हमारी रुचि थी क्योंकि गुरु महाराज की समाधि थी ना इसलिए। करीब आधी बन गयी तो हम सोचे– जंगल का आश्रम। स्वामी स्वयमानन्द जी आये, वह चार-छः दिन रहे। जब आवें तो हम बड़ा प्रेम से रक्खें। बड़ा स्वागत से रक्खें, जउने में पड़ा रहे। एक से दो भले। जितना स्वागत से रखें उतना टिन्नाय। वह बोले– अब मैं जा रहा हूँ। हमने कहा– अरे महाराज, आप ही तो एक महापुरुष हैं। यहाँ आयेंगे लोग तो किसका दर्शन करेंगे? आप दिव्यमूर्ति हैं, आप विराजें। रुक जायँ। लेकिन वह झोला-झण्डी उठाकर कहते– हम चल रहे हैं। हम उन्हें मना के रोक लें। फिर तीन दिन बाद झोला उठा लें। यही क्रम चलता रहा, तब हमने गुरु महाराज से कहा– महाराज, ये जंगल का आश्रम है। जो ही आता है, टिन्ना के भागत है। का बात है? तब महाराज ने दर्शन दिया, आसन में बैठे-बैठे– करे, तू काहे चिन्ता करत है। मैं आसन पे बैठा हूँ। मैं देखत हूँ। तू बैठ चरणन में। हम निश्चिन्त हो गये। समाधि भी बन गयी।

।। ॐ ।।

श्री परमहंस महाराज जी की लोकोक्तियाँ

-:: १ ::-

प्रायः भाविक समाज पूज्य महाराजजी से निवेदन करता था कि, "महाराजजी! मैं भी आश्रम के सेवकों की तरह आपकी सेवा में रहूँगा और भजन करूँगा।" उनके इन विचारों पर श्री गुरुदेव भगवान कहते थे- "हो! आन के मुँहें चने की रोटी बहुत नीक लागत है! पीयर-पीयर लेकिन गटई धरत है।" उसके साथ नियमरूपी नमक चाहिए, प्रेमरूपी पानी चाहिए तभी वह निगलते बनता है। चित्त ही चना है। चित्त की प्रवृत्तियों को समेटना तथा उनका निरोध करना ही निगलना है। इस चित्त के पूर्ण निरोध के साथ ही उस परमतत्त्व का आलोक है, जहाँ जीवात्मा समाहित हो जाती है।

-:: २ ::-

वस्तु के अभाव में भाविकों की ओर से किसी कार्यक्रम का प्रस्ताव आने पर महाराजजी कहते थे- "हूँ, सुवा न सुतारी, चले हैं बन के व्यापारी।", "उकताइल कुम्हार नखे से माटी खने।" इस तरह उकताने से कहीं कार्य होता है। सूत न कपास जुलाहे

से लट्ठम लट्ठा। "पहले प्रबन्ध करो, पुनः धैर्य और शान्ति से कार्य आरम्भ करो। घोड़े के दिन और आदमी के दिन सदैव एक जैसे नहीं रहते; बदलते देर नहीं लगती।" इस प्रकार समझाते हुए, विभूति-प्रसाद देते हुए आप सस्नेह एक छड़ी लगा देते थे। यह छड़ी आशीर्वाद के रूप में इष्ट के निर्देशानुसार ही लगती थी।

-:: ३ ::-

किसी अनन्य भक्त को कठिनाइयों, रोग इत्यादि से घबराया देखकर पूज्य महाराजजी सान्त्वना देते थे- "हो...! माया के और भगवान के सदा ही से लड़ाई है। मोर बढ़ती माया देखै नहीं चाहत है। आखिर शंखिया बाजी, पर बाबा के खिझाय के। जो, विभूति ले फिर सब ठीक होई जाई।"

कोई भाविक कार्य में सफल होते-होते सहसा असफल हो जाय और आकर महाराजजी से प्रार्थना करे, तब वे कहते थे, "राति भर गायेन बजायेन, सबेरे बबुआ के नूनियै नाहीं।" देखिये तो! इसे कितना सचेत किया, यहाँ से कितना प्रण करके गया फिर भी आलस्य और निद्रा में समय खो दिया। बेटा! "आलस्य निद्रा जमुहाई। तीनों काल के भाई।" जाओ, आलस्य त्यागकर कार्य करो। हताश होने की आवश्यकता नहीं है। कोई उलझन आये तो प्रातः-सायं मेरा स्मरण कर लेना। मन से आते-जाते रहोगे तो सब ठीक रहेगा।

-:: ४ ::-

अनुसुइया आश्रम में आनेवाले भक्तों की सुख-सुविधा का महाराजजी बड़ा ध्यान रखते थे। उनकी आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु आश्रम में सदैव रहती थी। उनके लिए प्रतिदिन दाढ़ी बनवाने की व्यवस्था, चाय-काफी का प्रबन्ध, तेल-साबुन-कंघी-शीशे की व्यवस्था में महाराजजी ध्यान रखते थे, यद्यपि आश्रम के लिए इनका कोई उपयोग नहीं था। भक्तों को महाराजजी बड़े स्नेह से खिलाते-पिलाते और अपने हाथ से प्रसाद देते थे। भोजन की इतनी पुष्कल व्यवस्था तो अब कहीं देखने को भी नहीं मिलती। घी से तर रोटियों से लेकर नित्य नवीन व्यंजन सर्वसुलभ था। भक्तों के भोजन के अवसर पर महाराजजी किसी-न-किसी बहाने आसन से उठकर उनके बीच पहुँच ही जाते थे, उनसे कहते थे, "हो! पालथी मार के बैठो! उकड़ बैठकर खाने से पेट में सिलवट पड़ि जात है। आधा पेट खाइल और जवानी क मरल बराबर होत है।" परसनेवाले साधुओ से बिगड़कर कहें, "अरे, अँचार तो दिया ही नहीं। अब मैं क्या करूँ? अरे! ये सब भले घर के अच्छा खाने-पीनेवाले लोग हैं। थोड़ा घी और डाल। खिचड़ी के चार यार। दही, पापड़, घी, अचार। इसे एक रोटी और दे दो।" जब समझ लें कि अब इन सबका पेट भर गया और तो किसी तरह नहीं लेंगे तो कह उठते थे, "अरे यार! हम तो भूल ही गये। बड़ी अच्छी बर्फी आई है, रखी है। अब उसके साथ एक-एक रोटी

और चल जायेगी।" महाराजजी का अमित स्नेह पाकर भाविक विभोर हो उठते थे।

किन्तु साधुओं के आहार-विहार पर पूज्य महाराजजी सतर्क दृष्टि रखते थे। जब वे देख लें कि कोई साधक भजन न करके केवल खाने पर ही उतारू है तो बिगड़ते हुए कहें, "खाये रहो बेटा! बाबा का आटा, बाबा का घी। शाबास-शाबास बाबाजी! न भजन, न चिन्तन। अरे साधू को सूक्ष्म और सात्विक आहार करना चाहिए। दो कौर कम खाना चाहिए, कम सोना चाहिए और संयमपूर्वक निरन्तर भजन में संलग्न रहना चाहिए। भागो यहाँ से! बाँधो बिस्तर! विरह-वैराग्यशून्य अकर्मण्यों की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है।" इतने से ही साधक में ग्लानि एवं शान्ति की लहर दौड़ जाय और पुनः खानपान के व्यसन से छूटकर वह अनवरत साधना में प्रवृत्त हो जाय।

महाराजजी का 'स्पेशल' प्रसाद गाँजा था। एक सज्जन साधू बनने के लिए आश्रम आये। श्रद्धावश झाड़ू लगा रहे थे। कुछ लोग चिलम पी रहे थे। एक ने उन सज्जन से भी कहा, "क्या आप भी दम लगायेंगे?" वे सज्जन तत्क्षण झाड़ू फेंककर चिलम की ओर लपके। वे चिलम के पास पहुँचे ही थे कि महाराजजी बिगड़ पड़े, गँवार कहीं का! भाग यहाँ से! आया साधू होने। खाने को मिले, ऊपर से ज्ञान मिले तब तो दुनिया ही साधू बन जायेगी। ये त्याग सीखने आये हैं। देखिये, कैसा झपट

रहे हैं चिलम के लिये! हर दे, हरवाह दे, पीछे से खोदे के पैना दे! जाओ, घर पर अपना बाल-बच्चा देखो। सुख-दुःख तो आता-जाता रहता है। अभी तुम्हारे साधू बनने का समय नहीं आया है। जब वह समय आयेगा तो भगवान ही सहायता कर देंगे, बुला भी लेंगे, तभी पार लगोगे।" इस प्रकार साधकों की सूक्ष्म गतिविधियों पर पूज्य महाराजजी सतत सतर्क दृष्टि रखते थे। इस तरह की प्रताड़ना से आश्रमीय साधकों एवं सुननेवाले भाविकों को भी साधनात्मक दिशा मिलती थी।

-:: ५ ::-

प्रारम्भ में अनुसुइया में बहुत कम दर्शनार्थी आते थे, किन्तु महाराजजी के निवासोपरान्त शनैः-शनैः भक्तों की संख्या बढ़ने लगी। महाराजजी कुछ-न-कुछ प्रसाद सबको देते थे, जिसे सभी सादर ग्रहण करते थे। कभी-कभी कोई कर्मकाण्डी भी आ जाते थे जो भगवान के नाम पर कुछ करते थे किन्तु वास्तविक क्रिया से अनभिज्ञ रहते थे। उनके पथ को प्रशस्त करने के लिए पूज्य महाराजजी उन्हें छाछ तथा कुछ अन्य प्रसाद देते हुए कहते थे, "लो, पानी पी लो! बहुत दूर से आये हो। धूप में मुँह सूख गया है।" पण्डित बोलते, "महाराजजी! अभी तो हमने स्नान-ध्यान नहीं किया है। सोचते थे कि गंगा-स्नान कर लेते।" महाराजजी बोल पड़ते थे, "हूँ लिपटै के डाइन, भूखा रहे इतवार। पण्डितजी, पण्डित बने हैं! अरे लो प्रसाद, पानी पियो। ज्ञान ही गंगा है।

स्वाँसा में सुरत लग जाने पर ही वह ज्ञान मिलता है। प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ही ज्ञान है। श्वास में सुरत के तद्रूप हो जाने पर ही वह इष्ट विदित होता है।"

–:: ६ ::–

कभी-कभी आश्रम के ही शिष्य महाराजजी के समक्ष कोई सुझाव प्रस्तुत करते तो आप एक दृष्टि उस शिष्य पर डालें और चुप रहें। जब वह कुछ दूर हट जाय, सुनने की स्थिति में रहे, तब पास बैठे भाविकों की शिक्षा के लिए महाराजजी कहते थे, "हो, देखत हो! अण्डा कहे बच्चा से चूँ-चूँ मत कर। हमार जनमावल हमहीं के ज्ञान सिखावत है। अभी क्या हुआ है? परीक्षा की घड़ी तो अभी आगे पड़ी है। जब माया परीक्षा लेती है तो बूढ़े जवान हो जाते हैं। नामर्द मर्द बन जाते हैं- **'शृंगी की भृंगी करि डारी, पराशर के उदर विदार।'** वे सभी योगी ही तो थे। कल का जोगी और गोड़े ले जटा। बक-बक लगाए है। अरे, जितना पूछा जाय, उतने का ही उत्तर देना चाहिए। साधक को मन और इन्द्रिय से मौन रहना चाहिए।"

ऐसी प्रताड़ना मिलने पर कोई-कोई साधक दो-एक दिन के लिए मौन धारण कर लेते थे। महाराजजी उन्हें सुनाते हुए कहते थे, "वाह! मौनी बने हैं। केवल बोलना बन्द करने से क्या होगा? जिह्व से न बोला जाय किन्तु मन और इन्द्रियों में तरंग है तो वह

मौन कहाँ? साधक को चाहिए कि पूर्तिपर्यन्त बाह्य वातावरण को कदापि स्थान न दे। चलते-चलते साधक जब आकाशवत् हो जाता है तभी उस लक्ष्य के दिग्दर्शन के साथ मौन होता है। चढ़ते-चढ़ते साधक जब पुलई (टुनई या चोटी) तक पहुँचा और पोल पा गया तब पावा मौन।"

-:: ७ ::-

प्रायः कुछ श्रद्धालु घर से रूठकर क्षणिक वैराग्य के आवेश में पूज्य महाराजजी से निवेदन करते थे, "महाराज! अब मैं आपकी शरण में रहूँगा।" ऐसे उद्‌गारों पर पूज्य महाराजजी उसे सान्त्वना देते हुए बोले- "क्या हुआ? घर से क्यों निकल पड़े?" वह व्यक्ति अपनी व्यथा व्यक्त करता था, "महाराज, संसार एकदम स्वार्थी है। भाई, पुत्र, पत्नी कोई भी आज्ञाकारी नहीं है। कोई मेरी सुनता ही नहीं है।" इस पर महाराजजी हँसते हुए से एक कथानक सुनाया करते थे, "तोर मोर अनुराग जगा, आवा चलीं वन के। झर गया तो आवा चलीं घर के।।" एक पति-पत्नी थे। कभी-कभी पतिदेव पर वैराग्य सवार हो तो कहते कि अब तो मुझे घर अच्छा नहीं लग रहा है। श्रीमतीजी भी कहतीं, "आप ठीक कह रहे हैं, मुझे भी घर-गृहस्थी से कोई लगाव नहीं रह गया।" दोनों घर से निकले और जंगल में भगवान का भजन करने लगे। किसी तरह पाँच-सात दिन भूख-प्यास सहन करें तो सारा वैराग्य उतर जाय, घर ही दिखायी दे। पतिदेव तब कहते-

"अब तो यहाँ मन नहीं लग रहा है।" इस पर श्रीमती सुझाव देतीं, "अभी क्या बिगड़ा है? 'आवा चलीं घर के'- चलो घर चला जाय।" और दोनों घर चल दें।

उस श्रद्धालु को सम्बोधित करते हुए महाराजजी कहते थे, "तुम्हारा वैराग्य भी ऐसा ही है; मर्कट वैराग्य। जाओ घर! अपना कामकाज देखो। घर-गृहस्थी में यह हड़हड़-भड़भड़ तो लगा ही रहता है। चार बर्तन इकट्ठा होने पर खन-खुट तो होता ही है। तुम भी भले घर, भले वातावरण में पले हो। जाओ, सब ठीक हो जायेगा।"

-:: ८ ::-

भगवान राम की तपस्थली एवं ऋषियों की मनन-चिन्तन भूमि होने के कारण चित्रकूट महात्माओं के लिए आकर्षण का विशिष्ट केन्द्र है। दूर-दूर से साधक, अनुरागी, भाविक योगी तथा महापुरुष इस क्षेत्र में दर्शनार्थ पहुँचते ही रहते हैं। अनुसुइया आश्रम में आनेवाले अभ्यागतों के बारे में महाराजजी को पहले से ही अनुभव हो जाता था। अन्दर से अध्ययन करते महाराजजी उनके भोजन, प्रसाद, सेवा, रहने की व्यवस्था का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। ढोंगी भी आश्रम में आया-जाया करते थे। उनके पहुँचने से पूर्व ही महाराजजी कह देते थे, "हूँ... 'मीटर' खटकत है। इनकी बहिनियाँ राखों, कौनो ढोंगी-ढपाली ससुरारी से कूँड़ा

लिये चले आ रहे हैं। उन्हें खाने को दो, बैठने को दो, तापने को दो, पीने को गाँजा दो और सोने को बिस्तर दो।" समीप बैठे भाविकों में कौतूहल होने पर आप बताते थे, "कोई आ रहा है, अभी देखना। कुपात्र को दान देने से दाता ही नष्ट हो जाता है।"

इतने में ही किसी ओर से महात्मा वेश में कोई आता दिखायी पड़ जाता था और दूर से ही अपना कुछ प्रदर्शन करते हुए आश्रम की ओर आने लगता था। महाराजजी तड़ककर बोलते, "हूँ नानी के आगे ननिअउरे क बखान! हमें सिद्धि दिखावे आवत हैं, एकरि बहिनियाँ के राखों।" इतने पर भी जब वह अपना प्रदर्शन बन्द न करे तो आप पुनः कहते थे, "हूँ.... जटा फकिरऊ और आचरण गिरस्तऊ! करे कहाँ घर है? एतना पाप होई कि हजारन जनम बैल बनके ढोये का पड़ी! बेटा, रोये का आँसू न मिली! अरे जब वेश में आ ही गया तो किसी अनुभवी महात्मा की शरण पकड़, जिससे वह क्रिया जागृत हो जाय जो भगवान् से सीधा भेंट करा देती है। अब से भी कुछ बिगड़ा नहीं है। **कहे कबीर जनम क उढ़री। जब से चेते तबे से सुधरी।।**" कुछ भूले-भटके साधू तो महाराजजी के दो-चार उपदेशों से अपनी जीवन-दिशा बदल देते। किन्तु जीविका के लिए साधु-वेश धारण करनेवाले ढोंगी 'गुरुजी-गुरुजी' कहते हुए वहाँ से खिसक जाते थे।

-:: ६ ::-

जब कभी कोई अच्छा साधक कुछ समय साधन-पथ पर चलने के पश्चात् लड़खड़ा जाय तब आप उसे घण्टों उपदेश देते और उसके कल्याण के लिए चिन्तन करते थे। उसकी अनुपस्थिति में अन्य साधकों को समझाते हुए पूज्य महाराजजी कहा करते थे-

धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।। *(मानस, १/८५)*

वही बच पाते हैं, जिसको स्वयं इष्ट (सद्गुरु अथवा भगवान) ही हाथ पकड़कर बचा लें। कुछ कालोपरान्त जब वही साधक अपनी उन भूलों के लिए महाराजजी से अनुनय-विनय करने लगे, तब आप कहते थे- हूँ...., चलो ठीक है। जो घूमकर लड़ता है, कायर नहीं कहा जाता। अब संग-दोष से दूर रहो। महापुरुष की शरण में रहकर चलो। यदि कुछ आयु साधन के लिए मिल जाती है तो परिस्थिति सुधरते देर नहीं लगेगी। इष्ट से यदि हवा भर भी दूरी है, तब तक माया पीछा करती है और सफल भी हो जाती है। इसलिए सदैव डरना चाहिए। साधक जहाँ अपने बल पर आया कि "मैं ज्ञाता हूँ, मैं ध्याता हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं ध्यानी हूँ" तहाँ समझना चाहिए कि माया ही सफल हो चली-

माया बस्य जीव अभिमानी।
ईश बस्य माया गुणखानी।। *(मानस,७/७७/६)*

अभिमान ही 'जीव' की संज्ञा देता है।

-:: १० ::-

पूज्य महाराजजी कथानकों के माध्यम से भी पथिकों का पथ प्रशस्त करते थे, जो स्थायी प्रभाव अंकित करता था। प्रस्तुत प्रसंग भी उन्हीं कथानकों में से एक है-

दो विद्यार्थी गुरुकुल में संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे। शिक्षा के समापन पर जब वे घर की ओर चले तो उन्हें चिन्ता हुई कि जीविकोपार्जन कैसे हो? सद्गृहस्थ आश्रम के संचालन में यदि अधिक नहीं, तब भी अभ्यागत की सेवा, पारिवारिक जीवन-निर्वाह हेतु धन नितान्त आवश्यक होता है। दोनों सहपाठियों में से एक ने अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए कहा- **'देत भुवालं फरत लिलारं न विद्या न च पौरुषम्।।'** उसका आशय था कि हम राजा से अपने लिए आवश्यक वस्तुओं की माँग करेंगे। राजा ही सब कुछ है। यदि राजा कृपा कर दे तो हमारा लिलार (भाग्य) फलीभूत हो सकता है, हम सुखी रहेंगे, अन्यथा न तो विद्या काम आती है और न पौरुष ही काम आता है।

दूसरे सहपाठी ने इस मन्तव्य से असहमति व्यक्त की। उसने कहा कि भगवान तथा भाग्य की अपनी सत्ता है। राजा अथवा कोई हो, उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता है। ऐसा कहते हुए उसने श्लोक में संशोधन प्रस्तुत किया- **'फरत लिलारं देत भुवालं न विद्या न च पौरुषम्।'** अर्थात् जब भाग्य साथ देता है

तभी राजा भी देता है अन्यथा न तो विद्या काम आती है और न पुरुषार्थ ही साथ देता है।

सम्पूर्ण रास्ता समाप्त होने को आया किन्तु इस विवाद का हल न निकला। अन्ततोगत्वा दोनों ने राजा से इस विवाद के निर्णय का आग्रह किया। अभिमानी नरेश को भी अपनी प्रशंसा अच्छी लगी। स्पष्ट निर्णय न देकर उसने प्रशंसक को एक वस्त्र में काशीफल (कुम्हड़ा) प्रदान किया, जिसमें छिद्र करके हीरे-जवाहरात भरे गये थे। भाग्यवादी युवक को उसी प्रकार के दूसरे वस्त्र में सत्तू प्रदान किया गया और कहा गया कि आप लोग एक महीने पश्चात् आवें, तभी इस विवाद का निर्णय होगा।

काशीफल पाने वाले युवक ने सहपाठी से रास्ते में कहा, "भाई! एक महीने से मुझे सत्तू खाने की प्रबल इच्छा हो रही है। क्यों न हम दोनों अपना-अपना पुरस्कार आपस में बदल लें।" दूसरे ने कहा- "ऐसी बात है तो तुम्हीं सत्तू खा लो।" राज-प्रशंसक युवक ने सत्तू लेकर काशीफल अपने साथी को दे दिया और तालाब पर सत्तू खाकर अपने घर की ओर चल पड़ा।

भाग्यवादी बालक ने घर पहुँचने पर काशीफल तोड़ा तो हीरे-जवाहरात पाकर ईश्वर को धन्यवाद दिया। गृहोपयोगी सुख-सामग्रियों की व्यवस्था करते उसे देर न लगी। नियत समय पर दोनों युवक राजसभा में उपस्थित हुए, तो राजा ने पूछा कि

उनके वे दिन कैसे बीते? भाग्यवादी बालक ने काशीफल प्राप्त होने की घटना का वर्णन करते हुए बताया कि उसका वह माह बड़े आनन्द से बीता, जबकि राज-प्रशंसक ने अपने अवसाद एवं दैन्य की चर्चा की।

राजा को भी अपनी भूल का भान हुआ। अपने अहंकार पर पश्चाताप करते हुए उसने निर्णय दिया कि यदि भाग्य फलीभूत है तो उसका कुछ भी निमित्त बन जाता है। पूज्य महाराजजी इस प्रसंग का रोचक प्रस्तुतीकरण करते हुए कहते थे कि भाग्य राजा या किसी दूसरे के बनाने से नहीं बनता-

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।। *(मानस, २/२१८/४)*

पूर्व का संस्कार ही भाग्य बनता है। किन्तु वह आया कहाँ से? वह भी तो हमारे आपके द्वारा किये गये कर्मों का फल ही तो है। वस्तुतः अच्छा कर्म करने से अच्छे संस्कार बनते हैं, जो- **'मेटत कठिन कुअंक भाल के।'** *(मानस, १/३१/६)* यदि मंत्र जपने की युक्ति उपलब्ध हो जाय तो भाग्य का असाध्य कुअंक भी मिटाया जा सकता है। भजन से कुसंस्कारों का पहाड़ भी काटा जा सकता है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है, निर्माता है। अतः कर्म करना चाहिए। कर्म का वास्तविक अर्थ आराधना है।

-:: 99 ::-

योगी प्रत्येक कार्य स्वेच्छा से नहीं, अपितु भगवान का यंत्र बनकर करता है। वह निमित्त मात्र होता है। किन्तु सामान्य मानव अपनी करनी के साथ-साथ परिस्थितियों अथवा होनी से अधिक प्रभावित होता है। इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए महाराजजी एक कथानक सरस शैली में इस प्रकार कहते थे-

एक ब्राह्मण देवता राजकीय पुरोहित थे, घोर जंगल में राज्य की वरिष्ठ पाठशाला के आचार्य थे। उस युग की मान्यता के अनुसार पाठशाला जन-कोलाहल से दूर निर्जन एकान्त में होती थी, जिससे छात्रों पर संग-दोष का कुप्रभाव न पड़ सके।

राजकन्या युवा हो चली थी। विवाह-हेतु आवश्यक निर्देश के लिए पुरोहित को दरबार में बुलाया गया। राजा ने पुत्री से प्रणाम कराते हुए उसके भाग्य एवं विवाह-व्यवस्था के सन्दर्भ में पुरोहित से जानना चाहा। कन्या के शुभ लक्षणों एवं सौन्दर्य को देखते ही पुरोहित की विवेक-बुद्धि असन्तुलित हो गई। उसने अपने चेहरे को उदास बनाते हुए शुष्क शब्दों में कहा- "राजन्! खेद है कि यह कन्या इस आयु के पश्चात् जहाँ जायेगी, वहाँ सर्वनाश हो जायेगा और यदि यहाँ रहेगी तो यहाँ भी सर्वनाश निश्चित है; रेखायें कुछ ऐसा ही कहती हैं। इस कुयोग के निवारण का एकमात्र उपाय है कि तैरने वाले ठोस सन्दूक में वायु

इत्यादि की व्यवस्था करके सोलहों श्रृंगार करके कन्या को नदी में प्रवाहित कर दें। यदि कोई इसे पायेगा तो उसके लिए कन्या का अनिष्टकारी प्रभाव टल जायेगा। वह चक्रवर्ती सम्राट होगा और यही उसकी पटरानी होगी।"

राजा ने बहुत विचार के पश्चात् निश्चित किया कि यदि गाँव के कारण देश का नाश हो तो गाँव का तथा व्यक्ति के कारण कुटुम्ब का नाश हो तो व्यक्ति का परित्याग कर देना चाहिए; अतः व्यथित हृदय से पण्डितजी की बात मान लिया। पुरोहित ने अपनी देखरेख में ही कन्या को सन्दूक में बन्द कराया, कन्या के कल्याण के लिए उसे नदी में प्रवाहित कराया और राजा को आशीर्वाद देकर दौड़ते-भागते अपने विद्यालय पहुँचे। शिष्यों को उन्होंने एकत्र किया और कहा- "बच्चो! आज पाठशाला में छुट्टी! देखो, एक सन्दूक नदी में तैरता आ रहा है। तुम सब नदी के किनारे उसकी प्रतीक्षा करो। उसे निकालकर इस कोठरी में बन्द करके बाहर से ताला लगा देना। कोई शोरगुल हो तब भी दरवाजा न खोलना- यह मेरा आदेश है। मैं भी कहूँ, तब भी न खोलना।" गुरुभक्त शिष्यों ने 'आज्ञा शिरोधार्य' कहकर नदी-तट पर सन्दूक की प्रतीक्षा करना आरम्भ किया।

बहते हुए उस सन्दूक को एक शिकारी राजकुमार ने देखा। शिकार से श्रान्त-क्लान्त होकर नदी-तट पर वह विश्राम कर रहा

था, घोड़ों को पानी पिला रहा था। कुतूहलवश उसने सिपाहियों को आदेश दिया और सिपाही बात की बात में उस सन्दूक को किनारे लाये। सन्दूक खोलते ही अनिंद्य सुन्दरी राजकन्या निकल पड़ी। राजकुमार को बड़ा अचम्भा हुआ और उस कन्या का परिचय जानने के लिए अधीर हो उठा। राजकुमारी ने अपनी सारी गाथा कह सुनायी। वृत्तान्त सुनने के पश्चात् राजकुमार ने प्रश्न किया कि अब तुम्हारी कहाँ जाने की इच्छा है? राजकुमारी ने कहा, "घर से निकल जाने के पश्चात् अब मेरा है ही कौन? अब तो संसार में मेरे एकमात्र आश्रय आप ही हैं।" कन्या की समर्पण भावना का समादर करते हुए राजकुमार ने जंगल में ही उससे विधिवत् विवाह किया। शिकार में पकड़े गये जीवित भालू को उसी सन्दूक में बन्द कर, यथावत् प्रवाहित कर सपत्नीक स्वदेश लौट गया।

तैरता हुआ वह सन्दूक जब पाठशाला के समीप पहुँचा तो बच्चों ने उसे निकाला और गुरुजी के आदेशानुसार उसे कोठरी में बन्द करके ताला लगा दिया। गुरुजी मंत्र पढ़ते हुए गये, कमरे का ताला खोला और कमरा बन्द किया। पण्डितजी ने धड़कते हृदय से ज्योंही सन्दूक खोला त्योंही भूखा-प्यासा, सताया हुआ भालू उन पर झपट पड़ा। पण्डितजी ने उससे मुक्त होने का प्रयास किया, बच्चों से दरवाजा खोलने के लिए आदेशों का ताँता लगा दिया किन्तु गुरुभक्त शिष्यों ने कोई ध्यान न दिया।

क्रमशः पण्डितजी का स्वर धीमा पड़ने लगा। भागदौड़ में पण्डितजी के हाथ एक खड़िया आ गयी। शिष्यों के उपदेशार्थ उन्होंने यह श्लोक लिखा-

मम इच्छा दैव नास्ति, दैव इच्छा परबलम्।
राजद्वारे राजकन्या, विप्र भालू भच्छतम्।।

अर्थात् मेरी इच्छा उस कन्या को प्राप्त करने की हो गई थी किन्तु दैव की वैसी इच्छा न थी। दैव की इच्छा प्रबल होती है। हस्तरेखा के अनुसार कन्या राजरानी बनकर किसी राजप्रासाद में पहुँच गई किन्तु मुझ विप्र को भालू खा गया।

भावी ही भालू है। भावी, होनी गति, दैव, संचित, प्रारब्ध, भाग्य, ललाट रेखा तथा संयोग प्रायः समानार्थक एवं एक दूसरे के पर्याय ही हैं। इसी को कबीरदासजी ने व्यक्त किया है-

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ठ से पंडित ज्ञानी, शोधि के लगन धरी।।
सीता हरन मरन दसरथ को, बन में विपति परी।।

होनी होकर ही रहती है; किन्तु उसका प्रभाव ऐसे साधक पर नहीं पड़ता जो भगवान पर निर्भर रहता है। **'भाविहु मेटि सकहिं त्रिपुरारी।'** किन्तु कब? **'जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी।'** *(मानस, १/६६/५)*-जब पथिक की बुद्धि तपस्या में अनुरक्त हो जाय। प्रेम ही पार्वती है। जब यही कुमारी (बुद्धि) तप, चिन्तन,

भक्ति का आश्रय ग्रहण करने लगे तो भाग्य के असाध्य कुअंक मिटाये जा सकते हैं- **'मेटत कठिन कुअंक भाल के।'** *(मानस, १/३१/६)*

-:: १२ ::-

जब कभी साधन-परायण पथिक में कमजोरी दिखलाई पड़े और उस कमजोरी की अवहेलना करके जीवन के अमूल्य क्षणों को व्यर्थ में गँवाने लगे अथवा किसी भी पुरुष को अनधिकार चेष्टा में पायें, जो मूल पतन का ही कारण होती है, तब पूज्य महाराजजी बैठे हुए व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए कहा करें- "हो... नाम तो अँधियारी बारी, होम करे के पल्लव नाहीं।" अरे एके केहू त समुझाइ दे कि प्रकृति की अनन्त सतहे हैं। बेटा बहुत सम्हल के चलै के चाही, नहीं तो-

छोरत ग्रन्थि जानि खगराया।
बिघ्न अनेक करइ तब माया।। *(मानस, ७/११७/८)*

जब माया के बन्धन के टूटने का समय आता है तब माया अनेक विघ्न उपस्थित करती है, अपनी सारी शक्ति लगा देती है। ऋद्धियाँ प्रदान करती है; यहाँ तक कि सिद्ध बना देती है। वही उपक्रम रचती है जिससे वह पुनः माया में लौट आये। ऐसे में साधक को निरन्तर श्वास में लगे रहना चाहिए। मन कहीं-न-कहीं जायेगा। यदि भजन से छुट्टी दोगे तो माया में जायेगा। यदि श्वास चिन्तन में नहीं लगाओगे तो यह कुछ-न-कुछ करता रहेगा,

बैठेगा नहीं। न जाने यह क्या रूप लेगा। सदा इससे डरना चाहिए। इस धक्का-धुक्की की अवस्था में साधक सत्यासत्य का निर्णय नहीं कर पाता, वहाँ एक ही सहारा है कि इष्ट के निर्देशनों का मन, वचन, कर्म से पालन भर करता रहे। ऐसे पथिक के लिए आज्ञापालन ही भजन है। यदि पालन में त्रुटि नहीं है तो साधक शीघ्र ही लक्ष्य को बेध लेगा। इस योग की जागृति के पश्चात् ही साधक निमित्त मात्र हो जाता है। भजन तो भगवान करावत हैं।" इस प्रकार श्री महाराजजी साधना के गूढ़तम रहस्यों को इतनी सरल भाषा में व्यक्त करते कि सत्संग में बैठे हुए साधारण व्यक्ति भी आध्यात्मिक पथ की ओर अग्रसर हो उठते।

-:: १३ ::-

जब पूज्य महाराजजी की दी हुई शिक्षा तथा अन्तस्प्रेरणा के निर्देशनों में कोई स्वेच्छा से परिवर्तन करके मनमुखी (मनमाने) निर्णय से कार्य सम्पादित करने की चेष्टा करने लगे तब आप उसकी भूलों तथा गतिविधि से अवगत कराते हुए कहा करें- "एके देखौ मेहरिया में बैठके ज्ञान कथत है। अरे! पूर्तिपर्यन्त खतरा है, एक इंच भी भगवान से दूरी है तो माया कामयाब हो सकती है।"

इतना सुनने पर कोई-कोई साधक दबे स्वर में बोले- "लेकिन महाराजजी, मन में कोई भाव-कुभाव भी तो नहीं है!" तब आप डपटकर कहा करें- धत् गँवार कहीं का। बेटा,

हम जानी मन मर गया, मरा हो गया भूत।
मरने पर भी आ लड़ा, ऐसा मना कपूत।।

अरे! मन में यदाकदा जो शान्ति दिखाई पड़ती है वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। वह तो तभी सम्भव है जब स्वयं भगवान उसे प्रमाणित कर दें। जब तक मन के स्थान पर भगवान प्रसारित न हो जायँ, तब तक मन को मिटा हुआ नहीं मानना चाहिए।

'गुरु के वचनों में गुंजाइश, कलियुग की तिकड़मबाजी।'

फिर आप एक उदाहरण देते हुए हँसते हुए कहें कि घोर जंगल में एक आश्रम था। जिसमें एक महापुरुष के संरक्षण में कई शिष्य साधन-भजन में संलग्न थे। उनमें से एक शिष्य के मन में प्रबल वैराग्य का उदय हुआ और निर्द्वन्द्व विचरण एवं तीर्थ देखने की कामना जागृत हुई। कई दिनों से वह निरन्तर गुरुदेव से तीर्थाटन की आज्ञा माँग रहा था कि तीव्र वैराग्य के पालन-हेतु उन्मुक्त विचरण की अनुमति प्रदान कीजिए; किन्तु उन समर्थ महात्माजी ने कहा, "नहीं बेटा, अभी तुम्हारे अन्दर वह क्षमता नहीं है। अभी तो तुम मेरे संरक्षण में हो, बाहर निकलते ही पता नहीं किस घाट लग जाओ। अतः अभी तो अहर्निश साधना में ही संलग्न रहो। वह समय आने में काफी देर है।" किन्तु दो-चार दिनों बाद शिष्य पुनः बोला कि, "महाराज अब तो अत्यन्त प्रबल इच्छा हो रही है।

उन महात्मा ने किंचित् रोष से कहा- देखो, माया बड़ी दुर्धर्ष होती है। जाना ही चाहते हो तो जाओ; किन्तु एक बात स्मरण रखना कि, "गुरु के वचनों में गुंजाइश कलियुग की तिकड़मबाजी।" शिष्य ने कहा- 'जो आज्ञा' और सहर्ष प्रणाम करके चल पड़ा। जब वह कुछ दूर चला गया तो सोचने लगा कि महाराजजी के कथन का क्या अभिप्राय है? अर्थ समझ में नहीं आ रहा था, अतः वह लौट पड़ा और महाराजजी के चरणों में प्रणाम कर उनके कथन का आशय पूछा, तो महाराजजी ने कहा- जब शिष्य गुरु की आज्ञा में अपने मन से उलटफेर करने लगता है तो वही कलियुग प्रभावशाली हो जाता है और साधक का पतन हो जाता है। शिष्य ने हाथ जोड़कर पूछा कि, महाराज! मेरे लिए क्या आज्ञा है? तो महात्मा ने कहा कि माई-दाई के चक्कर में मत पड़ना। उन्हें दूर से ही प्रणाम कर सदैव उनसे सजग रहना। दूसरी आज्ञा यह है कि कहीं अपना अथवा गुरु महाराजजी का नाम बढ़ाने के चक्कर में आश्रम, धर्मशाला इत्यादि निर्माण-कार्यों में न उलझ जाना। गुरु महाराज का नाम तो तुम्हारी करनी और गुरुत्व की प्राप्ति होने पर ही होगा। तुम्हारे रूप में गुरु ही प्रस्फुटित हो जायँ और तुम भी खो जाओ, वही उपलब्धि का क्षण है। अन्तिम चेतावनी यह है कि सिद्ध मत बनने लगना। यह सिद्धियाँ भी माया ही प्रदान करती हैं। पहले वह परमतत्त्व परमात्मा सिद्ध हो जाये, उसकी उपलब्धि ही परमसिद्धि है। इसके पश्चात् जो कुछ रास्ते में

मिलनेवाली सिद्धियाँ हैं, बाधक नहीं रह जातीं। यही कलियुग की तिकड़मबाजी है। इससे सदैव सजग रहना, इससे बचना और जो मेरा उपदेश है उसमें जरा भी फेरबदल न कर लेना, यही आदेश है।

साधक ने बड़ी प्रसन्नता से प्रणाम किया और कहा कि महाराजजी आपकी कृपा से सब ठीक हो जायेगा। और वहाँ से चल पड़ा। गुरु के आदेश उसे अत्यन्त सरल प्रतीत हुए। विचरण करते-करते उसने एक पहाड़ी पर आसन लगा दिया। समाचार फैलते देर न लगी कि एक बड़े सिद्ध महात्मा दिन-रात जागरण करके अपने भजन में संलग्न रहते हैं, युक्तियुक्त तथ्यपूर्ण बातें करते हैं। शनैः-शनैः भीड़ बढ़ने लगी। उसी भीड़भाड़ में साधना-पिपासा लेकर एक नवयौवना भी पहुँच गयी। बोली कि, महाराज! हमने बहुत ढूँढ़ा, आज आपके दर्शन से आँखें तृप्त हुईं। कृपया गुरुमंत्र प्रदान करें, जिससे घोर संसार-सागर से मेरा भी उद्धार हो सके।

महात्मा सरलचित्त होते ही हैं; साधना का क्रम समझाकर विदा कर दिया और बताया कि यहाँ कुटी में रात्रि में किसी के रहने का विधान नहीं है; क्योंकि इससे भजन में बाधा पड़ती है। पहले दिन तो वह चली गई किन्तु दूसरे दिन प्रातः पुनः सेवा में उपस्थित हो गई। सायंकाल महात्मा ने उससे पुनः घर जाने का आग्रह किया, तो उसने कहा कि दो-एक दिन गुरु-चरणों का सामीप्य तो मिले। आश्रम में रहकर, सेवा करके एवं चरणामृत

पान करके जीवन सार्थक तो करने दें। इसी प्रकार की प्रार्थना करते-करते अन्ततोगत्वा एक दिन आश्रम में निवास करने की अनुमति भी उसने प्राप्त कर ही लिया।

संग-दोष का प्रभाव होकर ही रहा। धीरे-धीरे दो-चार सन्तानें भी हो गईं। पहले तो भाविक भक्त उन्हें हृदय से मानते थे; किन्तु जब उनकी स्थिति पतन के गर्त में पहुँच गई, तब उन्हें कोई भी नहीं पूछता था। पहले कोई कमी न थी, अब माँगने पर भी पूर्ति नहीं होती थी। लोगों को तो जो कहना था कहते ही थे, किन्तु वह युवती भी बिगड़ा करे। एक दिन उसने कहा कि जब भिक्षा माँगने चलना ही है तो छोटे बच्चे को गोद में क्यों नहीं ले लेते! उससे चला नहीं जा रहा है। पहले पैदा करते समय इसका ध्यान नहीं था क्या?

अब तो साधू को महान् दुःख हुआ। वह सोचने लगा कि कहाँ तो हम इतने महान् पुरुष की सेवा कर रहे थे, और आज हमारी यह दशा हो गई है। उन्होंने मना भी किया परन्तु मन की तरंगों ने न माना। महान् दुःख के उन क्षणों में आकाशवाणी हुई- "गुरु के वचनों में गुंजाइश, कलियुग की तिकड़मबाजी। बेटा! बार-बार मना करने पर भी नहीं माने। अब से भी सम्भल जाओ।" साधक साहसी था। उसने तुरन्त लड़कों और स्त्री को छोड़ा और बहुत दूर निकल गया। अज्ञात स्थान पर पहुँचकर सोचने लगा कि सर्वस्व खोकर पुनः गुरुदेव के पास कैसे जाऊँ।

अतः पूर्ण तपस्या का अर्जन करके ही उनकी शरण में चलूँगा। ऐसा दृढ निश्चय करके नदी के किनारे एक टीले पर आसन जमाकर बैठ गया।

कुछ ही समय में चतुर्दिक ख्याति फैल गई कि महात्मा बड़े अच्छे हैं। विकल की तरह दिन-रात भजन में ही लगे रहते हैं। भाविकों की भीड़ पुनः बढ़ने लगी। अच्छे-अच्छे सत्संगी वृद्ध लोग नियमित आने लगे। एक आसन में और उसी लगन से उन्होंने बारह वर्ष व्यतीत कर दिया। अन्तराल में शक्ति और सम्बल भी प्रतीत होने लगा। भाविकों के चाहने पर भी वहाँ अपने लिए कोई भवन भी बनने नहीं दिया। केवल फूस की झोपड़ी में रहा करते थे।

एक दिन वह साधु नित्यक्रिया के लिए दूर की पहाड़ी पर निकल पड़े। अचानक सामने ही एक चट्टान स्वर्ण के समान चमकती दृष्टिगोचर हुई। महात्मा ने स्पर्श किया और पाया कि वह तो शुद्ध सोना है। शौच से लौटने पर भी आँखों के समक्ष वही चट्टान कौंधने लगी। उन्होंने विचार किया कि जंगल में इस चट्टान का क्या उपयोग है? यदि यहाँ आश्रम, धर्मशाला, पाठशाला बन जाय तो इससे गुरु महाराजजी की ही कीर्ति फैलेगी। हमें तो कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो गुरु महाराजजी के लिए ही यह सब कर रहा हूँ। ऐसा विचार कर बहुत समय से नियमित सत्संग करनेवाले वृद्ध भाविकों से उन्होंने अपना मन्तव्य व्यक्त किया कि यहाँ पर एक आश्रम, धर्मशाला, कूप, पाठशाला बन जाय तो देश

का ही कल्याण हो जाय। वृद्ध बोल पड़े कि महाराज! आपने ही तो कभी इसकी अनुमति न दी थी, यह तो हमलोगों के लिए परमकल्याण की बात है कि आज आपने आदेश दिया। अस्तु, अब हम सब चन्दा किये लेते हैं और कल से ही निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो जायेगा।

महात्माजी ने कहा कि नहीं, चन्दे की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल मिस्त्री, गाँव के सभी लोग एकत्र होकर एक साथ कार्य प्रारम्भ करें, सबको पैसा भगवान देंगे। दूसरे दिन ही कार्य प्रारम्भ हो गया। सैकड़ों लोग पैमाइश नींव खोदने में लग गये। शाम को वे महात्मा शौच गये, एक स्वर्णखण्ड उठा लाये और वयोवृद्धों को समर्पित कर कहा कि इसे बेचकर सबका पारिश्रमिक दे देना तथा अन्य कारीगरों को भी आमंत्रित कर देना। कारीगरों की भीड़ सहस्रों तक पहुँची और वे महात्मा उसी अनुपात में स्वर्णखण्ड लाकर वृद्धों को देते रहे, जिसे भाविक वृद्ध कारीगरों में वितरित कर देते। आश्चर्य तो सभी को था; किन्तु उन वृद्धों के हृदय में तीव्र कौतूहल होने लगा कि महाराज इतना स्वर्ण कहाँ से ले आते हैं। यह क्रिया जानकर हम भी अपने गृहकार्य की व्यवस्था, नाती-पोतों का विवाह भी आसानी से कर लेते। आपस में बहुत विचार करके उन्होंने सलाह किया और महाराजजी से निवेदन किया कि आप प्रतिदिन सोना ले आते हैं आपको कितना कष्ट होता है। यह कार्य तो हमलोग ही कर सकते हैं। क्या

आपका हमारे ऊपर विश्वास नहीं है? आप तो इसे छूते भी न थे; आपको यह शोभा भी नहीं देता। आप केवल स्थान भर बता दें और यहीं आसन पर विराजें। आपके आदेशानुसार हमलोग वितरण करते रहेंगे।

जब बड़े-बूढ़े पीछे पड़ गये तो महात्मा ने विचार किया कि मेरे भक्त ठीक ही तो कहते हैं। फिर मुझे स्वर्ण से क्या लेना-देना है? यदि यही लोग प्रबन्ध कर लिया करें तो और भी अच्छा है, अतः इन सबको वह स्थान दिखा ही दें। ऐसा निश्चय करके उन सबको साथ लेकर उस स्वर्णचट्टान की तरफ चले। संकेत किया और कहा कि इस स्थान से स्वर्ण लेकर वितरण किया करो।

बूढ़ों का अभीप्सित सामने ही था। उन्होंने आपस में संकेत किया और झपटकर महात्मा को धर दबोचा। समीप के वृक्ष में बाँधने लगे। महात्माजी ने कहा कि अरे! क्या तुम्हारी बुद्धि खराब हो गई है। सनक तो नहीं गये। तुम्हें स्वर्ण लेना है तो ले लो, हमें क्यों बाँधते हो? जानते ही हो कि हमें धन की कोई आवश्यकता भी नहीं है। यह तो परमार्थ में ही मैं लगा रहा था। किन्तु लोभाक्रान्त तथा विवेकरहित वृद्धों ने उधर कोई ध्यान न देकर उन्हें बाँध ही दिया और निश्चिन्त मन से स्वर्ण-चट्टान की तरफ बढ़े। किन्तु यह क्या! वृद्धों के स्पर्श से ही वह चट्टान तो ऊबड़-खाबड़ पत्थर के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी जो अब

किसी भी उपयोग में आने लायक न रही। वयोवृद्ध भक्त अब तो उदास हो उठें। कहाँ तो मन ही मन सात पुश्तों तक के प्रबन्ध तक की योजना थी; लड़के-बच्चों की शादी-विवाह की सोच रहे थे, किन्तु अब तो महात्माजी की सेवा और विश्वास से भी गये। सभी ने विचार किया कि अब यदि महात्माजी को खोल भी दें तो कोई प्रयोजन सिद्ध होनेवाला नहीं है। अतः बदनामी के डर से, महाराज के आग्रह पर भी न खोला और आगे बढ़ गये।

तीन-चार दिन उसी तरह बँधे रहने पर महात्मा पुनः महान् दुःख में डूब गये कि कहाँ फँस गये? कल तक सभी इशारे पर नाचते थे, आज आगे-पीछे कोई भी नहीं है। कष्ट के उन क्षणों में आकाशवाणी गूँज उठी, "गुरु के वचनों में गुंजाइश, कलियुग की तिकड़मबाजी। बेटा! कहा था कि चिन्तन-परायण पुरुष को लोककीर्ति, आश्रम, कुटी इत्यादि में नहीं फँसना चाहिए, जैसे-तैसे निर्वाह कर लेना चाहिए। यथा लाभ में सन्तोष करके वैराग्य की रक्षा करनी चाहिए। बहुत मना करने पर नहीं माने। अब तो बेटा! तुम गिर ही गये।"

महात्मा अधर में लटके ही थे कि आराध्य की प्रेरणा से चरवाहे उधर से निकले और महात्माजी को बँधा देखकर उन्होंने बन्धन खोल दिया। चरवाहों ने बहुत पूछा किन्तु महात्मा मौन धारण कर वहाँ से चल पड़े और अपने गुरुदेव की स्मृति में अधीर

होकर रोने लगे। सोचते थे कि गुरुदेव के पास कौन-सा मुख लेकर जाऊँ? इस बार भी आज्ञा का पालन नहीं हो सका। किन्तु अब तो भजन पूर्ण करके कुछ अर्जन करके ही जाऊँगा। उन्होंने निर्जन एकान्त में तपस्थान चुना और इस बार बड़ी सतर्कता और निष्ठा से योग-प्रक्रिया में तल्लीन हो गये। बारह वर्ष बीत गये। भजन से सन्तुष्ट होकर अब वे गुरुधाम की ओर बढ़े।

गुरुदेव का आश्रम अभी दस-बारह मील दूर था कि शाम होने को आई। महात्मा ने गाँव के बाहर ही तालाब के किनारे भजन करते रात्रि व्यतीत किया। सूर्योदय के पूर्व ही एक व्यक्ति पास के मार्ग से निकला, महात्मा को देखा, तुरन्त सिर पटककर उतने ही वेग से आगे बढ़ गया। महात्मा से न रहा गया। पूछ ही बैठे कि ऐसी कौन-सी विपत्ति है जो भागे जा रहे हो? वह व्यक्ति, जो स्वर्णकार था, लौट पड़ा और बोला, "महाराजजी! परिवार में एक ही लड़का है, न जाने कौन-सी बीमारी हो गई है कि सभी वैद्य, डाक्टर जवाब दे गये। यही अन्तिम बच्चा है। सब ओर से हताश होकर वैद्य के यहाँ जा रहा हूँ। सम्भव है भगवान उन्हीं को यश देना चाहते हों।"

महात्मा की सावधानी तनिक विस्मृत हुई और अपना तपोबल उन्हें याद आ गया। झटके से उन्होंने अपनी जननेन्द्रिय के पास से एक बाल तोड़ते हुए कहा, "इसका ताबीज बनाकर

बच्चे को पहना दे। देख, फिर क्या होता है?" वह व्यक्ति सोनार तो था ही, ठोंक-पीटकर ताबीज बनाकर बच्चे के गले में डाल दिया। बच्चे की स्थिति में सुधार होने लगा। बच्चा उठने-बैठने लगा और कुछ ही घण्टों में स्वस्थ हो चला। स्वर्णकार के परिवार के लोग बारी-बारी से तालाब की ओर जाने लगे। कोई दूध लिये है तो कोई दही, तो कोई कुछ अन्य मिष्ठान्न ही लिए चला आ रहा है। गाँव का जमींदार बड़ी देर से इन बातों को देख रहा था। वह भी शौच इत्यादि के लिए तालाब की ओर गया था।

वह स्वर्णकार भी दिखाई पड़ा। जमींदार ने पूछ ही तो लिया, "अरे सुखुआ! तूँ बार-बार घरभर इधर कहाँ जात है? तोरे लरिकवा के का हाल है?" तब वह बोला, "मालिक! वह तो ठीक हो गया।" जमींदार को आश्चर्य हुआ। पुनः पूछा, "किसकी दवा की? कैसे ठीक हो गया?" स्वर्णकार ने कहा, "मालिक दवा तो किसी की कारगर न हुई। हाँ, एक महात्मा इसी तालाब पर आये हैं, उन्हीं के आशीर्वाद से ठीक हुआ है। महात्मा क्या साक्षात् भगवान हैं। बड़े सिद्ध हैं।"

गाँव भर में चर्चा फैल गई। जमींदार, छोटे-बड़े सभी लोग तालाब पर एकत्र होने लगे। कोई लड़की के विवाह की प्रार्थना सुना रहा था, कोई जन्मजात रोगी था, कोई पागल था, किसी को निर्धनता ने परेशान कर रखा था- इत्यादि समस्यायें आने लगीं।

दुनिया ही दुखी है तिसपर गाँवभर वहीं था। अतः समस्याओं का ढेर लग गया। महात्मा जाना भी चाहते तो सभी उनके पैरों के नीचे लेट जाते थे। तब महात्मा वहीं आसन पर बैठ गये और समझाने लगे कि हम कुछ भी नहीं जानते, आप लोग भ्रमवश मेरा पीछा कर रहे हैं। किन्तु सभी के सामने प्रमाण बहुत ही बड़ा था। सभी कहने लगे कि आप महापुरुष हैं, अपने को छिपा रहे हैं। सम्भावित पुरुष अपने को छिपाते ही हैं।

धीरे-धीरे साँझ होने को आई और लोगों को अपने घर, पशुओं की व्यवस्था का ध्यान आया। लोग उकताने लगे तो जमींदार ने सुनार से पूछा- "करे सुखुआ! ई त बता कि तोरे लरिका के महाराज का दिहे रहें?" तब वह बोला, "मालिक! मैं वैद्य के पास जा रहा था कि महाराज दिखाई पड़े। मैंने सोचा कि बच्चे का अन्तिम समय है, शायद दुआ ही लग जाय। जब मैं प्रणाम करके आगे बढ़ा तो इन्होंने पूछा कि ऐसी क्या व्यग्रता है कि भाग रहे हो? जब मैंने लड़के की दयनीय दशा सुनाई तो इन्होंने अपनी जननेन्द्रिय के बगल का एक बाल उखाड़कर उसे ताबीज में भरकर पहनाने को कहा, जिससे बच्चा स्वस्थ हो गया।"

जमींदार ने कहा कि तब महाराजजी को क्यों परेशान कर रहे हो। जब इन बालों में इतना गुण है तो प्रार्थना करके महाराजजी के सब बाल ही क्यों नहीं ले लेते हो। बाल निर्जीव

होते हैं। कभी-न-कभी कटते ही हैं, नाई बुलवा कर कटवा लो और हमलोग आपस में बाँटकर महाराजजी को जाने दें।

इतना सुनने पर नाई घर की ओर दौड़ गया; क्योंकि उस्तरा तो घर पर ही था। महात्माजी के बगल में एक अत्यन्त गरीब आर्त भक्त भी खड़ा था। उसने सोचा कि बड़े आदमियों का मामला है, पता नहीं उसके हिस्से में बाल आये या न आये। यदि बाल न मिला तो दुःखी का दुःखी ही रह जाऊँगा। अधीरता से सोचते-सोचते उसने अचानक लपककर महात्माजी के बालों में हाथ लगाया और नोंचकर भागा। फिर कौन प्रतीक्षा करता! बात-की-बात में सभी टूट पड़े और महाराजजी के सिर से पाँव तक का एक बाल भी नहीं बचा। नाई कुछ देर से पहुँचा। रही सही कसर उसने पूरी कर दी। वस्तु जब समाप्त हो गई तो महात्मा को ही लेकर सब क्या करते, अतः वहीं महात्मा को छोड़कर सभी अपने घर चले गये।

अब तो वे साधू मेड़ पर अकेले विकल पड़े-पड़े विलाप करने लगे तथा बार-बार गुरुदेव का स्मरण करने लगे। पुनः आकाशवाणी हुई, "गुरु के वचनों में गुंजाइश कलियुग की तिकड़मबाजी। बेटा! तू फिर गिर गया।" साधू को विश्वास हो गया कि अब हमारे करने से कुछ नहीं होगा। जैसे भी हो गुरुदेव की शरण में अविलम्ब पहुँचें। अतः उसी प्रकार बिलखता, विलाप

करता गुरुदेव के आश्रम में पहुँचा। गुरुदेव ने कहा, "क्यों बेटा! अब घूमने की इच्छा नहीं है? बेटा तू श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है, मगर चाह करके भ्रष्ट है।" गुरुदेव ने उस साधक की दयनीय दशा पर तरस खाकर उसके पुनरुद्धार का प्रयास किया और अपने प्रभूत अनुभवों द्वारा समझाते हुए कहा, "बेटा! भगवान की आज्ञा मानना, उसका पालन करना ही भजन है। अरे! भजन तो स्वयं भगवान ही कराते हैं। साधक को तो निमित्त मात्र बनकर खड़ा रहना चाहिए। तुमने अपनी कल्पित क्षमता से वैराग्य तथा तीर्थाटन का संकल्प बनाया और पथ से विचलित हो गये। जब तक भगवान हृदय में प्रकट होकर निर्देश न देने लगे तब तक अपने मन से कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए और किसी महापुरुष की शरण पकड़कर सर्वतोभावेन उन्हीं के आदेशों का पालन करना चाहिए। साधक के लिये यही भजन है।"

-:: १४ ::-

तत्त्वदर्शी महापुरुष अपनी इच्छा-शक्ति से कर्म को बदल सकता है। यही आशीर्वाद काकभुशुण्डिजी को भी था। भगवान जब अपना लेते हैं तो इच्छा ही इच्छा-शक्ति बन जाती है- **'जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।'** ***(मानस, ७/११३/४)*** महाराजजी इसी सन्दर्भ में एक कथानक सुनाया करते थे, जो इस प्रकार है- दो भाई थे। एक भाई नित्य

एक तत्त्वदर्शी महात्मा के सत्संग में जाता था। लगन से उनकी सेवा किया करता था। दूसरा भाई विख्यात वेश्या के कोठे पर प्रतिदिन जाता, शराब पीता था। पहला भाई रोज समझाता था, "देखो! हम लोग भले घर के हैं। तुम्हें यह शोभा नहीं देता। सत्संग में चला करो। यही हमारा कर्त्तव्य है। **'एहि तन कर फल बिषय न भाई।"** ***(मानस, ७/४३/१)*** किन्तु दूसरे भाई पर कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ता था।

कुछ काल पश्चात् पहला भाई रात में सत्संग से लौट रहा था। रात अँधेरी थी। पाँव में एक खूँटी गड़ गई। इस पार से उस पार हो गई। खून ही खून फैल गया। किसी तरह घर पहुँचा। सवेरा होने से कुछ पहले दूसरा भाई वेश्या के यहाँ से लौटा तो रास्ते में हार पड़ा मिला। लाखों का हार मिला। प्रसन्नता से घर पहुँचा तो भाई कराह रहा था, बोला, "ले, और कर ले सत्संग! फल मिला। अरे चार दिन की जिन्दगी है! मौज-पानी ले ले। देख, मुझे लाख रुपये का हार मिला और तुम्हें पाँव में खूँटी लग गई। सत्संग से क्या मिला? टिटनेस हो जायेगा तो मर भी जायेगा।" छोटा भाई बोला- "नहीं! सन्त-दर्शन से कभी अनिष्ट नहीं हो सकता।" बड़ा बोला, "सामने दिखाई तो दे रहा है। पाँव चीरे बैठा है, कहता है अनिष्ट नहीं होता।" तय किया गया कि ज्योतिषी से विचार कराया जाय कि हार क्यों मिला और खूँटी क्यों गड़ी?

दोनों अपनी-अपनी कुण्डली लेकर ज्योतिषी के पास गये। उनकी विद्या बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। कुण्डली सामने रखी गई। ज्योतिषी ने एक कुण्डली उठाई, चौंका!- "यह व्यक्ति तो आज सवेरे मर गया होगा। सवेरे-सवेरे ऐसी कुण्डली क्यों ले आये?" दोनों ने कहा- "महाराज! दूसरी कुण्डली भी देखें।" ज्योतिषी ने देखा, बोला- "विलक्षण कुण्डली है। इतनी शुभ कुण्डली तो हमने जीवन में कभी नहीं देखी। इस पुरुष को आज राजा होना चाहिए। मैं उस भाग्यवान से अभी मिलना चाहता हूँ।" ज्योतिषी ने सोचा, होनेवाला राजा से पहले ही मिल लेने पर धाक जम जायेगी, सदैव सम्मान मिलेगा।

भाइयों ने बताया कि कुण्डली हमीं दोनों की है। ज्योतिषी ने कहा- "अरे! ऐसा कैसे हो सकता है। ज्योतिष तो गलत हो ही नहीं सकता। तुम अभी तक जीवित कैसे हो? बताओ तुम लोग करते क्या हो?" छोटे भाई ने बताया, "मैं नित्य महात्मा की सेवा में जाता हूँ, उनकी वाणी सुनता हूँ, उपदेशानुसार जीवन में कुछ ढालने का प्रयास करता हूँ, चिन्तन के लिए भी समय निकालता हूँ।" ज्योतिषी ने सिर हिलाया और दूसरे भाई से पूछा- "तुम क्या करते हो?" वह बोला- "मैं तो शराब पीता हूँ, वेश्या के यहाँ जाता हूँ और यह भाई मुझे नित्य बिगड़ता है।"

ज्योतिषी ने समाधान किया कि तुम गलत करते हो। तुम्हारे

छोटे भाई को आज मर जाना चाहिए; किन्तु महापुरुष के दर्शन, सत्संग, सेवा के प्रभाव से इसे मात्र खूँटी ही गड़ गई। इसकी आयु बढ़ गई। तुम्हें आज राजा होना चाहिए था किन्तु कुकृत्य करते-करते पुण्य क्षीण हो गया। एकाध लाख का हार मिल गया। दो-चार महीने में फूँक-तापकर उसे भी बराबर कर दोगे। फिर तो न पुण्य है न पुरुषार्थ। उस दिन से बड़ा भाई भी सत्संग में जाने लगा। बुराइयाँ छूट गईं।

वस्तुतः मनुष्य कर्मों का रचयिता है, शेष चौरासी लाख योनियाँ तो केवल भोग भोगने के लिए हैं। मानव-तन में भला-बुरा जैसा भी कर्म किया जाता है, उसी के अनुसार भविष्य की योनियों का सृजन होता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और मन के द्वारा जिस कार्यकलाप को लेकर यह जीवात्मा शरीर त्यागता है उसी के अनुसार उत्तम अथवा अधम योनियों में प्रवेश करता है। ***'कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके' (१५/२, गीता),*** मनुष्य-योनि ही ऐसी योनि है जिसमें कर्मों के अनुसार शुभ अथवा अशुभ बन्धन तैयार होता है। शुभ कर्म करेंगे तो हाथ में शुभ रेखायें बन जायेंगी, अशुभ करेंगे तो शुभ रेखायें नष्ट हो जायेंगी, अशुभ शेष बचेगा। केवल मनुष्य योनि में ही कर्मों का सृजन होता है। अन्य योनियाँ मात्र उन कर्मों के भोग के लिए हैं। आज से लाखों वर्ष पूर्व शेर जंगलों में रहते थे। कोई शक्तिशाली मिला तो भाग खड़े

हुए, कमजोर मिला तो फाड़ खाया। आज भी उनका वही स्वभाव है। उनका रहन-सहन, बुद्धि-विचार कुछ भी तो नहीं बदला। किन्तु मानव दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करता जा रहा है। कभी वह पत्थरों से लड़ता था तो आज क्षेप्यास्त्रों से लड़ रहा है। अन्तरिक्ष में जा रहा है। भौतिक आविष्कारों से हटकर यही मानव-मन ईश्वर की ओर अग्रसर हुआ तो सूक्ष्म होते-होते, मन का निरोध करते-करते परमतत्त्व परमात्मा तक को शोध निकालने में सक्षम हुआ। इस प्रकार मनुष्य कर्मों का रचयिता है, उसके आश्रित नहीं। सभी को चाहिए कि शुभ कर्म करें, अशुभ से बचें।

-:: १५ ::-

गुरु पूर्णिमा के पावन पर्व पर दसियों हजार की भीड़ अनुसुइया आश्रम में हो जाया करती थी। सैकड़ों माताएँ भी सपरिवार महाराजजी के दर्शनार्थ एकत्र हो जाती थीं। जब घर जाने की अनुमति हो, तो दो-एक महिलायें निवेदन करती थीं कि महाराजजी! अब मैं यहीं रहकर आपके सान्निध्य में भजन करूँगी। संसार में मेरा कोई नहीं रह गया है। महाराजजी कहते थे- "देखो हो! का कहत है? वैराग सवार है। घर में रहिहैं तो मारे गृहस्थी के साल भर फुरसत न मिली और इहाँ वैराग चढ़ा है, मरकट वैराग! अरे हम इहाँ अपने बहिन को रहने की अनुमति दें, माई को रखें अथवा बिटिया को रहने दें तो लोग का जनिहैं कि

माई-बहिन हैं। लोग तो इहै कहिहैं कि बाबा मेहरिया रखे हैं। **यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धम् न करणीयम्।** हालाँकि मन-क्रम-वचन से तनिको दोष नहीं है फिर भी जो लोकदृष्टि के विरुद्ध है वह नहीं करना चाहिए। उससे समाज में गलत संस्कार पड़ते हैं।"

"नहीं! महाराजजी! आप महापुरुष हैं। आपको कोई कुछ नहीं कहेगा। यहाँ पर हमारा मन बहुत लगता है। यहीं भजन करने की आज्ञा दीजिए।"- महिलाओं के ऐसा कहने पर महाराजजी कहते, "हूँ! चामे की धोकरी कुत्ता रखवार। ताजा उतारा चमड़ा है, कितना ही वफादार कुत्ता है, ऊ जरूर छुई। जबै मौका पाई, दाँत जरूर लगाई। स्वभाव है न। अरे! मैं साधू हूँ, मोके कउनो फरक नाहीं। दो-चार औरउ ऐसन हैं जिनके ऊपर संगदोष का प्रभाव नहीं है, मोरे स्वरूप हैं; लेकिन जो नये साधक हैं उनके तो गुण-स्वभाव पुराने हैं। **गुन सुभाव त्यागे बिनु दुरलभ परमानन्द।** *(विनय०, २०३)* दस-बारह साल में तो साधक लाइन पकड़ता है, तब कहीं खतरा टलता है। अबै तो ई सब कुम्हड़ बतिया हैं। संग से जती नष्ट होई जात है। जो भाग! घर ही से भजन कर। मनै से आवा-जावा कर। कल्यान मैं करिहौं। साँझ-सबेरे मोर रूपवा देखा कर। कउनो एक नाम जपा कर। राम-राम जप। जो और पति की सेवा कर। जवन तैं इहाँ पइहै वह मैं वहीं दे देइहौं।" इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्हें घर भेज देते थे।

महाराजजी प्रायः भाविकों से कहते थे कि 'ओम्', 'राम', 'शिव' -किसी भी दो-ढाई अक्षर के नाम को चुन लो। सबका आशय एक है। 'ओम्' पर अधिक बल देते थे। कहते थे, "मोरे रूपवा देखा कर। शरीरिया से कहूँ रहो, मनवा से आवा-जावा करो। सुबह-शाम, साँझ-बिहान जब याद आवै तब-तब मन से पहुँच जाया करो। जब भी मोरे रूप को एक भी मिनट हृदय में रोक लोगे तो जिसका नाम साधना है, वह भजन मैं तुम्हें प्रदान कर दूँगा। तुम्हारे हृदय से ही प्रेरणा करके भजन की प्रशस्त पटरी पर मैं खड़ा कर दूँगा; भगवान खड़ा करते हैं। **'तुलसिदास (मन) बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै।'** *(विनय०, पद ८६)* तुम एक मिनट ध्यान तो धरो। 'ओम्' जपो तो।"

-:: १६ ::-

पूज्य महाराजजी कहा करते थे, "बेटा! जब माया परीक्षा लेत है तब बूढ़े जवान होइ जात हैं, नामर्द मर्द बनि जात हैं। साधु बनब आसान है लेकिन निबाहब कठिन है। **धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।** (मानस, १/८५ सोरठा) हो, माया बड़ी अपरबल है।"

घोर जंगल में एक आश्रम था। बड़े अच्छे तत्त्वदर्शी महापुरुष वहाँ निवास करते थे। दस-पन्द्रह शिष्य भी उनके संरक्षण में क्रिया तथा सेवा में संलग्न थे। एक दिन एक शिष्य बोला,

"महाराजजी! आज्ञा हो तो वैराग्य कर आऊँ। तीर्थाटन की प्रबल इच्छा है।" महाराजजी बोले, "बेटा! अभी तुममें क्षमता नहीं है। माया बड़ी प्रबल है। उसकी सर्वत्र धार है। न जाने कब कौन-सा दाँव लगा दे, तुम जान ही नहीं पाओगे।" शिष्य ने कहा, "महाराजजी! बस आपकी कृपा बनी रहे तो माया क्या कर लेगी?" महाराजजी ने कहा, "हाँ, कृपा तो है लेकिन बचना! मैं भी तो कुछ कह रहा हूँ।" शिष्य ने प्रणाम किया, तो महाराज ने पुनः बचने के लिए सतर्क किया।

शिष्य अभी आश्रम से एक मील भी न गया होगा कि सामने से एक बुढ़िया तेजी से आती दिखाई पड़ी। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं किन्तु आँखों में तेज चमक थी। घोड़े की एक लगाम लिए वह उड़ती-सी चली आ रही थी। इधर-उधर देखती हुई आगे बढ़ती जा रही थी। महात्मा को दया आ गयी। सोचा, लगता है बेचारी का घोड़ा कहीं खो गया है। बोला, "बुढ़िया, इधर कोई घोड़ा नहीं गया! तू लगाम लेकर कहाँ दौड़ी जा रही है?" बुढ़िया बोली, 'बाबा! यह महात्माओं को लगाती हूँ, घोड़ों को नहीं।" ब्रह्मचारी बिगड़ा, कुतिया कहीं की! कहती है महात्माओं को लगाम लगाती हूँ। जो करना हो कर! क्या उखाड़ेगी?" बुढ़िया बोली, "अच्छी बात है बाबा! बचना!" ब्रह्मचारी पुनः जोर से बिगड़ा। बुढ़िया आगे बढ़ गयी।

ब्रह्मचारी एक मील और आगे बढ़ा तो नदी पड़ी। नदी के पार एक बाला विकल होकर रो रही थी। मुँह लाल हो गया था। आँखें रोते-रोते सूज आयी थीं। पैरों में मेंहदी लगाये, सजी-सँवरी किसी भले घर की नववधू प्रतीत होती थी। पार होते ही महात्मा ने दयावश पूछा, "तुम रो क्यों रही हो? तुम्हारे साथी क्या जंगल में भटक गये? तुम्हें क्या दुःख है?" बाला कुनमुनाई, उठी और धीरे-धीरे चलकर ब्रह्मचारी के पास आयी। पाँच रुपया उसके चरणों पर रखा, प्रणाम किया, बोली, "महाराज! मुझ-जैसी अभागिन इस सृष्टि में कोई नहीं है।" इतना कहकर वह पुनः वहीं जाकर बैठ गयी और रोने लगी। ब्रह्मचारी ने विचार किया- है बड़ी धर्मात्मा! इसके ऊपर कोई भारी आफत आयी है। इसकी सहायता करनी चाहिए। बोला, "कुछ बतायेगी भी कि बात क्या है?" बाला क्रमशः शान्त हुई, बोली, "महाराजजी! मैं मायके से आ रही हूँ। उस पार, वह जो गाँव दिखाई दे रहा है, मेरी ससुराल है। बीच में यह नदी बढ़ गयी। अब लौटती हूँ तो बड़ा अपशकुन माना जाता है। शुभ घड़ी में विदाई हुई है। उस पार कैसे जाऊँ? नदी बढ़ी है। बस यही दुःख है। अब तो हम न घर के रहे न घाट के। मर जाना शेष है। शेर-बाघ इस जंगल में खा लें, यही बाकी है। हमारी दुनिया का दीपक बुझ गया। महाराज! मुझ-जैसी अभागिन कोई नहीं है। आप दयालु हैं, सन्त हैं, आप से क्या प्रयोजन? आप जायँ। क्यों मुसीबत में पड़ते हैं? महाराजजी!

अपनी करनी पार उतरनी। जैसा मैंने किया है, कौन भोगेगा?" उठी और दस रुपया पुनः पैर पर चढ़ाया, प्रणाम किया। बोली, "महाराज! तीरथ में जा रहे हैं। ले लें, गाँजा-भाँग में काम आयेगा।"

ब्रह्मचारी चलने लगा तो सोचा, क्या कोई उपाय हो सकता है? रास्ते में कहीं कोई दिखलाई भी नहीं पड़ रहा था। लौटा, बोला, "देखो! नदी में इतना वेग नहीं है जितना तुम समझती हो। केवल घुटने तक पानी है। तुम चलो तो।" नववधू बोली, "महाराज! हमको बहुत डर लगता है।" ब्रह्मचारी बोला, "अच्छा, यह डण्डा पकड़! हम पार करा देंगे।" जहाँ पानी के पास आयी, तहाँ छड़ी छोड़कर वधू बड़ी जोर से चींख पड़ी, वापस हो गयी और पुनः जाकर वहीं बैठ गयी। विकल होकर रोने लगी। ब्रह्मचारी अवाक् रह गया, बोला, "अब क्या हुआ?" रोती हुई बोली, "महाराज! मेरे अभाग्य का अन्त नहीं है। अब तो कोई उपाय नहीं है। हमारे पास सौ-सवा सौ रुपया है। यहाँ मुझे शेर-चीता तो खा ही जायेंगे, ये पैसे पड़े-पड़े सड़ जायेंगे, आप तीरथ-बरत में जा रहे हैं, इसे स्वीकार करें। किराया-भाड़ा, गाँजा-भाँग में काम आ जायेंगे।'' रुपया फेंका, प्रणाम किया और वापस वहीं जाकर रोने लगी। महात्मा दयार्द्र हो चले थे, पूछा, "बात क्या हुई। क्यों पीछे हट गयी?" वह बोली, "महाराजजी! पैर में महावर लगा है, वह तो पानी में धुल जायेगा। ससुराल में वे मुझे रखेंगे नहीं। कहेंगे, न जाने कितने दिन की चली है। महावर

कहाँ छुड़ाकर आयी है।"

महात्मा ने सोचा, विपत्ति तो भारी है; किन्तु बेचारी है बड़ी धर्मात्मा। पूछा, "क्या कोई भी उपाय नहीं है?" "महाराज! आप जायँ।" ब्रह्मचारी ने कहा, "सुन तो लें, क्या है?" वधू बोली, "अपने कन्धे पर बैठा लीजिए, हमारे पैर का रंग न छूटे और उस पार कर दीजिए।" ब्रह्मचारी बोला, "ऐसा कैसे हो सकता है?" वह बोली, "अरे महाराज! वह तो हमने पहले ही प्रार्थना किया। आप जाइये।"

ब्रह्मचारी संकोच में पड़ गया, सोचा- है बड़ी दयालु, साधुसेवी है। हमको इतना खर्च दिया। रास्ते की ओर आगे-पीछे देखा। कोई नहीं था। बोला, "शीघ्र कन्धे पर बैठ। हम पार कर दें।" ब्रह्मचारी के मन में उस समय कोई विकार भी न था। कन्धे पर बिठाया और नदी पार करने लगा। बीच धारा में पहुँचते ही नववधू ने ब्रह्मचारी के मुँह पर लगाम लगाकर पैर से एड़ लगा दिया। टिक-टिक हाँकने लगी। ब्रह्मचारी बिगड़ा, बदतमीज कहीं की! क्या करती है?'' ऊपर झाँका तो वही बुढ़िया। बोली, "कहा था न बाबा बचना! द्रवित हो ही गये। साधक के लिए दया का विधान कहाँ है। थोड़ा-सा चारा फेंका, उतने में ही फँस गये। तुम्हारे पीछे पुण्य प्रबल है। जंगलवाले महात्मा हृदय में बैठे हैं इसलिए बच गये अन्यथा तुम्हें तो अभी पटकर चढ़ बैठती।

जन्मभर रोने को आँसू न मिलते।"

ब्रह्मचारी ने झुँझलाकर बुढ़िया को नदी में फेंका तो न कहीं बुढ़िया थी, न लड़की। सोचने लगा कि सचमुच माया प्रबल होती है। इसको तो हम पहचान ही नहीं सकेंगे। लौटा और आश्रम चला गया। महाराज ने पूछा, "वैराग्य कर आये?" ब्रह्मचारी बोला, "महाराज! आपकी आज्ञा नहीं मानी! बाल-बाल बच गये। माया मिली थी, कहा- गुरुजी तुम्हें पकड़े हैं नहीं तो अभी पटककर चढ़ बैठती। अब तो महाराज हम यहीं रहकर सेवा करेंगे।"

अतः साधक को तब तक गुरु-आश्रम में धक्का-मुक्की खाते हुए सेवा और साधना में लगे ही रहना चाहिए, जब तक साधना की पटरी पर अनवरत चलने की क्षमता न आ जाय। इसके पश्चात् **'कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।।'** ***(मानस, २/३११/५)*** कोई अन्तर नहीं पड़ता। विचरण करने में खतरा है। माया की धार सर्वत्र है। **'काले मूड़ का एक न छाड़ी, अजहूँ आदि कुमारी।।'** कबीर कहते हैं कि माया से एक भी कुकृत्य नहीं बचा फिर भी वह आदि कुमारी बनी है। इसका कुछ नहीं बिगड़ता। यह सदैव युवा है। जितना ही इसका स्पर्श करेंगे, उतना ही यह युवा होती जायेगी।

माया दया के वेश में, सेवा के वेश में, अनन्त मार्गों में न जाने किस रास्ते से साधक पर कामयाब हो जाती है। साधक के

लिए दया का विधान नहीं है। सीताजी ने दया की तो लंका में जाकर भोगना पड़ा। **'दया बिनु सन्त कसाई, दया करी तो आफत आई।'** हाँ, दया-धाम की उपलब्धि होने पर महापुरुष दया का स्रोत ही बन जाता है। फिर तो **'खाय न खूटे, चोर न लूटे; दिन दिन बढ़त सवायो।' 'ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं'** वह पूर्ण है- भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में पूर्ण है। पूर्ण में से पूरा दान देने पर भी पूर्ण बचा ही रहता है। ऐसे मनीषी दया के धाम ही हैं, उनसे सदैव कल्याण होता ही रहता है, और उन्हीं से दया की आशा भी की जाती है, किन्तु साधक के लिए दया का विधान नहीं है। साधक पहले अपनी तो परीक्षा दे ले, फिर दूसरों को डिग्री-डिप्लोमा देगा। हाँ, ऐसे साधन-परायण पुरुषों की सेवा से लाभ सदैव है। वे भले दया न करें किन्तु उनसे स्वतः मिलता है। पूर्तिपर्यन्त खतरा रहता है। इष्ट से एक इंच की भी दूरी है, तब तक माया कामयाब हो जाती है। वास्तव में साधु बनना आसान है लेकिन निर्वाह करना कठिन है। निर्वाह किसी महापुरुष की सेवा से ही होता है।

द्वार धनी के पड़ि रहे, धक्का धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजिहै, (जो) दर छोड़ ना जाय।।

-:: १७ ::-

पूज्य महाराजजी से एक भाविक ने पूछा, "महाराजजी! योग

कैसा होता है?" महाराजजी ने उसकी ओर देखा, बोले- ''हूँ, माँगे का भीख, पूछे गाँव का जमा! अरे! जोग कहिले से आवत है? घर पर कौन काम करते हो?" वह बोला, "महाराजजी! दुकान है। आजकल बड़ी घटी दे रही है। बरक्कत नहीं हो रही है इसीलिए आया हूँ।" महाराजजी ने कहा- "हूँ...भितराँ कुछ अउर भरा है, ऊपर से जोग पूछत है। 'नाम अन्हियारी बारी, होम करै के पल्लव नाहीं।' अरे! जोग अधिकारी की वस्तु है। हूँ! जउने लिए आया है वही माँग! जो, विभूति उठा! अब देख का होत है! फिर आकर बताना क्या हाल है?" इसी प्रकार महाराजजी सबको समझा-बुझाकर वापस कर देते थे।

पास बैठे अनेक भाविकों के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो ही जाती थी। कुछ लोग विनयपूर्वक पूछ बैठते थे कि महाराजजी! भजन कैसे होता है? महाराजजी उन्हें सस्नेह समझाते थे कि देखो, सब लोग भक्ति का अर्थ नहीं जानते। लोग समझते हैं कि आँख बन्द कर लो या एकान्त में बैठकर कुछ समय बिता दो अथवा कोई काँटे पर सोता है, कोई खड़ा ही रहता है या महात्मा जंगल में बैठे रहते हैं, यही भजन है। लेकिन भक्ति के जितने भी दाता और ग्रहणकर्ता हुए हैं, उन सबका चरित्र देखने पर ज्ञात होता है कि भक्ति-भाव के लिए सेवा का बड़ा महत्त्व है। 'भज' का अर्थ ही सेवा करना होता है।

राजा दिलीप वशिष्ठ की गाय चराया करते थे। वे चाहते तो अपने स्थान पर दस-पाँच हजार नौकर लगा देते। किन्तु नहीं, नौकरों द्वारा सेवा कराना एक बचाव (गुंजाइश) निकालना है। हम स्वयं मन से लगें तभी हमारे अन्दर उन संस्कारों का सृजन होगा, मन निर्मल होगा, भक्ति पुष्ट होगी। यदि नौकरों द्वारा सेवा कराते हैं तो नौकरों को भले ही कुछ मिल जाय, भेजनेवाले के लिए तो खानापूर्ति ही हाथ लगेगी। इसीलिए महाराजा दिलीप चक्रवर्ती नरेश होते हुए भी स्वयं गुरुवर वशिष्ठ की सेवा में अपने कल्याण के लिए उपस्थित थे। संसार में अन्य सभी वस्तुएँ सुलभ हैं, केवल भक्ति ही एक दुर्लभ पदार्थ है। 'भग इति सः भक्ति।' भग प्रकृति को कहते हैं, माया को कहते हैं। इस माया का अन्त जिस क्षण हो जाय वही भक्ति की पराकाष्ठा है। प्रकृति का अन्त और परमात्मा में स्थिति ही भक्ति का अन्तिम परिणाम है। इस उपलब्धि के लिए विषयों में संलग्न मन को सब ओर से समेटकर उन चरणों में लगाना होगा। इसीलिए दिलीप स्वयं सेवारत थे।

पुराणों में बहुत-सी कथाएँ मिलती हैं, जिनमें अनुरागियों ने गुरुदेव की शरण में पहुँचकर ब्रह्मविद्या के उपदेश के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने सत्यकाम नामक शिष्य से कहा, "इन सौ गायों को जंगल में ले जाओ, इनकी सेवा करो। किसी का साथ न करना। एकान्त का सेवन करना। हम एक छोटा-सा नाम बता रहे हैं,

इसी का जप करना और कोई आपत्ति-विपत्ति आये तो हमारी ओर देख लेना। जिस समय सहस्र गायें हो जायँ, आ जाना। उस समय हम तुम्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश करेंगे।" कभी कोई भाविक किसी महर्षि के पास पहुँचा और ब्रह्मविद्या का रहस्य जानना चाहा तो महर्षि ने उसे बारह वर्षों तक गोशाला की देखरेख करने को कहा। छान्दोग्य उपनिषद् की कथा है कि इन्द्र सौ वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के पश्चात् ब्रह्मविद्या के अधिकारी हुए।

वस्तुतः भक्ति, जो प्रकृति से पार स्थिति प्रदान करनेवाली है, उसका उतार-चढ़ाव इस मन पर है। आज हम निःसन्देह ब्रह्मविद्या चाहते हैं किन्तु कल तक हम क्या थे? मन तो आज भी वही है, हजारों मायिक ग्रन्थियों में उलझा है। क्षणिक वैराग्य मन का यथार्थ स्वरूप नहीं है। इसीलिए वे महापुरुष मन को योग्य बनाने के लिए कोई सेवा निर्धारित कर देते थे। उस सेवा से दस-बारह वर्षों के अन्तराल में पारिवारिक आसक्ति निकल जाती थी, संगदोष का कुप्रभाव नहीं पड़ने पाता था। उत्तरोत्तर ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा बढ़ती जाती थी, ब्रह्म का मूल्य समझ में आने लगता था। एक-एक दिन गिनना भारी पड़ता था। अनुरागी लालायित रहता कि कब अवधि समाप्त हो, कब क्षमता आए और मैं ब्रह्मविद्या प्राप्त करूँ। इसीलिए सेवा का सदैव विधान था। अनायास किसी को साधना बता दी जाय, तो न तो ब्रह्मविद्या उपयोगी रहती है, न ब्रह्म। उस साधना को करने की क्षमता भी

साधक में नहीं होती; किन्तु कुछ काल तक महापुरुष की सेवा करने से वही योग्यता स्वतः आ जाती है। सद्गुरुओं की शरण में जाने का विधान यही है कि **'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'** ***(गीता, १८/६६)*** सम्पूर्ण धर्मों को त्यागकर मन-क्रम-वचन से उनकी शरण में हो जाओ। जब मन से उनका स्पर्श करने लगेंगे तो उनके अन्दर जो योग्यता है, आपके भीतर भी स्वतः प्रसारित हो जायेगी।

हम भी जब महाराजजी की शरण में गये तो पूज्य महाराजजी ने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया किन्तु हमारी समझ में कुछ आया नहीं। कुछ काल पश्चात् जब समझ में भी आया तो जब चिन्तन करने बैठते तो महाराजजी का स्वरूप सामने से हट जाय और एक विशालकाय मुर्रा भैंसा ध्यान में आकर खड़ा हो जाय। कई दिनों तक ऐसा होता रहा। हमने महाराजजी से निवेदन किया कि महाराजजी, आपका स्वरूप प्रयत्न करने पर भी ध्यान में नहीं आता और एक बड़ा भैंसा जिसकी कभी कल्पना भी नहीं थी, आकर सामने खड़ा हो जाता है। महाराजजी ने बताया- "बेटा! यमराज है। इसी से तो लड़ाई लेनी है। इसी की तो फाँसी काटनी है। अच्छा बताओ- चिन्तन में मन लगता है?" हमने कहा, "महाराजजी! उत्साह तो है; किन्तु भजन में बैठता हूँ तो दृश्यों की कतार लग जाती है। जो कभी याद नहीं था, बीसों वर्ष पहले भी

जो घटना घटी थी, वह भी सजीव चित्रित हो उठती है।" महाराजजी ने निर्देश दिया, "यह ऐसे नहीं ठीक होगा। तुम चिन्तन के साथ समर्पित भाव से सेवा करो, बस!"

उस समय सेवा का वास्तविक अर्थ एवं महत्व भी हम नहीं जानते थे। गुरुदेव की आज्ञा थी, सोचा- चलो ठीक है। हाथ-पैर इधर-उधर चलते रहें किन्तु मन सदैव चरणों में लगा रहा। जब तक सेवा का वास्तविक महत्त्व मेरी समझ में नहीं आया, तब तक हम इसी प्रकार दिखावटी सेवा ऊपरी मन से करते रहे; किन्तु जब इष्ट गुरुदेव अनुभवों द्वारा बार-बार वही बात हृदय-देश से बताने लगे तब सन्देह दूर हो गया। तब से मन लगाकर सेवा करने लगे। ऐसा ही विधान पूर्व महर्षियों का था, अब भी है और ऐसा भविष्य में भी रहेगा।

जब तक मन साधना में प्रवेश पा नहीं लेता तब से पूर्तिपर्यन्त सेवा में समय देना होगा। यदि कोई सेवा छोड़कर चिन्तन में बैठ जाता है तो केवल शरीर बैठा रहता है। जिस मन को बैठना चाहिए वह तो हवा से बातें कर रहा होता है। कुछ दिनों तक साधक हठवश बैठे रहते हैं किन्तु साल-दो साल पश्चात् हताश होकर किसी आडम्बर को स्वीकार कर लेते हैं अथवा इधर-उधर बहकने लगते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं- अर्जुन! जो हठ से इन्द्रियों को रोककर मन से विषयों का चिन्तन करता

रहता है, वह दम्भाचारी है। अतः मन से इन्द्रियों को रोककर जो निर्धारित क्रिया करता है वही श्रेष्ठ है, वही योग की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवाला है। इसीलिए सेवा का विधान है।

आज भले ही हमें विकार प्रतीत न हों किन्तु जो पहले से भरे पड़े हैं, बड़े स्नेह से जिनका कभी हमने चिन्तन किया था, वे कृत्य बरबस चिन्तन के समय आयेंगे। उनका शमन हुए बिना चिन्तन में मन नहीं लगेगा। केवल शरीर से बैठने से कोई लाभ नहीं है। इसीलिए महापुरुषों की सेवा का विधान है। महापुरुष के हृदय का वायुमण्डल शान्त रहता है। जहाँ भी वे रहते हैं उनसे निरोध के ही परमाणु प्रसारित होते रहते हैं। उनकी हर श्वास से तपस्या के संस्कारों का संचार होता रहता है। इसीलिए उनके दर्शन, स्पर्श, सेवा तथा संसर्ग से जो योग्यता आज मन में नहीं है वह भी कुछ ही काल में आ जाती है। फिर तो मन मायिक पथ को छोड़कर इष्ट की पटरी पर क्रमशः गमन करने लगता है। साधना गति पकड़ने लगती है। भगवान राम कहते हैं-

सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग।।

(मानस, ७/८६)

सुशील, बुद्धिमान्, प्रयत्नशील सेवक किसे प्रिय नहीं होता? पिता अपने सभी बच्चों पर समान स्नेह रखता है; किन्तु जो पुत्र

मन-क्रम-वचन से पिता का भक्त है, पिता की सेवा ही धर्म जानता है अन्य कोई धर्म नहीं जानता है, वह सुत पिता को प्राणों की तरह प्रिय होता है, भले ही वह मूर्ख क्यों न हो। इसी प्रकार, भगवान राम कहते हैं कि यह सम्पूर्ण विश्व मुझसे उत्पन्न है और सभी जीवों पर मेरी समान दया है; किन्तु उनमें भी जो मद-माया का त्याग करके मन-क्रम-वचन से मेरा भजन करते हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। भक्तिहीन विरंचि भी सामान्य जीवों की तरह प्रिय हैं- **'सत्य कहउँ खग तोहिं सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।'** *(मानस, ७/८७ ख)*। प्राणप्रिय तो सेवक ही होगा।

इस प्रकार प्रारम्भ में महापुरुष की सेवा शरीर से की जाती है; किन्तु चिन्तन की एक निर्धारित सीमा पार कर लेने पर, किंचित् परिपक्वता में यही सेवा मानस-पूजा में ढल जाती है। साधना जागृत होने पर स्वतः साधक समझता जाता है और इष्टदेव पूर्तिपर्यन्त एक-न-एक नया रूप प्रदान करते रहते हैं, सेवा की विधि समझाते ही रहते हैं। प्रारम्भ में बताते हैं। इस तरह नाम पकड़ने की क्षमता आ गयी तब वे स्वयं ही छुट्टी देकर बाहर वाणी से, अन्दर अनुभवों द्वारा संचालित कर समीप के ही किसी एकान्त स्थान पर निवास के लिए भेज देते हैं, उसे अलग रहने की अनुमति प्रदान कर देते हैं। वहाँ साधक का मन भी लगने लगता है। अब तक सेवा शरीर से होती थी और उसके बाद वह

अब भी सेवा ही करता है किन्तु मन से करता है। दिन-रात उन्हीं महापुरुष की प्रार्थना करता है, उन्हीं के अनुरूप अपने को ढालता जाता है। मन द्वारा की गयी मानसिक सेवा शारीरिक सेवा से उत्कृष्ट होती है।

मानसिक सेवा के क्रमागत उत्कर्ष में साधक जब इष्ट के समीप की अवस्था तक पहुँच जाता है, प्राप्ति में अब तब लगा है, उस समय ये साधनाएँ छूट जाती हैं। एक नयी दिशा इष्टदेव स्वयं प्रदान करते हैं जो अनुभवगम्य है। गौतम बुद्ध भी पहले अथक परिश्रम कर रहे थे; किन्तु जब भजन पराकाष्ठा पर पहुँचा, वे प्राप्ति के लिए हठ करने लगे तो दृश्य दिखाई पड़ा। कुछ लोग वीणा बजाते हुए जा रहे थे। आवाज आयी कि वीणा के तार इतने मत कसो कि टूट जायँ और इतने ढीले मत रखो कि स्वर ही न निकले। इसलिए मध्यम मार्ग अपनाओ। यह श्वास ही सितार है। इसी से इष्ट के नाम का यजन होता है, जिह्व से नहीं। कबीर कहते हैं-

शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवे नहीं, निरखि परखि कर लेह।।

शब्द-शब्द तो सभी कहते हैं। तालु और कण्ठ से स्वरों की उत्पत्ति की कल्पना भ्रान्तिपूर्ण है। अक्षर ब्रह्म वाणी से उच्चरित होनेवाला नहीं है। चलते-चलते योगी जब विदेहावस्था में प्रवेश

करता है उस समय अक्षर ब्रह्म, वह शब्द जागृत हो जाता है। उस शब्द का उतार-चढ़ाव इस श्वास-प्रश्वास पर निर्भर है। इसीलिए बुद्ध को आदेश मिला कि मध्यम मार्ग अपनाओ। तुरन्त उन्होंने कठोर तपस्या में न्यूनता कर दी। बहुतों ने सोचा कि बुद्ध साधन से च्युत हो गये किन्तु उन्होंने उसकी परवाह न की। उस अवस्था में पहुँचने पर प्रत्येक साधक के समक्ष यह स्थिति आती है। उस समय भी इष्ट की आज्ञा का पालन ही भजन है। वहाँ 'क्यों' का प्रश्न नहीं होता। यदि यह सेवा पार लग गयी, इष्ट सन्तुष्ट हो गये तो तत्क्षण अपने ही स्वरूप में प्रवेश दिला देते हैं। इस प्रकार पूर्तिपर्यन्त सदैव सेवा का विधान है।

इष्ट के इन आदेशों को केवल साधक ही सुनता है अथवा स्वरूप में स्थित कोई महापुरुष ही साधकों की गतिविधि को भली प्रकार जानते हैं- **'कै जाने जिउ आपना, कै रे जनावे पीउ।'** साधक जानता है अथवा वह प्रियतम जनावें। इसलिए महाराजजी प्रायः कहते थे कि साधन ही एक ऐसी वस्तु है जो लिखने में नहीं आती। जो लोग लिख-पढ़कर योग का प्रचार-प्रसार करते हैं उससे संस्कारों का सृजन भले हो जाय, योग नहीं मिलता।

सारांशतः सेवा दो प्रकार की होती है- एक तो शारीरिक और दूसरी मानसिक। इष्ट का स्वरूप पकड़कर हृदय में ही उन्हें धूप-दीप-नैवेद्य-माल्यादि अर्पित करना, वन्दन-अर्चन मानसिक

पूजा के अन्तर्गत हैं। अन्तर्देश में स्वरूप पकड़कर की जानेवाली यह सेवा उन्नत तथा सूक्ष्म है और इष्ट से सीधा सम्बन्ध जोड़ देनेवाली है। सेवा ही भजन की प्रवेशिका है और वही भजन की पराकाष्ठा भी है।

-:: १८ ::-

पूज्य महाराजजी कहा करते थे, "हो! महात्मा की सेवा करै में अउर खवावै में तनिकौ कसर न रखे के चाही। एमें जबरदस्तियौ किहा जाइ सकत है। एसे कल्यानइ होत है। हाथ सूखा साधु भूखा।" इस सन्दर्भ में महाराजजी एक कथानक भी सुनाया करते थे। एक बड़े अच्छे महात्मा थे। परमहंस स्वरूप में थे। टाट और ठाट में उन्हें कोई अन्तर नहीं था। अपने भजन की मुद्रा में विचरण किया करते थे। कभी मुट्ठीभर चना तो कभी घिउ घना। प्रायः स्वभाव से ही दिगम्बर थे। जब साधना पूर्ण हो चली तब इष्टदेव ने कहा- "कहीं स्थायी रूप से निवास करो।" किन्तु एकाकी विचरण और भजन में उन महात्मा को मस्ती मिलती थी इसलिए इष्ट की आज्ञा प्रणाम करके टाल देते, बैठे नहीं।

माघ का महीना! कड़ाके की ठंड! विचरणशील महात्मा को कोई व्यवस्था न दीख पड़ी। एक कुम्हार आँवें में से बर्तन निकालकर उसी में दीवाल के सहारे ढेर लगा रहा था। आँवे की विभूति कुछ गरम थी। महात्मा बोले, "कुम्भकार भाई! हमें रातभर

यहाँ ठहरना है। तुम यह स्थान मुझे बैठने के लिए दो।" कुम्भकार ने सादर प्रणाम किया, बोला- "महाराज! मैं इन्हीं बर्तनों से जीविका चलाता हूँ। सभी तरफ बर्तनों का ढेर है। कहीं फूटफाट गये तो मर जाऊँगा। आप क्षमा करें। थोड़ी ही तो जगह है। आप बैठ भी तो नहीं सकेंगे।"

महात्माजी ने कहा, "हमें सोना नहीं है, केवल बैठकर भजन करेंगे और सवेरे चलते बनेंगे। तुम्हारे ऊपर कोई भार नहीं है।" महात्मा को बैठाकर कुम्हार बोला, "देखिएगा महाराज! ख्याल रखियेगा।" महात्मा बोले, "तूँ न घबड़ा! कोई नहीं ले जायेगा।" कुम्हार ने प्रणाम किया और "आप विश्राम करें"- कहता हुआ घर की ओर चला गया।

महात्मा उस गर्मस्थली में अबाध चिन्तन में रत हो गये। रात में दो-तीन बजे सोचा, थोड़ी कमर सीधी कर लें। हाथ-पाँव समेटकर वहीं लेट गये। तुरन्त आँख लग गयी, यद्यपि सोने का अभ्यास नहीं था। स्वप्न दिखाई पड़ा कि वही महात्मा एक सुरम्य स्थान पर बैठे हैं। हजारों लोग दर्शन कर रहे हैं। कुछ-न-कुछ चढ़ा रहे हैं। महात्मा उसे उठाकर बगल की कोठरी में बैठे-बैठे ही फेंकते जा रहे हैं। फेंकते-फेंकते महात्मा थक गये। सोचा, थोड़ा भोजन कर लें। जहाँ भोजन के लिए हाथ बढ़ाया कि एक सेठ थैली अर्पित कर बोला, "महाराजजी! इसे कहीं परोपकार में

लगा दें।" महात्मा बिगड़ पड़े, "ऐसी तैसी इन भक्तों की! चाँदी का जूता मार रहे हैं। कहते हैं परोपकार में लगा दें। तुम क्यों नहीं लगा देते? हमें बीच में डाल के फाँसी दिये पड़े हैं। न खाने को समय, न चिन्तन को।" -इस प्रकार प्रताड़ित करते हुए उस धन की थैली पर लात मारा। पैर थोड़ा बढ़ गया, जाकर नीचे वाली बड़ी हँड़िया में लगा। जहाँ वह फूटी, नीचे की आड़ हटी तहाँ भड़भड़ करते सभी बर्तन ऊपर से नीचे तक चकनाचूर हो गये।

महात्मा की नींद खुल गयी। पश्चाताप करने लगे- अरे! उस बेचारे ने जगह दिया, भलाई की। उसका इतना बड़ा नुकसान हो गया। गरीब मारा गया। सुबह आयेगा तब क्या कहेगा? हम चले जायँ तो बड़ी बदनामी होगी। जब हम बाबा हैं तो इस प्रकार मुँह छिपाकर जाना शोभा नहीं देता। लोग साधुओं को क्या कहेंगे? अवश्य यह कोई मायिक उपद्रव है। इसी उधेड़बुन में रात बीत गयी।

सवेरा हुआ। कुम्हार आया, बोला, "अरे महाराज! हम कल ही कह रहे थे कि लम्बा-चौड़ा गाँव है, कहीं भी रुक जायँ, हम गरीब को फाँसी न दें। लो, हमारे सभी बर्तन फूट गये। बरस भर की कमाई चौपट हो गयी। अब क्या होगा?" महात्मा को मौन देखकर कुम्हार निवेदन के स्वर में बोला, "आप बतावें तो! यह हुआ कैसे?" महात्मा ने स्वप्न की घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी

और बताया कि किस प्रकार पाँव चल गया था। कुम्हार ने सोचा, महात्माओं के स्वप्न व्यर्थ नहीं जाते। लगता है कि ये सिद्धकोटि के महात्मा हैं। पुण्यवान् भक्तों की भीड़ यहाँ अवश्य होगी। लक्ष्मी इन भगवत्स्वरूप की सेवा करना चाहती है। न हो तो इनको यहीं रोक लूँ। कदाचित् हमारी भी कमी पूरी हो जाय और इनकी सेवा करने का सौभाग्य भी मिले। जो चढ़ेगा मैं ले लूँगा। ऐसा निश्चय कर बोला, "अच्छा तो महाराजजी! जो हुआ सो हुआ। अब आप यहाँ से कहीं न जायँ, हमारे ही यहाँ रुकें। मैं आपकी सेवा करूँगा।"

दयावश महात्मा रुक गये। दो महीने वहाँ रहे। वास्तव में वैसी ही भीड़ लगने लगी। कुम्हार को भी बड़ा सन्तोष मिला। कमी तो कभी की पूरी हो गयी थी। जब महात्मा ने समझ लिया कि अब कुम्हार को कोई अभाव अथवा कष्ट नहीं है, तब एक दिन अकस्मात् अन्यत्र चले गये। इष्ट-आज्ञा से एक स्थान पर निवास करने लगे तथा उसी स्थान से कल्याण का अजस्र स्रोत निकल पड़ा, समष्टि का कल्याण उनसे होने लगा।

महाराजजी कहा करते थे- हो! जब भगवान कृपा करत हैं त विपतियै सम्पति बनि जात है। जब भगवान आज्ञा दे दें, बैठ जाना चाहिए, दोष नहीं है। जब किसी वस्तु को लेने के लिए कहें तो ग्रहण कर लेना चाहिए, तब दोष नहीं है। साधन-काल में वही दोष है किन्तु आदेश के पश्चात् वही हितकर हो जाता है।

नोट- *इस कथानक के महात्मा अन्य कोई नहीं, पूज्य गुरुदेव ही थे; परन्तु कहते इसी तरह थे।*

-:: १६ ::-

साधना में अनुशासन नितान्त आवश्यक है। अनुशासनविहीन कोई साधक इस भगवत्पथ पर सफल नहीं हो सकता। जन्म-जन्मान्तरों से चलनेवाले पथिक की बात अलग है। यही कारण था कि पूज्य महाराजजी अकारण ही साधारण-सी गलती पर ताड़ना प्रदान करते थे और जब कोई बहाना न मिले और साधक की बुद्धि साधना से कुछ हटती प्रतीत हो तो उसे सुनाकर कहें- "ऊपर झाड़ू नहीं लगा। कचड़ा होई। फलानी जगह ऊ काम बिगड़ा है।" अपने आप भुनभुनाया करें। वह साधक सुनकर, भाव-विभोर होकर जब छत पर झाड़ू लगाने लगे तो बिगड़े- "कौन है? मोरे कपारे पर झाड़ू फेरत है? ला! ला! धर! धर सारे के! पकड़!" ललकारने लगते थे। जब वह सामने आता था, वह सोचे कौन गलती हुई; तब तक दो डण्डे लगा दिया। जहाँ सब हट जायँ, मार खानेवाला साधक भी हट जाय तब शेष लोगों से हँसे और कहें कि- "सार का मैं एक महीना से ढूँढ़त रहेउँ। कहीं गलती में पावत नहीं रहे। आज मिला।"

इस प्रकार जब वे समझते थे कि अब ताड़ना की ही आवश्यकता है तो कोई-न- कोई बहाना ढूँढ़ लेते थे, नहीं तो

उन्हें छत और झाड़ू से क्या प्रयोजन? जिस प्रकार भले परिवार में लड़की जब युवा हो जाती है तो माता-पिता, घर के लोग उसकी देखभाल करते हुए, कर्मों में व्यस्त रखकर शादी तक निर्वाह करा देते हैं। ठीक इसी प्रकार एक सद्गुरु अपने नादान शिष्य को प्रकृति के द्वन्द्वों से निकालकर, उसकी साधना पार करा देते हैं। यदि वह ध्यान न दें तो अपने बल पर भवसागर पार होना असम्भव है।

गुर बिनु भवनिधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई।। *(मानस ७/९२/७)*

ब्रह्मा और शंकर की स्थिति वालों को भी यदि सद्गुरु उपलब्ध नहीं, तो वे भी भवसागर पार नहीं कर पाते।

राखइ गुर जौं कोप बिधाता।
गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।। *(मानस, १/१६५/६)*

यदि तकदीर रूठ जाय, किस्मत में घोर नरक और यातनायें लिख दी जायँ तो भी सद्गुरु बचा लेंगे; किन्तु यदि गुरु ही रूठ गये तो विश्व में भगवान नाम की कोई वस्तु नहीं है। भगवान वैसे सर्वत्र हैं, हैं तो; किन्तु हमारे उपयोग के लिए नहीं होते। क्योंकि उन भगवान तक की दूरी तय करने का एकमात्र माध्यम सद्गुरु और उनसे निर्दिष्ट पथ है।

अब प्रश्न खड़ा होता है कि उनको ढूँढ़ा कैसे जाय? माया बड़ी प्रबल है-

माया ऐसी प्रबल है, तजि मालिक की छाप।
बनकर बैठी जगत में, कर्ता धर्ता आप।।

माया ऐसी प्रबल है कि जगत् में स्वयं कर्ता-धर्ता भगवान बनकर बैठ गई। देखा कि मन्दिरों में लोगों की आस्था है, तो वहाँ भी ढोंग धतूर बनकर प्रवेश पा गई। तीर्थों से लोगों का कल्याण होते देखा तो पण्डों के माध्यम से वहाँ भी धूर्तता खड़ी कर दी। अब देखा, सद्गुरु का बड़ा महत्त्व है तो गुरुओं की कतार खड़ी कर दी। **घर में बीबी झोंके भार। बाहर मियाँ सूबेदार।।** भीतर तो गुरुत्व नाम की कोई वस्तु नहीं, लेकिन बाहर से प्रदर्शन ऐसा कि मानो सचमुच के गुरु हैं। ऐसी परिस्थिति में कैसे ढूँढ़ा जाय कि ये महापुरुष पूर्ण हैं? एक महापुरुष वास्तविक हैं तो हजारों उसी कतार में बैठे हैं। सभी शुद्धता की गारण्टी देते हैं। आप ही बतावें, इनमें महापुरुष कौन है? कैसे पहचाना जाय? तो-

पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न सन्ता।
सतसंगति संसृति कर अन्ता।। *(मानस, ७/४४/६)*

पुण्य का बहुत बड़ा संग्रह जब तक प्रकट होकर साथ नहीं देता तब तक सन्त अथवा सद्गुरु नहीं मिलते। नहीं मिलते का यह अर्थ नहीं है कि दिखलाई नहीं देते। बिना पुण्य के वे ही नहीं,

साक्षात् भगवान शंकर भी खड़े हों तो हम उन्हें भी चार खरीखोटी सुना ही देंगे- "देखो कैसा रूप बनाये खड़ा है? एनके ऐसन चाही? अभै त ए चारि आदमी क पेट भरे के लायक रहेन।" क्यों? जिन आँखों से सन्त अथवा सद्गुरु पहचाने जाते हैं वह दृष्टि ही पुण्यमयी है। इन चर्मचक्षुओं से हम उन्हें नहीं देख सकते। कारण यह है कि भगवान मन-बुद्धि से परे हैं। अभ्यास करते-करते निरोध की अवस्था में योगी मन-बुद्धि से उपराम होकर, भगवत् तत्त्व से संयुक्त होकर गुरुत्व में प्रवेश पाता है, तब वही सद्गुरु कहलाता है; सत्य से संयुक्त होता है, इसलिए सद्गुरु कहलाता है। मन-बुद्धि से उपराम हुए महापुरुष को हम मन-बुद्धि से कैसे जान पायेंगे? इसके लिए तो एक ही उपाय है- पुण्यपुंज। यदि सद्गुरु नहीं मिले हैं तो सिद्ध है कि पुण्य की कमी है, आप इसे अर्जित कीजिए, पुण्य-पुरुषार्थ को बढ़ाइये। जब भी वह प्रकट होकर साथ देगा, उस समय सन्त अथवा सद्गुरु जिस सिंहासन पर बैठे होंगे अथवा जिस दलदल में लोटते होंगे, मिल जायेंगे। या तो आप ही वहाँ तक पहुँच जायेंगे अथवा वे ही आपके पास आ जायेंगे। विश्वास भी हो जायेगा। आप उनके हो जायेंगे और उनके द्वारा आपका पथ-संचालन भी हृदय से होने लगेगा। उसके लिए एक ही माध्यम है- पुण्यपुंज। जिन आँखों से सन्त अथवा सद्गुरु पहचाने जाते हैं वह दृष्टि पुण्यमयी है। और जब सद्गुरु ही मिल

गये, **'सतसंगति संसृति कर अन्ता'** (मानस, ७/४४/६) उनके द्वारा सत्य का उपदेश और उस सत्य की संगति आवागमन का अन्त करनेवाली होती है। सद्गुरु या साधक बनावटी नहीं होता। **देखा देखी साधे जोग। छीजै काया बाढ़ै रोग।।** कोई कार्य देखादेखी नहीं करना चाहिए। संयोग से भगवत्-पथ पर कदम रख ही लिया, वेश में आ ही गये, तो जब तक प्राप्ति न हो हमें हताश नहीं होना चाहिए। महाराजजी के पास जब कोई महात्मा आयें, तिलक-मुद्रा लगाये, तो महाराजजी बोले- "का है? ले पानी पी।" वह कहते, "महाराज थोड़ा स्वरूप बना लेइत त पीयित।" महाराजजी हँसते थे- "धत् तेरे की। वैरागी भये, मरि न गये।" महाराज को धीरे-धीरे लोगों ने समझ लिया था, इसलिए हँसने लगते थे।

वस्तुतः भगवत्पथ में कोई सम्प्रदाय नहीं है। अन्तर इतना ही है कि कोई साधना की प्रवेशिका में है तो कोई मध्य में है और कोई करीब की अवस्थावाला है तो कोई प्राप्तिवाला। द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत एक ही साधक की ऊँची-नीची अवस्थाएँ हैं न कि कोई सम्प्रदाय। सम्प्रदाय तो अधकुचलों की देन है, जो लक्ष्य की प्राप्ति तो नहीं कर सके किन्तु ख्याति उन्हीं महापुरुषों की चाहते हैं। सनातन-धर्म के धुन्धग्रसित होने का मूल कारण यह भी है। श्रीकृष्ण के अनुसार भगवत्पथ में साधना एक ही है। **व्यवसायात्मिका**

बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन। *(गीता, २/४१)* - इस भगवत्पथ में क्रियात्मिका बुद्धि एक ही है; दिशा एक है, क्रिया एक है और परिणाम भी एक ही है। पता नहीं, लोग बीच में दरार कहाँ से डाल देते हैं? सिद्ध है, उन्होंने पाया नहीं है। यदि वास्तव में किसी ने उस सर्वत्र व्याप्त सत्ता को पाया है तो वह समाज के बीच में दरार नहीं डाल सकता। यदि दरार डालता है तो सिद्ध है कि वह अधकुचला है। रावण साधुवेश धारण कर सीता का हरण कर ले गया। लक्ष्मण को शक्ति लगी थी, मरणासन्न थे, तो दूसरे मुनिराज ने हनुमान जी को अर्धरात्रि तक बरगलाये रखा। चक्रवर्ती नरेश प्रतापभानु का सर्वनाश भी कपटी मुनि ने कर दिया। सधुअई वेश ही ऐसा है कि जिसका बाहर कहीं गुजारा नहीं होता वे भी इसकी ओट में छिपाव ले लेते हैं। आज भी कम्बल चुरानेवाले साधू मिल ही जायेंगे। पहले की आदत तो छूटती नहीं। चोरी नहीं तो कमण्डलों की हेराफेरी ही करते हैं। परन्तु साधु कभी बुरा नहीं होता। साधु की ओट में असाधु भी घुस आते हैं, सम्प्रदाय उन्हीं की देन है। भजन की वास्तविक जानकारी तो सद्गुरु के क्षेत्र की वस्तु है।

-:: २० ::-

तत्त्वदर्शी महापुरुष की सेवा से उनके संरक्षण में अभ्यास करते-करते इष्टोन्मुखी लगन जागृत हो जाती है। उस समय भी साधक के लिए आन्तरिक अनुशासन की बड़ी आवश्यकता होती

है। साधना में संयम एवं दृढ़संकल्प का अत्यधिक महत्त्व है। क्योंकि कोई भी पथिक जब इस पथ पर अग्रसर होता है तो पहले कुछ दिन तक तो बड़ा उत्साह रहता है किन्तु कुछ ही काल पश्चात् यह मन बड़ा दुर्धर्ष हो जाता है। साधना में उसे अपनी मृत्यु दिखलाई देती है इसलिए वह पहले से भी विकराल हो जाता है। तुलसीदास जी को भी पहले तो अच्छा लगा था कि हम भजन करेंगे; किन्तु जब निकल पड़े तब वह मन छटपटाने लगा। मन की इस दशा को उन्होंने व्यक्त किया- **'बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।'** ***(विनयपत्रिका, १७३)।*** भगवन्! संन्यास लेते समय तो बहुत अच्छा लगा कि भजन करेंगे लेकिन संन्यास लेते ही मन ऐसा बिगड़ा जैसे कच्चा घड़ा। कच्चे घड़े में पानी भर दें तो सब जगह से बुनकी-बुनकी करके सहस्रों छिद्रों से चूने लगता है, पूरा घड़ा समाप्त हो जाता है। यही दशा (गोस्वामीजी निवेदन करते हैं) हमारे मन की भी है। जितना आपका सनेह भरा था वह समाप्त हो गया। मन इतना विकराल हो उठता है कि लगता है इष्टोन्मुखी लगन ही नहीं रह गयी। ऐसी स्थिति में महापुरुषों ने मन को बार-बार डाँटा है, इस पर विवेक का अंकुश लगाया है।

प्रत्येक महापुरुष के समक्ष ऐसा अवसर आता है। पूज्य महाराजजी प्रायः कहते थे कि घोर जंगल में एक भजनानन्दी

महात्मा रहते थे। रात-दिन भजन में संलग्न रहते थे। लोगों में उनकी अच्छी ख्याति थी किन्तु थे वे साधक ही। हाँ, अच्छी अवस्थावाले साधक थे। एक दिन उनके अन्दर संकल्प उठा कि कढ़ी होती तो खाते। दूसरे दिन से यही संकल्प बढ़ने लगा। जहाँ भजन में बैठे तहाँ दिखायी पड़े कढ़ी। इष्टदेव का ध्यान धरे तो कढ़ाई में बढ़िया-बढ़िया फुलौरी दिखायी पड़े। तब वे मन को समझाने लगे- "रे मन! कढ़ी में क्या रखा है? क्या इसी के लिए घर छोड़ा था? साधक को युक्ताहार करना चाहिए। आज कढ़ी की इच्छा कर रहा है, कल न जाने कौन-सी इच्छा करेगा? रे मन! तू भजन में लग।"-इस प्रकार स्वयं को बहुत समझाया किन्तु उनके अन्दर से वे भाव गये नहीं। पन्द्रह-बीस दिन के बाद ऐसा हो गया कि 'ओम्' जपने बैठें तो चार-छः बार के पश्चात् 'ओम्' तो छूट जाय, 'कढ़ी-कढ़ी' ही जपने लगे। पहले ध्यान में गुरु महाराज का रूप रहता था, अब कड़ाही में धरी-धराई कढ़ी गमका करे। नाम में कढ़ी, ध्यान में कढ़ी, चले तो कढ़ी। दिमाग हो गया कढ़ी-कढ़ी।

अब तो उन महात्मा को बड़ा पश्चाताप हुआ कि भगवन्! घर-बार छुड़ाया, घोर जंगल में रहने का सुअवसर भी आपने दिया, महापुरुष की कृपा और सान्निध्य भी प्रदान किया, भजन की विधि भी बतायी; बीच में यह कढ़ी कहाँ से टूट पड़ी? मन को

बहुतेरा समझाया किन्तु वह माना नहीं। तब महात्मा ने अपनी छड़ी उठायी और निकटतम गाँव की ओर चल पड़े, जो वहाँ से दो मील की दूरी पर था। गाँववालों ने महात्मा को देखा तो भाव-विभोर हो उठे। कहने लगे- "महाराज! लाख कहने पर भी आप गाँव में नहीं आते थे। आज हमलोगों का परम सौभाग्य है जो आप सहसा पधारे। हमलोगों के लिए क्या आज्ञा है?" महात्मा बोले- "पहले कढ़ी बनाओ।" गाँववालों ने कहा- "महाराज! यह कौन बड़ी बात है। अभी बनाए देते हैं।"

जब कढ़ी की तैयारी होने लगी तो महाराजजी ने कहा- "एक कड़ाही भरकर लगभग बीस सेर कढ़ी तैयार करना।" "जो आज्ञा महाराज!"- कहकर लोग कढ़ी बनाने में जुट गये। स्वादिष्ट और सुगन्धित कढ़ी तैयार हो गयी। महात्मा बोले- "भाई! किसी को मिलेगी नहीं। हम अकेले खायेंगे। उसे कमरे में रख दो। हम भी उसी कमरे में रहेंगे। बाहर से ताला लगा देना।" फिर तो "जैसी गुरु महाराज की आज्ञा!"- बाहर से ताला लग गया और भीतर महात्मा कढ़ी पर टूट पड़े।

पहले तो कढ़ी बड़ी स्वादिष्ट लगी। महात्मा ने एक किलो खाया, दो किलो खाया किन्तु कितना खाते? कढ़ी अच्छी ही न लगे, फिर भी महात्मा खाते चले गये। तीन किलो, चार किलो खाया। अरुचि हो गयी, एकदम घृणा हो गयी फिर भी वे खाते

रहे। उसी कड़ाही में वमन भी होने लगा फिर भी खाते जाते थे, कहते थे- खाओ! खाओ! और खाओ। अरे! घर-द्वार छोड़ा, जिन्दगी में सब कुछ खाया लेकिन क्षुद्र मन तूने तुच्छ वस्तु के पीछे दो मील तक दौड़ाया, भजन छुड़ाकर लाकर यहाँ पटक दिया। महीने भर से कढ़ी-कढ़ी, कढ़ी-कढ़ी, न राम, न ध्यान! कढ़ी-कढ़ी! ले खा कढ़ी! वमन होती जाय उसको भी मिलाकर खाते जायँ। इतनी घृणा हो गयी कि उधर देखने से शरीर काँप जाता था, खाने को हाथ नहीं उठता था तो अन्त में उसी कड़ाह में कूद पड़े।

लोगों ने ताला खोला तो पूरे कमरे में कढ़ी ही कढ़ी दिखायी पड़ी, पूछा- "महाराज! यह क्या?" महाराज ने कहा कि चिन्ता न करो, अब सब ठीक हो गया। लोगों ने स्नान कराया, आश्रम तक पहुँचाया। उस दिन से कढ़ी तो क्या किसी भी वस्तु के खाने का संकल्प नहीं आया। वस्तुतः यह मन बड़ा दुष्ट है। जब आप चिन्तन-पथ में अग्रसर होंगे, पहले तो बड़ा अच्छा लगता है किन्तु जब आप उधर लग जायेंगे तो धीरे से एक पटरी खींच लेगा। जब आप भजन की पूरी सीढ़ी चढ़ जायेंगे तब भी कुटिलता से बाज नहीं आयेगा, उसी अनुपात का विघ्न भी उपस्थित करेगा।

ऐसा व्यवधान प्रत्येक महापुरुष के समक्ष आता है। महाराज भर्तृहरि उज्जैन के राजा थे। बड़ा सम्पन्न राज्य था। एक समय

राजा को रानी में दोष दिखायी पड़ा। संसार से बड़ी घृणा हो गयी, वैराग्य उदित हुआ। गुरु गोरखनाथ की शरण में पहुँच गये। गोरखनाथजी वस्तुतः महापुरुष थे। उन्होंने साधना का क्रम बताया और भर्तृहरि उसी में लग गये। पागलों की तरह, दिगम्बर वेश में, केवल एक कौपीन लपेटे दिन-रात भजन में संलग्न रहते थे। कभी दो उपवास, कभी तीन उपवास आये दिन की घटना थी। वे दिन में एक बार भिक्षा के लिए निकलते थे। जो स्वतः मिल जाता, स्वीकार कर लेते थे। किसी से न माँगने का उन्हें आदेश था।

एक दिन उनका मन करने लगा कि जलेबी मिलती तो खाते। अब जलेबी दे कौन? भाविक तो बहुत थे, लेकिन किसी को क्या मालूम कि महाराजजी को जलेबी खाने की इच्छा है। एक दिन भर्तृहरि हलवाई की दुकान पर जाकर खड़े हो गये कि कोई भक्त आ जाय और दिला दे; लेकिन भगवान भी बड़े कौतुकी हैं, लम्बी परीक्षा लेते हैं। किसी के मन में जलेबी का भाव ही न आये। महीना, दो-महीना बीत गया। जब भजन में बैठे तो जलेबी, ध्यान में बैठे तो जलेबी, नाम जपे तो जलेबी, भर्तृहरि परेशान हो गये।

एक दिन विवश होकर वे किसी निर्माणाधीन मकान में दिनभर मिट्टी ढोते रहे। सायं उनको कुछ पैसे मिले। मिट्टी से लथपथ हाथों से पैसा लिया। दौड़ते हुए हलवाई के पास गये, 'जलेबी' कहते हुए पैसा फेंका। दुकानदार ने टोकरी में जलेबी

भरकर दे दी। सस्ती का जमाना था, काफी मिल गयी। मन कहता था- तुरन्त प्रारम्भ हो जाओ। भर्तृहरि ने मन को समझाया- 'रे मन! तेरे कहने पर मैंने दिनभर मिट्टी ढोयी। देख तो! मिट्टी से सने हाथ हैं। इन्हें गंगा के किनारे धो तो लेने दे।' दौड़ते हुए गंगा के किनारे पहुँचे। हाथ-पाँव धोया। मन तो जलेबी पर था। रह-रहकर मुँह में पानी भर आता था। यह हो कि कितना शीघ्र जलेबी खा जायँ।

भर्तृहरि बैठकर विचार करने लगे- "ओह! ऐसी कौन-सी मिठाई थी जो हमने न खायी हो। केशर-कस्तूरी और मुहरों से छौंककर बननेवाली मिठाई हम खाते थे; किन्तु मैदे से बननेवाली साधारण जलेबियों के पीछे दुष्ट मन ने हमें गिरा दिया। ऐसा विचार आते ही भर्तृहरि जलेबियाँ लेकर बैठ गये। जलेबी मुँह तक ले जायँ- "बड़ी सुन्दर है। कैसी लाल-लाल कुरकुरी जलेबियाँ हैं। रस से ठसाठस भरी हैं।" इस प्रकार मन को ललचावें और एक-एक जलेबी पानी में फेंकते जायँ। जब अन्तिम जलेबी उठायी, पानी में फेंकने चले तो एक छाया सामने आकर खड़ी हो गयी। बोली- 'यह हमको दे दीजिए।' भर्तृहरि ने पूछा- 'तुम कौन!' वह बोली- "आपकी इच्छाशक्ति!" भर्तृहरि बिगड़े, "हरजाई कहीं की! घर छोड़ा, द्वार छोड़ा, ऐसा कौन-सा मिष्ठान्न था जिसे तूने न खाया हो? किन्तु इच्छा देवी! तूने मुझे अन्ततोगत्वा फाँसी

दे ही दी। तूने मुझसे दिनभर मिट्टी ढुलवायी, भजन छुड़वाया, अभी तुझे जलेबी देंगे ही?" इच्छाशक्ति ने कहा- "इस एक जलेबी को खा लें। अब आपको किसी वस्तु की इच्छा नहीं होगी।" भर्तृहरि ने उस जलेबी को खा लिया, पानी पीया और चल दिये। उनकी साधना सुचारु रूप से चलने लगी। उनके जीवन में एक समय ऐसी ही घटना और घटित हुई। बनारस-जैसे पानप्रेमी शहर महोबा की गलियों में भर्तृहरि नंग-धड़ंग चले जा रहे थे। कागज के ऊपर किसी ने पान थूक दिया था। चाँदनी रात थी। लपझप-लपझप वह पीक चमक रही थी। भर्तृहरि ने सोचा- "यह तो मणि हो सकती है। करोड़पतियों का मुहल्ला है। किसी बड़े आदमी की गिर गयी होगी। कोई न कोई तो उठा ही लेगा। क्यों न मैं ही ले लूँ? किसी सेठ-साहूकार को दे दूँगा, उसी से जीवनयापन करते हुए भजन करूँगा।" मन विचलित हो गया। जहाँ हाथ लगाया, तहाँ वह पीक से भर गया। हथेली रंग गयी। रोशनी में देखा तो पश्चाताप करने लगे- "रे दुष्ट मन! तू राजा था, चक्रवर्तियों-जैसा तुम्हारा रहन-सहन था। कौन-सी मणि तुम्हारे सामने से नहीं गुजरी। अरे दुष्ट! तू त्यागी है, महापुरुष का अनुयायी है। भगवान के लिए तू सब कुछ त्यागकर कटिबद्ध था। एक मणि के प्रलोभन में हमें गिरा दिया।" कई दिन उन्होंने उपवास किया, मन को बहुत फटकारा, फिर उसमें सबलता आ

गई। यही भर्तृहरि भविष्य में पूर्ण तपोधन महर्षि हुए, जिन्होंने 'वैराग्यशतक' लिखा।

वस्तुतः इष्टोन्मुखी लगन जब जागृत होती है तो मायिक प्रवृत्ति उसका पीछा करती है। उसके निवारण के लिए मन को ही सबल और सक्षम बनाया जाता है, उसे अनुशासन में रखना पड़ता है। इन्द्रियाँ बड़ी चंचल हैं। ये सदैव विषयों में ही सुख चाहती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे नाबदान का कीड़ा बाहर नहीं आना चाहता। इसीलिए कोई साधक महापुरुष के संरक्षण में जाता भी है तो मन शीघ्र ही उचटने लगता है। जहाँ रोटी बनानी पड़ी, बर्तन मलना पड़ा, तहाँ मन सोचता है- "हटो, यहाँ बड़ा कष्ट है। क्या यही करने यहाँ आये हैं? चलो, कहीं बाहर भजन करें।" अरे! भजन क्या खाक करेंगे। महापुरुष के सान्निध्य में सेवा करते-करते इतनी क्षमता आ जाय कि चार घण्टे ध्यान में बैठ सकें, मन रुकने लगे तब बाहर भी भजन होता है। इतने के लिए ही तो महापुरुष की सेवा में रहा जाता है। इतने के पश्चात् महापुरुष आपको अपने पास रखेंगे भी नहीं। सद्गुरु जब किसी को अपनाता है तो गुरु ही बना देता है, चेला बनाकर नहीं रखता। वह झाड़ू लगवाने के लिए शिष्य नहीं बनाता। वह शिष्य को इसीलिए अपने पास रखता है कि यह हमारी वास्तविक विद्या को सीखे, आचरण में ढाले और रामबाण की तरह इष्ट की ओर

सनासन अग्रसर होता जाय।

बन्धुओ! धान के छिलके की भाँति जीव में मल स्वाभाविक है तथापि वह नष्ट अवश्य हो जाता है। अतएव उद्योगी बनो। कठोपनिषद् में निर्देश है, **'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'**- उठो! जागो! महापुरुषों के पास जाकर उस क्रिया को सीखो।

-:: २१ ::-

संस्कारों से विवश व्यक्ति से भूल हो जाना स्वाभाविक ही है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पूज्य महाराजजी के सामने जब कोई किसी की शिकायत लेकर पहुँच जाय और कहे कि इतनी उमर हो जाने पर भी वह ऐसी गलती कर रहा है तो हँसते हुए उससे महाराजजी कहते थे- ''हो पके आम को पहले लोग धीरे-धीरे चूसते हैं। ज्यों-ज्यों उसका रस समाप्त होता जाता है लोग उसे और कसकर चूसते हैं। शरीर बूढ़ा होने से मन बूढ़ा नहीं होता, वासना उग्र ही होती जाती है। वह तो साधना और प्रभुकृपा से ही परिष्कृत होती है। एक स्थान पर दो औरते थीं। एक दूसरे से बड़ी ईर्ष्या थी। छिद्रान्वेषण चल रहा था। सहसा उग्र रूप धारण कर एक महिला बोली- ''तूने तो धोबी कर रखा है।'' दूसरी तमककर बोली- ''तू कौन मुँह लेकर बात करती है? तू जो चमार रखे है! अभी वहाँ बातें कर रही थी।'' पहली औरत तुरन्त सतर्क होकर बोली- ''चुप-चुप! तैं राखि लिहे धोबी, हम

राखि लिहे चमार। न तैं कहीं हमार, न हम कहीं तोहार।।'' कौन दूध का धोया है? **'जो जस करइ सो तस फलु चाखा।'** (मानस, २/२१८/४) काहे ओकरे चक्कर में पड़ा है। तू आपन देख! पाँव तर क बरल दिखातै नाहीं, पहाड़ पर बरै ला!

इसी सन्दर्भ में महाराजजी एक कथानक भी सुनाते थे। किसी नदी के किनारे अच्छी वेशभूषा के महात्मा मछली भून रहे थे। एक विद्वान् पण्डित उसी रास्ते से निकले। देखकर बड़े आश्चर्य में पड़े, पूछा- ''महाराज! आप मछली भून रहे हैं?'' महात्मा बोले- ''हाँ!'' पण्डित ने पूछा- ''खाते हैं क्या?'' महात्मा ने उत्तर दिया- ''हाँ!'' पण्डित ने पुनः पूछा- ''तब तो आप शराब भी पीते होंगे?'' महात्मा ने कहा- ''हाँ!'' पण्डित ने फिर पूछा- ''तब तो आप वेश्या-गमन भी करते होंगे?'' तहाँ वे (किसी समय के अच्छे महात्मा) झल्लाये, तमतमाकर खड़े हो गये, बोले- ''अरे पण्डित! जब हम पतित हो ही गये तो ऐसा कौन-सा कुकर्म है जो हम न कर लें? क्या बार-बार पूछते हो, खोपड़ी खा रहे हो? अपना रास्ता नापो, हम तो अपने कर्मों को रोते ही हैं।''

महाराजजी कहते थे- ''ई भगवत्पथ से अच्छा कुच्छौ नहीं है लेकिन ई है बड़ा कठिन! **चढ़े त चाखे रामरस, गिरे त चकनाचूर।**'' अतः किसी की त्रुटि पर हँसना नहीं चाहिए, स्वयं उससे बचना चाहिए। साधक को अपना ही दोष देखना चाहिए।

जब तक भगवान न मिल जायँ, तब तक साधक का छोटा-सा दोष भी पहाड़ ही है क्योंकि तभी तो भगवान नहीं मिल रहे हैं।

भरतजी को भगवान से मिलने में केवल एक दिन ही रह गया लेकिन वे अधीर हो उठे। अपनी ही करनी की ओर उनका ध्यान गया। क्या भरत की करनी खराब थी? महर्षियों ने तो कहा था- **'समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई।।'** ***(मानस, २/३२२/८)*** वर्तमान में तो भरत की करनी ही धर्म का मापदण्ड बन चुकी थी, फिर भी भरत अपने में ही दोष खोजते हैं। उनके चिन्तन में कितना दैन्य है। साधक से दीन संसार का कोई जीव होता ही नहीं। वह तो इष्ट की इच्छा पर, उनके संकेत पर नाचता है। अपने मन से कुछ भी करने की स्वतन्त्रता उसे नहीं रहती। हवा भर भी भगवान से दूरी है तब तक साधक को अपने को सही नहीं मानना चाहिए। पूर्तिपर्यन्त विरह-वैराग्य में न्यूनता नहीं लानी चाहिए। प्राप्ति के पश्चात् वही साधक साधनाओं से मुक्त हो जाता है, 'पेंशनीयर' हो जाता है; किन्तु इसके पूर्व उसे दीन बनकर साधना में ही रत रहने का विधान है। किसी के दोष से उसे क्या लेना-देना? **करै आपके; न माई के न बाप के।**

-:: २२ ::-

पूज्य महाराजजी कहा करते थे कि प्रारब्ध भोगना ही पड़ता

है किन्तु सद्गुरु के माध्यम से वह भी कट जाता है। इस प्रसंग में वे अपने को इंगित करते हुए एक कथानक सुनाया करते थे। एक समय एक साधक ने पूज्य महाराजजी से निवेदन किया- ''महाराज! मन करता है गया हो लूँ।'' महाराजजी ने कहा- ''देखो! गया-वया में कुछ नहीं है। **'तीरथहू में खोजिया, गहरी बुड्डी मार। जल पषान के बीच में, किन पाया करतार।।'** तीर्थ-व्रत से पुण्य बढ़ता है, पुरुषार्थ बढ़ता है किन्तु उतना ही पर्याप्त नहीं है। उसका परिणाम होता है यौगिक क्रिया की जागृति। जब चिन्तनक्रम पकड़ में आने लगा है तब अब तुम्हारे लिए भजन में लगने से ही कल्याण है। अब तुम्हारे लिए गया-विधान नहीं है। एकान्त में अनवरत भजन-चिन्तन में लग जाओ।''

दो महीने पश्चात् साधक पुनः बोला- ''महाराजजी! गया जाने का मन है।'' कुछ ही दिन बाद पुनः कहने लगा- ''गया जाने की प्रबल इच्छा हो रही है। जब भजन में बैठता हूँ तो गया की याद आती है।'' महाराजजी ने सोचा- ''कल्याण तो हमारे पास है! ई गया करै जात है? इसे भुक्ति-मुक्ति तो मुझसे मिलनी है फिर यह गया-गया क्यों रटता है?''

उसके चिन्तन में महाराजजी प्रवेश करने लगे तो अनुभव में आया कि एक सेठ के यहाँ आठ-दस दाने चने पूर्वजन्म के बकाया हैं। वही दाने खींच रहे हैं। महाराजजी ने सोचा- ''मोर चेला इतनी दूर जाय! आठ-दस ही दाने तो मिलने को है,

खानेभर का भी नहीं मिलेगा। इधर वह आठ-दस दाना पीछा किए पड़ा है, गया की ओर खींच रहा है।''

पूज्य महाराजजी सर्वसमर्थ थे। उन्होंने सेठ के अन्तर्मन में प्रेरणा भर दी। सेठ के मन में भाव आया कि चलें तीर्थ कर आयें। वह सेठ यात्रा करते-करते चित्रकूट होते हुए अनुसुइया पहुँचा। स्वभाव एवं प्रथावश रुपया-बीस आना निकालकर महाराजजी के सामने रखने लगा। ऐसा करने में जेब से दस दाने चने भी गिरे। जहाँ चने पर महाराजजी की दृष्टि पड़ी तहाँ वे चौंके, बोले- ''ऐं! कहाँ से आये हो?'' वह बोला- ''महाराजजी गया से आ रहा हूँ। वहाँ मेरी चने की आढ़त है।'' महाराजजी ने कहा- ''अच्छा-अच्छा ला वह चने भी मुझे दे दे।'' सेठ संकुचित होकर बोला- ''महाराजजी! यह तो जमीन पर गिर गया! दूसरा मँगा दें?'' महाराजजी ने कहा- ''अरे नहीं! तू यही चना मुझे बटोरकर दे।'' महापुरुष की आज्ञा! विवश होकर सेठ ने उन दानों को उठाकर दिया। महाराजजी ने उसका हालचाल पूछा और आशीर्वाद देकर विदा किया।

इतने में वही साधक वहाँ आ गया। महाराज बोले- ''ले बेटा! प्रसाद है। मेरे सामने ही जल्दी से खा जाओ।'' शिष्य ने विनीत भाव से चना लिया, मुँह में डाला, पानी पी लिया। अब वह गया जाने का नाम भी न ले। चार-छः महीने बीत गये। एक दिन

गुरुदेव स्वयं कहने लगे- ''बेटा! साधक को इष्ट के भरोसे निराधार विचरण करना चाहिए। तुम चाहो तो मुझसे खर्च ले लो, न हो तो गया ही घूम आओ।'' शिष्य बोला- ''न जाने क्या हो गया महाराज! अब गया जाने को मन करता ही नहीं।''

वस्तुतः अन्न-जल का संस्कार बड़ा प्रबल होता है। वह न जाने कैसे, कहाँ उठाकर फेंक देता है। बलात् मनुष्य को घसीट लेता है। अतः प्रारब्ध में क्या भरा है- इस पचड़े में न पड़कर दो-ढाई अक्षर का कोई नाम चुन लें, उसका जप करें और किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष की सेवा करें। महापुरुष अपनी इच्छाओं, संस्कारों का अन्त कर चुके होते हैं इसलिए उनकी सेवा में लगे रहनेवालों के प्रारब्ध का संक्रमण उनमें सहज ही होता रहता है; क्योंकि दबाव सदैव रिक्त स्थान (वैकुअम) की ओर ही बढ़ता है। दयालु महापुरुष उसे थोड़े में ही भोगकर सेवकों का कल्याण करते ही रहते हैं। व्यक्ति का प्रत्येक कार्य सम्पूर्ण सृष्टि को प्रभावित करता एवं उससे प्रभावित होता है किन्तु भक्तों के भाव के अनुसार महापुरुष नियमबद्ध विधि-विधान में भी उलटफेर करने से नहीं हिचकते। **तुलसी जसि भवितब्यता तैसी मिलइ सहाइ। आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ।।** (मानस, १/१५६ ख) भवितव्यता अनिवार्य है किन्तु पूर्णत्वप्राप्त महापुरुषों के संरक्षण में वह भी कट जाती है।

पूज्य महाराजजी प्रायः कहते थे-

पूरब की कमाई पश्चिम में गँवाई।
आगरे की खोज खबर कुछ नहीं पायी।
पायी तो दिल्ली के दलालों ने सौदा बिगाड़ दिया।
संग के सँघाती कहैं लाहौर लाहौर।
नाभा पटियाला के बीच एक अजब चीज पाई।
सहारनपुर का सहारा लेकर गाड़ी हरिद्वार आयी।।

रेलवे स्टेशनों के इस रूपक के माध्यम से महाराजजी समझाते थे कि पूर्वजन्म की कमाई इस जन्म में गवाँ रहे हो। आगे के जन्म का कुछ पता नहीं। कदाचित् थोड़ी बहुत खबर मिली भी तो दिलरूपी दिल्ली के दलाल - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अनन्त इच्छाओं-वासनाओं ने सौदा बिगाड़ दिया, लक्ष्य से भटका दिया। संग के वास्तविक सँघाती कहते हैं लहाओ! लहाओ! आत्मोन्नति करो। नाभिकमल नाभा है, प्रेम पटियाला है। प्रेमपूरित हृदय से लगने पर एक अजीब वस्तु मिली - सुरत! इस सुरतरूपी सहारनपुर का सहारा लेकर तुम्हारे जीवन की गाड़ी समस्त वृत्तियाँ सिमटकर हरि के दरवाजे अर्थात् स्वरूप तक पहुँच गयी। इस प्रकार अनुरागपूरित हृदय से भजन करने की पूरी साधना गुरुदेव समझा दिया करते थे।

-:: २३ ::-

गुरु महाराजजी की शरण में जब अनेक युवा साधकों को प्रवेश मिल गया, महाराजजी प्रायः उन्हें सचेत करते थे- ''हो! जवानी अँधेरी रात्रि है। इसमें कब ऊँचे-नीचे पाँव पड़ जायेगा पता नहीं चलता। इसलिए साधकों को उठते-बैठते, चलते-फिरते स्मृति के साथ रहना चाहिए। सुरत सदैव श्वास या गुरु के चरणों पर केन्द्रित रहनी चाहिए। किञ्चित् असावधानी होते ही स्मृतिविहीन साधक खतरे को ही आमंत्रित करता है। अतः सदैव भरत, सुतीक्ष्ण की तरह चिन्तन में अनुरक्त साधक ही सफल हो पाता है।

इस सन्दर्भ में पूज्य महाराजजी एक आख्यान सुनाया करते थे। बाल्यकाल से ही एक महात्मा भजन में अनुरक्त थे। आयु पचहत्तर-अस्सी की हो चली थी। भाविकों ने गाँव के बाहर तालाब के किनारे एक कुटिया का निर्माण उनके लिए कर दिया। उस शान्त एकान्त कुटीर में वह महात्मा अपने विगत जीवन का अनुशीलन करते तो उनके मुख से सहसा यह वाणी ध्वनित होती- ''हूँ, अगली नीक, पिछली नीक, बिचली नाहीं नीक।'' उनके मुख से ये शब्द प्रायः प्रस्फुटित हो जाया करते थे।

तालाब था ही। तीन ग्रामीण महिलायें जल भरने वहाँ आयीं और महाराजजी के मुख से ऐसा शब्द सुना तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने आक्षेप किया- ''बाल पक गये, दाँत गिर गये किन्तु

अभी यह सांसारिक गणित ही लगा रहे हैं।'' अपनी बुद्धि के अनुसार उन्होंने आगेवाली को पीछे तथा मध्यवाली को आगे करके देखा किन्तु महाराजजी की वाणी के शब्द यथावत रहे। वे समझ तो गयीं कि महाराजजी का हमलोगों से कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी उन्होंने परिजनों से उल्टा-सीधा कह सुनाया।

आवेश के वशीभूत ग्राम्यजन लाठी लेकर चले कि ऐसा कौन साधू आ गया? अपने ही गुरु महाराजजी को पाकर वे ऊहापोह की स्थिति में कुटिया के पृष्ठभाग में चुपचाप बैठ गये। अकस्मात् महाराजजी के मुख से वही वाक्य ध्वनित हुआ। लोग उनके समक्ष प्रणत हुए, निवेदन किया- ''आजकल आप यह कौन-सा मंत्र जपने लगे हैं महाराजजी! इसका आशय बताने की कृपा करें।''

उन महात्मा ने बताया- ''बेटा! जीवन की तीन अवस्थाएँ होती हैं- बचपन, यौवन और वृद्धावस्था। हम बाल्यकाल से ही साधु हैं। बचपन का समय अच्छा व्यतीत हुआ। गुरु महाराजजी की सेवा में मन लगा। भजन होता रहा। अब वृद्धावस्था भी सन्तोषजनक है, शान्ति है। भजन में कोई संकल्प-विकल्प की आवृत्ति नहीं होती; किन्तु बीच में युवावस्था में व्यवधान अधिक आये। वह तो गुरु महाराजजी की दया, कृपा थी अन्यथा रोने को आँसू भी न मिलते। इसीलिए मैं कहता हूँ कि भजन के लिए अगली अर्थात् बाल्यावस्था उत्तम है, पिछली वृद्धावस्था भी

सन्तोषजनक है किन्तु बिचली अर्थात् युवावस्था तो संघर्ष में ही बीता, वह ठीक नहीं है। यह तो असिधारा तुल्य है। लोहे के चने चबाने जैसा है। इसे पार करने में सदैव सावधानी अपेक्षित है। समर्पण के साथ लगने का विधान है।

ग्रामीण श्रद्धालुजनों ने उन महिलाओं का मनोभाव कह सुनाया। महात्मा हँसे और कहे, ''हमने तो उन्हें देखा ही नहीं। उनसे कहो कि भजन किया करें, तभी कल्याण है।''

अस्तु, साधक को बोलते, देखते, सुनते, कदम उठाते सर्वत्र संयमित और सन्तुलित होना चाहिए। जो इन प्रतिबन्धों से बँधकर चलता है, वही सफल हो पाता है अन्यथा उपलब्धि में एकाध जन्म का अन्तराल आ जाता है।

-:: २४ ::-

पूज्य महाराजजी की प्रत्येक वाणी सूत्ररूप में ही प्रस्फुटित होती थी। वार्ताओं के सहज स्वाभाविक चक्र में साधनात्मक उपदेशों की सरणियाँ अविकलरूपेण निःसृत हुआ करती थीं। महाराजजी प्रायः कहते थे कि कुपात्र को दान देने से दाता नष्ट हो जाता है। अनधिकारी को विद्या देने से दाता का अपकार तथा विद्या का नाश हो जाता है। **'यह न कहिअ सठही हठसीलहि।'** ***(मानस, ७/१२७/३)*** इत्यादि चौपाइयों का उद्धरण देकर अनेकशः

ऐसे तथ्य को दृढ़ाया करते थे। पूज्य महाराजजी की वास्तविक विद्या, जिसे वे ब्रह्मविद्या कहते थे, गुरुदेव के कतिपय शिष्यों द्वारा आर्त अधिकारियों में अद्यावधि प्रसारित होती जा रही है। चिरन्तन विधान भी है कि सन्तजन आर्त अधिकारियों के लिए कृपण नहीं होते- **'गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं।।'** *(मानस, १/१०६/२)*

प्रस्तुत कृति यथार्थ की ओर अग्रसर होने एवं तत्सम्बन्धी प्रारम्भिक विधि-निषेधों के परिपालनार्थ प्रेरणामात्र है। यह मानव मात्र के मानस-धर्म की ओर अभिमुख करती है जिसमें निश्चित कल्याण है। साधना के विस्मृतप्राय मानसिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन आज के विश्व के लिए पूज्य महाराजजी की अनुपम देन है। सामान्य बातचीत एवं गीतों में अध्यात्म का निरूपण करते-करते आप सुधबुध खोकर समाधिस्थ हो जाते थे। 'श्रीरामचरितमानस', 'गीता', 'पातञ्जल योगदर्शन' महाराजजी के प्रिय ग्रन्थ थे। मानस के लिए वे कहते- **'बाल आदि उत्तर कै अन्ता। बीच अयोध्या डूबै सन्ता।।'** बालकाण्ड की प्रारम्भिक चौपाइयों एवं किष्किन्धाकाण्ड के वर्षा, शरद वर्णन को गुनगुनाते हुए पूज्य महाराजजी तल्लीन हो उठते थे। लोकजीवन में प्रचलित कई पद एवं भजन पूज्य महाराजजी को बहुत प्रिय थे, जैसे-

गुरु उड़ि चलो देशवा बिराना है।

- - - - - -

छाओ-छाओ हो फकीर गगन में कुटी।।
आसन मारि मगन होई बैठे, ध्यान धरे लौके त्रिकुटी।।

- - - - - -

मोरि सुरत सुहागिन जाग री।
का सोवत है मोह-निशा में, उठ के भजनिया में लाग री।
मोरि सुरत सुहागिन जाग री।
चित दे शब्द सुनो सरवन लगि, उठत मधुर धुन राग री।।
मोरि सुरत सुहागिन जाग री।।

- - - - - -

ओहम् सोहम् तत्व विचारा। बंक नाल का किया सम्हारा।।
मन को मारि गगन चढ़ि जाई। मान सरोवर पैठि नहाई।।
छूटे कश्मल मिले अलेखा। इन्ह नैनन साहब को देखा।।
अहंकार अभिमान बिडारा। घट का चौका करि उजियारा।।
अनहद नाद नाम की पूजा। सत्व पुरुष बिन देव न दूजा।।

- - - - - -

शम्भु करैं असनान, गौरा पनिया भरें।।

- - - - - -

भज ले मन राम सिया, राम सिया, राम।
राम नाम निर्मल नीर....राम नाम कमल फूल....
राम नाम वेद मूल....राम नाम ओंकार....

– – – – – –

शिव शिव जपत मन अनन्द।
कटत कोटि जम को फन्द।।

– – – – – –

ॐ गुरु शरणम् श्री हरि शरणम्।।

– – – – – –

हरि ओम् सिद्धम्, हरि ओम् सिद्धम्।।

– – – – – –

राम राम राम जीहा जौं लौं तू न जपिहै।
तौ लौं तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै।।

पूज्य महाराजजी की प्रत्येक वाणी साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से ऊपर एवं मनुष्य मात्र की जागृति, उत्थान एवं कल्याण के लिए समान प्रेरणा देती है। इस पर मनन करें, आत्मकल्याण के लिए कटिबद्ध होवें। अन्यथा **'धोबी बसि के क्या करे, दिगम्बरन के देश।।'** नागा लोगों के गाँव में धोबी अपनी कौन-सी कला दिखावे? सदुपदेशों के अनुसार आचरण की प्रेरणा प्रदान करना ही इस कृति का अभीष्ट है।

।। ॐ।।

अमरवाणी - बारहमासी

भूमिका

अब सन्तों एवं साधकों के बीच परमशान्ति पथ-निर्देशिका उनकी अमरवाणी, आत्मानुभूति के परिवेश में बारहमासी के माध्यम से प्रस्तुत है, जिसमें प्रवेशिका से लेकर पराकाष्ठा तक लक्ष्य की ओर बढ़ने का पथ-प्रदर्शन किया गया है।

जैसा कि लोग बाहर पढ़ते हैं वैसा कहीं हुआ नहीं। न तो पिण्डों के रूप में राम हैं और न भूखण्डों के रूप में अयोध्या ही। **'कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि।'** *(मानस, ७/१२७/४)*- कामी, क्रोधी, लोभी से नहीं कहना चाहिए। अब आप ही विचार करें कि जब घर-घर में रामायण है तो न कहने का क्या सवाल है? परन्तु गोस्वामीजी ने कहनेवाली बात छिपाकर लिखी है, जिसे पाठकगण अपने-अपने स्वर में पढ़ते हैं। ऐसी धारणा आपकी गीता के प्रति भी थी। कबीर की वाणी आपकी जिह्वा पर अधिक मुखरित होती थी। आपके श्रीमुख से एक दिन बारहमासी की अमरवाणी प्रस्फुटित हुई। आपने अपने शिष्यों से कहना आरम्भ किया कि **"आकाश बोल रहा है, तुमलोग याद कर लो।"** ऐसा

कहकर आप गुनगुनाने लगे। शिष्यों ने उसे याद कर लिया, जिसमें महापुरुष की प्रवेशिका से लेकर पराकाष्ठा तक का साधन-क्रम समाहित है। इसमें चेतावनी से लेकर भजन की प्रवेशिका, मध्य और अन्त तक की रहनी की स्थिति का चित्रण है। बारहमासी का रूप प्रथम कुछ पदों में दिया गया है और पुनः बारह भागों में बाँटकर बारह महीनों के माध्यम से योग की सूक्ष्म भूमिकाओं का विस्तार किया गया है।

अब आप सर्वप्रथम बारहमासी के सम्पूर्ण छन्दों को देखें, तदनन्तर अर्थसहित उसकी विस्तृत व्याख्या को पढ़कर लाभान्वित हों। इस अमरवाणी के पठन के पूर्व आपको इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि महापुरुषों की दृष्टि सदैव उस परमलक्ष्य पर हुआ करती है न कि मानव निर्मित भाषा पर। भाषाएँ परिवर्तनशील हुआ करती हैं। बहुत-सी मान्यता प्राप्त भाषाओं का आज सर्वथा लोप हो चुका है। यदि अर्थ वास्तविक है तो तत्सामयिक भाषाओं के माध्यम से जनमानस में प्रवाहित होकर लक्ष्य-विशेष का दिग्दर्शन करता रहेगा।

बारहमासी

दोहा- चैत चहत चितचोर को, चेला चतुर सुजान।
चित के मिले न चौधरी, भई चित में गलतान।।

चतुर क्या करी चतुर ने चतुराई,
हमारा चित चेत चकोर किया।
अपने चित चाँदनि चमकाई।।

चकचान अचानक चन्द चढ़ा,
चन्दा की चमक चित पर छाई।
चन्दा चहुँ ओर चकोर चला,
चित चेतन में गिरदी खाई।।

धरनी पर आया,
चमक में खो दई काया।
चला गया चित चोर,
चतुर जब तक चलने नहिं पाया।।

लावनी

लावनी सुन बारहमासी।
कटै जासे जनम मरण फाँसी।।

।। १ ।।

चैत में चिन्ता यह कीजै,
कि यह तन घड़ी घड़ी छीजै।
इससे करिये तनिक विचार,
सार वस्तु है क्या संसार?।।

दोहा- सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।
नित्यानित्य विवेकिया, लीजै बात विचार।।

फिरै क्या मथुरा अरु कासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। २ ।।

वैसाख में वक्त तूने पाया,
यहाँ कोई रहन नहीं आया।
काल ने सबही को खाया,
यह सब झूठी है माया।।

दोहा- भोग लोक परलोक का, सबही त्यागे राग।
रहे न इनकी कामना, ताहि कहैं वैराग।।

तितिक्षा तो सों परकासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ३ ।।

जेठ में जतन यही करना,
मिटे जासे जनम और मरना।
मन इन्द्रिय विषयों से परिहरना,
लीजिए सन्तों का सरना।।

दोहा- श्रद्धा कर गुरु वेद में, कर मन का समाधान।
कर्म अकर्म के साधन त्यागे, सहे मान अपमान।।

जगत् से रहना नित्य उदासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ४ ।।

आषाढ़ में सत् संगति करना,
वहाँ तू पावे सब मरमा।
तुझे वहाँ होवे जिज्ञासा,
तब लगे मोक्ष की आसा।।

दोहा- परमानन्द की प्राप्ति, अरु अनरथ का नास।
यह इच्छा मन में रहे, कहे मुमुक्षा तास।।

हानि हो जिससे चौरासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ५ ।।

सावन में शरणागत होना,
पैर सद्गुरु के धो पीना।
साफ जब होय तोहरा सीना,
रंग तब रहनी का दीना।।

दोहा- तत्वमसी के अरथ को, तोय करूँ परकास।
संशय शोक मिटे तेरा, होय अविद्या नास।।

मिटे तव भरम भेद रासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ६ ।।

महीना भादों का आया भरम सब छीजै।
गुरु की भक्ति चित्त धार प्रेम रस पीजै।।
ईश्वर से अधिक भक्ति गुरु की कीजै।
इस मानव तन को पाय सुफल करि लीजै।।

दोहा- ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति, गुरु के लक्षण जान।
इच्छा राखे मोक्ष की, ताहि शिष्य पहचान।।

होय अमरापुर वासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ७ ।।

क्वार में करना यही उपाय,
तत्वमसी श्रवणन मन लाय।
जुगुति से मनन करो प्यारे,
खुले जासे अन्दर के ताले।।

दोहा- निदिध्यासन के अन्त में, ऐसा होवे भान।
ब्रह्म आत्मा एक लख, तब होय ब्रह्म का ज्ञान।।

तहाँ मिथ्या जग नासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ८ ।।

कार्तिक में करम सभी नाशा,
ज्ञान जब उर में परकाशा।
तब अपना आप रूप भाषा,
उसी का लखो तमाशा।।

दोहा- आर-पार हमरो नहीं, नहिं देश काल से अन्त।
मैं ही अखण्डित एक हूँ, सब वस्तु का तन्त।।

मैं ही चेतन अविनासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ९ ।।

अगहन में ज्ञान अगिनि जागी,
लोक सब दाहन कहँ लागी।
फूँक दिये ब्रह्मा अरु विष्नू,
समा गये राम अरु कृष्नू।।

दोहा- जलत जलत ऐसी जली, जाको आर न पार।
ईश्वर जीव ब्रह्म अरु माया, फूँक दियो संसार।।

बिना ईंधन के परकासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। १० ।।

पूष में पूरन आपै आप,
नहिं तहाँ पुन्य अरु पाप।
कहो अब जपूँ कौन का जाप,
मिटा सब जनम-मरण सन्ताप।।

दोहा- ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय कछु, ध्याता ध्यान न ध्येय।
मम निज शुद्ध स्वरूप में, उपाध्येय नहिं हेय।।

करूँ फिर किसकी तल्लासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। ११ ।।

माघ में मिटी मिलन की भूख,
तहाँ पर नहिं आसिक माशूक।
इश्क फिर किसका होवे,
वृथा वक्त तूँ क्यों खोवे।।

दोहा- व्यापक परमानन्द में, नहिं आसिक माशूक।
लक्ष्य रूप में मार निशाना, वृथा विलोवे थूक।।

करावै क्यों जग में हाँसी।
लावनी सुन बारहमासी।।

।। १२ ।।

बसन्त ऋतु फाल्गुन में आवे,
खेल यह प्रारब्ध रचवावे।
इत्र गुलाल ज्ञान रोरी,
खेलते भर-भर के झोरी।।

दोहा- होली अविद्या फूँकि के, हो गये गुप्तानन्द।
समझे कोई सुघड़ विवेकी, क्या समझे मतिमन्द।।

जगत् की धूल उड़ी खासी।
लावनी सुन बारहमासी।।
कटै जासे जनम मरण फाँसी।।

स्पष्टीकरण

अब इस अमरवाणी बारहमासी का स्पष्टीकरण व्याख्यात्मक ढंग से किया जाता है, जिसके अध्ययन एवं मनन से योग के सूक्ष्म तत्त्वों की जानकारी सम्भव है। आपकी कविता का प्रारम्भ मास 'चैत' से है। प्रायः-

मोहनिसाँ सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा।। *(मानस, २/९२/१)*

सभी लोग मोहरूपी रात्रि में अचेतावस्था में सोये हुए हैं। जो कुछ भी रात-दिन दौड़ लगाकर अर्जित करते हैं, मात्र स्वप्न है। अधिकांशतः लोगों ने अचेतावस्था मोह में ही चेत-अचेत की सीमा निर्धारित कर ली है। यथा-

कोई चुनाव प्रतिद्वन्द्वी कहता है कि मेरे पड़ोसी पश्चाताप कर रहे हैं किन्तु मैं तो चुनाव के पूर्व ही चेत गया था। कुछ पूँजी चुनाव प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करने के लिए पहले ही एकत्रित कर ली थी। एक सेठ कहते हैं कि, मैं तो बादल देखकर ही चेत गया था कि तिल के भाव में अवश्य परिवर्तन होगा। लेकिन वस्तुतः ये सभी अचेत (पराधीन) ही हैं। चेता हुआ चित्त तभी कहलाता है, जब यह आत्मा अपने स्वरूप को पाने के लिए

व्यग्र होने लगे। भरत और काकभुशुण्डि इसी श्रेणी के चेते हुए पुरुष थे। भरत अवध का सम्पूर्ण राज्य तृणवत् त्याग राम-स्नेह के लिए आतुर हो उठे। काकभुशुण्डि जब चेत की अवस्था में पहुँचे तो उनके मन से समस्त वासनाएँ समाप्त हो गईं। जैसा कि-

मन ते सकल बासना भागी।
केवल राम चरन लय लागी।। *(मानस, ७/१०६/६)*

वास्तव में चेत तभी सम्भव है जब केवल चितचोर की ही चाह रह जाय। भगवान ही चितचोर हैं, जिनका स्पर्श करके चित्त उन्हीं में लीन हो जाता है। चुराई हुई वस्तु तो सदा के लिए खो जाती है। इसी आधार पर इस अमरवाणी की शुरुआत है। पहले बारह महीनों का सारांश है और बाद में लावनी। सारांश शब्दों में देखें।

दोहा- चैत चहत चितचोर को, चेला चतुर सुजान।
चित के मिले न चौधरी, भई चित में गलतान।।

भावार्थ- चेता हुआ चित्त तब समझे जब केवल चितचोर की ही चाह रह जाय। वही चेला की स्थिति है, वही चतुर है और सुजान की स्थिति वाला है। प्रायः लोग चतुर ही तो बने हैं, किन्तु महापुरुषों की दृष्टि में अन्यत्र कहीं भी चतुराई का स्थान है ही नहीं। जैसा कि-

चतुराई चूल्हे पड़ी, घूरे पड़े अचार।
तुलसी राम भजन बिनु, चारो बरन चमार।।

ऐसी चतुराई में आग लगे जो भगवत्-चिन्तनविहीन हो और ऐसे आचार कूड़ा-करकट में जायँ जो हमें भगवद्-भजन से वंचित रखते हैं। चितचोर की चाह तो पैदा हुई; किन्तु चित्त के चौधरी अर्थात् चित्त को स्थिर करनेवाले सद्गुरु नहीं मिले तो ग्लानि बनी ही रह जाती है।

टिप्पणी- हम दो घण्टे भजन में बैठकर दस मिनट भी अपने पक्ष में नहीं पाते और अन्ततः हताश होकर बैठ जाते हैं। साथ ही यह कहा करते हैं कि मन ही नहीं लगता। जब तक चित्त के चौधरी अर्थात् उसकी गतिविधि को पकड़नेवाले सद्गुरु नहीं मिलते, तब तक वह रुकता नहीं। वे महापुरुष हृदय-देश से उस चित्त की गतिविधि पर नियंत्रण करते रहते हैं। बाहर से सम्बन्ध कम रहता है।

सम्बन्ध- आखिर चतुराई है क्या?

चतुर क्या करी चतुर ने चतुराई,
हमारा चित चेत चकोर किया।
अपने चित चाँदनि चमकाई।।

भावार्थ- चतुर ने भला कौन-सी चतुराई की? चूँकि महापुरुष ही बोलनेवाले हैं, इसलिए इन्हीं महापुरुष की रहनी के प्रति अपने

आप को चकोर बना लिया। ऐसा चकोर बनने पर महापुरुष के चित्त का प्रकाश अपने चित्त में पा जाता है। जैसा कि, **'अपने चित चाँदनि चमकाई।'**।

चकचान अचानक चन्द चढ़ा,
चन्दा की चमक चित पर छाई।

भला वह प्रकाश आता कैसे है? आप चकोर बनकर लग भर जायँ, अनायास ही वह प्रकाश चित्त पर बढ़ने लगता है।

टिप्पणी– यहाँ चन्दा आकाश का कोई चन्द्रमा नहीं बल्कि परमात्मा की वह प्रभा है, जो चित्त पर चकोर बनने से स्वाभाविक बढ़ती रहती है। महापुरुष बाहरी दृष्टान्तों के माध्यम से अन्दर की स्थितियों को समझाते आये हैं। इस भगवत्-पथ में बाहरी चन्द्रमा से कोई प्रयोजन नहीं है, जैसा कि, **'मन ससि चित्त महान'** *(मानस, ६/१५ क)*। मन ही चन्द्रमा है और शून्य ही आकाश है। जब शून्य में मन रुकने की क्षमता पा लेता है तो वही चन्द्रमा कहलाता है। (चन्द्रमा की संज्ञास्थिति यही है) इसी कारण वह चन्दा अन्यत्र नहीं चढ़ता बल्कि जो चेतन की चमक है वह चित्त पर छा जाती है। यह तभी सम्भव है जब चकोर के गुणधर्म आप में हों।

चन्दा चहुँ ओर चकोर चला,
चित चेतन में गिरदी खाई।।

अब उस चेतना का प्रकाश, जो कि चित्त पर छाया हुआ है, चित्त तक ही सीमित न रहकर सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगता है। सर्वत्र वह स्वरूप ही दिखाई देता है। जैसा कि-

सरगु नरकु अपबरगु समाना।
जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।। *(मानस, २/१३०/७)*

चित्त में वह प्रकाश आ जाने के बाद न स्वर्ग स्वर्ग ही रह जाता है और न नरक नरक ही। जब तक इष्ट के तद्रूप नहीं हो जाते, तब तक रास्ता शेष है। इसलिए **"चकोर चला, चित चेतन में गिरदी खाई"**। जैसे कुछ और आगे चला तो चित्त उसी रूप का स्पर्श कर वही हो जाता है। सर्वत्र दिखाई देता है पर है तो अलग, इसीलिए चकोर है। जहाँ स्पर्श किया तो उसी में विलीन हो गया।

धरनी पर आया,
चमक में खो दई काया।

जब उसी रूप में अपने को खो ही दिया तो ऐसी सत्ता नहीं कि जिसके लिए खोज करे। आखिर यह स्थिति हुई कहाँ? इसी शरीररूपी पृथ्वी में ही। जैसा कि-

धड़ धरती का एकै लेखा। जस बाहर तस भीतर देखा।

धड़ कहते हैं शरीर को और धरती कहते हैं बाहरी पृथ्वी को। जो कुछ भी अन्दर दिखाई देता है वह एक ही जैसा है।

शरीररूपी पृथ्वी में चित्त चेतन ही जैसा हो गया और जन्म-मरण की प्रक्रिया खो दी। काया जन्म-मरण का वह विधान है जो जीवात्मा को पिण्डों का रूप देता है। यह शरीर ही चला गया तो संसार कैसा? तद्रूप हो जाने पर एक में एक का भान नहीं होता, इसलिए चितचोर भी चला गया।

चला गया चित चोर,
चतुर जब तक चलने नहिं पाया।।

इसके आगे चतुर की कोई चाह नहीं। उसके खो जाने की स्थिति तक चतुर नहीं चल पाता। जहाँ तक मन-बुद्धि की पकड़ है वहाँ तक साधक चलता है। उसके बाद की कुछ ऐसी अवस्था है जिसे चेतन (इष्टदेव) ही समझा-बुझाकर अपनी स्थिति प्रदान कर देते हैं।

टिप्पणी- अब आगे के महीनों में इसी का विस्तार है, जिसे समझकर साधक साधना में सक्रिय भाग ले सकता है। किसी-न-किसी अवस्था में आगे यह सबके लिए सुलभ हो सकता है। भले ही हम किसी परिस्थिति में क्यों न हों।

लावनी

'लावनी' ले आनेवाली को कहते हैं। भजनमयी प्रवृत्ति ही उस परम चेतना को लाने में सफल होती है। अतः चिन्तन की प्रवृत्ति को लावनी कहते हैं। लगन, लावनी, लव इत्यादि एक दूसरे

के पर्याय हैं। इनमें से कोई भी शब्द कहा जाय तो तात्पर्य वही निकलता है, केवल थोड़ा उतार-चढ़ाव है। जब कभी किसी की लगन चेतना को पाने के लिए प्रवृत्त हुई है तो उसका यही रूप रहा है।

जागत में सुमिरन करे, सोवत में लव लाय।
सुरति डोर लागी रहे, तार टूटि न जाय।।

आठों पहर सोते एवं जागते समय ऐसी लगन बनी रहे कि तार न टूटे। ऐसा नहीं कि गर्मी में न होगा तो जाड़े में होगा। हर देशकाल में सुरति की डोर लगाना है, इसलिए इसे बारहमासी कहते हैं। यह केवल सुबह-शाम तक ही सीमित नहीं है। सुबह-शाम भजन और अन्य समय में मन को अनियंत्रित रखना भजन नहीं है। यह तो केवल प्रयास मात्र है जिससे आगे पथ में बढ़ा जा सकता है। अब आइये इस पद पर-

लावनी सुन बारहमासी।
कटै जासे जनम मरण फाँसी।।

अब आप उस लगन के बारे में सुनें, जिसमें आठों पहर, बारहों महीने निरन्तर लगे रहने पर जन्म-मरण की फाँसी कटती है और परम चेतन स्वरूप को जीव प्राप्त हो जाता है। जैसे, **'दिन दिन बढ़त सवायो।'** -प्रतिदिन उसमें सवाई बढ़ने पर ही भलाई है। ऐसी लगन का सदा महत्त्व रहा है जो जन्म-मरण की फाँसी को काटने में समर्थ है।

सम्बन्ध- अब यदि भजन करनेवाले के लिए ही कहा जाय तो सांसारिक व्यक्तियों के लिए कोई उपाय ही नहीं बचता। इसलिए जो जहाँ खड़ा है उसको वहीं से चेतने का विधान बताते हुए आगे क्रियात्मक विस्तार किया गया है।

साधना-क्रम में बारह महीने

चैत में चिन्ता यह कीजै,
कि यह तन घड़ी घड़ी छीजै।
इससे करिये तनिक विचार,
सार वस्तु है क्या संसार?।।

भावार्थ- जब हम परिस्थिति में हैं तो सिद्ध हुआ कि चैतन्यता नहीं है। अब चैतन्य होने के लिए शरीर की स्थिति पर विचार कीजिए कि यह हर घड़ी नष्टप्राय होता जा रहा है। हम सोचते हैं कि आयु बढ़ गई; परन्तु ऐसा नहीं है। मान लिया जाय कि हमारी आयु ६० वर्ष की है और हम ५० वर्ष की अवस्था में पहुँच गये तब १० वर्ष ही तो शेष रहे। शरीर हर घड़ी काल के गाल में सिमटता जा रहा है और न चाहते हुए भी हम देखते हैं कि अपने माता-पिता एवं परमप्रिय पुत्र को फेंक आते हैं। जब यह शरीर ही नाशवान् है तो भोग्य पदार्थ रहते हुए भी आप बरबस खींचकर पता नहीं कहाँ फेंक दिये जाते हैं। एक ग्रास भी अधिक नहीं खा सकते। भोग्य पदार्थ ही तो संसार है। जैसा कि,

मैं अरु मोर तोर तैं माया। *(मानस, ३/१४/२)*

जब शरीर ही मरणधर्मा है तो विचार करें कि क्या संसार सत्य है? सिद्ध है कि संसार असत्य है।

टिप्पणी- याद रखें-

गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई।। *(मानस, ३/१४/३)*

इन्द्रियों और उनके विषयों में मन जहाँ तक उड़ान भर पाता है, वहाँ तक अपने भोग की ही सामग्री खोजता है। यही सब माया है, जिसका नाम संसार है। अन्त में सब पदार्थ छूट जाते हैं। यही देखकर महात्मा बुद्ध को वैराग्य हुआ था। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि, अर्जुन! यह शरीर क्षणभंगुर है, पर है देवताओं को भी दुर्लभ। यही मेरे प्राप्ति का साधन एवं भव-बन्धन से छूटने का माध्यम है।

सम्बन्ध- जिस शरीर के लिए हमें भोग्य सामग्री अथवा संसार प्रिय है, वही नाशवान् है, तो आखिर सत्य है क्या?-

दोहा- सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।
नित्यानित्य विवेकिया, लीजै बात विचार।।

भावार्थ- सत्य वस्तु अथवा जो परमसत्य है, वह है आत्मा। यह महापुरुष का निर्णय है। जगत् का प्रसार देखने में बड़ा सुन्दर है, परन्तु है सर्वथा झूठा। **'नित्यानित्य विवेकिया'**-सत्य क्या है

और असत्य क्या है?- इस पर विवेक करें। विचारों के द्वारा इस वार्ता को लिया जाय, विचारहीनों के लिए यहाँ ठिकाना नहीं है।

टिप्पणी- विचारहीनता से धोखे ही धोखे में समय बीत जायेगा। विचारहीन के लिए बहुमूल्य मानव-शरीर नगण्य है।

फिरै क्या मथुरा अरु कासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

काशी, मथुरा आदि तीर्थों में भ्रमण करने से अब इस लगन का कोई महत्त्व नहीं है। यह तो मानसिक प्रवृत्ति है जो प्रभु की ओर निरन्तर प्रवाहित होती रहती है और इससे जन्म-मरण का बन्धन टूट जाता है। लगन की इसी परिस्थिति में आगे बढ़ने का वक्त मिलता है।

वैसाख में वक्त तूने पाया,
यहाँ कोई रहन नहीं आया।
काल ने सबही को खाया,
यह सब झूठी है माया।।

भावार्थ- वैशाख=विशेष सबूत, विशेष प्रमाण। शरीर का काल के गाल में होने का संसार की नश्वरता से मिला है। इसकी नश्वरता पर विचार कर संसार की नश्वरता दिखाई देने से हम चिन्तित अवश्य होंगे, इसलिए वक्त मिला है। वह भला किस प्रकार?-

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

(मानस, ७/४२/७-८)

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोस लगाइ।।

(मानस, ७/४३)

बड़े भाग्य से यह मानव-तन मिला है। यह साधन का धाम एवं मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर जो अपनी आवागमन की स्थिति से छुटकारा नहीं पा लेता, वह सिर पटक-पटककर पश्चाताप करता है। काल, कर्म और ईश्वर को व्यर्थ ही दोष देता है, जबकि दोष उसी का है। मानव-तन ही संसार से पार होने का साधन है, शेष योनियाँ तो केवल भोग भोगने के लिए ही हैं। इसलिए महापुरुष कहते हैं, तुझे वक्त मिला है। निःसन्देह यह क्षणभंगुर है पर आज दिन तो सामने उपस्थित है। इस समय तो पास है। शायद अब भी दृष्टि संसार की तरफ झुके तो कहते हैं कि काल ने सबको बरबस ही खा लिया। राम, कृष्ण आदि कोई भी तो दिखाई नहीं पड़ता। इससे सिद्ध है कि माया सर्वथा झूठी है।

टिप्पणी- उन महापुरुषों ने शरीर के रहते ही परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया। वे शरीर से भिन्न व्यापक स्थिति को उपलब्ध कर चुके थे। यही तो करना है-

'सन्तो! जीवित ही करु आशा।'

जीवित में मरना भला, जो मर जाने कोय।
मरने से पहले मरे, अजर अमर सोइ होय।।

सम्बन्ध- माया के विषय में पुनः चेतावनी देते हैं, कारण कि एक बार समझने से यह पिण्ड नहीं छोड़ती है। प्रायः सभी तो पन्ने उलटते हैं पर हाथ कुछ भी नहीं लगता। इसीलिए महापुरुष वैराग्य की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं-

दोहा- भोग लोक परलोक का, सबही त्यागे राग।
रहे न इनकी कामना, ताहि कहैं वैराग।।

इस लोक के भोग, जो छोटी-सी झोपड़ी से लेकर राष्ट्रों तक का सिलसिला है और जो परलोक, बैकुण्ठ आदि की मान्यताएँ हैं, जब इनकी लेशमात्र भी कामना न रह जाय, तब वैराग्य की स्थिति समझना चाहिए (इसी का नाम वैराग्य है)। वैराग्य का तात्पर्य लगाव के न होने से है।

तितिक्षा तो सों परकासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

तितिक्षा=त्याग की इच्छा। इस त्याग की इच्छा की कसौटी तो साधक पर निर्भर करती है। यदि जन्म-मरण की फाँसी को काटना है तो त्याग की प्रबल इच्छा करनी होगी। तितिक्षा का प्रकाश तुम्हीं से होना है। इससे स्पष्ट है कि यह महापुरुष के क्षेत्र की बात नहीं है। वे तब देखेंगे जब हमारे अन्दर त्याग व पाने की

प्रबल इच्छा होगी।

जेठ में जतन यही करना,
मिटे जासे जनम और मरना।
मन इन्द्रिय विषयों से परिहरना,
लीजिए सन्तों का सरना।।

भावार्थ- जेठ=पहले पैदा होनेवाला। साधन के प्रथम चरण में केवल यही यतन करना है, ताकि जन्म-मरण का बन्धन छूट जाय। ऋद्धियों और सिद्धियों में उलझने की आवश्यकता नहीं है। भला वह कौन-सा यत्न है? मनसहित इन्द्रियों को विषयों से उपराम रखते हुए सन्तों की शरण लेना!

सम्बन्ध- अब अन्य सन्तों के साथ-साथ सद्गुरु का विशेष स्थान दर्शाते हुए कहते हैं कि-

दोहा- श्रद्धा कर गुरु वेद में, कर मन का समाधान।
कर्म अकर्म के साधन त्यागे, सहे मान अपमान।।

सन्तों में जो सद्गुरु हैं, उनमें और उनकी विदित वाणी में मन का समाधान पूर्ण श्रद्धा से कर दें। इसके बाहर कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है। यदि खोजते हैं तो साधक नहीं। कर्म-अकर्म का तात्पर्य निष्काम भाव से करना है। बौद्धिक स्तर पर अकर्मता की स्थिति को बनाये रखना पड़ता है जिससे कि कहीं राग न आये। फल की इच्छा न जागृत हो जाय, ऐसी

जिम्मेदारी त्याग दें। केवल उनके द्वारा मिलनेवाला मान-अपमान सहते जाओ।

टिप्पणी- जब मन को सद्गुरु के चरणों में समाधान करने की स्थिति आ गई तो कौन साधन बाकी है? जब मन को बाहर निकलने का स्थान ही नहीं मिलता तो कामना कैसे करेगा? क्रिया यही होती है परन्तु वह महापुरुष के ऊपर निर्भर रहता है।

जगत् से रहना नित्य उदासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

जगत् से निरन्तर उदास रहना है। यदि जगत् से लगाव हुआ तो गुण-धर्म और उनकी वाणी का अनुसरण सब कुछ छूट जायेगा। ऐसी स्थिति में मन का समाधान करना असम्भव है। यदि मन में उधर का लगाव हुआ तो श्रद्धा और समर्पण की कसौटी टूट जायेगी। उस चेतन तत्त्व को लानेवाली प्रवृत्ति के विषय में सुनो, जो निरन्तर प्रवाहित रहनेवाली है और जिसमें काल का भेद नहीं है।

सम्बन्ध- सन्तों में जो सद्गुरु हैं उनमें और उनकी वाणी में मन का समाधान बताया गया है, किन्तु एकदम मन लगता नहीं। ऐसी परिस्थिति में कुछ करना है।

आषाढ़ में सत् संगति करना,
वहाँ तू पावे सब मरमा।

तुझे वहाँ होवे जिज्ञासा,
तब लगे मोक्ष की आसा।।

भावार्थ- आषाढ़ = आष+आढ़ = पुरानी आशा। वह आशा जो पुरातन है, जो परमपुरुष परमात्मा है, उसके प्रति जागृत हुई। बस जागृत होते ही आगे गति मिलने लगी। अब साधक को केवल सत्संग करना है। जिससे आगे का सम्पूर्ण भेद पा जायेगा। सत्संग का तात्पर्य केवल वार्ता नहीं, अपितु ध्यान व चिन्तन से है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि **'सत्य वस्तु है आत्मा',** उस आत्मा में मन को खड़ा करना है। आत्मा सत्य तो है, पर दिखाई नहीं देती। ऐसे महापुरुष जो आत्मा को पाकर परमात्मस्वरूप में स्थित हैं, उनके ही स्वरूप में मन को समेटकर चिन्तन के द्वारा लगाना या संग करना है। ज्यों-ज्यों गुप्त भेद मिलता जायेगा, त्यों-त्यों उसे जानने की इच्छा प्रबल होती जायेगी तब फिर मोक्ष की आशा लग जायेगी। वास्तव में इसी पथ में छुटकारा मिलता है तब तक सभी लोग कहते भर हैं; किन्तु-

जानें बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।। *(मानस, ७/८८/७)*

टिप्पणी- सुग्रीव ने जब राम के अतुल बल का प्रमाण प्रत्यक्ष देखा, तभी उसकी आशा विश्वास सहित बलवती हो गई।

सम्बन्ध- मोक्ष की आशा लगी; परन्तु वह मोक्ष अथवा मुमुक्षा है कैसी?-

दोहा- परमानन्द की प्राप्ति, अरु अनरथ का नास।
यह इच्छा मन में रहे, कहे मुमुक्षा तास।।

अनर्थ अथवा शुभाशुभ क्षेत्र का नाश हो जाय और परमानन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाय। मन के अन्दर इतनी कामना के शेष रह जाने का नाम मुमुक्षा है।

हानि हो जिससे चौरासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

चौरासी लाख योनियों में आबद्ध संसार की हानि इसके द्वारा हो जायेगी। कुछ युक्तियों से यह (चौरासी लाख) भाव, मापदण्ड पूर्व से ही चला आ रहा है। आवागमन से छुटकारा दिलानेवाली लगन का विधान है कि यह अहर्निश चलती रहे, जब तक कि वह तत्त्व दिखाई न पड़े। जैसा कि-

आठ पहर लागा रहे, भजन तेल की धार।
जगत बलाबलि खाक है, हरि रस है आधार।।

अब केवल मोक्ष की ही इच्छा शेष है। ऐसी स्थिति में साधक के क्या लक्षण हैं?-

सावन में शरणागत होना,
पैर सद्गुरु के धो पीना।
साफ जब होय तोहरा सीना,
रंग तब रहनी का दीना।।

भावार्थ- श्रावण=श्रवण करना। जो इष्टदेव से मिलनेवाले धारावाही आदेश हैं उन्हीं के अनुसार अपने को ढालना है। जब धारावाही आदेशों का ताँता लग जाता है, तब सद्गुरु हृदय से पथ-प्रदर्शन करते हैं। उन्हीं के पालन में इष्ट की शरण लेते हुए उनके चरणों को मन के द्वारा धोकर पीते जाओ। बाहर चरण धोने का विधान नहीं है। ज्यों-ज्यों हम सद्गुरु के चरणों में ध्यान करते जायेंगे, त्यों-त्यों वह रहनी हृदय में प्रकट होती जायेगी।

टिप्पणी- जन्म-जन्मान्तर से लगे हुए मल-आवरण या विक्षेप धुल जाने पर सन्तों की रहनी का रंग ढलता है अथवा स्थिरता आने लगती है। जैसे-

(हे हरि) कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो।।

(विनयपत्रिका, १७२)

अब सन्तों की रहनी आने लगती है।

दोहा- तत्वमसी के अरथ को, तोय करूँ परकास।
संशय शोक मिटे तेरा, होय अविद्या नास।।

जब हृदय के मलावरण व विक्षेप समाप्त होने लगे और रहनी आने लगे तब हृदय से पथ-प्रदर्शन करनेवाले महापुरुष 'तत्त्वमसि' के अर्थ का प्रकाश करते हैं अर्थात् वह परमतत्त्व परमात्मा तुझसे अभिन्न है, अनुभवी स्तर पर महापुरुष अनुभवों

के माध्यम से उसका प्रकाश करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप संशय-शोक सदा के लिए मिट जाते हैं और अविद्या नष्ट हो जाती है। यह तभी सम्भव है जब लगन न टूटे।

मिटे तव भरम भेद रासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

इसके साथ ही भ्रम और भेद का समूह मिट जाता है, जिसमें लगन के टूटने का विधान नहीं है।

सम्बन्ध- जब भक्त पर रहनी का रंग चढ़ जाता है, दूसरे शब्दों में साधक का हृदय इष्ट की रहनी में ढलने लगता है। जैसे भादों में फसल-सम्बन्धी भरपूरता रहती है, वैसे ही साधक के हृदय में इस स्थिति में भजन की भरपूरता रहती है।

महीना भादों का आया भरम सब छीजै।
गुरु की भक्ति चित्त धार प्रेम रस पीजै।।
ईश्वर से अधिक भक्ति गुरु की कीजै।
इस मानव तन को पाय सुफल करि लीजै।।

भावार्थ- भादों=भजन की भरपूरता। अब इस भजन की भरपूरता में भ्रम का क्षीण होना, गुरु के प्रति अनुराग का होना और प्रेमरस में भींगे रहना स्वाभाविक ही है। कारण इन्हीं महापुरुषों की देन है कि आज ऐसी रहनी मिलने लगी, किन्तु इन महापुरुषों का आदेश है कि ईश्वर से अधिक भक्ति सद्गुरु की

करनी है। महापुरुषों का कहना है कि भक्ति तो स्वाभाविक ही है परन्तु सन्दिग्ध भक्ति, भक्ति नहीं है। ईश्वर से अधिक गुरु की भक्ति होने पर ही यह मानव-शरीर सफल हो सकता है। सफलता तो तभी है जब उस कार्य की पूर्ति हो जाय, जिसके लिए यह तन मिला है। प्रायः लोग ईश्वर कुछ है और वह बड़ा है, इन विचारों की सन्दिग्धता में सद्गुरु को हृदय से नहीं पकड़ पाते। साक्षात्कार करने के लिए ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है। गुरु का गुरुत्व पाने पर ही ईश्वर दिखाई देता है, पहले नहीं।

'तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी।' *(मानस, २/१२८/८)*

'गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई।।' *(मानस, ७/९२/५)*

'यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये सद्गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।।' *(कबीर)*

भला वे गुरु कैसे हैं, जिनकी हमें भक्ति करनी है?-

दोहा- ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति, गुरु के लक्षण जान।
इच्छा राखे मोक्ष की, ताहि शिष्य पहचान।।

ब्रह्म के विषय में जाननेवाले हों एवं ब्रह्म के विषय में व्यक्त कर सकें, सुरति की गतिविधि में प्रवेश देनेवाले हों, वही गुरु हैं। यह योग का विषय है। केवल मोक्ष की इच्छा रखनेवाला, जिसे सिद्धियाँ और सम्मान की चाह न हो, वही शिष्य है।

होय अमरापुर वासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

ऐसा संयोग बैठने पर ही जो अजर है, अमर है और शाश्वत है, ऐसे पुर में स्थान मिलता है। इष्ट की स्थिति को लानेवाली उस प्रवृत्ति के नियम को सुनो, जिसमें सतत लगे रहने का विधान है।

सम्बन्ध- सद्गुरु में जब मन का समाधान होने लगता है तब उस परमतत्त्व का संचार अनुभवों में आने लगता है, जिसे लोग 'मैं हूँ'- ऐसा कहा करते हैं।

क्वार में करना यही उपाय,
तत्वमसी श्रवणन मन लाय।
जुगुति से मनन करो प्यारे,
खुले जासे अन्दर के ताले।।

भावार्थ- क्वार = विकारों का कट जाना। 'कु' कहते हैं दूषित को और 'अर' कहते हैं काटने को। साधक के द्वारा ज्यों-ज्यों विकारों का शमन होता जायेगा, त्यों-त्यों उसे तत्त्वमसि का आदेश मिलने लगेगा, जैसा कि सद्गुरु पूर्व में ही कहते हैं कि जब हृदय शुद्ध हो जायेगा तो उस तत्त्वमसि का संचार मैं करूँगा। अन्दर से मिलने वाले आदेशों को श्रवण करना एवं उसी में मन को लगाना, बस साधक के लिए इतने ही उपाय का विधान है।

साधक मन को उस तत्त्व में स्थिर कर युक्तिसहित उसका मनन करता जाय, ताकि अन्दर के ताले खुल जायँ, जो आत्मा और परमात्मा में अन्तर डाले हुए हैं।

टिप्पणी- वह आदेश क्रमशः मिलता है। जब तक अन्तिम स्थितिवाला आदेश नहीं मिल जाता, तब तक किसी-न-किसी रूप में ताला लगा ही रहता है। अब रही युक्ति से मनन करने की बात, उसके लिए हम जैसा कि राम-नाम कहते हैं वैसा है नहीं। जब यही नाम मनन की स्थिति में आ जाता है, तब उसका वाणी से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

दोहा- निदिध्यासन के अन्त में, ऐसा होवे भान।
ब्रह्म आत्मा एक लख, तब होय ब्रह्म का ज्ञान।।

निदिध्यासन के अन्त में ऐसा भान होने लगता है कि ब्रह्म और आत्मा परस्पर एक ही हैं और इसी एकत्व दर्शन का परिणाम ही ब्रह्मज्ञान है।

टिप्पणी- हर पहलू की दो सीमायें हुआ करती हैं - एक न्यूनतम और दूसरी अधिकतम अर्थात् प्रवेशिका एवं पराकाष्ठा। उदाहरण के लिए भक्ति को लीजिए। जहाँ से भक्ति की शुरुआत है, वह उसकी न्यूनतम सीमा है और जहाँ वह लक्ष्य को प्रत्यक्ष करने की स्थिति में आ जाती है, वह अधिकतम सीमा कहलाती है। इसी प्रकार निदिध्यासन, जहाँ से चिन्तन के द्वारा हमारा

देहाध्यास मिटने लगता है, वह प्रवेशिका है और चिन्तन की पूर्णता में जहाँ अध्यास समाप्त हो जाता है वही पराकाष्ठा अर्थात् अन्त कहलाता है।

तहाँ मिथ्या जग नासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

इस ब्रह्मज्ञान के प्रकाश में मिथ्या जगत् शान्त हो जाता है। अतः चिन्तन करो। लगन अनिवार्य है।

सम्बन्ध- जब ब्रह्म, आत्मा एक हो जाय तो भी क्या कर्म (चिन्तन-क्रम) बना ही रहता है? नहीं, छूट जाता है। इसी पर आधारित है अगला महीना कार्तिक-

कार्तिक में करम सभी नाशा,
ज्ञान जब उर में परकाशा।
तब अपना आप रूप भाषा,
उसी का लखो तमाशा।।

भावार्थ- कार्तिक अर्थात् कर्मों का त्याग। जब ब्रह्म और आत्मा अभिन्न स्थिति में दिखाई देने लगते हैं, तब भजन का कार्य समाप्त हो जाता है। कारण कि उसके आगे कोई भगवान है ही नहीं, जिसको खोजें। इस प्रत्यक्ष दर्शन से सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। शुभाशुभ कर्म- शुभ वह कर्म है जो इष्ट की उपलब्धि के लिए किया जाता है और अशुभ जो जन्म-जन्मान्तर के संस्कार हैं। यह

विषयोन्मुख प्रक्रिया है। ऐसा तभी सम्भव है, जबकि ज्ञान का प्रकाश हृदय में हो जाय। प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ही ज्ञान है न कि बकवास। वाक्यज्ञान तो अल्पावधि में ही आ जाता है; परन्तु उस ज्ञान की तो यही पहचान है कि अपना स्वरूप प्रतिभासित होने लगे। उसी का तमाशा देखो। उसकी विशेषता को स्वयं देखो। दूसरा कोई देख ले ऐसी बात नहीं है।

सो सुख जानइ मन अरु काना।
नहिं रसना पहिं जाइ बखाना।। *(मानस, ७/८७/३)*

सन्त कबीर से किसी ने पूछा कि, वह सुख कैसा है? तो वे बोले- **'कहैं कबीर गूँगे की शक्कर, खाय सोइ पै जानै।'**

टिप्पणी- जिसमें वह संचारित हो जाय, उसके तमाशे को वही देख सकता है। किसी को पकड़ाया नहीं जा सकता। क्रमशः चलकर तो महापुरुष देते ही हैं, जैसा कि उनका विधान है।

दोहा- आर-पार हमरो नहीं, नहिं देश काल से अन्त।
मैं ही अखण्डित एक हूँ, सब वस्तु का तन्त।।

अब उस खेल का रूप दर्शाते हैं कि ब्रह्म का कहीं न आर है न पार अर्थात् न आदि है न अन्त। अपने को उससे अभिन्न देखा, जो कि हर देश-काल से अबाधित है इसलिए मेरा अन्त नहीं है। वह ब्रह्म अखण्डित एवं सब वस्तुओं का निचोड़ है। उससे अभिन्न होने से मैं भी अभिन्न और सब वस्तुओं का निचोड़

हूँ। इस प्रकार अखण्डित और सब वस्तुओं का तत्त्व मेरी ही संज्ञा है।

मैं ही चेतन अविनासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

ब्रह्म परम चेतन एवं विनाशरहित सत्ता है, उसी में मिट गया, स्वरूप है। अब वह लगन कार्य कर चुकी।

सम्बन्ध- जब कोई सत्ता है ही नहीं, तब लोक-परलोक, राम और कृष्ण, ब्रह्मा और विष्णु आदि इनका क्या स्वरूप है? क्या ये भी नहीं बचे? तब कहते हैं कि परमस्वरूप सबकी पराकाष्ठा है। पूर्व की स्थिति कब मिलती है और उसकी क्या विशेषताएँ हैं? इसी का चित्रण इस माह में है।

अगहन में ज्ञान अगिनि जागी,
लोक सब दाहन कहँ लागी।
फूँक दिये ब्रह्मा अरु विष्नू,
समा गये राम अरु कृष्नू।।

भावार्थ- जैसा कि बताया गया है कि ईश्वर की प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ज्ञान है। उसकी जानकारी होने के कुछ क्षण पूर्व ही पाप समूल नष्ट हो जाते हैं।

अगहन=पाप के हनन की स्थिति। पाप के निर्मूल होने की स्थिति में उस ज्ञान-अग्नि का संचार होता है, जिसमें लोक-परलोक

सभी जल जाते हैं। उस अभिन्न जानकारी के अन्दर की बात है राम और कृष्ण, ब्रह्मा और विष्णु। उस अभिन्न स्थिति में ब्रह्मा और विष्णु, राम और कृष्ण की स्थिति सर्वथा विलीन हो जाती है। कारण कि यह वहाँ तक की अवस्थाओं का ऊँचा-नीचा नामकरण है। ब्रह्मा (जैसे वह चेतन) जिस प्रकार ब्रह्म की जानकारी का प्रसार करते थे, विष्णु योगक्षेम किया करते थे, राम जिस प्रकार सर्वत्र रमण करते हुए व्यापकता दर्शाते थे और श्रीकृष्ण जिस प्रकार आत्मा से रथी होकर कर्त्तव्य का बोध कराया करते थे, आदि उसी स्थिति में विलीन हो गये। अभिन्न स्थिति के बाद कौन किसका पोषण करे, कौन किसका प्रसार करे, कौन रमण करे और किससे कर्तव्य की पूर्ति हो?

टिप्पणी- यह तो ब्रह्म जिन-जिन युक्तियों से योगी के सामने प्रसारित होता है, उसी का रूप है। अब वह इन शक्तियों के मूल सहज स्वरूप में ही स्थित हो गया तो किसका पथ-प्रदर्शन करे? विलगता में यही शाखाएँ प्रसारित होकर समझाती थीं। याद रखें, जो अवतार बाहर पाये जाते हैं वे इसी के अपभ्रंश मात्र हैं। यह अपभ्रंश कालान्तर में हो जाया करता है; किन्तु इन्हीं के द्वारा प्रेरित हो प्रत्यक्ष स्थिति पानेवाले के लिए इनका कोई स्थान नहीं रह जाता। अन्तःकरण में जब तक वह इष्ट विशेष कृपा करके पथ-प्रदर्शन नहीं करता, तब तक ईसा, मूसा, मुहम्मद, राम, रहीम आदि की मान्यता है। उसी के द्वारा माध्यमिक स्तर तक

बढ़ा जाता है। इसके आगे वही इष्ट बाहर से सम्बन्ध तोड़कर भीतर अन्तर्देश से अपने स्वरूप में जोड़ देते हैं। इस स्तरवाला साधक सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में नास्तिक-सा प्रतीत होता है; परन्तु सही कृपापात्र वही है।

दोहा- जलत जलत ऐसी जली, जाको आर न पार।
ईश्वर जीव ब्रह्म अरु माया, फूँक दियो संसार।।

ईश्वर की अभिन्न स्थिति का नाम ज्ञान है। यह रहनी ऐसी विचित्र है कि उसका आदि एवं अन्त नहीं है अर्थात् वह सर्वत्र है। इस स्थिति में माया एवं संसार तो मिथ्या हैं ही, साथ ही साथ ईश्वर और ब्रह्म की भी संज्ञा नहीं बनती अर्थात् विलीन हो जाती है; क्योंकि उससे भिन्न कोई सत्ता नहीं रह जाती, जिसे कि वह समझे। जब वही है तब किससे कहना और समझना? महात्मा बुद्ध जब इसी स्थिति में थे तो लोगों ने उनसे प्रश्न किया कि, ब्रह्म की स्थिति क्या है? वे शान्त होकर बैठ गये और कोई उत्तर नहीं दिये। मतलब यह था कि ब्रह्म शान्त है, इसलिए शान्ति की तरफ संकेत किये, अनिर्वचनीय है इसलिए मौन हो गये। यही महाराजजी का भी अभिप्राय प्रकट है।

बिना ईंधन के परकासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

यह कोई सांसारिक अग्नि नहीं है, जो वस्तुओं के संयोग से जलती है। यह दृष्टान्त मात्र है परन्तु वास्तविक अग्नि इसी को

कहा जा सकता है। आग में डालने से जिस प्रकार वस्तुएँ जल जाती हैं, ठीक उसी प्रकार इष्ट के मेल की अग्नि (योगाग्नि) में सम्पूर्ण जगत् सदा के लिए शान्त हो जाता है। वह बिना किसी सम्बन्ध के स्वयं प्रकाशस्वरूप है। निरन्तर अभ्यास से ही उस अग्नि का प्राप्त होना सम्भव है। कहीं शिथिलता की गुंजाइश नहीं है, इसलिए इसे लावनी कहते हैं। जिसका अर्थ है- निरन्तर लगनेवाली लगन।

टिप्पणी- इसी लगन को समझने के लिए **'राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम।'** के तात्पर्य को समझना है। कुछ ही समय के बाद मन के मनोरथ प्रगट होने लगते हैं। इसी अवस्था में बहुत से साधक विश्राम करने लगते हैं। हनुमानजी समुद्र पार करने लगे तो मैनाक पर्वत ने उनके सम्मुख आकर कहा कि विश्राम करो। इस पर हनुमानजी ने उत्तर दिया-

राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम। *(मानस, ५/१)*

संसार ही समुद्र है। मन के मनोरथों का प्रकट होना ही मैनाक है और मान का हनन करनेवाला वैराग्य ही हनुमान है।

सम्बन्ध- अब केवल सन्तों की रहनी का चित्रण अवशेष है। जो स्वयं प्रकाशित है, ऐसे प्रकाश में स्थिति आ गई तो क्या महापुरुष भजन नहीं करते? इसी पर पूज्य महाराजजी कहते हैं कि-

पूष में पूरन आपै आप,
नहिं तहाँ पुन्य अरु पाप।
कहो अब जपूँ कौन का जाप,
मिटा सब जनम-मरण सन्ताप।।

भावार्थ- पूष (पूर्णता) में पूर्ण अपने आप है। वहाँ न तो पाप है और न पुण्य ही। वहाँ कोई भिन्न सत्ता भी नहीं तो भला बताइये कि मैं किसका जाप करूँ? अन्ततः जन्म-मरण का सन्ताप मिट चुका, जो जाप के लिए प्रेरित करनेवाला था।

दोहा- ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय कछु, ध्याता ध्यान न ध्येय।
मम निज शुद्ध स्वरूप में, उपाध्येय नहिं हेय।।

यहाँ न ज्ञाता अर्थात् जाननेवाला है, न जानकारी की कोई युक्ति है और न जानने योग्य ही कोई शेष है। यहाँ न कोई ध्याता अर्थात् ध्यानेवाला है, न कोई ध्यान का क्रम है और न कोई ध्येय ही है। मेरे निज, शुद्ध स्वरूप में जो पूर्ण है, उसकी न तो कोई उपाधि ही है और न उसके नाश का ही विधान है।

करूँ फिर किसकी तल्लासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

जब कोई परमसत्ता अर्थात् परमलक्ष्य शेष नहीं, तो फिर किसकी खोज की जाय? ऐसी लगन के बारे में सुनें, जिससे यह स्थिति मिलती है और जिसमें निरन्तर लगे रहने का विधान है।

सम्बन्ध- पूष में पूर्ण तो है; किन्तु पूर्णता का नशा पीछा किये हुए है। आगे चलकर महापुरुषों का यह तनाव भी उतर जाता है। कारण कि जब कोई भिन्न सत्ता ही नहीं है, तो नशा किससे और किसको हो?

लोग जहाँ-तहाँ भूले रहते हैं, इसलिए यहाँ स्थिति प्रत्यक्ष करके अगले पद में सावधानी और आदेश प्रदान करते हैं। महापुरुष इस रहनी में आदेशात्मक शब्द कहते हैं। यदि इसके पूर्व स्थिति में कहते तो वह सन्दिग्ध है। जैसा कि-

भीतर तो हइये नहीं, बाहर में परकास।
कह कबीर कब लौं हरी, छपरा पर की घास।। *(कबीर)*

माघ में मिटी मिलन की भूख,
तहाँ पर नहिं आसिक माशूक।
इश्क फिर किसका होवे,
वृथा वक्त तूँ क्यों खोवे।।

भावार्थ- इस सन्दर्भ में गीता का यह दृष्टान्त विचारणीय है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन! जगत् में मेरे लिए लेशमात्र भी स्वार्थ-साधन शेष नहीं है। कुछ भी प्राप्त होनेवाली वस्तु अप्राप्य नहीं है। उसी का चित्रण इस माह में है। श्री परमहंस महाराजजी के शब्दों में वही चरितार्थ होता है कि मुझे किसी वस्तु की लेशमात्र भी भूख नहीं है।

माघ = महा अघ, अघालयम् अशाश्वतम्। इस संसार में मुझे लेशमात्र भी मिलने की भूख नहीं है क्योंकि जिसको मिलना था, वह भिन्न नहीं है। वहाँ न कोई आशिक ही है और न कोई माशूक। अब भला बताइये किससे प्रेम हो? अब आदेशात्मक वाणी है कि वृथा समय क्यों बरबाद करते हो, जबकि ऐसा स्वरूप उपलब्ध है? (ऐसे महान् स्वरूप की उपलब्धि सम्भव है।)

टिप्पणी– ऐसे महापुरुष में उपदेश की प्रवृत्ति रहती है। उसी में कल्याण है। कारण यह कि वह आँखों देखा हाल है। वास्तव में इस स्थितिवाले ही कहने का अधिकार रखते हैं अन्य लोग नहीं। जैसे–

बिन देखे उस देश की, बात कहै सो कूर।
आपै खारी खात है, बेचत फिरै कपूर।। *(कबीर)*

बौद्धिक स्तर पर कहनेवाले ही तो इन मत-मतान्तरों के रचयिता हैं किन्तु इस स्थितिवाले नहीं। कारण कि जिसने एक ही सत्ता को सर्वत्र देखा है, वह समाज में दरार नहीं डाल सकता।

दोहा– व्यापक परमानन्द में, नहिं आसिक माशूक।
लक्ष्य रूप में मार निशाना, वृथा विलोवे थूक।।

वह व्यापक है, परम आनन्द है। वहाँ न कोई भजनेवाला है और न भजने के लिए ही कोई शेष रहता है। यही लक्ष्य स्वरूप की स्थिति है। इसी में निशाना मारो। क्यों व्यर्थ में विवाद करते हो, जबकि परिणाम कुछ भी नहीं मिलना है?

करावै क्यों जग में हाँसी।
लावनी सुन बारहमासी।।

क्यों जीव-जगत् अर्थात् जीव योनियों में फँसकर हँसी करवाते हो? थूक विलोने से तो परिणाम में निराशा ही हाथ लगती है। उस लगन के विषय में सुनो, जो छुटकारा दिलानेवाली है अर्थात् परमात्मा जिससे प्रत्यक्ष होता है; किन्तु सम्भव तभी है जब तार न टूटे।

सम्बन्ध- अन्त में किस प्रकार के साधकों की पूर्ति तत्काल होती है, उनका महत्त्व तथा ज्ञान व पद की निर्लिप्त एवं विशेष स्थिति का चित्रण करते हुए अन्तिम पद की समाप्ति कर देते हैं। इस लगन में साधन की नितान्त आवश्यकता की पुष्टि करने के लिए केवल अविद्या को काटा है, जो साधक के क्षेत्र की बात है।

बसन्त ऋतु फाल्गुन में आवे,
खेल यह प्रारब्ध रचवावे।
इत्र गुलाल ज्ञान रोरी,
खेलते भर-भर के झोरी।।

भावार्थ- फाल्गुन=विशेष फलदायक गुण, वसन्त ऋतु=स्थायी मस्ती। सांसारिक ऋतुएँ तो आती-जाती रहती हैं, परन्तु जब हृदय-देश में मस्ती छा जाती है, तो परिवर्तन नहीं होता अर्थात् सदैव कायम रहता है। यह स्थिति फलप्रद गुणों से ही आती है,

परन्तु उस क्रिया में प्रवृत्त होने में प्रारब्ध भी सहायक है। इस साधन में प्रारब्ध का विशेष स्थान है।

इत्र जगत् का एक सुगन्धित द्रव्य है। वह इस रहनी में एक प्रतीक मात्र है। जब ईश्वरोपलब्धि में यह सम्पूर्ण खेल सुलभ हो जाता है तब योगी की इन्हीं इन्द्रियों में परमात्मा की सुगन्धि का संचार हो जाता है। गुलाल-रोरी इत्यादि जो सर्वत्र लगाये जानेवाले पदार्थ हैं, योग की इस रहनी में ये सब ज्ञानसंचार के प्रतीक हैं, जो इस स्थिति के पुरुषों से प्रायः सदैव सबको मिला है। यह स्थिति हृदय में आती है, इसलिए हृदयरूपी झोली में वह रहनी एवं ज्ञान भरपूर रहता है। जैसा कि-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

अर्थात् पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर शेष पूर्ण ही बचा रहता है, वह घटता नहीं।

टिप्पणी- यदा-कदा श्री महाराजजी के पावन मुख से यह बात निकला करती थी कि नाम के प्रभाव से असाध्य को भी साध्य बनाया जा सकता है। इस लावनी में प्रवेश और अन्तिम पराकाष्ठावाली योग्यता तो लगनेवालों के लिए है। यह स्वयं विचार की बात है कि यदि सर्वथा नहीं लग पाते हैं तो नाम का आश्रय ले लेना चाहिए।

'मेटत कठिन कुअंक भाल के।।' *(मानस, १/३१/६)* नाम के प्रभाव से कठिन कुअंक भी मिट जाते हैं। यदि लगन है तो वही प्रारब्ध बन जाता है। कोई महापुरुष कृपा कर दे और उठा दे, तो दुर्गम पथ भी सुगम हो जाता है। सेवा से, समर्पण से अथवा सर्वस्व अर्पण करके भी हम उनके हृदय में स्थान पा लें। महापुरुष किसी के प्रायश्चित को स्वयं सहन कर उसको निवृत्ति दिला देते हैं।

दोहा- होली अविद्या फूँकि के, हो गये गुप्तानन्द।
समझे कोई सुघड़ विवेकी, क्या समझे मतिमन्द।।

अविद्यारूपी होली को फूँककर स्वयं आनन्द का स्वरूप बन जाते हैं। जो गुप्त है, आनन्द है, अलख है उसी के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। इसको कोई सुलझा हुआ विवेकी ही समझ पाता है, बुद्धिहीन नहीं।

टिप्पणी- भाषा की जानकारी से विवेक-बुद्धि की जागृति नहीं होती। अनेक महापुरुष तो भाषा के नाम पर निरक्षर थे, पर थे परम विवेकी। महान् विवेक का स्रोत उनसे ही निकला है। जैसे कि कागभुशुण्डि को ही लिया जाय, **'हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई।'** (मानस, ७/१०६/८) लेकिन नहीं पढ़े। स्वामी रामकृष्ण परमहंस आदि भी इसी प्रकार के थे।

जगत् की धूल उड़ी खासी।
लावनी सुन बारहमासी।।

जगत् अर्थात् जीवगति की धूलि पूर्णतया उड़ गई। जीवगति की नश्वरता विलीन हो गई और परमचेतन की गति बन गई। परमचेतन से अभिन्न स्थिति दिलानेवाली जो लगन है उसकी प्रक्रिया को सुनो, जिसमें पूर्तिपर्यन्त लगे रहने का विधान है। उसके बाद नहीं लगना पड़ता। उसके बाद तो **'हरिजन भजन भेद से न्यारा।'**

आँख न मूंदे कान न रुँधे, काया कष्ट न धारे।
उघरे नैना साहब देखे, सुन्दर बदन निहारे।। *(कबीर)*

अर्थात् भजन की आवश्यकता नहीं रहती किन्तु भजन बना ही रहता है।

निर्णय

इस अन्तिम पद में सबका निर्णय देते हुए केवल अविद्या को ही क्यों फूँकते हैं, जबकि इस पूर्णता में विद्या भी मिट जाती है? अधिकांशतः देखा जाता है कि मनुष्य साधन-श्रम नहीं करना चाहता परन्तु योग्यता की ख्याति प्राप्त करना चाहता है। जबकि वह प्रत्यक्ष स्थिति है, ख्याति नहीं। अतः उस लगन के द्वारा अविद्या को फूँक दें। इष्ट के स्पर्शकाल में विद्या तो स्वयं मिट जाती है। उसमें आपके मिटाने की कोई प्रक्रिया नहीं है। विद्या तो वह रास्ता है जिसके द्वारा क्रमशः इष्ट तक की मंजिल तय करते हैं। दर्शन के साथ ही रास्ता समाप्त हो जाता है। यदि अविद्या के

साथ विद्या को भी छोड़ने के लिए लिख दिया जाय तो कोरे वेदान्तियों को रास्ता मिल जायेगा। वे कहने लगेंगे कि विद्या झूठी है, इसे छोड़ो। करने की आवश्यकता नहीं है। हम तो पूर्ण हैं, शुद्ध हैं, अजर-अमर परमात्मा हैं- आदि विशेषणों से अपने को अलंकृत कर लेंगे। ऐसा मानने से कुछ होता नहीं, स्वयं तो क्रिया व वस्तु से वंचित रह जाते हैं और दूसरों को भी बाधा पहुँचाते हैं। योगपूर्ति के उपरान्त वास्तव में ऐसा ही है। इसलिए महापुरुष ने केवल इतना ही निर्णय दिया है, जिससे साधक को क्रिया में भ्रम न हो। इस प्रकार साधक को क्रिया द्वारा केवल अविद्या को मिटाना है। विद्या तो स्पर्श, दर्शन आदि के साथ उस परम तत्व में विलीन हो जाती है। कालान्तर में फैलनेवाली रूढ़ियों के निवारणार्थ यदाकदा महापुरुषों को अन्तश्चेतना मुमुक्षुओं के भावी कल्याण के लिए जीवनानुभूति का अमरस्रोत बनकर श्रीमुख से लयात्मक वेग से अनायास ही प्रस्फुटित होने लगती है। परमपूज्य श्री महाराजजी की अमरवाणी से बारहमासी की अतुलनीय परमार्थवादी काव्य-लहरी ऐसी ही कल्याण-कल्पना से तरंगित है। आपकी चिन्तनरत 'भावलहरी' में यह प्रेरणा प्रादुर्भूत होती है कि परमार्थ पथिक महापुरुषों का आश्रय लेकर साधन-पथ को क्रमशः प्रशस्त करने के लिए प्रयत्नशील होंगे। ऐसी स्थिति में उन्हें सम्बल प्रदान करनेवाले निर्देशात्मक उपकरण यदि किसी तत्त्वदर्शी द्वारा अन्तःकरण में प्रगट हो जायँ तो प्रगति सुलभ हो जायेगी।

इसी उद्देश्य की पूर्तिहेतु बारहमासी का संगीतमय वेग उन्मुक्त भाव-प्रवणता के साथ प्रवाहित हुआ है।

इस कृति में लयात्मक छन्द लावनी का प्रयोग सरल किन्तु हृदयस्पर्शी भाषा के परिवेश में सरस एवं बोधगम्य शैली में किया गया है। इसके प्रथम दर्शन एवं पठन से ही हृदय में प्रबल जिज्ञासा का प्रस्फुटन होने लगता है, परन्तु कल्याणात्मक उपलब्धि तभी संभव है जब उसका प्रयोगात्मक पद्धति से अनुशीलन किया जाय। बारहमासी में चैत से लेकर फाल्गुन मास तक का क्रमागत वर्ष-विकास का सामञ्जस्य साधनात्मक ढंग से किया गया है। किस प्रकार अनुरागी के अन्तःकरण में लगन की ज्योति जागृत होती है, वह किस अन्तर्प्रेरणा से प्रभावित होकर महापुरुष की कृपा से लाभान्वित होता है, तदनन्तर उसमें किस तरह विलक्षण अनुभवों का प्रादुर्भाव होता है इत्यादि क्रियात्मक पद्धतियों का सूक्ष्मतम विश्लेषण किया गया है। वस्तुतः यह कृति (बारहमासी) उन्हीं के लिए अधिक उपयोगी है जो साधन-पथ पर चलनेवाले पथिक हैं। पूर्वकथित जागृति से पथ की बाधा, व्यवधान एवं उपलब्धियों का पूर्वाभास मिलता जाता है, जिससे कि साधक उस अदृश्य पथ पर निर्विघ्न रूप से बढ़ता रहता है। अब आप यह न भूलें कि यह जागृति केवल स्थितिप्राप्त महापुरुषों द्वारा ही मिलती है। हाँ, यह कठिनाई अवश्य है कि वे करोड़ों में एक होते हैं, परन्तु हैं सदैव। ।। ॐ।।

मानवता का चरमोत्कर्ष

इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न सुख समस्त योनियों को उतनी ही मात्रा में उपलब्ध है, जितना कि हमारे मन की मंजिल। स्त्री-पुरुष का संयोग, माता-पिता का वात्सल्य, राग-द्वेष एवं सम्पूर्ण विषयों का प्रसार समस्त जीवधारियों में समान रूप से है। इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की प्राप्ति से तुष्टि और प्रतिकूल विषयों का संयोग होते ही अत्यन्त शोक एवं ग्लानि का भाव तो पशु-पक्षियों में भी पाया जाता है। जैसे कि किसी स्वस्थ बैल की तरफ संयोगवश यदि कोई गीदड़ या कुत्ता बढ़ता है तो वह तत्काल क्रोधित होकर उसे शृंग-प्रहारहेतु दौड़ पड़ता है किन्तु जब वही बैल किसी शेर के सामने पड़ जाता है तो भयातुर होकर अत्यन्त दैन्यावस्था में गिर पड़ता है। यदि इसी हर्ष एवं शोक की परिधि में ही मानव जीवनयापन करता है तो वह पशु-पक्षियों के सदृश ही है।

परमात्मा के साक्षात्कार की स्थितिवाले महापुरुषों ने इस मानव-तन की प्रशस्ति की है। वस्तुतः यह मानव-तन तभी सराहनीय है, जबकि उस परमपुरुष के चरणकमलों में सतत स्नेह हो।

अब प्रश्न यह उठता है कि वह अपार्थिव स्नेह किस प्रकार प्रारम्भ हो? वह परमात्म-तत्त्व ईश्वर, सच्चिदानन्द और आदि, अलौकिक शब्दों से व्यक्त होनेवाला अमृतमय परमपुरुष चेतन सत्ता तो सर्वत्र समान रूप से ही व्याप्त है। आकाश, पाताल, सूर्य, चन्द्रमा, यहाँ तक कि प्रकृति के कण-कण में भी सूक्ष्म से सूक्ष्मतम स्वरूप में उसी परमचेतन सत्ता का संचार हो रहा है। मनुष्य की हर प्रक्रियाएँ उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हैं। उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए करोड़ों प्रयत्नशील जिज्ञासुओं में से एकाध उसमें फना हो जाते हैं, ऐसे ही स्थितप्रज्ञ महापुरुषों ने समय-समय पर उस विश्वव्यापी सत्ता को खोजने की अनुपम युक्ति का दिग्दर्शन कराया है। जिस कार्य की पूर्ति के लिए उन्होंने इस पार्थिव शरीर को धारण किया, उसकी पूर्ति कर लेने के उपरान्त उस परम पावन रहनी में स्थूल शरीर का सम्बन्ध छोड़ गये। कालान्तर में उन महापुरुषों के पश्चात् उन्हीं के सत्प्रेरित शब्दों के ऊपर मानव की विभिन्न प्रवृत्तियों का जाल बिछ गया, जो एक भ्रान्तिपूर्ण दलदल बन गया।

सत्यपथ के आभासहेतु उस परमप्रभु का अन्वेषण परम आवश्यक है किन्तु 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' की उक्ति को चरितार्थ करनेवाले हमारे बहुत से भाई चलने में श्रम तो करते हैं परन्तु पहुँचते नहीं, इसलिए हम सत्य को किधर से खोजें? उसके लिए थोड़ी-सी प्रेरणा इस कृति से मिलेगी। जैसा कि पूज्य

श्री गुरुदेव के शब्दों से स्पष्ट है कि साधन कोई करता नहीं बल्कि महापुरुष ही कराते हैं।

इस कृति में सम्प्रदाय विशेष का समर्थन अथवा खण्डन नहीं किया गया है, क्योंकि परम लक्ष्य से साक्षात्कार करानेवाली पीयूषवर्षी साधनात्मक क्रिया एक ही है। वस्तुतः यदि उस अदृश्य सत्ता की चाह है तो हमें निर्विवाद रूप से उसी प्रयोगात्मक पथ पर चलना पड़ेगा। अपौरुषेय निधि श्री गुरुदेव की अमरवाणी में श्रीमद्भगवद्गीता, शास्त्रों एवं उपनिषदों का अध्यात्म-प्रसूत विलक्षण अर्थ प्रस्फुटित होता था परन्तु वह लिपिबद्ध नहीं किया गया; क्योंकि परम पूज्य महाराज जी सदैव यह कहते रहे हैं कि चरमोपलब्धि का गूढ़ रहस्य केवल उपयुक्त अधिकारियों के लिए ही है। वह पारलौकिक वस्तु तक पहुँचकर ही रहेगा।

चेतावनी व संस्कार सृजन के लिए दर्श-पर्श एवं पूछे गये प्रश्नों के उत्तर ही अन्य परिस्थितिवाले लोगों के लिए पर्याप्त हैं। उदाहरणार्थ यदि वैज्ञानिक अन्वेषण या साहित्यिक शोध-कार्य की विषय-वस्तु से सम्बन्धित कोई उच्चस्तरीय पुस्तक किसी प्रारम्भिक स्तर के छात्र को अध्ययनार्थ दे दी जाय तो क्या वह उसका महत्त्व समझ सकता है?

हाँ, कालान्तर में वही प्राथमिक स्तर का छात्र क्रमागत अध्ययनपटुता के विकासोपरान्त उस योग्यता को प्राप्त करेगा।

अतः इसको छोटी बात नहीं समझना चाहिए। क्षमतोपलब्धि के बाद उपयुक्त स्तर मिलता ही है। यथा-

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं।। *(मानस, १/१०६/२)*

यदि वस्तुतः कोई अधिकारी है तो उसके लिए कोई दुराव नहीं है। ईश्वर के लिए जिज्ञासु व परम उत्कण्ठावाला व्यक्ति ही इस पथ पर चलने योग्य है। भगवद्-भक्ति के अतिरिक्त आवागमन से छुटकारा पाना असम्भव है। यथा-

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्बान।
ग्यानवन्त अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ बिषान।।
(मानस, ७/७८ क)

यदि कोई भगवद्-भजन के बिना कल्याण (मोक्ष) चाहता है तो ज्ञानी होने पर भी वह पशु है। अन्तर केवल इतना ही है कि उसके पास पूँछ नहीं है। अतः भजन में सन्देह होना अपनी ही हत्या है। भजन की यथार्थता पर सन्दिग्ध भाव जागृत होते ही प्रत्याशी परावर्त होकर दूसरे के ऊपर दोषारोपण करना प्रारम्भ कर देता है किन्तु मौलिक रूप से दूसरों पर दोषारोपण करने से अपना ही अमूल्य समय नष्ट होता है। प्रत्येक प्रयत्नशील के जीवन का सौन्दर्य तो सतत् क्रियाशीलता में ही है जिसकी परिणति परमशान्ति या परमानन्द है।

परमपूज्य श्री परमहंसजी महाराज का साधनात्मक जीवन-दर्शन जनमानस के उत्थानहेतु आपकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। आप प्राचीन परम्परागत आध्यात्मिक सत्यता एवं परम कल्याण के पथ को समझने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।

अन्त में हार्दिक कामना प्रगट करते हुए उन्हीं महापुरुष सद्गुरु से प्रार्थना है कि समस्त प्रयत्नशील प्राणियों के ब्रह्मोन्मुखी प्रयास को सफल बनाने की कृपा करें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

प्राप्तिवाले महापुरूष का समग्र जीवन एक धार्मिक आचार-संहिता हुआ करता है, जिसे देखने से साधकों को बड़ा सहारा मिलता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखकर पूज्य गुरुदेव जी के जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन निष्पक्षता के आलोक में इस उद्देश्य से किया गया है कि सनातन एवं मूल सत्य की प्राप्ति के लिए महाराज जी की विद्या को लिखा जाय जिससे प्रयासरत साधकों को दिशा-निर्देश मिल सके।

-स्वामी अड़गड़ानन्द

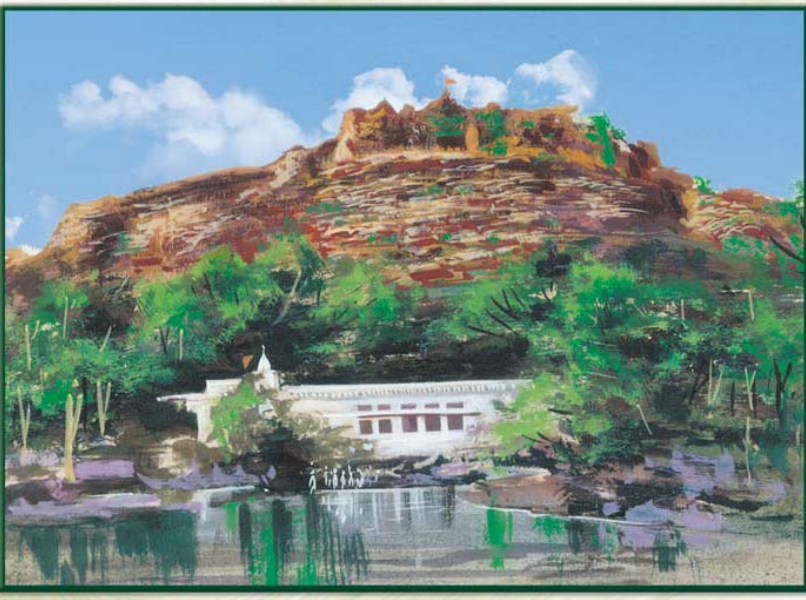

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं. 5, मोगरा लेन (रेल्वे सब-वे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुंबई - 400069, भारत
दुरध्वनी - 022-28255300 ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com